षड्दर्शन सूत्रसंग्रह
एवं
षड्दर्शन विषयक कृतयः

-: संकलनकार :-

पू.मु.श्री संयमकीर्तिविजयजी म.सा.

षड्दर्शन सूत्रसंग्रह
एवं
षड्दर्शन विषयक कृतयः

-: कृपादृष्टि :-

तपागच्छाधिराज स्व.पू.आ.भ.श्री.वि. **रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा

वात्सल्यवारिधि स्व.पू.आ.भ.श्री.वि. **महोदयसूरीश्वरजी** महाराजा

गच्छनायक स्व.पू.आ.भ.श्री.वि. **हेमभूषणसूरीश्वरजी** महाराजा

-: मार्गदर्शक :-

प्रवचन प्रभावक पू.आ.भ.श्री.वि. **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजा

-: संकलनकार :-

तपागच्छाधिराज पू.आ.भ.श्री.वि. **रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा के प्रशिष्यरत्न पू. पंन्यास प्रवर श्री **दिव्यकीर्तिविजयजी** गणीवर्यश्री के शिष्यरत्न पू. पंन्यास प्रवर श्री **पुण्यकीर्तिविजयजी** गणीवर्यश्री के शिष्यरत्न पू.मु.श्री **संयमकीर्तिविजयजी** म.सा.

-: प्रकाशक :-

सन्मार्ग प्रकाशन

अहमदाबाद

-: प्रचारक :-

चौखम्बा पब्लीकेशन

न्यू दिल्ली

ग्रंथ का नाम : षड्दर्शन सूत्रसंग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः
संकलनकार : पू.मु.श्री संयमकीर्तिविजयजी म.सा.
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद
प्रचारक-प्रधान वितरक : चौखम्बा पब्लीकेशन न्यू दिल्ली
मूल्य : रू. २५०/-
प्रकाशन : वि.सं. २०६८, महा सुद-१४, ता. ६-२-२०१०

: संपर्कसूत्र :

१ सन्मार्ग प्रकाशन,
अहमदाबाद-१.
फोन : (०७९) २५३९२७८९

२. पं.श्री मेहुलभाई शास्त्री
मो. ९१७३३९६०८४

: प्राप्तिस्थान :

(१) सन्मार्ग प्रकाशन
जैन आराधना भवन,
पाछीया की पोल, रीलीफ रोड,
अहमदाबाद-१.
फोन : (०७९) २५३९२७८९
E-mail : sanmargprakashan@gmail.com

(२) चौखम्बा संस्कृत संस्थान
पो. बो. नं. ११३९, के-३७/११६,
गोपालमंदिरलेन, गोलघर,
मैदागीन के पास, वाराणसी-२२१००१,
(इन्डीया) फोन : २३३३४४५
टेली फेक्स : ०५४२-२३३५९३०
मो : ९८३८८१६१७२
E-mail : cssvns@sify.com

(३) चौखम्बा पब्लिकेशन
४२६२/३, अंसारी रोड,
दरियागंज, न्यू दिल्ली-११०००२
फोन : २३२५९०५०,
टेली फेक्स : (०११) २३२६८६३९
मो. : ९३१३८०१७४२
E-mail-Cpub@vsnl.net

(४) चौखम्बा संस्कृत संस्थान
६९२/९३, रविवार पेठ,
कपडगंज, डी.एस.हाउस के पास,
पुणे-४११००२
फोन नं. (०२०) २४४७१२८३
मो. ९९७०१९३९५५
E-mail : hn.shah@rediffmail.com

हार्दिक - अनुमोदना

-: लाभार्थी :-

दीक्षामार्ग संरक्षक, दीक्षायुग प्रवर्त्तक, तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद् विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा** के

दिव्य प्रभावक साम्राज्य से संवर्धित

श्री जिनाज्ञा आराधक श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपागच्छ जैन संघ मुलुंड, मुंबई

द्वारा ज्ञाननिधि में से ....

इस **"षड्दर्शन सूत्रसंग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः"** ग्रंथ प्रकाशन का **संपूर्ण लाभ** प्राप्त किया गया है।

आप के श्रीसंघ की श्रुतभक्ति की हार्दिक अनुमोदना !!!

भविष्य में आपका

उत्तरोत्तर श्रुतभक्ति का शुभभाव उल्लसित बने रहे, ऐसी शुभकामना।

लि. सन्मार्ग प्रकाशन

नोंध : इस ग्रंथ, ज्ञाननिधि की द्रव्यराशी के सद्व्यय से प्रकाशित हुआ होने से गृहस्थवर्ग को इस ग्रंथ का संपूर्ण मूल्य ज्ञाननिधि में जमा कराकर ही उसकी मालिकी करने का परामर्श है।

-: दीक्षा स्मृति दिन शताब्दी वर्ष में :-

-: सादर समर्पणम् :-

श्री महावीर प्रभु के शासन की अजोड आराधना-प्रभावना-सुरक्षा द्वारा बीसवी-इक्कीसवी सदी के जैनशासन के इतिहास को जाज्वल्यमान करनेवाले........

दीक्षामार्ग संरक्षक............ दीक्षा दानवीर............ दीक्षायुग प्रवर्त्तक............. दीक्षामार्ग के अजोड आराधक.......... परमोपकारी............

सिद्धांत................ संरक्षक................. जैन शासनशिरताज............... व्याख्यान वाचस्पति............ तपागच्छाधिराज..............

पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के शास्त्रसंपूत करकमल में यह संग्रहग्रंथ को समर्पित करके धन्यता का अनुभव करता हुँ।

– चरणरज संयमकीर्तिविजय

ऋण स्मरण

(१) ज्ञानाराधन में आलंबनभूत तपस्वी सम्राट वर्धमान तपोनिधि स्व.पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद् विजय **राजतिलकसूरीश्वरजी** महाराजा।

(२) दीक्षादाता सुविशाल गच्छाधिपति स्व.पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद् विजय **महोदयसूरीश्वरजी** महाराजा।

(३) न्यायनिपुण पू.आ.भ.श्री.वि. **चन्द्रगुप्तसूरीश्वरजी** महाराजा।

(४) परमोपकारी सुविशालगच्छनेता स्व.पू.आ.भ.श्री.वि. **हेमभूषणसूरीश्वरजी** महाराजा।

(५) परमोपकारी प्रवचनप्रभावक पू.आ.भ.श्री.वि. **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजा।

(६) परमवेयावच्ची, सौजन्यमूर्ति, परमोपकारी पू.आ.भ.श्री.वि. **हर्षवर्धनसूरीश्वरजी** महाराजा।

(७) परमोपकारी विद्वद्वर्य पूज्य गुरुदेव पंन्यास प्रवर श्री **दिव्यकीर्तिविजयजी** गणीवर्य।

(८) परमोपकारी वर्धमान तपोनिधि पू.गुरुजी पंन्यास प्रवर श्री **पुण्यकीर्तिविजयजी** गणीवर्य।

प्रस्तावना

प्रस्तुत संग्रह ग्रंथ में दार्शनिक अभ्यासु वर्ग को तुलनात्मक अभ्यास के लिए उपयोगी जैन, वेदान्त, मीमांसक (जैमिनि), नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और योगदर्शन के सूत्रात्मक ग्रंथो का प्रथम विभाग में समावेश किया है।

एवं श्री जैनाचार्यो तथा श्री जैन मुनिवरो के द्वारा विरचित षड्दर्शन विषयक कृतिओं का द्वितीय विभाग में समावेश किया है।

''षड्दर्शन समुच्चय'' मूलग्रंथ १४४४ ग्रंथ के रचयिता पू.आ.भ.श्री हरिभद्रसूरिजी म. का है। इसके उपर **''तर्करहस्य दीपिका''** नाम की प्रसिद्ध बृहद्वृत्ति की रचना **पू.आ.भ.श्री गुणरत्नसूरिजी म. ने** की है।

बृहद्वृत्ति सहित मूलग्रंथ की हिन्दी व्याख्या (भावानुवाद) दो भाग में अलग ग्रंथ के रुप में यह ग्रंथ के साथ **सन्मार्ग प्रकाशन** (अहमदाबाद) के द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसलिए इस संग्रहग्रंथ में बृहद्वृत्ति का समावेश किया नहीं है।

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्य देवेश श्रीमद् विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा** के साम्राज्यवर्ती तपस्वी पू. साध्वीवर्या श्री **सुनितयशाश्रीजी म.** के सुशिष्या विदुषी पू.साध्वीवर्या श्री **ज्ञानदर्शिताश्रीजी म.** ने इस ग्रंथ के प्रुफ संशोधन एवं संकलन आदि कार्य में सुंदर सहायता की है। उनकी निःस्वार्थ श्रुतभक्ति की हार्दिक अनुमोदना।

विशेष में, यह संग्रहग्रंथ साधनामार्ग के पथिक के लिए प्रकाशित किया गया है। यह ग्रंथ का कोई भी व्यक्ति आजीविका आदि में उपयोग करे तो

इसमें हमारा कोई अनुमोदन नहीं है। इसका उत्तरदायित्व उसके शिर पे रहेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से सत्य पथ की गवेषणा करके सही मार्ग के उपर चलकर सभी जीव मुक्तिसुख का सहभागी बने, ऐसी ही एक शुभकामना।

कार्तिक वद-द्वि. ३,
वि.सं. २०६८
ता. १४-११-११

मु.संयमकीर्तिविजय
श्री रत्नत्रयी आराधना भवन,
४६, वसंतकुंज, पालडी,
अहमदाबाद-७.

दीक्षा युगप्रवर्तकश्रीजी के श्रीचरणों में ससम्मान श्रद्धांजलि



न्यायांभोनिधि पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् **विजयानंदसूरीश्वरजी (आत्मारामजी)** महाराजा के स्वर्गवास के वर्ष में जन्मे, पादरा के माता **समरथ** व पिता **छोटालाल रायचंद** के इकलौते सुपुत्ररत्न **त्रिभुवनकुमार** ने दीक्षा की सार्वत्रिक विपरीत अवस्थाओं के बादलों को स्वपुरुषार्थ से बिखेरकर भरूच के पास **गंधारतीर्थ** में पू. मु. श्री **मंगलविजयजी** महाराजा के करकमलों से रजोहरण प्राप्त कर पू. मु. श्री **प्रेमविजयजी** महाराज (बाद में सूरीश्वरजी) के प्रथम पट्टशिष्य के रूप में पू. मु. श्री **रामविजयजी** महाराज का नाम धारण किया। उस समय दीक्षितों व दीक्षार्थियों को दीक्षा का आदान-प्रदान करने के लिए जिस तरह से संघर्ष करना पड़ता था, उस परिस्थिति में पूर्व-पश्चिम जैसा प्रचंड बदलाव लाने का दृढ़ संकल्प करके उनके मूल कारण खोजकर उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकने का उन्होंने भीष्म पुरुषार्थ शुरू किया था।

इस पुरुषार्थ की नींव की शिला **'प्रवचनधारा'** बनी। अनंत तीर्थंकरों को हृदय में बसाकर, जिनाज्ञा-गुर्वाज्ञा को भाल प्रदेश में स्थापित कर, करकमल में आगमादि धर्मशास्त्र धारण कर, चरणद्वय में चंचला लक्ष्मी को रखकर, जिह्वा के अग्रभाव में शारदा को संस्थापित कर इन महापुरुष ने दीक्षाविरोध के खिलाफ भीषण जेहाद छेड़ी थी। अनेक बाल, युवा, प्रौढ और वृद्धों को दीक्षा प्रदान की। एक साथ परिवार दीक्षित होने लगे। हीराबाजार के व्यापारी, मिलमालिक, डॉक्टर, इंजीनियर व चार्टर्ड एकाउन्टेंट भी उनकी वैराग्य वाणी से प्रभावित होकर वीरशासन के भिक्षुक बन गए।

इस कार्यकाल के दौरान इन श्रीमद् को कई उतार-चढ़ाव, अपमानों, तिरस्कारों, काच की वृष्टि, कंटकों के रास्ते, काले झंडे, स्थान व गांव में प्रवेश न मिले, ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। पैंतीस से अधिक बार तो सिविल व क्रिमिनल गुनाहों में आरोपी बनाकर जैन वेषधारियों ने ही अदालत दिखाई। मां समरथ के जाए, रतनबा द्वारा पोषित, सूरिदान की आंखों के तारे और समकालीन सर्व वरिष्ठ गुरुवर्यों के हृदयहार के रूप में स्थान प्राप्त करने वाले पूज्यश्री ने जिनाज्ञा व सत्यवादिता के जोर पर इन सभी आक्रमणों पर विजय प्राप्त की थी। पू. मु. श्री **रामविजयजी** महाराजा से पू. आ. श्री विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी**

महाराजा के रूप में विख्यात हुए श्रीमद् व्याख्यानवाचस्पति, परमशासनप्रभावक, महाराष्ट्रादिदेशोद्धारक, दीक्षायुगप्रवर्तक, जैनशासनसिरताज, तपागच्छाधिराज जैसे १०८ से अधिक सार्थक खिताब पाकर जैनशासन को आराधना, प्रभावना और सुरक्षा के त्रिवेणी संगम से परिस्नात कराते रहे।

कट्टर से कट्टर विरोधी वर्ग को भी वात्सल्य से देखते और अपने प्रति गंभीर अपराध करनेवाले को भी झट से क्षमा दान करनेवाले श्रीमद् ने अपने ७७-७८ वर्ष के सुदीर्घ संयमपर्याय में मुख्य रूप से दीक्षाधर्म की सर्वांगीण सुरक्षा-संवर्धना की, उनके बीज ऐसे सुनक्षत्र में बोए कि उनके नाम से पुण्य संबंध रखनेवाले एक ही समुदाय में आज लगभग १४०० संयमी साधनारत हैं। अन्य समुदाय, गच्छ व संप्रदायों में दीक्षाप्रवृत्ति के वेग में भी वे श्रीमद् असामान्य कारणरूप हैं। यह किसी भी निष्पक्षपाती को कहने में गुरेज नहीं होगा।

पूज्यपादश्रीजी के दीक्षास्वीकार की क्षण **वि. सं. २०६८ की पोष सुदी त्रियोदशी** को **'शताब्दी'** में मंगलप्रवेश कर रही है और पूरे वर्ष के दौरान इस उपलक्ष्य में **दीक्षाधर्म** की प्रभावना के विविध अनुष्ठान आयोजित किए जा रहे हैं।

पालीताणा में **'सूरिरामचंद्र'** के साम्राज्यवर्ती पूज्य गच्छस्थविर पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **ललितशेखरसूरीश्वरजी** महाराजा, वात्सल्यनिधि पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **महाबलसूरीश्वरजी** महाराजा, गच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **पुण्यपालसूरीश्वरजी** महाराजा, प्रवचनप्रभावक पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजा आदि दशाधिक सूरिवर, पदस्थ, शताधिक मुनिवर तथा पंचशताधिक श्रमणीवरों की निश्रा-उपस्थिति में पंचदिवसीय महोत्सव के आयोजन के साथ आरम्भित **'दीक्षाशताब्दी-महोत्सव'** देशभर में अनेक स्थलों पर भावपूर्वक मनाया जा रहा है। पूज्यश्री के साथ संलग्न स्मृतिस्थान-तीर्थों में भी विविध आयोजन किए गए हैं। समुदाय के अन्य सूरिवर आदि की निश्रा-उपस्थिति में भी राजनगर, सूरत, मुंबई आदि स्थलों पर प्रभावक आयोजन किए गए हैं।

इन सभी आयोजनों के सिरमौर व समापन स्वरूप पूज्यपादश्रीजी के दीक्षास्थल श्री गंधारतीर्थ में अधिक से अधिक संख्या में चतुर्विध श्रीसंघ को आमंत्रित कर दिगदिगंत में गुंजायमान होनेवाला दीक्षादुंदुभि का पुण्यघोष करने की गुरुभक्तों व समिति की भावना है।

दीक्षाशताब्दीवर्ष में जिनभक्ति, गुरुभक्ति, संघ-शासनभक्ति के विविध अनुष्ठान आयोजित किए जाएंगे । वैसे ही अधिक से अधिक संख्या में मुमुक्षुओं, महात्माओं के दीक्षा महोत्सव भी आयोजित किए जाएंगे। साथ ही ज्ञानसुरक्षावृद्धि, अनुकंपा एवं जीवदयादि के संगीन कार्य करके पूज्यपादश्रीजी के आज्ञासाम्राज्य को ससम्मान श्रद्धांजलि समर्पित की जाएगी।

इस बृहद् योजना के अंतर्गत ही प्राचीन व अर्वाचीन श्रुतप्रकाशन का सुंदर व सुदृढ़ कार्य शुरू किया गया है। सूरिरामचंद्रसाम्राज्य के वर्तमानगच्छाधिपति प्रवचनप्रदीप पूज्यपाद् आचार्यदेव श्रीमद् विजय **पुण्यपालसूरीश्वरजी** महाराजा के आज्ञाशीर्वाद प्राप्त कर प्रवचनप्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजा के शास्त्रीय मार्गदर्शनानुसार विविध श्रुतरत्नों का प्रकाशन '**शासनसिरताज सूरिरामचंद्र दीक्षाशताब्दी ग्रंथमाला**' के उपक्रम से निर्धारित किया गया है। इसके **सप्तम पुष्प स्वरूप "षड्दर्शनसूत्रसंग्रह एवं षड्दर्शनविषयक कृतयः"** ग्रंथ का प्रकाशन करते हुए अतीव आनंद अनुभव कर रहे हैं।

इस पुस्तक का संकलन-संपादन कार्य विद्वद्वर्य पृ. मुनिराज **श्री संयमकीर्तिविजयजी** महाराज नें करकें महान उपकार किया है, तो **सन्मार्ग प्रकाशन,** अहमदाबाद ने भी अथक मेहनत से मुद्रण-प्रकाशन व्यवस्था में पूरा सहयोग दिया है, जिसके लिए उन सभी के भी उपकृत हैं।

सभी कोई इस पुस्तक के पठन-पाठनादि से ज्ञानावरणीयादि कर्मों का क्षयोपशम पाकर मुक्तिमार्ग में आगे बढ़कर आत्मश्रेयः प्राप्त करें, यही हार्दिक-भावना है।

वि. सं. २०६८, माघ सुदी १३
रविवार दिनांक ५-२-२०१२

शासनसिरताज सूरिरामचंद्र
दीक्षाशताब्दी समिति

ग्रंथ परिचय

दार्शनिक अभ्यास हेतु यह ग्रंथ का संकलन किया गया है। दो भाग में विभक्त प्रस्तुत संग्रहग्रंथ के **प्रथम विभाग** में जैन, मीमांसा, वेदांत, योग, सांख्य, न्याय और वैशेषिक दर्शन के सूत्रात्मक ग्रंथो का संग्रह किया गया है। **द्वितीय विभाग** में श्री जैनाचार्य एवं श्री जैनमुनिवर द्वारा विरचित षड्दर्शन विषयक १९ कृतियाँ का संग्रह किया है।

प्रथम विभाग का संक्षिप्त परिचय :

पू.आ.भ.श्री वादिदेवसूरिजी म. विरचित ''प्रमाणनयतत्त्वालोक'' ग्रंथ प्रथम जैनदर्शन का सूत्रात्मक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में आठ परिच्छेद है। **प्रथम परिच्छेद** में प्रमाण, प्रमाण सामान्य का लक्षण और प्रामाण्य की उत्पत्ति एवं ज्ञप्ति का प्रतिपादन किया है। **द्वितीय परिच्छेद** में प्रमाण के प्रकार और प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरुप इत्यादि निरुपण किया है। **तृतीय परिच्छेद** में परोक्ष प्रमाण का लक्षण और उसके भेदों का आख्यान किया है। **चतुर्थ परिच्छेद** में आगम प्रमाण और स्याद्वाद सिद्धांत के स्तंभ रुप सप्तभंगी का स्वरुप बताया है। **पंचम परिच्छेद** में वस्तु, गुण, पर्याय, सामान्य आदि का वर्णन किया है। **षष्ठ परिच्छेद** में प्रमाण, फल, लक्षण एवं प्रमाणाभास इत्यादि आभासों का निरुपण किया है। **सप्तम परिच्छेद** में स्याद्वाद सिद्धांत का उपष्टंभक नय और उसके भेद-प्रभेदों का आख्यान है। **अष्टम परिच्छेद** में वाद, वादी, सभ्य और सभापति का प्रतिपादन किया है। यह जैनदर्शन का अतिमहत्त्वपूर्ण वादग्रंथ है। इसके उपर अतिविस्तृत **श्री रत्नाकरावतारिका** नाम की प्रसिद्ध **टीका** उपलब्ध है।

द्वितीय सूत्रात्मक ग्रंथ (जैनदर्शन का) ''प्रमाणमीमंसा'' है। इसके रचयिता कलिकाल सर्वज्ञ पू.आ.भ.**श्री हेमचन्द्रसूरिजी** म. है। दो अध्याय में विभक्त यह ग्रंथ के **प्रथम अध्याय** में दो आह्निक और **द्वितीय अध्याय** में तीन आह्निक है। प्रमाण सामान्य का लक्षण एवं प्रमाण के भेद-प्रभेदों का तर्कयुक्त पांडित्यपूर्ण विवेचन इस ग्रंथ में हुआ है। इसके उपर स्वोपज्ञ टीका उपलब्ध है।

तृतीया सूत्रात्मक ग्रंथ (जैनदर्शन का) तत्त्वार्थाधिगम सूत्र है । इसके प्रणेता पू.वाचकप्रवर **श्री उमास्वातिजी** महाराजा है । **यह जैनदर्शन का आकर ग्रंथ है ।** प्रमेयबहुल इस ग्रंथ में जैनदर्शन के सभी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पदार्थों का निरुपण किया गया है। दस अध्याय में विभक्त यह ग्रंथ के **प्रथम अध्याय** में मोक्षमार्ग का स्वरुप, सम्यग्दर्शन का स्वरुप और उसकी प्राप्ति का उपाय, जीवादि तत्त्वो का नामोल्लेख, प्रमाण एवं नय का स्वरुप इत्यादि अनेक विषयों का निरुपण किया है । **द्वितीय अध्याय** में औदयिकादि भाव, जीव का लक्षण, जीव के भेद, इन्द्रिय एवं उसके रुपादि विषय इत्यादि विषयों का निरुपण किया है। **तृतीय अध्याय** में सात नरक, जंबुद्वीप, क्षेत्र, आर्यभूमि एवं अनार्यभूमि इत्यादि का प्रतिपादन किया है। **चतुर्थ अध्याय** में देव की चार निकाय का वर्णन किया है । **पंचमाध्याय** में जीवादि षड्द्रव्यात्मक लोक का प्रतिपादन किया गया है। **षष्ठाध्याय** में आश्रव तत्त्व का, **सप्तमाध्याय** में व्रत एवं उनके अतिचार का, **अष्टमाध्याय** में बंध तत्त्व का एवं आठ कर्म का, **नवमाध्याय** में संवर एवं निर्जरा तत्त्व का और **दसमाध्याय** में मोक्ष तत्त्व का निरुपण किया है। इसके उपर स्वोपज्ञ भाष्य एवं पू. श्री **सिद्धसेनगणिजी** कृत **बृहद्वृत्ति** उपलब्ध है।

चतुर्थ सूत्रात्मक ग्रंथ मीमांसादर्शन (जैमिनि सूत्र) है । जिसके रजयिता **श्री जैमिनि ऋषि है ।** मीमांसा दर्शन के १६ अध्याय है। इसमें से प्रथम १२ अध्याय "**द्वादशलक्षणी**" के नाम से प्रसिद्ध है और अंतिम ४ अध्याय "**संकर्षण काण्ड**" या "**देवता काण्ड**" के नाम से प्रख्यात है। इस संग्रह ग्रंथ में प्रसिद्ध **द्वादशलक्षणी** का संग्रह किया है। द्वादशलक्षणी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है - **प्रथमाध्याय** में धर्म पुराणों का प्रतिपादन किया गया है। **द्वितीयाध्याय** में शब्दान्तर, अभ्यास, संख्या, संज्ञा, गुण तथा प्रकरणान्तर-६ कर्म भेद के प्रमाण वर्णित है। **तृतीयाध्याय** में श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान तथा समाख्यान, इन विनियोजक प्रमाणों का प्रतिपादन है। **चतुर्थाध्याय** में श्रुति, अर्थ, पाठ, स्थान, मुख्य और प्रवृत्ति इन बोधक प्रमाणों का निरुपण है। **पंचमाध्याय** में क्रम (कर्मो में आगे पीछे होने का निर्देश), **षष्ठाध्याय** में

अधिकरण, **सप्तमाध्याय** में और **अष्टमाध्याय** में अतिदेश (एक कर्म की समानता पर अन्य कर्म का विनियोग), **नवमाध्याय** में ऊह, **दशमाध्याय** में बाध, **एकादशाध्याय** में तंत्र और **द्वादशाध्याय** में प्रसंग का वर्णन किया है। ''द्वादशलक्षणी'' के उपर श्री शबरस्वामी कृत ''**शाबरभाष्य**'' उपलब्ध है।

पंचम सूत्रात्मक ग्रंथ (वेदान्तदर्शन का) ब्रह्मसूत्र है। इसके रचयिता **श्री बादरायण ऋषि है**। ब्रह्मसूत्र में चार अध्याय और प्रत्येक अध्याय में चार पाद है। **प्रथम अध्याय का नाम समन्वयाध्याय है,** जिसमें समग्र वेदान्तवाक्यों का साक्षात् या परम्परया प्रत्यगभिन्न अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य दिखलाया गया है। इस अध्याय में **प्रथम पाद** में स्पष्ट-ब्रह्मलिंगयुक्त वाक्यों का विचार किया गया है। इस पाद के प्रथम चार सूत्र विषयदृष्टि से नितान्त महत्त्वशाली है। इन्हें चतुःसूत्री कहते है। **द्वितीय पाद** में अस्पष्टब्रह्मलिङ्गयुक्त उपास्य ब्रह्मविषयक वाक्यों का तथा **तृतीय पाद** में स्पष्ट ब्रह्मलिङ्ग प्रायशः ज्ञेय-ब्रह्म विषयक वाक्यों का, **चतुर्थ पाद** में अज, अव्यक्तादि उपनिषद्गत पदों के अर्थ का विचार किया गया है। **द्वितीय अध्याय का नाम अविरोधाध्याय है,** जिसमें स्मृति, तर्कादि के सम्भावित विरोध का परिहारकर के ब्रह्म में अविरोध प्रदर्शित किया गया है। इस अध्याय के **प्रथम पाद** (स्मृति पाद) में सांख्यादि स्मृतियों के सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। **द्वितीय पाद** (तर्क पाद) में सांख्य, वैशेषिक, जैन, सर्वास्तिवाद, विज्ञानवाद, पाशुपत और पाञ्चरात्र मतों का क्रमशः खण्डन कर के वेदान्तमत की प्रतिष्ठा की गई है। **तृतीय तथा चतुर्थ पादों** में महाभूतसृष्टि, जीव तथा इन्द्रिय विषयक श्रुतियों का विरोधपरिहार किया गया है। **तृतीय अध्याय का नाम साधनाध्याय है,** जो वेदान्तसम्मत साधनों का विधान करता है। परलोकगमन, तत्त्वपदार्थपरिशोधन, सगुणविद्यानिरुपण तथा निर्गुण-ब्रह्म-विद्या के बहिरङ्गसाधन (आश्रमधर्म, यज्ञ, दानादि) तथा अन्तरङ्गसाधन (शम, दम, निदिध्यासन आदि) का निरुपण प्रत्येक पाद में क्रमशः किया गया है। **चतुर्थ अध्याय का नाम फलाध्याय है,** जिसमें सगुण-निर्गुण विद्याओं के फलों का

साङ्गोंपाङ्ग विवेचन किया गया है। ब्रह्मसूत्र के उपर श्री शंकराचार्य विरचित "**शारीरिक भाष्य**" आदि अनेक भाष्यों उपलब्ध है।

षष्ठ सूत्रात्मक ग्रंथ (सांख्यदर्शन का) सांख्य सूत्र है। इसके रचयिता **श्रीकपिल ऋषि है।** सांख्यसूत्र में **६ अध्याय है** और सूत्र संख्या **५३७** है। **प्रथम अध्याय** में विषय का प्रतिपादन, **दूसरे** में प्रधान का निरुपण, **तृतीय** में वैराग्य, **चतुर्थ** में सांख्यतत्त्वों के सुगम बोध के लिए अनेक रोचक आख्यायिका, **पंचम** में परपक्ष का निरास, **षष्ठ** में सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय है। सांख्यसूत्र के उपर '**अनिरुद्धवृत्ति**' नाम की टीका उपलब्ध है।

सप्तम सूत्रात्मक ग्रंथ (योगदर्शन का पातञ्जल) योगसूत्र है। इसके रचयिता **श्री पातंजल ऋषि** है। योगदर्शन में **चार पाद** है, जिनकी सूत्र संख्या **१६५** है। **पहले समाधि पाद** में समाधि के रुप तथा भेद, चित्त तथा उसकी वृत्ति आदि का वर्णन है। **द्वितीय (साधन) पाद** में क्रिया-योग, क्लेश तथा उसके भेद, क्लेशो को दूर करने के साधन, हेयहेतु, हान तथा हानोपाय, योग के अष्टांग आदि विषयों का प्रतिपादन है। **तृतीय (विभूति) पाद** में धारणा, ध्यान और समाधि के अनन्तर योग के अनुष्ठान से उत्पन्न होनेवाली विभूतियों का और चतुर्थ (कैवल्य) पाद में समाधिसिद्धि, निर्माणचित्त, विज्ञानवाद-निराकरण, कैवल्य का निर्णय आदि निरुपण किया गया है। योगसूत्र के उपर "**व्यासभाष्य**" एवं श्री भोजकृत '**राजमार्तण्ड**' आदि अनेक टीकाए मिलती है।

अष्टम सूत्रात्मक ग्रंथ (न्यायदर्शन का) न्यायसूत्र (नैयायिकसूत्र) है। इनके प्रणेता **श्री गौतमऋषि** है। न्यायसूत्र पांच अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय दो आह्निकों में विभक्त है। इनमें षोडश पदार्थो के उद्देश्य (नामकथन), लक्षण (परिभाषा) तथा परीक्षण किये गये है। **इन षोडश पदार्थो के नाम है** - प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति तथा निग्रहस्थान। **चतुर्थ** अध्याय के सूत्रो में शून्यवाद-बाह्यार्थभंगवाद आदि बौद्धमतों का खंडन किया है। न्यायसूत्र के उपर श्री वात्स्यायन ऋषि कृत "**न्यायभाष्य**"

न्यायभाष्य के उपर श्री उद्योतकर रचित "**न्यायवार्तिक**" और उसके उपर श्री वाचस्पति मिश्र विरचित "**तात्पर्य टीका**" उपलब्ध है।

नवम सूत्रात्मक ग्रंथ (वैशेषिक दर्शन का) वैशेषिक सूत्र है। इसके रचयिता **श्रीकणाद ऋषि** है। वैशेषिक सूत्र **१० अध्यायो** में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में **दो आह्निक** है। **प्रथम अध्याय** के **प्रथम आह्निक** में द्रव्य, गुण तथा कर्म के लक्षण और विभाग का, **दूसरे आह्निक** में सामान्य का, **दूसरे** तथा **तीसरे** अध्यायों में नव द्रव्यों का, **चतुर्थ अध्याय** के **प्रथमाह्निक** में परमाणुवाद का तथा **द्वितीयाह्निक** में अनित्यद्रव्य-विभाग का, **पञ्चम अध्याय** में कर्म का, **षष्ठ अध्याय** में वेद प्रामाण्य के विचार के बाद धर्माधर्म का, **७वें** तथा **८वें अध्याय** में कतिपय गुणों का, **९ वें अध्याय** में अभाव तथा ज्ञान का, १० वें अध्याय में सुख-दुख-विभेद तथा त्रिविध कारणों का वर्णन किया गया है। 'वैशेषिकसूत्र' के उपर श्री आत्रेय का भाष्य और रावण भाष्य पूर्व में था। लेकिन वह हाल में उपलब्ध नहीं है।

द्वितीय विभाग का संक्षिप्त परिचय :

यह विभाग में षड्दर्शन विषयक १९ कृतियाँ का समावेश किया है।

प्रथम कृति "षड्दर्शन समुच्चय - लघुवृत्ति" है। मूलग्रंथ के रचयिता पू.आ.भ.**श्री हरिभद्रसूरिजी** म. सा. है और लघुवृत्ति के प्रणेता पू.आ.भ.**श्री सोमतिलकसूरिजी** म.सा. है। इस ग्रंथ में बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, जैन, वैशेषिक, मीमांसक एवं लोकायत मत का निरुपण किया है। इस ग्रंथ पर पू.आ.भ.**श्री गुणरत्नसूरिजी** म.सा. कृत "**तर्करहस्यदीपिका**" नामक बृहद्वृत्ति भी है।

द्वितीय कृति "षड्दर्शन समुच्चयावचूर्णि" है। इस ग्रंथ के रचयिता के नाम के विषय में निर्णायक प्रमाण मिलता नहीं है। लेकिन जैनसाहित्य ग्रंथ कलाप में इस ग्रंथ के रचयिता के रुप में श्री ब्रह्मशान्तिदासजी का नामोल्लेख उपलब्ध होता है। इस ग्रंथ में बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक और मीमांसक मत का प्रतिपादन किया है।

तृतीय कृति ''लघुषड्दर्शनसमुच्चय'' है। अज्ञातकर्तृक इस लघु ग्रंथ में भी जैन, नैयायिक, बौद्ध, वैशेषिक, जैमिनि (मीमांसक), सांख्य एवं नास्तिक दर्शन का संक्षेप में निरुपण किया है।

चतुर्थ कृति पू.आ.भ.श्री राजशेखरसूरिजी म.सा. कृत ''षड्दर्शन समुच्चय'' है। १८० श्लोक प्रमाण इस ग्रंथ में जैन, सांख्य, मीमांसक, नैयायिक, वैशेषिक, बौद्ध, अष्टांग योग (योगदर्शन) और नास्तिक मत का प्रतिपादन किया है। **अन्यत्र प्रायः अनुपलब्ध प्रत्येक दर्शन के वेष, आचार और लिंग का वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है।**

पंचम कृति पू.आ.भ.श्री मेरुतुंगसूरिजी म.सा. कृत ''षड्दर्शन निर्णय''है। इस ग्रंथ में बौद्ध, मीमांसा (पूर्व और उत्तरमीमांसा दोनों), सांख्य, न्याय, वैशेषिक और जैनदर्शन - इन छः दर्शनो संबंधी प्रधानतया देव-गुरु-धर्म विषयक मीमांसा की है और अनेक स्थल पे महाभारत, पुराण, स्मृति आदि के कोटेशन भी दिये है।

षष्ठ कृति पू.मु.श्री यशस्वत्सागरजी म. कृत ''जैनस्याद्वादमुक्तावली'' है। चार स्तबक में विभक्त इस ग्रंथ में स्याद्वाद, प्रमाण, प्रमाण के भेद-प्रभेद, एवं नयादि पदार्थो का निरुपण किया है और रोचक शैली में दार्शनिक समीक्षा भी की है।

सप्तम कृति में पू.मु.श्री यशस्वत्सागरजी म. कृत ''स्याद्वादमुक्तावली'' (जिसका अपर नाम ''जैनविशेषतर्क'') है। तीन स्तबक में विभक्त इस ग्रंथ में जैनदर्शन के मान्य जीवादि पदार्थो का निरुपण एवं प्रमाण का स्वरुप इत्यादि प्रतिपादन किया है।

अष्टम कृति अज्ञातकर्तृक ''सर्वसिद्धान्तप्रवेशक'' है। गद्यात्मक इस ग्रंथ में नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, मीमांसक, लोकायतिक मत का संक्षिप्त सरण एवं उपयोगी टिप्पनक सहित प्रतिपादन किया है।

नवम कृति पू.पं.श्री पद्मसागरगणि विरचित ''युक्तिप्रकाश विवरण'' है। २८ कारिकाबद्ध सटीक इस ग्रंथ में स्याद्वाद सिद्धांत के प्रति सभी दर्शनो को उन उन दर्शनो का युक्ति-प्रमाण देके अभिमुख करने का सफल प्रयास किया है।

दसम कृति पू.आ.भ.श्री राजशेखरसूरिजी कृत "स्याद्वाद कलिका" है। ४० श्लोकप्रमाण इस ग्रंथ में अनेकांत सिद्धांत का प्रतिष्ठापन किया गया है।

ग्यारहवीं कृति अज्ञातकर्तृक "षड्दर्शन परिक्रम" है । ६६ कारिकाबद्ध इस ग्रंथ में जैन, मीमांसक, बौद्ध, सांख्य, शैव (नैयायिक-वैशेषिक) और नास्तिक मत का संक्षेप में वर्णन किया है।

बारहवीं कृति पू.मु.श्री शुभविजयगणि कृत "स्याद्वादभाषा" है । यह सूत्रात्मक ग्रंथ में जैन दार्शनिक पदार्थो का स्वरुप विस्तार से बताया है। यह ग्रंथ पू.आ.**श्री वादिदेवसूरिजी** कृत "प्रमाणनयतत्त्वालोक" ग्रंथ की लघु आवृत्ति समान है। उसकी टीका भी उपलब्ध है।

तेरहवीं कृति अज्ञातकर्तृक "अनुमानमातृका" है । १३ श्लोक प्रमाण यह लघु ग्रंथ में अनुमान विषयक विवरण किया है।

चौदहवीं कृति पू.आ.भ.श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिजी म.सा. **विरचित "न्यायावतार" है ।** ३२ श्लोक प्रमाण इस ग्रंथ में युक्तिपुरस्सर तर्कयुक्त दलीलो से प्रमाण संबंधी प्रतिपादन किया है। **जैनदार्शनिक ग्रंथ श्रेणी में इस ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।**

पंद्रहवीं कृति पू.आ.भ.श्री शांतिसूरिजी विरचित **"न्यायावतार सूत्रवार्त्तिक" है ।** चार परिच्छेद में विभक्त और ५७ श्लोक प्रमाण इस ग्रंथ में प्रमाण विषयक निरुपण किया है।

सोलहवीं कृति पू.आ.भ.श्री समन्तभद्राचार्य रचित **"युक्त्यनुशासन"** है। ६४ कारिकाबद्ध इस ग्रंथ में दार्शनिक परामर्श किया है।

सत्रहवीं कृति कलिकाल सर्वज्ञ पू.आ.भ.श्री हेमचन्द्रसूरिजी म. विरचित **"अयोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका" है ।**

अठारहवीं कृति कलिकालसर्वज्ञ पू.आ.भ.श्री हेमचन्द्रसूरिजी म. विरचित **"अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका" है ।** दोनों ग्रंथ में देवता तत्त्व का सर्वोत्कृष्ट विवेचन किया है।

उन्नीसवीं कृति पू.आ.भ.श्री चन्द्रसेनसूरिजी विरचित "**उत्पादादि सिद्धि**" है। ३२ कारिकाबद्ध इस ग्रंथ में वस्तु की त्रयात्मकता (उत्पत्ति-स्थिति-लय) का अद्भूत शैली में प्रतिपादन किया है।

● **परिशिष्ट :** परिशिष्ट में सभी सूत्रात्मक ग्रंथो के सूत्रो का अकारादिक्रम दिया है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि, जैनदर्शन के दार्शनिक ग्रंथकलाप में इसके अलावा सम्मतितर्क, शास्त्रवार्ता समुच्चय, स्याद्वादरहस्य, स्याद्वादमंजरी आदि अनेक ग्रंथ उपलब्ध है। वे ग्रंथ पूर्व में प्रकाशित हुए है और दार्शनिक जगत में प्रसिद्ध भी है। इसलिए यह संकलन में उन ग्रंथों का समावेश किया नहीं है।

तुलनात्मक अभ्यास हेतु संकलित यह ग्रंथ दार्शनिक जगत में सत्यान्वेषण के लिए सहायक बनकर आत्मशुद्धि का निमित्त बने ऐसी शुभकामना....

मु. संयमकीर्ति वि.
रत्नत्रयी आराधना भवन,
वसंतकुंज, अहमदाबाद

विषयानुक्रमः

विभाग - १

षड्दर्शन सूत्रसंग्रहः

। षड्दर्शन सूत्र संग्रहः । जैनदर्शनम् (१)

श्रीवादिदेवसूरिकृतः

(अ) प्रमाणनयतत्त्वालोकः

प्रथम परिच्छेदः

१. प्रमाणनयतत्त्वव्यवस्थापनार्थमिदमुपक्रम्यते ।

२. स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् ।

३. अभिमतानभिमतवस्तु स्वीकारतिरस्कारक्षमं हि प्रमाणम्, अतो ज्ञानमेवेदम् ।

४. न वै सन्निकर्षादेरज्ञानस्य प्रामाण्यमुपपन्नम्, तस्यार्थान्तरस्येव स्वार्थव्यवसितौ साधकतमत्वानुपपत्तेः ।

५. न खल्वस्य स्वनिर्णीतौ कारणत्वम् स्तम्भादेरिवाचेतनत्वात् ।

६. नाप्यर्थनिश्चितौ, स्वनिश्चितावकरणस्य कुम्भादेरिव तत्राप्यकरणत्वात् ।

७. तद् व्यवसायस्वभावम्, समारोपपरिपन्थित्वात् प्रमाणत्वाद् वा ।

८. अतस्मिंस्तदध्यवसायः समारोपः ।

९. स विपर्ययसंशयानध्यवसायभेदात् त्रेधा ।

१०. विपरीतैककोटिनिष्टङ्कनं विपर्ययः ।

११. यथा शुक्तिकायामिदं रजतमिति ।

१२. साधकबाधकप्रमाणाभावादनवस्थितानेककोटिसंस्पर्शि ज्ञानं संशयः ।

१३. यथाऽयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा ।

१४. किमित्यालोचनमात्रमनध्यवसायः ।

१५. यथा गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानम् ।

१६. ज्ञानादन्योऽर्थः परः ।

१७. स्वस्य व्यवसायः स्वाभिमुख्येन प्रकाशनम्, बाह्यस्येव तदाभिमुख्येन, करिकलभकमहमात्मना जानामि ।

१८. कः खलु ज्ञानस्यालम्बनं बाह्यं प्रतिभातमभिमन्यमानस्तदपि तत्प्रकारं । नाभिमन्येत मिहिरालोकवत् ।

१९. ज्ञानस्य प्रमेयाऽव्यभिचारित्वं प्रामाण्यम् ।

२०. तदितरत्त्वप्रामाण्यम् ।

२१. तदुभयमुत्पतौ परत एव, ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्च ।

द्वितीयः परिच्छेदः

१. तद् द्विभेदं प्रत्यक्षं च परोक्षं च ।
२. स्पष्टं प्रत्यक्षम् ।
३. अनुमानाद्याधिक्येन विशेषप्रकाशनं स्पष्टत्वम् ।
४. तद् द्विप्रकारं सांव्यवहारिकं पारमार्थिकं च ।
५. तत्राद्यं द्विविधमिन्द्रियनिबन्धनमनिन्द्रियनिबन्धनं च ।
६. एतद् द्वितयमवग्रहेहावायधारणाभेदादेकशश्चतुर्विकल्पकम् ।
७. विषयविषयिसंनिपातानन्तरसमुद्भूतसत्तामात्रगोचरदर्शनाज्जातमाद्यम वान्तरसामान्याकारविशिष्टवस्तुग्रहणमवग्रहः ।
८. अवगृहीतार्थविशेषाऽऽकाङ्क्षणमीहा ।
९. ईहितविशेषनिर्णयोऽवायः ।
१०. स एव दृढतमावस्थाऽऽपन्नो धारणा ।
११. संशयपूर्वकत्वादीहायाः संशयाद् भेदः ।
१२. कथञ्चिदभेदेऽपि परिणामविशेषादेषां व्यपदेशभेदः ।
१३. असामस्त्येनाप्युत्पद्यमानत्वेनासङ्कीर्णस्वभावतयाऽनुभूयमानत्वात् अपूर्वापूर्ववस्तुपर्यायप्रकाशकत्वात् क्रमभावित्वाच्चैते व्यतिरिच्यन्ते ।
१४. क्रमोऽप्यमीषामयमेव, तथैव संवेदनात्, एवंक्रमाविर्भूतनिजकर्मक्षयो-पशमजन्यत्वाच्च ।
१५. अन्यथा प्रमेयानवगतिप्रसङ्गः ।
१६. न खल्वदृष्टमवगृह्यते, न चानवगृहीतं संदिह्यते, न चासंदिग्धमीह्यते, न चानीहितमवेयते, नाप्यनवेतं धार्यते ।
१७. क्वचित् क्रमस्यानुपलक्षणमेषामाशूत्पादात्, उत्पलपत्रशतव्यतिभेदक्रमवत् ।
१८. पारमार्थिकं पुनरुत्पत्तावात्ममात्रापेक्षम् ।
१९. तद् विकलं सकलं च ।
२०. तत्र विकलमवधिमनःपर्यायज्ञानरूपतया द्वेधा ।
२१. अवधिज्ञानावरणविलयविशेषसमुद्भवं भवगुण प्रत्ययं रूपिद्रव्यगोचर-मवधिज्ञानम् ।
२२. संयमविशुद्धिनिबन्धनाद् विशिष्टावरणविच्छेदाज्जातं मनोद्रव्यपर्याया लम्बनं मनःपर्यायज्ञानम् ।

२३. सकलं तु सामग्रीविशेषतः समुद्भूतसमस्तावरणक्षयापेक्षं निखिलद्रव्य पर्यायसाक्षात्कारिस्वरूपं केवलज्ञानम् ।

२४. तद्वान् अर्हन् निर्दोषत्वात् ।

२५. निर्दोषोऽसौ, प्रमाणाविरोधिवाक्त्वात् ।

२६. तदिष्टस्य प्रमाणेनाऽबाध्यमानत्वात् तद्वाचस्तेनाविरोधसिद्धिः ।

२७. न च कवलाहारवत्त्वेन तस्याऽसर्वज्ञत्वम्, कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् ।

तृतीयः परिच्छेदः

१. अस्पष्टं परोक्षम् ।

२. स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदतस्तत् पञ्चप्रकारम् ।

३. तत्र संस्कारप्रबोधसम्भूतमनुभूतार्थविषयं तदित्याकारं संवेदनं स्मरणम् ।

४. तत्तीर्थकरबिम्बम् इति यथा ।

५. अनुभवस्मृतिहेतुकं तिर्यगूर्ध्वतासामान्यादिगोचरं, संकलनात्मकं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम् ।

६. यथा तज्जातीय एवायं गोपिण्डः, गोसदृशो गवयः, स एवायं जिनदत्तः इत्यादि ।

७. उपलम्भानुपलम्भसम्भवं, त्रिकालीकलितसाध्यसाधनसम्बन्धाद्यालम्बनं, 'इदमस्मिन् सत्येव भवति' इत्याद्याकारं संवेदनमूहापरनामा तर्कः ।

८. यथा यावान् कश्चिद् धूमः, स सर्वो वह्नौ सत्येव भवतीति तस्मिन्नसति असौ न भवत्येव ।

९. अनुमानं द्विप्रकारं स्वार्थं परार्थं च ।

१०. तत्र हेतुग्रहणसम्बन्धस्मरणकारणकं साध्यविज्ञानं स्वार्थम् ।

११. निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुः ।

१२. न तु त्रिलक्षणकादिः ।

१३. तस्य हेत्वाभासस्यापि सम्भवात् ।

१४. अप्रतीतमनिराकृतमभीप्सितं साध्यम् ।

१५. शङ्कितविपरीतानध्यवसितवस्तूनां साध्यताप्रतिपत्त्यर्थमप्रतीतवचनम् ।

१६. प्रत्यक्षादिविरुद्धस्य साध्यत्वं मा प्रसज्यतामित्यनिराकृतग्रहणम् ।

१७. अनभिमतस्यासाध्यत्वप्रतिपत्तयेऽभीप्सितपदोपादानम् ।

१८. व्याप्तिग्रहणसमयाऽपेक्षया साध्यं धर्म एव, अन्यथा तदनुपपत्तेः ।

१९. न हि यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र चित्रभानोरिव धरित्रीधरस्याप्यनुवृत्तिरस्ति ।

२०. आनुमानिकप्रतिपत्त्यवसरापेक्षया तु पक्षापरपर्यायस्तद्विशिष्टः प्रसिद्धो धर्मी ।

२१. धर्मिणः प्रसिद्धिः क्वचिद्विकल्पतः कुत्रचित्प्रमाणतः, क्वापि विकल्प-प्रमाणाभ्याम् ।

२२. यथा समस्ति समस्तवस्तुवेदी, क्षितिधरकन्धरेयं धूमध्वजवती, ध्वनिः परिणतिमान् ।

२३. पक्षहेतुवचनात्मकं परार्थमनुमानमुपचारात् ।

२४. साध्यस्य प्रतिनियतधर्मिसम्बन्धिताप्रसिद्धये हेतोरुपसंहारवचनवत् पक्षप्रयोगोऽप्यवश्यमाश्रयितव्यः ।

२५. त्रिविधं साधनमभिधायैव तत्समर्थनं विदधानः कः खलु न पक्षप्रयोग-मङ्गीकुरुते ?

२६. प्रत्यक्षपरिच्छिन्नार्थाभिधायि वचनं परार्थं प्रत्यक्षं परप्रत्यक्षहेतुत्वात् ।

२७. यथा पश्य पुरः स्फुरत्किरणमणिखण्डमण्डिताभरणभारिणीं जिनपतिप्रतिमाम् ।

२८. पक्षहेतुवचनलक्षणमवयवद्वयमेव परप्रतिपत्तेरङ्गं न दृष्टान्तादिवचनम् ।

२९. हेतुप्रयोगस्तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां द्विप्रकारः ।

३०. सत्येव साध्ये हेतोरुपपत्तिस्तथोपपत्तिः, असति साध्ये हेतोरनुपपत्ति-रेवान्यथानुपपत्तिः ।

३१. यथा कृशानुमानयं पाकप्रदेशः, सत्येव कृशानुमत्त्वे धूमवत्त्वस्योपपत्तेः, असत्यनुपपत्तेर्वा ।

३२. अनयोरन्यतरप्रयोगेणैव साध्यप्रतिपत्तौ द्वितीयप्रयोगस्यैकत्रानुपयोगः ।

३३. न दृष्टान्तवचनं परप्रतिपत्तये प्रभवति, तस्यां पक्षहेतुवचनयोरेव व्यापारोपलब्धेः ।

३४. न च हेतोरन्यथानुपपत्तिनिर्णीतये, यथोक्ततर्कप्रमाणादेव तदुपपत्तेः ।

३५. नियतैकविशेषस्वभावे च दृष्टान्ते साकल्येन व्याप्तेरयोगतो विप्रतिपत्तौ तदन्तरापेक्षायामनवस्थितेर्दुर्निवारः समवतारः ।

३६. नाप्यविनाभावस्मृतये, प्रतिपन्नप्रतिबन्धस्य व्युत्पन्नमतेः पक्षहेतुप्रद-र्शनेनैव तत्प्रसिद्धेः ।

३७. अन्तर्व्याप्त्या हेतोः साध्यप्रत्यायने शक्तावशक्तौ च बहिर्व्याप्तेरुद्भावनं व्यर्थम् ।

३८. पक्षीकृत एव विषये साधनस्य साध्येन व्याप्तिरन्तर्व्याप्तिः, अन्यत्र तु बहिर्व्याप्तिः ।

३९. यथाऽनेकान्तात्मकं वस्तु, सत्त्वस्य तथैवोपपत्तेरिति, अग्निमानयं देशः धूमवत्त्वात्, य एवं स एवं, यथा पाकस्थानमिति च ।

४०. नोपनयनिगमनयोरपि परप्रतिपत्तौ सामर्थ्यं पक्षहेतुप्रयोगादेव तस्याः सद्भावात् ।

४१. समर्थनमेव परं प्रतिपत्त्यङ्गमास्तां, तदन्तरेण दृष्टान्तादिप्रयोगेऽपि तदसम्भवात् ।

४२. मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टान्तोपनयनिगमनान्यपि प्रयोज्यानि ।

४३. प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरास्पदं दृष्टान्तः ।

४४. स द्वेधा साधर्म्यतो वैधर्म्यतश्च ।

४५. यत्र साधनधर्मसत्तायामवश्यं साध्यधर्मसत्ता प्रकाश्यते, स साधर्म्य-दृष्टान्तः ।

४६. यथा यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निर्यथा महानसम् ।

४७. यत्र तु साध्याभावे साधनस्यावश्यमभावः प्रदर्श्यते स वैधर्म्यदृष्टान्तः ।

४८. यथा-अग्न्यभावे न भवत्येव धूमः, यथा जलाशये ।

४९. हेतोः साध्यधर्मिण्युपसंहरणमुपनयः ।

५०. यथा धूमश्चात्र प्रदेशे ।

५१. साध्यधर्मस्य पुनर्निगमनम् ।

५२. यथा-तस्मादग्निरत्र ।

५३. एते पक्षप्रयोगादयः पञ्चाप्यवयवसंज्ञया कीर्त्यन्ते ।

५४. उक्तलक्षणो हेतुर्द्विप्रकारः, उपलब्ध्यनुपलब्धिभ्यां भिद्यमानत्वात् ।

५५. उपलब्धिर्विधिनिषेधयोः सिद्धिनिबन्धनमनुपलब्धिश्च ।

५६. विधिः सदंशः ।

५७. प्रतिषेधोऽसदंशः ।

५८. स चतुर्धा-प्रागभावः, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभावोऽत्यन्ताभावश्च ।

५९. यन्निवृत्तावेव कार्यस्य समुत्पत्तिः सोऽस्य प्रागभावः ।

६०. यथा मृत्पिण्डनिवृत्तावेव समुत्पद्यमानस्य घटस्य मृत्पिण्डः ।

६१. यदुत्पत्तौ कार्यस्यावश्यं विपत्तिः, सोऽस्य प्रध्वंसाभावः ।
६२. यथा कपालकदम्बकोत्पत्तौ नियमतो विपद्यमानस्य कलशस्य कपालकदम्बकम् ।
६३. स्वरूपान्तरात् स्वरूपव्यावृत्तिरितरेतराभावः ।
६४. यथा स्तम्भस्वभावात् कुम्भस्वभावव्यावृत्तिः ।
६५. कालत्रयाऽपेक्षिणी हि तादात्म्यपरिणामनिवृत्तिरत्यन्ताभावः ।
६६. यथा चेतनाचेतनयोः ।
६७. उपलब्धेरपि द्वैविध्यमविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्च ।
६८. तत्राविरुद्धोपलब्धिर्विधिसिद्धौ षोढा ।
६९. साध्येनाविरुद्धानां व्याप्यकार्यकारणपूर्वचरोत्तरचरसहचराणामुपलब्धिः ।
७०. तमस्विन्यामास्वाद्यमानादाम्रादिफलरसादेकसामग्र्यनुमित्या रूपाद्यनुमितिमभिमन्यमानैरभिमतमेव किमपि कारणं हेतुतया यत्र शक्तेरप्रतिस्खलनमपरकारणसाकल्यं च ।
७१. पूर्वचरोत्तरचरयोर्न स्वभावकार्यकारणभावौ, तयोः कालव्यवहितावनुपलम्भात् ।
७२. न चातिक्रान्तानागतयोर्जाग्रद्दशासंवेदनमरणयोः प्रबोधोत्पातौ प्रति कारणत्वं, व्यवहितत्वेन निर्व्यापारत्वात् ।
७३. स्वव्यापारापेक्षिणी हि कार्यं प्रति पदार्थस्य कारणत्वव्यवस्था, कुलालस्येव कलशं प्रति ।
७४. न च व्यवहितयोस्तयोर्व्यापारपरिकल्पनं न्याय्यमतिप्रसक्तेः ।
७५. परम्पराव्यवहितानां परेषामपि तत्कल्पनस्य निवारयितुमशक्यत्वात् ।
७६. सहचारिणोः परस्परस्वरूपपरित्यागेन तादात्म्यानुपपत्तेः, सहोत्पादेन, तदुत्पत्तिविपत्तेश्च सहचरहेतोरपि प्रोक्तेषु नानुप्रवेशः ।
७७. ध्वनिः परिणतिमान् प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् यः प्रयत्नानन्तरीयकः, स परिणतिमान्, यथा स्तम्भः । यो वा न परिणतिमान्, स न प्रयत्नानन्तरीयकः यथा वान्ध्येयः । प्रयत्नानन्तरीयकश्च ध्वनिः, तस्मात् परिणतिमानिति व्याप्यस्य साध्येनाविरुद्धस्योपलब्धिः साधर्म्येण वैधर्म्येण च ।
७८. अस्त्यत्र गिरिनिकुञ्जे धनञ्जयो धूमसमुपलम्भादिति कार्यस्य ।
७९. भविष्यति वर्षं तथाविधवारिवाहविलोकनादिति कारणस्य ।

८०. उदेष्यति मुहूर्तान्ते तिष्यतारकाः, पुनर्वसूदयदर्शनादिति पूर्वचरस्य ।

८१. उदगुर्मुहूर्त्तात्पूर्वं पूर्वफल्गुन्य उत्तरफल्गुनीनामुद्गमोपलब्धेरित्युत्तरचरस्य ।

८२. अस्तीह सहकारफले रूपविशेषः, समास्वाद्यमानरसविशेषादिति सहचरस्य ।

८३. विरुद्धोपलब्धिस्तु प्रतिषेधप्रतिपत्तौ सप्तप्रकारा ।

८४. तत्राद्या स्वभावविरुद्धोपलब्धिः ।

८५. यथा नास्त्येव सर्वथैकान्तोऽनेकान्तस्योपलम्भात् ।

८६. प्रतिषेध्यविरुद्धव्याप्तादीनामुपलब्धयः षट् ।

८७. विरुद्धव्याप्तोपलब्धिर्यथा-नास्ति अस्य पुंसस्तत्त्वेषु निश्चयस्तत्र सन्देहात् ।

८८. विरुद्धकार्योपलब्धिर्यथा-न विद्यतेऽस्य क्रोधाद्युपशान्तिर्वदन-विकारादेः ।

८९. विरुद्धकारणोपलब्धिर्यथा-नास्य महर्षेरसत्यं वचः समस्ति, रागद्वेष-कालुष्याऽकलङ्कितज्ञानसंपन्नत्वात् ।

९०. विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिर्यथा-नोद्गमिष्यति मुहूर्तान्ते पुष्यतारा, रोहिण्युद्गमात् ।

९१. विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिर्यथा-नोदगान्मुहूर्तात्पूर्वं मृगशिरः, पूर्वफल्गुन्यु-दयात् ।

९२. विरुद्धसहचरोपलब्धिर्यथा-नास्त्यस्य मिथ्याज्ञानं, सम्यग्दर्शनात् ।

९३. अनुपलब्धेरपि द्वैरूप्यम्, अविरुद्धानुपलब्धिर्विरुद्धानुपलब्धिश्च ।

९४. तत्राविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधावबोधे सप्तप्रकारा ।

९५. प्रतिषेध्येनाविरुद्धानां स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वचरोत्तरचर-सहचराणामनुपलब्धिः ।

९६. स्वभावानुपलब्धिर्यथानास्त्यत्र भूतले कुम्भ उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य तत्स्वभावस्यानुपलम्भात् ।

९७. व्यापकानुपलब्धिर्यथानास्त्यत्र प्रदेशे पनशः पादपानुपलब्धेः ।

९८. कार्यानुपलब्धिर्यथानास्त्यत्राप्रतिहतशक्तिकं बीजमङ्कुरानवलोकनात् ।

९९. कारणानुपलब्धिर्यथा-न सन्त्यस्य प्रशमप्रभृतयो भावास्तत्त्वार्थश्रद्धा-नाभावात् ।

१००. पूर्वचरानुपलब्धिर्यथानोद्गमिष्यति मुहूर्तान्ते स्वातिनक्षत्रं, चित्रोदयादर्शनात् ।

१०१. उत्तरचरानुपलब्धिर्यथा-नोदगमत् पूर्वभद्रपदामुहूर्तात्पूर्वमुत्तरभद्रपदोद्गमानवगमात् ।

१०२. सहचरानुपलब्धिर्यथा-नास्त्यस्य सम्यग्ज्ञानं, सम्यग्दर्शनानुपलब्धेः ।

१०३. विरुद्धानुपलब्धिस्तु विधिप्रतीतौ पञ्चधा ।

१०४. विरुद्धकार्यकारणस्वभावव्यापकसहचरानुपलम्भभेदात् ।

१०५. विरुद्धकार्यानुपलब्धि-र्यथा अत्र शरीरिणि रोगातिशयः समस्ति, नीरोगव्यापारानुपलब्धेः ।

१०६. विरुद्धकारणानुपलब्धिर्यथा-विद्यतेऽत्र प्राणिनि कष्टम्, इष्टसंयोगाऽभावात् ।

१०७. विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्यथा-वस्तुजातमनेकान्तात्मकम्, एकान्तस्वभावानुपलम्भात् ।

१०८. विरुद्धव्यापकानुपलब्धिर्यथा-अस्त्यत्र छाया, औष्ण्यानुपलब्धेः ।

१०९. विरुद्धसहचरानुपलब्धिर्यथा-अस्त्यस्य मिथ्याज्ञानम्, सम्यग्दर्शनानुपलब्धेः ।

चतुर्थः परिच्छेदः

१. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः ।

२. उपाचारादाप्तवचनं च ।

३. समस्त्यत्र प्रदेशे रत्ननिधानम्, सन्ति रत्नसानुप्रभूतयः ।

४. अभिधेयं वस्तु यथावस्थितं यो जानीते, यथाज्ञानं चाभिधत्ते, स आप्तः ।

५. तस्य हि वचनमविसंवादि भवति ।

६. स च द्वेधा, लौकिको लोकोत्तरश्च ।

७. लौकिको जनकादिर्लोकोत्तरस्तु तीर्थङ्करादिः ।

८. वर्णपदवाक्यात्मकं वचनम् ।

९. अकारादिः पौद्गलिको वर्णः ।

१०. वर्णानामन्योन्यापेक्षाणां निरपेक्षा संहतिः पदम्, पदानां तु वाक्यम् ।

११. स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामर्थबोधनिबन्धनं शब्दः ।

१२. अर्थप्रकाशकत्वमस्य स्वाभाविकं प्रदीपवद् यथार्थायथार्थत्वे पुनः पुरुषगुणदोषावनुसरतः ।

१३. सर्वत्रायं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति।

१४. एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यनुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्यप्रयोगः सप्तभङ्गी।

१५. तद्यथा-स्यादस्त्येव सर्वमिति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः।

१६. स्यान्नास्त्येव सर्वमिति निषेधकल्पनया द्वितीयः।

१७. स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमतो विधिनिषेधकल्प-नया तृतीयः।

१८. स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः।

१९. स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिकल्पनया युगपद्विधिनिषेध-कल्पनया च पञ्चमः।

२०. स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति निषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेध-कल्पनया च षष्ठः।

२१. स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च सप्तम इति।

२२. विधिप्रधान एव ध्वनिरिति न साधु।

२३. निषेधस्य तस्मादप्रतिपत्तिप्रसक्तेः।

२४. अप्राधान्येनैव ध्वनिस्तमभिधत्ते, इत्यप्यसारम्।

२५. क्वचित् कदाचित् कथञ्चित् प्राधान्येनाप्रतिपन्नस्य तस्याप्राधान्या-नुपपत्तेः।

२६. निषेधप्रधान एव शब्द इत्यपि प्रागुक्तन्यायादपास्तम्।

२७. क्रमादुभयप्रधान एवायमित्यपि न साधीयः।

२८. अस्य विधिनिषेधान्यतरप्रधानत्वानुभवस्याप्यबाध्यमानत्वात्।

२९. युगपद्विधिनिषेधात्मनोऽर्थस्यावाचक एवासाविति च न चतुरस्रम्।

३०. तस्यावक्तव्यशब्देनाप्यवाच्यत्वप्रसङ्गात्।

३१. विध्यात्मनोऽर्थस्य वाचकः सन्नुभयात्मनो युगपदवाचक एव स इत्येकान्तोऽपि न कान्तः।

३२. निषेधात्मनः सह द्वयात्मनश्चार्थस्य वाचकत्वावाचकत्वाभ्यामपि शब्दस्य प्रतीयमानत्वात्।

३३. निषेधात्मनोऽर्थस्य वाचकः सन्नुभयात्मनो युगपदवाचक एवायमित्य-प्यवधारणं न रमणीयम्।

३४. इतरथापि संवेदनात्।

३५. क्रमाक्रमाभ्यामुभयस्वभावस्य भावस्य वाचकश्चावाचकश्च ध्वनिर्नान्यथेत्यपि मिथ्या ।
३६. विधिमात्रादिप्रधानतयाऽपि तस्य प्रसिद्धेः ।
३७. एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानन्तधर्माभ्युपगमेनानन्तभङ्गी-प्रसङ्गादसङ्गतैव सप्तभङ्गीति न चेतसि निधेयम् ।
३८. विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनन्तानामपि सप्तभङ्गीनामेव सम्भवात् ।
३९. प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव सम्भवात् ।
४०. तेषामपि सप्तत्वं सप्तविधतज्जिज्ञासानियमात् ।
४१. तस्या अपि सप्तविधत्वं सप्तधैव तत्सन्देहसमुत्पादात् ।
४२. तस्यापि सप्तप्रकारत्वनियमः स्वगोचरवस्तुधर्माणां सप्तविधत्व-स्यैवोपपत्तेः ।
४३. इयं सप्तभङ्गी प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ।
४४. प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्याद-भेदोपचाराद् वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ।
४५. तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ।
४६. तद् द्विभेदमपि प्रमाणमात्मीयप्रतिबन्धकापगम-विशेषस्वरूपसामर्थ्यतः प्रतिनियतमर्थमवद्योतयति ।
४७. न तदुत्पत्तितदाकारताभ्याम्, तयोः पार्थक्येन सामस्त्येन च व्यभिचारोपलम्भात् ।

पञ्चमः परिच्छेदः

१. तस्य विषयः सामान्यविशेषाद्यनेकान्तात्मकं वस्तु ।
२. अनुगतविशिष्टाकारप्रतीतिविषयत्वात् प्राचीनोत्तराकारपरित्यागोपादानाव-स्थानस्वरूपपरिणत्याऽर्थक्रियासामर्थ्यघटनाच्च
३. सामान्यं द्विप्रकारं तिर्यक्सामान्यमूर्ध्वतासामान्यं च ।
४. प्रतिव्यक्ति तुल्या परिणतिस्तिर्यक्सामान्यम्, शबलशाबलेयादिपिण्डेषु गोत्वं यथा ।
५. पूर्वापरपरिणामसाधारणं द्रव्यमूर्ध्वतासामान्यं कटककङ्कणाद्यनुगामि-काञ्चनवत् ।
६. विशेषोऽपि द्विरूपो गुणः पर्यायश्च ।

७. गुणः सहभावी धर्मो यथाऽऽत्मनि विज्ञानव्यक्तिशक्त्यादिः ।

८. पर्यायस्तु क्रमभावी यथा तत्रैव सुखदुःखादिः ।

षष्ठः परिच्छेदः

१. यत्प्रमाणेन प्रसाध्यते तदस्य फलम् ।

२. तद् द्विविधमानन्तर्येण पारम्पर्येण च ।

३. तत्रानन्तर्येण सर्वप्रमाणानामज्ञाननिवृत्तिः फलम् ।

४. पारम्पर्येण केवलज्ञानस्य तावत्फलमौदासीन्यम् ।

५. शेषप्रमाणानां पुनरुपादानहानोपेक्षाबुद्धयः ।

६. तत्प्रमाणतः स्याद् भिन्नमभिन्नं च प्रमाण-फलत्वान्यथानुपपत्तेः ।

७. उपादानबुद्ध्यादिना प्रमाणाद् भिन्नेन व्यवहितफलेन हेतोर्व्यभिचार इति न विभावनीयम् ।

८. तस्यैकप्रमातृतादात्म्येन प्रमाणादभेदव्यवस्थितेः ।

९. प्रमाणतया परिणतस्यैवात्मनः फलतया परिणतिप्रतीतेः ।

१०. यः प्रमिमीते स एवोपादत्ते परित्यजत्युपेक्षते चेति सर्वसंव्यवहारिभिरस्खलितमनुभवात् ।

११. इतरथा स्वपरयोः प्रमाणफलव्यवस्थाविप्लवः प्रसज्येत ।

१२. अज्ञाननिवृत्तिस्वरूपेण प्रमाणादभिन्नेन साक्षात्फलेन साधनस्यानेकान्त इति नाशङ्कनीयम् ।

१३. कथञ्चित्तस्यापि प्रमाणाद् भेदेन व्यवस्थानात् ।

१४. साध्यसाधनभावेन प्रमाणफलयोः प्रतीयमानत्वात् ।

१५. प्रमाणं हि करणाख्यं साधनम् स्वपरव्यवसितौ साधकतमत्वात् ।

१६. स्वपरव्यवसितिक्रियारूपाज्ञाननिवृत्त्याख्यं फलं तु साध्यम् प्रमाणनिष्पाद्यत्वात् ।

१७. प्रमातुरपि स्वपरव्यवसितिक्रियायाः कथञ्चिद् भेदः ।

१८. कर्तृक्रिययोः साध्य साधकभावेनोपलम्भात् ।

१९. कर्ता हि साधकः, स्वतन्त्रत्वात्, क्रिया तु साध्या, कर्तृनिर्वर्त्यत्वात् ।

२०. न च क्रिया क्रियावतः सकाशादभिन्नैव, भिन्नैव वा, प्रतिनियतक्रियाक्रियावद्भावभङ्गप्रसङ्गात् ।

२१. संवृत्या प्रमाणफलव्यवहार इत्यप्रामाणिकप्रलापः, परमार्थतः स्वाभिमतसिद्धिविरोधात् ।

२२. ततः पारमार्थिक एव प्रमाणफलव्यवहारः सकलपुरुषार्थसिद्धिहेतुः स्वीकर्तव्यः ।

२३. प्रमाणस्य स्वरूपादिचतुष्टयाद्विपरीतं तदाभासम् ।

२४. अज्ञानात्मकानात्मप्रकाशकस्वमात्रावभासकनिर्विकल्पकसमारोपाः प्रमाणस्य स्वरूपाभासाः ।

२५. यथा-सन्निकर्षाद्यस्वसंविदितपरानवभासक-ज्ञानदर्शन-विपर्यय-संशयानध्यवसायाः ।

२६. तेभ्यः स्वपरव्यवसायस्यानुपपत्तेः ।

२७. सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमिव यदाभासते तत्तदाभासम् ।

२८. यथाऽम्बुधरेषु गन्धर्वनगरज्ञानं, दुःखे सुखज्ञानं च ।

२९. पारमार्थिकप्रत्यक्षमिव यदाभासते तत्तदाभासम् ।

३०. यथा-शिवाख्यस्य राजर्षेरसंख्यातद्वीपसमुद्रेषु सप्तद्वीपसमुद्रज्ञानम् ।

३१. अननुभूते वस्तुनि तदिति ज्ञानं स्मरणाभासम् ।

३२. अननुभूते मुनिमण्डले तन्मुनिमण्डलमिति यथा ।

३३. तुल्ये पदार्थे स एवायमिति, एकस्मिंश्च तेन तुल्य इत्यादिज्ञानं प्रत्यभिज्ञानाभासम् ।

३४. यमलकजातवत् ।

३५. असत्यामपि व्याप्तौ तदवभासस्तर्काभासः ।

३६. स श्यामो मैत्रतनयत्वादित्यत्र यावान्मैत्रतनयः स श्याम इति यथा ।

३७. पक्षाभासादिसमुत्थं ज्ञानमनुमानाभासमवसेयम् ।

३८. तत्र प्रतीतनिराकृतान-भीप्सितसाध्यधर्मविशेषणास्त्रयः पक्षाभासाः ।

३९. प्रतीतसाध्यधर्मविशेषणो यथाऽऽर्हतान् प्रत्यवधारणवर्जं परेण प्रयुज्यमानः समस्ति जीव इत्यादिः ।

४०. निराकृतसाध्यधर्म-विशेषणः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिभिः साध्यधर्मस्य निराकरणादनेकप्रकारः ।

४१. प्रत्यक्षनिराकृतसाध्यधर्मविशेषणो यथा-नास्ति भूतविलक्षण आत्मा ।

४२. अनुमाननिराकृतसाध्यधर्मविशेषणो यथा-नास्ति सर्वज्ञो वीतरागो वा ।

४३. आगमनिराकृतसाध्यधर्मविशेषणो यथा-जैनेन रजनीभोजनं भजनीयम् ।

४४. लोकनिराकृतसाध्यधर्मविशेषणो यथा-न पारमार्थिकः प्रमाणप्रमेयव्यवहारः ।

४५. स्ववचननिराकृतसाध्यधर्मविशेषणो यथा-नास्ति प्रमेयपरिच्छेदकं प्रमाणम् ।

४६. अनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणो यथा-स्याद्वादिनः शाश्वतिक एव कलशादिरशाश्वतिक एव वेति वदतः ।

४७. असिद्धविरुद्धानैकान्तिकास्त्रयो हेत्वाभासाः ।

४८. यस्यान्यथानुपपत्तिः प्रमाणेन न प्रतीयते सोऽसिद्धः ।

४९. स द्विविध उभयासिद्धो-ऽन्यतरासिद्धश्च ।

५०. उभयासिद्धोयथा-परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ।

५१. अन्यतरासिद्धो यथा- अचेतनास्तरवो विज्ञानेन्द्रियायुर्निरोधलक्षण-मरणरहितत्वात् ।

५२. साध्यविपर्ययेणैव यस्यान्यथानुपपत्तिरध्यवसीयते स विरुद्धः ।

५३. यथा-नित्य एव पुरुषोऽनित्य एव वा, प्रत्यभिज्ञानादिमत्त्वात् ।

५४. यस्यान्यथानुपपत्तिः सन्दिह्यते सोऽनैकान्तिकः ।

५५. स द्वेधा-निर्णीतविपक्षवृत्तिकः, सन्दिग्धविपक्षवृत्तिकश्च ।

५६. निर्णीतविपक्षवृत्तिको यथा-नित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् ।

५७. सन्दिग्धविपक्षवृत्तिको यथा-विवादपदापन्नः पुरुषः सर्वज्ञो न भवति वक्तृत्वात् ।

५८. साधर्म्येण दृष्टान्ताभासो नवप्रकारः ॥

५९. साध्यधर्मविकलः, साधनधर्मविकलः, उभयधर्मविकलः, सन्दिग्ध-साध्यधर्मा, सन्दिग्धसाधनधर्मा, सन्दिग्धोभयधर्मा, अनन्वयोऽ-प्रदर्शितान्वयो, विपरीतान्वयश्चेति ।

६०. तत्रापौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वात् दुःखवदिति साध्यधर्मविकलः ।

६१. तस्यामेव प्रतिज्ञायां तस्मिन्नेव हेतौ परमाणुवदिति साधनधर्मविकलः ।

६२. कलशवदित्युभयधर्मविकलः ।

६३. रागादिमानयं वक्तृत्वात् देवदत्तवदिति सन्दिग्धसाध्यधर्मा ।

६४. मरणधर्माऽयं रागादिमत्त्वात् मैत्रवदिति सन्दिग्धसाधनधर्मा ।

६५. नायं सर्वदर्शी रागादिमत्त्वात् मुनिविशेषवदिति सन्दिग्धोभयधर्मा ।

६६. रागादिमान् विवक्षित पुरुषो वक्तृत्वादिष्टपुरुषवदित्यनन्वयः ।

६७. अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवदित्यप्रदर्शितान्वयः ।

६८. अनित्यः शब्दः कृतकत्वात्, यदनित्यं तत् कृतकं घटवदिति विपरीतान्वयः ।

६९. वैधर्म्येणापि दृष्टान्ताभासो नवधा ।

७०. असिद्धसाध्यव्यतिरेकोऽसिद्धसाधनव्यतिरेकोऽसिद्धोभयव्यतिरेकः, सन्दिग्धसाध्यव्यतिरेकः, सन्दिग्धसाधनव्यतिरेकः, सन्दिग्धोभयव्यतिरेकोऽव्यतिरेकोऽप्रदर्शितव्यतिरेको विपरीतव्यतिरेकश्च ।

७१. तेषु भ्रान्तमनुमानं प्रमाणत्वात्, यत्पुनर्भ्रान्तं न भवति न तत्प्रमाणं, यथा स्वप्नज्ञानमिति असिद्धसाध्यव्यतिरेकः, स्वप्नज्ञानात् भ्रान्तत्वस्यानिवृत्तेः ।

७२. निर्विकल्पकं प्रत्यक्षं प्रमाणत्वाद्, यत् तु सविकल्पकं न तत्प्रमाणं, यथा लैङ्गिकमित्यसिद्धसाधनव्यतिरेको लैङ्गिकात् प्रमाणत्वस्यानिवृत्तेः ।

७३. नित्यानित्यः शब्दः सत्त्वात्, यस्तु न नित्यानित्यः स न सन्, तद्यथा स्तम्भ इत्यसिद्धोभयव्यतिरेकः स्तम्भान्नित्यानित्यत्वस्य सत्त्वस्य चाव्यावृत्तेः ।

७४. असर्वज्ञोऽनाप्तो वा कपिलोऽक्षणिकैकान्तवादित्वाद्, यः सर्वज्ञ आप्तो वा स क्षणिकैकान्तवादी यथा सुगत इति सन्दिग्धसाध्यव्यतिरेकः सुगतेऽसर्वज्ञतानाप्तत्वयोः साध्यधर्मयोर्व्यावृत्तेः सन्देहात् ।

७५. अनादेयवचनः कश्चिद् विवक्षितपुरुषो रागादिमत्त्वाद्, यः पुनरादेयवचनः स वीतरागस्तद्यथा शौद्धोदनिरिति सन्दिग्धसाधनव्यतिरेकः, शौद्धोदनौ रागादिमत्त्वस्य निवृत्तेः संशयात् ।

७६. न वीतरागः कपिलः, करुणास्पदेष्वपि परमकृपयाऽनर्पितनिजपिशितशकलत्वात् यस्तु वीतरागः स करुणास्पदेषु परमकृपया समर्पितनिजपिशितशकलस्तद्यथा तपनबन्धुरिति सन्दिग्धोभयव्यतिरेक इति तपनबन्धौ वीतरागाभावस्य करुणास्पदेष्वपि परमकृपयाऽनर्पितनिजपिशितशकलत्वस्य च व्यावृत्तेः सन्देहात् ।

७७. न वीतरागः कश्चिद् विवक्षितः पुरुषो वक्तृत्वात्, यः पुनर्वीतरागो न स वक्ता यथोपलखण्ड इत्यव्यतिरेकः ।

७८. अनित्यः शब्दः कृतकत्वादाकाशवदित्यप्रदर्शितव्यतिरेकः ।

७९. अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद्यदकृतकं तन्नित्यं यथाऽऽकाशमितिविपरीतव्यतिरेकः ।

८०. उक्तलक्षणोल्लङ्घनेनोपनयनिगमनयोर्वचने तदाभासौ ।

८१. यथा परिणामी शब्दः, कृतकत्वाद्, यः कृतकः स परिणामी, यथा कुम्भ इत्यत्र परिणामी च शब्द इति कृतकश्च कुम्भ इति च ।

८२. तस्मिन्नेव प्रयोगे तस्मात् कृतकः शब्द इति, तस्मात् परिणामी कुम्भ इति च ।

८३. अनाप्तवचनप्रभवं ज्ञानमागमाभासम् ।

८४. यथा-मेकलकन्यकायाः कूले तालहिन्तालयोर्मूले सुलभाः पिण्डखर्जुराः सन्ति, त्वरितं गच्छत गच्छत शावकाः ।

८५. प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादिसंख्यानं तस्य संख्याभासम् ।

८६. सामान्यमेव, विशेष एव, तद्द्वयं वा स्वतन्त्रमित्यादिस्तस्य विषयाभासः ।

८७. अभिन्नमेव, भिन्नमेव वा प्रमाणात् फलं, तस्य तदाभासम् ।

सप्तमः परिच्छेदः

१. नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ।

२. स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी पुनर्नयाभासः ।

३. स व्याससमासाभ्यां द्विप्रकारः ।

४. व्यासतोऽनेकविकल्पः ।

५. समासतस्तु द्विभेदो द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च ।

६. आद्यो नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदात् त्रेधा ।

७. धर्मयोर्धर्मिणोर्धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जनभावेन यद्विवक्षणं स नैकगमो नैगमः ।

८. सच्चैतन्यमात्मनीति धर्मयोः ।

९. वस्तुपर्यायवद् द्रव्यमिति धर्मिणोः ।

१०. क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति धर्मधर्मिणोः ।

११. धर्मद्वयादीनामैकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभासः ।

१२. यथात्मनि सत्त्वचैतन्ये परस्परमत्यन्तं पृथग्भूते इत्यादिः ।

१३. सामान्यमात्रग्राही परामर्शः सङ्ग्रहः ।

१४. अयमुभयविकल्पः परोऽपरश्च ।

१५. अशेषविशेषेष्वौदासीन्यं भजमानः शुद्धद्रव्यं सन्मात्रमभिमन्यमानः परसङ्ग्रहः ।

१६. विश्वमेकं सदविशेषादिति यथा ।

१७. सत्ताऽद्वैतं स्वीकुर्वाणः सकलविशेषान्निराचक्षाणस्तदाभासः ।

१८. यथा-सत्तैव तत्त्वं, ततः पृथग्भूतानां विशेषाणामदर्शनात् ।

१९. द्रव्यत्वादीन्यवान्तरसामान्यानि मन्वानस्तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानः पुनरपरसङ्ग्रहः ।

२०. धर्माधर्माकाशकालपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वाभेदादित्यादिर्यथा ।

२१. द्रव्यत्वादिकं प्रतिजानानस्तद्विशेषान्निह्नुवानस्तदाभासः।

२२. यथा द्रव्यत्वमेव तत्त्वं, ततोऽर्थान्तरभूतानां द्रव्याणामनुपलब्धेरित्यादिः ।

२३. सङ्ग्रहेण गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः ।

२४. यथा-यत् सत्, तद् द्रव्यं पर्यायो वेत्यादिः।

२५. यः पुनरपारमार्थिकद्रव्यपर्यायविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभासः ।

२६. यथा चार्वाकदर्शनम् ।

२७. पर्यायार्थिकश्चतुर्धा ऋजुसूत्रः शब्दः समभिरूढ एवम्भूतश्च ।

२८. ऋजु-वर्तमानक्षणस्थायि पर्यायमात्रं प्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्राय ऋजुसूत्रः।

२९. यथा-सुखविवर्त्तः सम्प्रत्यस्तीत्यादि ।

३०. सर्वथा द्रव्यापलापी तदाभासः ।

३१. यथा-तथागतमतम् ।

३२. कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः ।

३३. यथा-बभूव भवति भविष्यति सुमेरूरित्यादिः ।

३४. तद्भेदेन तस्य तमेव समर्थयमानस्तदाभासः ।

३५. यथा बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरित्यादयो भिन्नकालाः शब्दा भिन्नमेवार्थमभिदधति भिन्नकालशब्दत्वात् तादृक्सिद्धान्यशब्दवदित्यादिः ।

३६. पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढः ।

३७. इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पूर्दारणात् पुरन्दर इत्यादिषु यथा ।

३८. पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभासः ।

३९. यथेन्द्रः शक्रः पुरन्दर इत्यादयः शब्दाः भिन्नाभिधेया एव, भिन्नशब्दत्वाद् करिकुरङ्गतुरङ्गशब्दवदित्यादिः ।

४०. शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवम्भूतः ।

४१. यथेन्दनमनुभवन्निन्द्रः, शकनक्रियापरिणतः शक्रः, पूर्दारणप्रवृत्तः पुरन्दर इत्युच्यते ।

४२. क्रियाऽनाविष्टं वस्तु शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपंस्तु तदाभासः ।

४३. यथा विशिष्टचेष्टाशून्यं घटाख्यं वस्तु न घटशब्दवाच्यं, घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाशून्यत्वात् पटवदित्यादिः ।

४४. एतेषु चत्वारः प्रथमेऽर्थनिरूपणप्रवणत्वादर्थनयाः ।

४५. शेषास्तु त्रयः शब्दवाच्यार्थगोचरतया शब्दनयाः ।

४६. पूर्वः पूर्वो नयः प्रचुरगोचरः, परः परस्तु परिमितविषयः ।

४७. सन्मात्रगोचरात् सङ्ग्रहान्नैगमो भावाभावभूमिकत्वाद् भूमविषयः ।

४८. सद्विशेषप्रकाशकाद् व्यवहारतः सङ्ग्रहः समस्तसत्समूहोपदर्शकत्वाद् बहुविषयः।

४९. वर्तमानविषयादृजुसूत्राद् व्यवहारस्त्रिकालविषयावलम्बित्वादनल्पार्थः ।

५०. कालादिभेदेन भिन्नार्थोपदर्शिनः शब्दादृजुसूत्रस्तद्विपरीतवेदकत्वान् महार्थः ।

५१. प्रतिपर्यायशब्दमर्थभेदमभीप्सतः समभिरूढाच्छब्दस्तद्विपर्ययानुयायित्वात् प्रभूतविषयः ।

५२. प्रतिक्रियं विभिन्नमर्थं प्रतिजानानादेवम्भूतात् समभिरूढस्तदन्यथाऽर्थस्थापकत्वान्महागोचरः ।

५३. नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुव्रजति ।

५४. प्रमाणवदस्य फलं व्यवस्थापनीयम् ।

५५. प्रमाता प्रत्यक्षादिप्रसिद्ध आत्मा ।

५६. चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायम् ।

५७. तस्योपात्तपुंस्त्रीशरीरस्य सम्यग्ज्ञानक्रियाभ्यां कृत्स्नकर्मक्षयस्वरूपा सिद्धिः ।

अष्टमः परिच्छेदः

१. विरुद्धयोर्धर्मयोरेकधर्मव्यवच्छेदेन स्वीकृततदन्यधर्मव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणवचनं वादः ।

२. प्रारम्भकश्चात्र जिगीषुः तत्त्वनिर्णिनीषुश्च ।

३. स्वीकृतधर्मव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणाभ्यां परं पराजेतुमिच्छुर्जिगीषुः ।

४. तथैव तत्त्वं प्रतिष्ठापयिषुस्तत्त्वनिर्णिनीषुः ।

५. अयं च द्वेधा स्वात्मनि परत्र च ।

६. आद्यः शिष्यादिः ।

७. द्वितीयो गुर्वादिः ।

८. अयं द्विविधः क्षायोपशमिकज्ञानशाली केवली च ।

९. एतेन प्रत्यारम्भकोऽपि व्याख्यातः ।

१०. तत्र प्रथमे प्रथमतृतीयतुरीयाणां चतुरङ्ग एव, अन्यतमस्याऽप्यङ्गस्यापाये जयपराजयव्यवस्थादिदौःस्थ्यापत्तेः ।

११. द्वितीये तृतीयस्य कदाचिद् द्व्यङ्गः, कदाचित् त्र्यङ्गः ।

१२. तत्रैव द्व्यङ्गस्तुरीयस्य ।

१३. तृतीये प्रथमादीनां यथायोगं पूर्ववत् ।

१४. तुरीये प्रथमादीनामेवम् ।

१५. वादिप्रतिवादिसभ्यसभापतयश्चत्वार्यङ्गानि ।

१६. प्रारम्भकप्रत्यारम्भकावेव मल्लप्रतिमल्लन्यायेन वादिप्रतिवादिनौ ।

१७. प्रमाणतः स्वपक्षस्थापनप्रतिपक्षप्रतिक्षेपावनयोः कर्म ।

१८. वादिप्रतिवादिसिद्धान्ततत्त्वनदीष्णत्वधारणाबाहुश्रुत्यप्रतिभाक्षान्ति-माध्यस्थ्यैरुभयाभिमताः सभ्याः ।

१९. वादिप्रतिवादिनोर्यथायोगं वादस्थानककथाविशेषाङ्गीकारणाऽग्रवादो-त्तरवादनिर्देशः साधकबाधकोक्तिगुणदोषावधारणम्, यथावसरं तत्त्व-प्रकाशनेन कथाविरमणम्, यथासम्भवं सभायां कथाफलकथनं चैषां कर्माणि ।

२०. प्रज्ञाऽऽज्ञैश्वर्यक्षमामाध्यस्थ्यसम्पन्नः सभापतिः ।

२१. वादिसभ्याभिहितावधारणं कलहव्यपोहादिकं चास्य कर्म ।

२२. सजिगीषुकेऽस्मिन् यावत्सभ्यापेक्षं स्फूर्तौ वक्तव्यम् ।

२३. उभयोस्तत्त्वनिर्णिनीषुत्वे यावत् तत्त्वनिर्णयं, यावत् स्फूर्ति च वाच्यम् ।

❖ ❖ ❖

पू.आ.श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी विरचिता

(ब) प्रमाणमीमांसा

प्रथमस्याध्यायस्य प्रथममाह्निकम्

१. अथ प्रमाणमीमांसा ।

२. सम्यगर्थनिर्णयः प्रमाणम् ।

३. स्वनिर्णयः सन्नप्यलक्षणम्, अप्रमाणेऽपि भावात् ।

४. ग्रहीष्यमाणग्राहिण इव गृहीतग्राहिणोऽपि नाप्रामाण्यम् ।

५. अनुभयत्रोभयकोटिस्पर्शी प्रत्ययः संशयः ।

६. विशेषानुल्लेख्यनध्यवसायः ।

७. अतस्मिंस्तदेवेति विपर्ययः ।

८. प्रामाण्यनिश्चयः स्वतः परतो वा ।

९. प्रमाणं द्विधा ।

१०. प्रत्यक्षं परोक्षं च ।

११. व्यवस्थान्यधीनिषेधानां सिद्धेः प्रत्यक्षेतरप्रमाणसिद्धिः ।

१२. भावाभावात्मकत्वाद्वस्तुनो निर्विषयोऽभावः ।

१३. विशदः प्रत्यक्षम् ।

१४. प्रमाणान्तरानपेक्षेदन्तया प्रतिभासो वा वैशद्यम् ।

१५. तत् सर्वथावरणविलये चेतनस्य स्वरूपाविर्भावो मुख्यं केवलम् ।

१६. प्रज्ञातिशयविश्रान्त्यादिसिद्धेस्तत्सिद्धिः।

१७. बाधकाभावाच्च ।

१८. तत्तारतम्येऽवधिमनः पर्यायौ च ।

१९. विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयभेदात् तद्भेदः।

२०. इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवग्रहेहावायधारणात्मा सांव्यवहारिकम् ।

२१. स्पर्शरसगन्धरूपशब्दग्रहणलक्षणानि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणीन्द्रियाणि द्रव्यभावभेदानि ।

२२. द्रव्येन्द्रियं नियताकाराः पुद्गलाः ।

२३. भावेन्द्रियं लब्ध्युपयोगौ ।

२४. सर्वार्थग्रहणं मनः।

२५. नार्थालोकौ ज्ञानस्य निमित्तमव्यतिरेकात् ।

२६. अक्षार्थयोगे दर्शनान्तरमर्थग्रहणमवग्रहः ।

२७. अवगृहीतविशेषाकाङ्क्षणमीहा ।

२८. ईहितविशेषनिर्णयोऽवायः ।

२९. स्मृतिहेतुर्धारणा ।

३०. प्रमाणस्य विषयो द्रव्यपर्यायात्मकं वस्तु।

३१. अर्थक्रियासामर्थ्यात् ।

३२. तल्लक्षणत्वाद्वस्तुनः ।

३३. पूर्वोत्तराकारपरिहारस्वीकारस्थितिलक्षणपरिणामेनास्यार्थक्रियोपपत्तिः ।

३४. फलमर्थप्रकाशः ।

३५. कर्मस्था क्रिया ।

३६. कर्तृस्था प्रमाणम् ।

३७. तस्यां सत्यामर्थप्रकाशसिद्धेः ।

३८. अज्ञाननिवृत्तिर्वा ।

३९. अवग्रहादीनां वा क्रमोपार्जनधर्माणां पूर्वं पूर्वं प्रमाणमुत्तरमुत्तरं फलम् ।

४०. हानादिबुद्धयो वा ।

४१. प्रमाणाद्भिन्नाभिन्नम् ।

४२. स्वपराभासी परिणाम्यात्मा प्रमाता ।

प्रथमस्याध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्

१. अविशदः परोक्षम् ।

२. स्मृतिप्रत्यभिज्ञानोहानुमानागमास्तद्विधयः ।

३. वासनोद्बोधहेतुका तदित्याकारा स्मृतिः।

४. दर्शनस्मरणसम्भवं तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादिसङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानम् ।

५. उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानम् ऊहः ।

६. व्याप्तिर्व्यापकस्य व्याप्ये सति भाव एव व्याप्यस्य वा तत्रैव भावः ।

७. साधनात् साध्यविज्ञानम् अनुमानम् ।

८. तत् द्विधा स्वार्थं परार्थं च ।

९. स्वार्थं स्वनिश्चितसाध्याविनाभावैकलक्षणात् साधनात् साध्यज्ञानम् ।

१०. सहक्रमभाविनोः सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ।

११. ऊहात् तन्निश्चयः ।

१२. स्वभावः कारणं कार्यमेकार्थसमवायि विरोधि चेति पञ्चधा साधनम् ।

१३. सिषाधयिषितमसिद्धमबाध्यं साध्यं पक्षः ।

१४. प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनप्रतीतयो बाधाः ।

१५. साध्यं साध्यधर्मविशिष्टो धर्मी, क्वचित्तु धर्मः ।

१६. धर्मी प्रमाणसिद्धः ।

१७. बुद्धिसिद्धोऽपि ।

१८. न दृष्टान्तोऽनुमानाङ्गम् ।

१९. साधनमात्रात् तत्सिद्धेः ।

२०. स व्याप्तिदर्शनभूमिः ।

२१. स साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां द्वेधा ।

२२. साधनधर्मप्रयुक्तसाध्यधर्मयोगी साधर्म्यदृष्टान्तः ।

२३. साध्यधर्मनिवृत्तिप्रयुक्तसाधनधर्मनिवृत्तियोगी वैधर्म्यदृष्टान्तः ।

द्वितीयस्याध्यायस्य प्रथममाह्निकम्

१. यथोक्तसाधनाभिधानजः परार्थम् ।

२. वचनमुपचारात् ।

३. तद्द्वेधा ।

४. तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभेदात् ।

५. नानयोस्तात्पर्ये भेदः ।

६. अत एव नोभयोः प्रयोगः ।

७. विषयोपदर्शनार्थं तु प्रतिज्ञा ।

८. गम्यमानत्वेऽपि साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय धर्मिणि पक्षधर्मोपसंहारवत् तदुपपत्तिः ।

९. एतावान् प्रेक्षप्रयोगः ।

१०. बोध्यानुरोधात् प्रतिज्ञाहेतूदारणोपनयनिगमनानि पञ्चापि ।

११. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ।

१२. साधनत्वाभिव्यञ्जकविभक्त्यन्तं साधनवचनं हेतुः ।

१३. दृष्टान्तवचनमुदाहरणम् ।

१४. धर्मिणि साधनस्योपसंहार उपनयः ।

१५. साध्यस्य निगमनम् ।
१६. असिद्धविरुद्धानैकान्तिकास्त्रयो हेत्वाभासाः ।
१७. नासन्ननिश्चितसत्त्वो वाऽन्यथानुपपन्न इति सत्त्वस्यासिद्धौ सन्देहे वाऽसिद्धः ।
१८. वादिप्रतिवाद्युभयभेदाच्चैतद्भेदः ।
१९. विशेष्यासिद्धादीनामेष्वन्तर्भावः ।
२०. विपरीतनियमोऽन्यथैवोपपद्यमानो विरुद्धः ।
२१. नियमस्यासिद्धौ सन्देहे वाऽन्यथाप्युपपद्यमानोऽनैकान्तिकः ।
२२. साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामष्टावष्टौ दृष्टान्ताभासाः ।
२३. अमूर्तत्वेन नित्ये शब्दे साध्ये कर्मपरमाणुघटाः साध्यसाधनोभयविकलाः ।
२४. वैधर्म्येण परमाणुकर्माकाशाः साध्याद्यव्यतिरेकिणः ।
२५. वचनाद्रागे रागान्मरणधर्मकिञ्चिज्ज्ञत्वयोः सन्दिग्धसाध्याद्यन्वय-व्यतिरेका रथ्यापुरुषादयः ।
२६. विपरीतान्वयव्यतिरेकौ ।
२७. अप्रदर्शितान्वयव्यतिरेकौ ।
२८. साधनदोषोद्भावनं दूषणम् ।
२९. अभूतदोषोद्भावनानि दूषणाभासा जात्युत्तराणि ।
३०. तत्त्वसंरक्षणार्थं प्राश्निकादिसमक्षं साधनदूषणवदनं वादः ।
३१. स्वपक्षस्य सिद्धिर्जयः ।
३२. असिद्धिः पराजयः ।
३३. स निग्रहो वादिप्रतिवादिनोः ।
३४. न विप्रतिपत्त्यप्रतिपत्तिमात्रम् ।
३५. नाऽप्यसाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावने ।
३६. स्वेष्टार्थसाधकमबाधितं गूढपदसमूहात्मकं प्रसिद्धावयवोपेतं वाक्यं पत्रम् ।

द्वितीयस्याध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्

१. अतिरस्कृतान्यपक्षोऽभिप्रेतपदार्थांशग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नयः ।
२. द्रव्यपर्यायान्यतरस्य उभयस्य वा गौणमुख्यभावेन प्ररुपणप्रवीणो नैगमः।
३. अनिष्पन्नपर्यायस्य संकल्पमात्रग्राही नैगमः ।
४. अभेदरूपतया वस्तुजातस्य संग्राहकः संग्रहः ।
५. संग्रहगृहीतार्थानां भेदरूपतया विधिपूर्वकं व्यवहरणं व्यवहारः ।

६. वर्तमानमात्रपर्यायग्राही ऋजुसूत्रः ।

७. कालादिभेदेन शब्दस्य भिन्नार्थवाचकत्वेन अभ्युपगमपरः शब्दः ।

८. निरुक्तिभेदजन्यभिन्नपर्यायवाचकशब्दात् पदार्थनानात्वनिरूपकः समभिरुढः ।

९. शब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियायुक्तस्य अर्थस्य तच्छब्दवाच्यत्वेन प्ररुपक एवम्भूतः ।

द्वितीयस्याध्यायस्य तृतीयमाह्निकम्

१. संयोग-समवाय-विशिष्ट-सामान्यान्यतमावच्छेदेन नास्तीति प्रतीति-विषयोऽत्यन्ताभावः ।

२. कार्याकारव्यावृत्तिमान् कार्यपूर्वपर्याय एव प्रागभावः (प्रतियोग्युपादाने कार्यप्राक्कालावच्छेदेन एतत्कार्यं भविष्यति इति प्रतीतिविषयत्वं प्रागभावः)।

३. कार्याकारव्यावृत्तिमान् कार्योत्तरपर्यायो ध्वसः (प्रतियोग्युपादाने कार्योत्तरकालावच्छेदेन एतत्कार्यं न उपलभ्यते (नष्टम्) इति प्रतीतिविषयत्वं ध्वंसः)।

४. स्वरूपावच्छेदेन स्वरूपान्तरव्यवच्छेदानोऽन्योऽन्याभावः।

५. ज्ञानदर्शनचारित्रगुणवान् जीवात्मा ।

६. जडत्वे सति आत्मनो विभावदशाजनकत्वं कर्म ।

७. मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगेन कर्मण आत्मना सह एकीभवनं कर्मबन्धः ।

८. यथाध्यात्मम् असति सत्प्रकारिका बुद्धिः तत्कारणं वा मिथ्यात्वम् ।

९. षट्कायवधषडिन्द्रियेभ्यो यतनया अनिवर्तनं अविरतिः ।

१०. जातिम्लानिवृद्धिप्रभृतिधर्मवान् सजीवः।

११. प्रमादवशात् प्राणिपीडनं हिंसा ॥१॥ (प्रमादयोगेन शुभसंकल्पाभावे सति प्राणव्यपरोपणं हिंसा)।

१२. रागद्वेषजन्यो मनसः परिणामः कषायः॥ (भवप्रयोजकाध्यवसायः कषायः)

१३. आत्मपरिस्पन्दनप्रयोजकत्वं योगत्वम् ।

१४. जिनवचनविषयकास्तिक्यप्रयोजकत्वं सम्यक्त्वम् ।

१५. सम्यक्श्रद्धया यथावस्थितपदार्थावगमः सम्यग्ज्ञानम् ।

१६. ज्ञपरिज्ञानपूर्वकः पापव्यापारपरिहारः संयमः ।

१७. उपाधिमात्रध्वंसो मोक्षः ।

वाचकप्रवरश्रीउमास्वातिसंदृब्धम्

(क) ॥ श्री तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् ॥

प्रथमोऽध्यायः

१. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।
२. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।
३. तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।
४. जीवा-जीवाश्रव-बन्ध-संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।
५. नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।
६. प्रमाणनयैरधिगमः ।
७. निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थितिविधानतः ।
८. सत्सङ्ख्या क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ।
९. मतिश्रुतावधिमनः पर्यायकेवलानि ज्ञानम् ।
१०. तत्प्रमाणे ।
११. आद्ये परोक्षम् ।
१२. प्रत्यक्षमन्यत् ।
१३. मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।
१४. तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।
१५. अवग्रहेहापायधारणाः ।
१६. बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासंदिग्धध्रुवाणां सेतराणाम् ।
१७. अर्थस्य ।
१८. व्यञ्जनस्यावग्रहः ।
१९. न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।
२०. श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ।
२१. द्विविधोऽवधिः ।
२२. भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ।
२३. यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।
२४. ऋजुविपुलमती मनःपर्यायः ।
२५. विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।
२६. विशुद्धिक्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ।

२७. मतिश्रुतयोर्निबन्धः सर्वद्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।

२८. रुपिष्ववधेः ।

२९. तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य ।

३०. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।

३१. एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।

३२. मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ।

३३. सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।

३४. नैगम सङ्ग्रह-व्यवहार-र्जुसूत्र-शब्दा नयाः ।

३५. आद्यशब्दौ द्वित्रिभेदौ ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

१. औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ।

२. द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ।

३. सम्यक्त्वचारित्रे ।

४. ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ- भोगोपभोगवीर्याणि च ।

५. ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-दानादिलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यथाक्रमं सम्यक्त्व-चारित्रसंयमासंयमाश्च ।

६. गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धत्वलेश्याश्चतुश्च-तुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ।

७. जीवभव्याभव्यत्वादीनि च ।

८. उपयोगो लक्षणम् ।

९. स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।

१०. संसारिणो मुक्ताश्च ।

११. समनस्कामनस्काः ।

१२. संसारिणस्त्रसस्थावराः ।

१३. पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः ।

१४. तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः ।

१५. पञ्चेन्द्रियाणि ।

१६. द्विविधानि ।

१७. निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।

१८. लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।
१९. उपयोगः स्पर्शादिषु ।
२०. स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ।
२१. स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तेषामर्थाः
२२. श्रुतमनिन्द्रियस्य ।
२३. वाय्वन्तानामेकम् ।
२४. कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।
२५. संज्ञिनः समनस्काः ।
२६. विग्रहगतौ कर्मयोगः ।
२७. अनुश्रेणि गतिः ।
२८. अविग्रहा जीवस्य ।
२९. विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ।
३०. एकसमयोऽविग्रहः ।
३१. एकं द्वौ वाऽनाहारकः ।
३२. सम्मूर्च्छनगर्भोपपाताज्जन्म ।
३३. सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।
३४. जराय्वण्डपोतजानां गर्भः ।
३५. नारकदेवानामुपपातः ।
३६. शेषाणां सम्मूर्छनम् ।
३७. औदारिकवैक्रियाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ।
३८. परं परं सूक्ष्मम् ।
३९. प्रदेशतोऽसङ्ख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।
४०. अनन्तगुणे परे ।
४१. अप्रतिघाते ।
४२. अनादिसम्बन्धे च ।
४३. सर्वस्य ।
४४. तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्याऽऽचतुर्भ्यः ।
४५. निरुपभोगमन्त्यम् ।
४६. गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ।
४७. वैक्रियमौपपातिकम् ।

४८. लब्धिप्रत्ययं च ।

४९. शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं चतुर्दशपूर्वधरस्यैव ।

५०. नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ।

५१. न देवाः ।

५२. औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

१. रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः पृथुतराः ।

२. तासु नरकाः ।

३. नित्याशुभतरलेश्या-परिणाम-देहवेदना-विक्रियाः ।

४. परस्परोदीरितदुःखाः ।

५. संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।

६. तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाः सत्त्वानां परा स्थितिः ।

७. जम्बूद्वीपलवणादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ।

८. द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।

९. तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।

१०. तत्र भरतहैमवतहरिविदेहरम्यक्हिरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।

११. तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।

१२. द्विर्धातकीखण्डे ।

१३. पुष्करार्धे च ।

१४. प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।

१५. आर्या म्लिशश्च ।

१६. भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।

१७. नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते । तिर्यग्योनीनां च ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

१. देवाश्चतुर्निकायाः ।

२. तृतीयः पीतलेश्यः ।

३. दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।
४. इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंशपारिषद्यात्मरक्षलोकपालानीक प्रकीर्णकाभि-योग्य किल्बिषिकाश्चैकशः ।
५. त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ।
६. पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।
७. पीतान्तलेश्याः ।
८. कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ।
९. शेषाः स्पर्शरुपशब्दमनःप्रवीचारा द्वयोर्द्वयोः ।
१०. परेऽप्रवीचाराः ।
११. भवनवासिनोऽसुर-नाग-विद्युत्सुपर्णाग्निवात स्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।
१२. व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगान्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ।
१३. ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च ।
१४. मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।
१५. तत्कृतः कालविभागः ।
१६. बहिरवस्थिताः ।
१७. वैमानिकाः ।
१८. कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।
१९. उपर्युपरि ।
२०. सौधर्मैशान-सनत्कुमार-माहेन्द्रब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्त्रारे-ष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवयकेषु विजयवैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च ।
२१. स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ।
२२. गति-शरीर-परिग्रहाऽभिमानतो हीनाः।
२३. पीत-पद्म-शुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ।
२४. प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ।
२५. ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः ।
२६. सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोय तुषिताव्याबाध मरुतोरिष्टाश्च ।
२७. विजयादिषु द्विचरमाः ।
२८. औपपातिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।
२९. स्थितिः ।

३०. भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ।

३१. शेषाणां पादोने ।

३२. असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ।

३३. सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ।

३४. सागरोपमे ।

३५. अधिके च ।

३६. सप्त सनत्कुमारे ।

३७. विशेषत्रि-सप्तदशैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि च ।

३८. आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च ।

३९. अपरा पल्योपममधिकं च ।

४०. सागरोपमे ।

४१. अधिके च ।

४२. परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा ।

४३. नारकाणां च द्वितीयादिषु ।

४४. दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ।

४५. भवनेषु च ।

४६. व्यन्तराणां च ।

४७. परा पल्योपमम् ।

४८. ज्योतिष्काणामधिकम् ।

४९. ग्रहाणामेकम् ।

५०. नक्षत्राणामर्धम् ।

५१. तारकाणां चतुर्भागः ।

५२. जघन्या त्वष्टभागः ।

५३. चतुर्भागः शेषाणाम् ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

१. अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।

२. द्रव्याणि जीवाश्च ।

३. नित्यावस्थितान्यरूपाणि च ।

४. रूपिणः पुद्गलाः ।

५. आऽऽकाशादेकद्रव्याणि ।
६. निष्क्रियाणि च ।
७. असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मयोः ।
८. जीवस्य च ।
९. आकाशस्यानन्ताः ।
१०. संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।
११. नाणोः ।
१२. लोकाकाशेऽवगाहः ।
१३. धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।
१४. एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ।
१५. असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ।
१६. प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत् ।
१७. गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः ।
१८. आकाशस्यावगाहः ।
१९. शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ।
२०. सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ।
२१. परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।
२२. वर्तनापरिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ।
२३. स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ।
२४. शब्दबन्ध-सौक्ष्म्यस्थौल्य-संस्थानभेद-तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ।
२५. अणवः स्कन्धाश्च ।
२६. संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते ।
२७. भेदादणुः ।
२८. भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषाः ।
२९. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत् ।
३०. तद्भावाव्ययं नित्यम् ।
३१. अर्पितानर्पितसिद्धेः ।
३२. स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः ।
३३. न जघन्यगुणानाम् ।
३४. गुणसाम्ये सदृशानाम् ।

३५. द्व्यधिकादिगुणानां तु ।
३६. बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ ।
३७. गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ।
३८. कालश्चेत्येके ।
३९. सोऽनन्तसमयः ।
४०. द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।
४१. तद्भावः परिणामः ।
४२. अनादिरादिमांश्च ।
४३. रुपिष्वादिमान् ।
४४. योगोपयोगौ जीवेषु ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

१. कायवाङ्मनःकर्मयोगः ।
२. स आश्रवः ।
३. शुभः पुण्यस्य ।
४. अशुभः पापस्य ।
५. सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।
६. अव्रत-कषायेन्द्रिय-क्रियाः पञ्च-चतुः-पञ्च-पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।
७. तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभाव-वीर्य्याधिकरणविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।
८. अधिकरणं जीवाजीवाः ।
९. आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भ योगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रि-श्चतुश्चैकशः ।
१०. निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ।
११. तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ।
१२. दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ।
१३. भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।
१४. केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।
१५. कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य ।
१६. बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः ।
१७. माया तैर्यग्योनस्य ।

१८. अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्य ।

१९. निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।

२०. सरागसंयम-संयमा-संयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ।

२१. योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।

२२. विपरीतं शुभस्य ।

२३. दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी - संघसाधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरण-मर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य ।

२४. परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद् गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।

२५. तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।

२६. विघ्नकरणमन्तरायस्य ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

१. हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।

२. देशसर्वतोऽणुमहती ।

३. तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।

४. हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम् ।

५. दुःखमेव वा ।

६. मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ।

७. जगत्कायस्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम् ।

८. प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।

९. असदभिधानमनृतम् ।

१०. अदत्तादानं स्तेयम् ।

११. मैथुनमब्रह्म ।

१२. मूर्च्छा परिग्रहः ।

१३. निःशल्यो व्रती ।

१४. अगार्यनगारश्च ।

१५. अणुव्रतोऽगारी ।

१६. दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकपौषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ।

३५. द्व्यधिकादिगुणानां तु ।
३६. बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ ।
३७. गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ।
३८. कालश्चेत्येके ।
३९. सोऽनन्तसमयः ।
४०. द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।
४१. तद्भावः परिणामः ।
४२. अनादिरादिमांश्च ।
४३. रुपिष्वादिमान् ।
४४. योगोपयोगौ जीवेषु ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

१. कायवाङ्मनःकर्मयोगः ।
२. स आश्रवः ।
३. शुभः पुण्यस्य ।
४. अशुभः पापस्य ।
५. सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।
६. अव्रत-कषायेन्द्रिय-क्रियाः पञ्च-चतुः-पञ्च-पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।
७. तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभाव-वीर्य्याधिकरणविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।
८. अधिकरणं जीवाजीवाः ।
९. आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भ योगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ।
१०. निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ।
११. तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ।
१२. दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ।
१३. भूतव्रत्यनुकम्पा दानं सरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।
१४. केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।
१५. कषायोदयात्तीव्रात्मपरिणामश्चारित्रमोहस्य ।
१६. बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्यायुषः ।
१७. माया तैर्यग्योनस्य ।

१८. अल्पारम्भपरिग्रहत्वं स्वभावमार्दवार्जवं च मानुषस्य ।

१९. निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।

२०. सरागसंयम-संयमा-संयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ।

२१. योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।

२२. विपरीतं शुभस्य ।

२३. दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी - संघसाधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरण-मर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकृत्त्वस्य ।

२४. परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद् गुणाच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।

२५. तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनूत्सेकौ चोत्तरस्य ।

२६. विघ्नकरणमन्तरायस्य ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

१. हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।

२. देशसर्वतोऽणुमहती ।

३. तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।

४. हिंसादिष्विहामुत्र चापायावद्यदर्शनम् ।

५. दुःखमेव वा ।

६. मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ।

७. जगत्कायस्वभावौ च संवेगवैराग्यार्थम् ।

८. प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।

९. असदभिधानमनृतम् ।

१०. अदत्तादानं स्तेयम् ।

११. मैथुनमब्रह्म ।

१२. मूर्च्छा परिग्रहः ।

१३. निःशल्यो व्रती ।

१४. अगार्यनगारश्च ।

१५. अणुव्रतोऽगारी ।

१६. दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकपौषधोपवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ।

१७. मारणान्तिकीं संलेखनां जोषिता ।
१८. शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ।
१९. व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ।
२०. बन्धवधच्छविच्छेदाऽतिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।
२१. मिथ्योपदेशरहस्याभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकार-मन्त्रभेदाः ।
२२. स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरुपकव्यवहाराः ।
२३. परविवाहकरणेत्वरपरिगृहीता परिगृहीतागमनानङ्गक्रीडा तीव्र-कामाभिनिवेशाः ।
२४. क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्ण धनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।
२५. ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तर्धानानि ।
२६. आनयन प्रेष्यप्रयोगशब्दरुपानुपात पुद्गलक्षेपाः ।
२७. कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगाधिकत्वानि ॥
२८. योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थापनानि ।
२९. अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादाननिक्षेपसंस्तारोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थापनानि ।
३०. सचित्त-संबद्ध-संमिश्राऽभिषव दुष्पक्वाहाराः ।
३१. सचित्तनिक्षेप-पिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमाः ।
३२. जीवितमरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध-निदानकरणानि ।
३३. अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।
३४. विधि-द्रव्य-दातृ-पात्रविशेषात्तद्विशेषः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

१. मिथ्यादर्शनाऽविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।
२. सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते ।
३. स बन्धः ।
४. प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधयः ।
५. आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुष्क-नाम-गोत्रान्तरायाः ।
६. पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ।
७. मत्यादीनाम् ।

८. चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धिवेदनीयानि च ।
९. सदसद्वेद्ये ।
१०. दर्शनचारित्रमोहनीय-कषायनोकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विषोडशनव भेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयानि कषायनोकषायावनन्तानुबन्ध्य-प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमान-मायालोभा हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाः ।
११. नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।
१२. गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माणबन्धन-संघातसंस्थान - संहनन-स्पर्श-रसगन्धवर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघातपराघातातपोद्योतोच्छ्वासविहा-योगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तस्थिरादेययशांसि सेतराणि तीर्थकृत्त्वं च ।
१३. उच्चैर्नीचैश्च ।
१४. दानादीनाम् ।
१५. आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ।
१६. सप्ततिर्मोहनीयस्य ।
१७. नामगोत्रयोर्विंशतिः ।
१८. त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष्कस्य ।
१९. अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ।
२०. नामगोत्रयोरष्टौ ।
२१. शेषाणामन्तर्मुहूर्तम् ।
२२. विपाकोऽनुभावः ।
२३. स यथानाम् ।
२४. ततश्च निर्जरा ।
२५. नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाढस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ।
२६. सद्वेद्य-सम्यक्त्व-हास्य-रति-पुरुषवेद-शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।

अथ नवमोऽध्यायः

१. आस्रवनिरोधः संवरः ।
२. स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।

३. तपसा निर्जरा च ।

४. सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।

५. ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।

६. उत्तमः क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।

७. अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुचित्वास्त्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।

८. मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः ।

९. क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्या शय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानदर्शनानि ।

१०. सूक्ष्मसंपरायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।

११. एकादश जिने ।

१२. बादरसंपराये सर्वे ।

१३. ज्ञानावरणे प्रज्ञाऽज्ञाने ।

१४. दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।

१५. चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ।

१६. वेदनीये शेषाः ।

१७. एकादयो भाज्या युगपदेकोनविंशतेः ।

१८. सामायिक-च्छेदोपस्थाप्य-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसंपराययथाख्यातानि चारित्रम्।

१९. अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।

२०. प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ।

२१. नवचतुर्दशपञ्चद्वित्रिभेदं यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।

२२. आलोचन-प्रतिक्रमण-तदुभयविवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनानि।

२३. ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ।

२४. आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्षक-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-समनोज्ञानाम्।

२५. वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशाः ।
२६. बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।
२७. उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम् ।
२८. आमुहूर्तात् ।
२९. आर्तरौद्रधर्मशुक्लानि ।
३०. परे मोक्षहेतू ।
३१. आर्तममनोज्ञानां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ।
३२. वेदनायाश्च ।
३३. विपरीतं मनोज्ञानाम् ।
३४. निदानं च ।
३५. तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ।
३६. हिंसाऽनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ।
३७. आज्ञाऽपाय-विपाक-संस्थानविचयाय धर्ममप्रमत्तसंयतस्य ।
३८. उपशान्तक्षीणकषाययोश्च ।
३९. शुक्ले चाद्ये (पूर्वविदः) ।
४०. परे केवलिनः ।
४१. पृथक्त्वैकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवृत्तीनि ।
४२. तत् त्र्यैककाययोगायोगानाम् ।
४३. एकाश्रये सवितर्के पूर्वे ।
४४. अविचारं द्वितीयम् ।
४५. वितर्कः श्रुतम् ।
४६. विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ।
४७. सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरता-नन्तवियोजक-दर्शन-मोहक्षपकोपश-मकोपशान्तमोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय-गुणनिर्जराः ।
४८. पुलाक-बकुश-कुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।
४९. संयम-श्रुतप्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपात-स्थानविकल्पतः साध्याः ।

अथ दशमोऽध्यायः

१. मोहक्षयाद् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।
२. बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्याम् ।

३. कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः ।
४. औपशमिकादिभव्यत्वाभावाच्चान्यत्र केवल सम्यक्त्वज्ञानदर्शन सिद्धत्वेभ्यः ।
५. तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ।
६. पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च तद्गतिः।
७. क्षेत्रकाल-गतिलिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येक-बुद्धबोधितज्ञानाव-गाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।

॥इति श्रीतत्त्वार्थाधिगमसूत्राणि ॥

जैमिनीयमीमांसासूत्रपाठ

(२) ॥ मीमांसादर्शनम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातो धर्मजिज्ञासा ।
२. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।
३. तस्य निमित्तपरीष्टिः ।
४. सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षम् अनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् ।
५. औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धतस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् ।
६. कर्मैके तत्र दर्शनात् ।
७. अस्थानात् ।
८. करोतिशब्दात् ।
९. सत्त्वान्तरे च यौगपद्यात् ।
१०. प्रकृतिविकृत्योश्च ।
११. वृद्धिश्च कर्तृभूम्नास्य ।
१२. समं तु तत्र दर्शनम् ।
१३. सतः परमदर्शनं विषयानागमात् ।
१४. प्रयोगस्य परम् ।
१५. आदित्यवद्यौगपद्यम् ।
१६. वर्णान्तरमविकारः ।
१७. नादवृद्धिपरा ।
१८. नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् ।
१९. सर्वत्र यौगपद्यात् ।
२०. संख्याभावात् ।
२१. अनपेक्षत्वात् ।
२२. प्रख्याभावाच्च योगस्य ।
२३. लिङ्गदर्शनाच्च ।

२४. उत्पत्तौ वाऽवचनाः स्युरर्थस्यातन्निमित्तत्वात् ।
२५. तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात् ।
२६. लोके सन्नियमनात् प्रयोगसन्निकर्षः स्यात् ।
२७. वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः ।
२८. अनित्यदर्शनाच्च ।
२९. उक्तन्तु शब्दपूर्वत्वम् ।
३०. आख्याः प्रवचनात् ।
३१. परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।
३२. कृते वा विनियोगः स्यात् कर्मणः सम्बन्धात् ।

॥ इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादनित्यमुच्यते ।
२. शास्त्रदृष्टविरोधाच्च ।
३. तथा फलाभावात् ।
४. अन्यानर्थक्यात् ।
५. अभागिप्रतिषेधाच्च ।
६. अनित्यसंयोगात् ।
७. विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः ।
८. तुल्यं च साम्प्रदायिकम् ।
९. अप्राप्ता चानुपपत्तिः प्रयोगे हि विरोधः स्याच्छब्दार्थस्त्वप्रयोगभूतस्तस्मादुपपद्येत ।
१०. गुणवादस्तु ।
११. रूपात् प्रायात् ।
१२. दूरभूयस्त्वात् ।
१३. अपराधात् कर्तुश्च पुत्रदर्शनम् ।
१४. आकालिकेप्सा ।
१५. विद्याप्रशंसा ।
१६. सर्वत्वमाधिकारिकम् ।
१७. फलस्य कर्मनिष्पत्तेस्तेषां लोकवत् परिमाणतः फलविशेषः स्यात् ।
१८. अन्त्ययोर्यथोक्तम् ।

१९. विधिर्वा स्यादपूर्वत्वाद् वादमात्रं ह्यनर्थकम् ।
२०. लोकवदिति चेत् ।
२१. न पूर्वत्वात् ।
२२. उक्तन्तु वाक्यशेषत्वम् ।
२३. विधिश्चानर्थकः क्वचित्, तस्मात्स्तुतिः प्रतीयेत्, तत्सामान्यादितरेषु तथात्वम् ।
२४. प्रकरणे सम्भवन् अपकर्षो न कल्प्येत, विध्यानर्थक्यं हि तं प्रति ।
२५. विद्यौ च वाक्यभेदः स्यात् ।
२६. हेतुर्वा स्यादर्थवत्त्वोपपत्तिभ्याम् ।
२७. स्तुतिस्तु शब्दपूर्वत्वात्, अचोदना च तस्य ।
२८. व्यर्थे स्तुतिरन्याय्येति चेत् ।
२९. अर्थस्तु, विधिशेषत्वात् यथा लोके ।
३०. यदि च हेतुरवतिष्ठेत निर्देशात्, सामान्यादिति चेदव्यवस्था विधीनां स्यात् ।
३१. तदर्थशास्त्रात् ।
३२. वाक्यनियमात् ।
३३. बुद्धशास्त्रात् ।
३४. अविद्यमानवचनात् ।
३५. अचेतनेऽर्थबन्धनात् ।
३६. अर्थविप्रतिषेधात् ।
३७. स्वाध्यायवद् वचनात् ।
३८. अविज्ञेयात् ।
३९. अनित्यसंयोगान्मन्त्रानर्थाक्यम् ।
४०. अविशिष्टस्तु वाक्यार्थः ।
४१. गुणार्थेन पुनः श्रुतिः ।
४२. परिसंख्या ।
४३. अर्थवादो वा ।
४४. अविरुद्ध परम् ।
४५. सम्प्रैषे कर्मगर्हानुपालम्भः संस्कारत्वात् ।
४६. अभिधानेऽर्थवादः ।
४७. गुणादप्रतिषेधः स्यात् ।

४८. विद्यावचनमसंयोगात् ।
४९. सतः परमविज्ञानम् ।
५०. उक्तश्चानित्यसंयोगः ।
५१. लिङ्गोपदेशश्च तदर्थवत् ।
५२. ऊहः ।
५३. विधिशब्दाश्च ।

॥ इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. धर्मस्य शब्दमूलत्वात् अशब्दमनपेक्ष्यं स्यात् ।
२. अपि वा कर्तृसामान्यात् प्रमाणमनुमानं स्यात् ।
३. विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यात्, असति ह्यनुमानम् ।
४. हेतुदर्शनाच्च ।
५. शिष्टाकोपे विरुद्धमिति चेत् ।
६. न शास्त्रपरिणामत्वात् ।
७. अपि वा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयेरन् ।
८. तेष्वदर्शनाद्विरोधस्य समा विप्रतिपत्तिः स्यात् ।
९. शास्त्रस्था वा तन्निमित्तत्वात् ।
१०. चोदितं तु वा प्रतीयेताविरोधात् प्रमाणेन ।
११. प्रयोगशास्त्रमिति चेत् ।
१२. नाऽसन्नियमात् ।
१३. अवाक्यशेषाच्च ।
१४. सर्वत्र च प्रयोगात् सन्निधानशास्त्राच्च ।
१५. अनुमानव्यवस्थानात् तत्संयुक्तं प्रमाणं स्यात् ।
१६. अपि वा सर्वधर्मः स्यात्, तन्न्यायत्वाद्विधानस्य ।
१७. दर्शनाद्विनियोगः स्यात् ।
१८. लिङ्गाभावाच्च नित्यस्य ।
१९. आख्या हि देशसंयोगात् ।
२०. न स्याद् देशान्तरेष्विति चेत् ।
२१. स्यात् योगाख्या हि माथुरवत् ।
२२. कर्मधर्मो वा प्रवणवत् ।

२३. तुल्यं तु कर्तृधर्मेण ।
२४. प्रयोगोत्पत्त्यशास्त्रत्वाच्छब्देषु न व्यवस्था स्यात् ।
२५. शब्दे प्रयत्ननिष्पत्तेरपराधस्य भागित्वम् ।
२६. अन्यायश्चानेकशब्दत्वम् ।
२७. तत्र तत्त्वमभियोगविशेषात् स्यात् ।
२८. तदशक्तिश्चानुरूपत्वात् ।
२९. एक देशत्वाच्च विभक्तिव्यत्यये स्यात् ।
३०. प्रयोगचोदनाभावादर्थैकत्वमविभागात् ।
३१. अद्रव्यशब्दत्वात् ।
३२. अन्यदर्शनाच्च ।
३३. आकृतिस्तु क्रियार्थत्वात् ।
३४. न क्रिया स्यादिति चेदर्थान्तरे विधानं न द्रव्यमिति चेत् ।
३५. तदर्थत्वात् प्रयोगस्याविभागः ।

॥ इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. उक्तं सामाम्नायैदमर्थ्यं तस्मात् सर्वं तदर्थं स्यात् ।
२. अपि वा नामधेयं स्यात् यदुत्पत्तावपूर्वमविधाय-कत्वात् ।
३. यस्मिन् गुणोपदेशः प्रधानतोऽभिसम्बन्धः ।
४. तत्प्रख्यञ्चान्यशास्त्रम् ।
५. तद्व्यपदेशं च ।
६. नामधेये गुणश्रुतेः स्याद् विधानमिति चेत् ।
७. तुल्यत्वात् क्रिययोर्न ।
८. ऐकशब्द्ये परार्थवत् ।
९. तद्गुणास्तु विधीयेरन्नविभागाद्विधानार्थेन चेदन्येन शिष्टाः स्युः ।
१०. बर्हिराज्ययोरसंस्कारे शब्दलाभादतच्छब्दः ।
११. प्रोक्षणीष्वर्थसंयोगात् ।
१२. तथा निर्मन्थ्ये ।
१३. वैश्वदेवे विकल्प इति चेत् ।
१४. न वा, प्रकरणात् प्रत्यक्षविधानाच्च न हि प्रकरणं द्रव्यस्य ।
१५. मिथश्चानर्थसम्बन्धः ।

१६. परार्थत्वाद् गुणानाम् ।
१७. पूर्ववन्तोऽविधानार्थास्तत्सामर्थ्यं समाम्नाये ।
१८. गुणस्य तु विधानार्थे तद्गुणाः प्रयोगे स्युरनर्थकाः, न हि तं प्रत्यर्थवत्तास्ति।
१९. तच्छेषो नोपपद्यते ।
२०. अविभागाद्विधानार्थस्तुत्यर्थे नोपपद्येरन् ।
२१. कारणं स्यात् इति चेत् ।
२२. आनर्थक्यादकारणम्, कर्तुर्हि कारणानि, गुणार्थो हि विधीयते ।
२३. तत्सिद्धिः ।
२४. जातिः ।
२५. सारूप्यात् ।
२६. प्रशंसा ।
२७. भूमा ।
२८. लिङ्गसमवायात् ।
२९. सन्दिग्धेषु वाक्यशेषात् ।
३०. अर्थाद् वा कल्पनैकदेशत्वात् ।

॥ इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः प्रथमाध्यायाश्च ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रथमः पादः

१. भावार्थाः कर्मशब्दाः तेभ्यः क्रिया प्रतीयेतैष ह्यर्थो विधीयते ।
२. सर्वेषां भावोऽर्थ इति चेत् ।
३. येषामुत्पत्तौ स्वे प्रयोगे रूपोपलब्धिस्तानि नामानि, तस्मात् तेभ्यः पराकाङ्क्षा भूतत्वात् स्वे प्रयोगे ।
४. येषां तूत्पत्तावर्थे स्वे प्रयोगो न विद्यते, तान्याख्यातानि, तस्मात् तेभ्यः प्रतीयेत आश्रितत्वात् प्रयोगस्य ।
५. चोदना पुनरारम्भः ।
६. तानि द्वैधं गुणप्रधानभूतानि ।
७. यैर्द्रव्यं न चिकीर्ष्यते, तानि प्रधानभूतानि, द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ।
८. यैस्तु द्रव्यं चिकीर्ष्यते, गुणस्तत्र प्रतीयेत तस्य द्रव्यप्रधानत्वात् ।
९. धर्ममात्रे तु कर्म स्यादनिर्वृत्तेः प्रयाजवत्।
१०. तुल्यश्रुतित्वाद्वा इतरैः सधर्मः स्यात् ।
११. द्रव्योपदेश इति चेत् ।

१२. न तदर्थत्वात् लोकवत्, तस्य च शेषभूतत्वात्।
१३. स्तुतशस्त्रयोस्तु संस्कारो याज्यावद् देवताभिधानत्वात्।
१४. अर्थेन त्वपकृष्येत देवतानामचोदनार्थस्य गुणभूतत्वात्।
१५. वशावद्वा गुणार्थं स्यात्।
१६. न, श्रुतिसमवायित्वात्।
१७. व्यपदेशभेदाच्च।
१८. गुणश्चानर्थकः स्यात्।
१९. तथा याज्यापुरोरुचोः।
२०. वशायामर्थसमवायात्।
२१. यत्रेति वाऽर्थवत्त्वात् स्यात्।
२२. न त्वाम्नातेषु।
२३. दृश्यते।
२४. अपि वा श्रुतिसंयोगात् प्रकरणे स्तौतिशंसती क्रियोत्पत्ति विदध्याताम्।
२५. शब्दपृथक्त्वाच्च।
२६. अनर्थकं च तद्वचनम्।
२७. अन्यश्चार्थः प्रतीयते।
२८. अभिधानं च कर्मवत्।
२९. फलनिर्वृत्तिश्च।
३०. विधिमन्त्रयोरैकार्थ्यमैकशब्द्यात्।
३१. अपि वा प्रयोगसामर्थ्यात् मन्त्रोऽभिधानवाची स्यात्।
३२. तच्चोदकेषु मन्त्राख्या।
३३. शेषे ब्राह्मणशब्दः।
३४. अनाम्नातेष्वमन्त्रत्वमाम्नातेषु हि विभागः स्यात्।
३५. तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।
३६. गीतिषु सामाख्या।
३७. शेषे यजुः शब्दः।
३८. निगदो वा चतुर्थं स्याद्धर्मविशेषात्।
३९. व्यपदेशाच्च।
४०. यजूंषि वा तद्रूपत्वात्।
४१. वचनाद्धर्मविशेषः।

४२. अर्थाच्च ।
४३. गुणार्थो व्यपदेशः ।
४४. सर्वेषामिति चेत् ।
४५. न ऋग्व्यपदेशात् ।
४६. अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात् ।
४७. समेषु वाक्यभेदः स्यात् ।
४८. अनुषङ्गो वाक्यसमाप्तिः सर्वेषु तुल्ययोगित्वात् ।
४९. व्यवायान्नानुषज्येत ।

॥इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. शब्दान्तरे कर्मभेदः कृतानुबन्धत्वात् ।
२. एकस्यैवं पुनः श्रुतिरविशेषादनर्थकं स्यात् ।
३. प्रकरणं तु पौर्णमास्यां रूपावचनात् ।
४. विशेषदर्शनाच्च सर्वेषां समेषु ह्यप्रवृत्तिः स्यात् ।
५. गुणस्तु श्रुतिसंयोगात् ।
६. चोदना वा गुणानां युगपच्छास्त्राच्चोदिते हि तदर्थत्वात्तस्य तस्योपदिश्यते।
७. व्यपदेशश्च तद्वत् ।
८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
९. पौर्णमासीवदुपांशुयाजः स्यात् ।
१०. चोदना वाऽप्रकृतत्वात् ।
११. गुणोपबन्धात् ।
१२. प्राये वचनाच्च ।
१३. आधाराग्निहोत्ररूपत्वात् ।
१४. संज्ञोपबन्धात् ।
१५. अप्रकृतत्वाच्च ।
१६. चोदना वा शब्दार्थस्य प्रयोगभूतत्वात् तत्सन्निधेर्गुणार्थेन पुनः श्रुतिः ।
१७. द्रव्यसंयोगाच्चोदना पशुसोमयोः प्रकरणे ह्यनर्थको द्रव्यसंयोगो न हि तस्य गुणार्थेन ।
१८. अचोदकाश्च संस्काराः ।

१९. तद्भेदात् कर्मणोऽभ्यासो द्रव्यपृथक्त्वादनर्थकं हि स्याद् भेदो द्रव्य-गुणीभावात्।
२०. संस्कारस्तु न भिद्येत, परार्थत्वात् द्रव्यस्य गुणभूतत्वात्।
२१. पृथक्त्वनिवेशात् संख्यया कर्मभेदः स्यात्।
२२. संज्ञा चोत्पत्तिसंयोगात्।
२३. गुणश्चापूर्वसंयोगे वाक्ययोः समत्वात्।
२४. अगुणे तु कर्मशब्दे गुणस्तत्र प्रतीयेत।
२५. फलश्रुतेस्तु कर्म स्यात् फलस्य कर्मयोगित्वात्।
२६. अतुल्यत्वात् तु वाक्ययोर्गुणे तस्य प्रतीयेत।
२७. समेषु कर्म युक्तं स्यात्।
२८. सौभरे पुरुषश्रुतेर्निधने कामसंयोगः।
२९. सर्वस्य वोक्तकामत्वात् तस्मिन् कामश्रुतिः स्यान्निधनार्था पुनः श्रुतिः।

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. गुणस्तु क्रतुसंयोगात् कर्मान्तरं प्रयोजयेत् संयोगस्याशेषभूतत्वात्।
२. एकस्य तु लिङ्गभेदात् प्रयोजनार्थमुच्येतैकत्वं गुणवाक्यत्वात्।
३. अवेष्टौ यज्ञसंयोगात् क्रतुप्रधानमुच्यते।
४. आधाने सर्वशेषत्वात्।
५. अयनेषु चोदनान्तरं संज्ञोपबन्धात्।
६. अगुणाच्च कर्मचोदना।
७. समासं च फले वाक्यम्।
८. विकारो वा प्रकरणात्।
९. लिङ्गदर्शनाच्च।
१०. गुणात् संज्ञोपबन्धः।
११. समाप्तिरविशिष्टा
१२. संस्कारश्चाप्रकरणेऽकर्मशब्दत्वात्।
१३. यावदुक्तं वा, कर्मणःश्रुतिमूलत्वात्।
१४. यजतिस्तु द्रव्यफलभोक्तृसंयोगादेतेषां कर्मसम्बन्धात्।
१५. लिङ्गदर्शनाच्च।
१६. विशये प्रायदर्शनात्।

१७. अर्थवादोपपत्तेश्च ।
१८. संयुक्तस्त्वर्थशब्देन तदर्थः श्रुतिसंयोगात् ।
१९. पात्नीवते तु पूर्वत्वादवच्छेदः ।
२०. अद्रव्यत्वात् केवले कर्मशेषः स्यात् ।
२१. अग्निस्तु लिङ्गदर्शनात् क्रतुशब्दः प्रतीयेत ।
२२. द्रव्यं वा स्यात् चोदनायास्तदर्थत्वात् ।
२३. तत्संयोगात् क्रतुस्तदाख्यः स्यात् तेन धर्मविधानानि ।
२४. प्रकरणान्तरे प्रयोजनान्यत्वम् ।
२५. फलं चाकर्मसन्निधौ ।
२६. सन्निधौ त्वविभागात् फलार्थेन पुनः श्रुतिः ।
२७. आग्नेयस्तूक्तहेतुत्वादभ्यासेन प्रतीयेत ।
२८. अविभागात्तु कर्मणां द्विरुक्तेन विधीयते।
२९. अन्यार्था वा पुनः श्रुतिः ।

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. यावज्जीविकोऽभ्यासः कर्मधर्मः प्रकरणात् ।
२. कर्तुर्वा श्रुतिसंयोगात् ।
३. लिङ्गदर्शनाच्च कर्मधर्मे हि प्रक्रमेण नियम्येत तत्रानर्थकमन्यत् स्यात् ।
४. व्यपवर्गं च दर्शयति, कालश्चेत् कर्मभेदः स्यात् ।
५. अनित्यत्वात् तु नैवं स्यात् ।
६. विरोधश्चापि पूर्ववत् ।
७. कर्तुस्तु धर्मनियमात् कालशास्त्रं निमित्तं स्यात् ।
८. नामरूपधर्मविशेषपुनरुक्तिनिन्दाऽशक्तिसमाप्तिवचनप्रायश्चित्तान्यार्थदर्शनात् शाखान्तरेषु कर्मभेदः स्यात् ।
९. एकं वा संयोगरूपचोदनाख्याविशेषात् ।
१०. न नाम्ना स्यादचोदनाभिधानत्वात् ।
११. सर्वेषां चैककर्म्यं स्यात् ।
१२. कृतकं चाभिधानम् ।
१३. एकत्वेऽपि परम् ।
१४. विद्यायां धर्मशास्त्रम् ।

१५. आग्नेयवत् पुनर्वचनम् ।

१६. अद्विर्वचनं वा श्रुतिसंयोगाविशेषात् ।

१७. अर्थासन्निधेश्च ।

१८. न चैकं प्रतिशिष्यते ।

१९. समाप्तिवच्च सम्प्रेक्षा ।

२०. एकत्वेऽपि पराणिनिन्दाशक्तिसमाप्तिवचनानि ।

२१. प्रायश्चित्तं निमित्तेन ।

२२. प्रक्रमाद्वा नियोगेन ।

२३. समाप्तिः पूर्ववत्त्वाद् यथाज्ञाते प्रतीयेत ।

२४. लिङ्गमविशिष्टं सर्वशेषवान्न हि तत्र कर्मचोदना, तस्मात् द्वादशाहस्याहारव्यपदेशः स्यात् ।

२५. द्रव्ये चाचोदितत्वाद् विधीनामव्यवस्था स्यादनिर्देशाद् व्यवतिष्ठेत्, तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।

२६. विहितप्रतिषेधात् पक्षेऽतिरेकः स्यात् ।

२७. सारस्वते विप्रतिषेधाद् यदेति स्यात् ।

२८. उपहव्येऽप्रतिप्रसवः ।

२९. गुणार्था वा पुनः श्रुतिः ।

३०. प्रत्ययञ्चापि दर्शयति ।

३१. अपि वा क्रमसंयोगाद् विधिपृथक्त्वमेकस्यां व्यवतिष्ठेत ।

३२. विरोधिना त्वसंयोगादैककर्म्ये तत्संयोगाद्विधीनां सर्वकर्मप्रत्ययः स्यात् ।

॥ इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः द्वितीयोऽध्यायश्च ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातः शेषलक्षणम् ।

२. शेषः परार्थत्वात् ।

३. द्रव्यगुणसंस्कारेषु बादरिः ।

४. कर्माण्यपि जैमिनिः फलार्थत्वात् ।

५. फलं च पुरुषार्थत्वात् ।

६. पुरुषश्च कर्मार्थत्वात् ।

७. तेषामर्थेन सम्बन्धः ।
८. विहितस्तु सर्वधर्मः स्यात्, संयोगतोऽविशेषात् प्रकरणाविशेषाच्च।
९. अर्थलोपादकर्म स्यात् ।
१०. फलन्तु सह चेष्टया शब्दार्थोऽभावाद्विप्रयोगे स्यात् ।
११. द्रव्यं चोत्पत्तिसंयोगात्तदर्थमेव चोद्येत ।
१२. अर्थैकत्वे द्रव्यगुणयोरैककर्म्यान्नियमः स्यात् ।
१३. एकत्वयुक्तमेकस्य श्रुतिसंयोगात् ।
१४. सर्वेषां वा लक्षणत्वादविशिष्टं हि लक्षणम् ।
१५. चोदिते तु परार्थत्वाद् यथाश्रुति प्रतीयेत ।
१६. संस्काराद्वा गुणानामव्यवस्था स्यात् ।
१७. व्यवस्था वाऽर्थस्य श्रुतिसंयोगात्, तस्य शब्दप्रमाणत्वात् ।
१८. आनर्थक्यात्तदङ्गेषु ।
१९. कर्तृगुणे तु कर्मासमवायाद् वाक्यभेदः स्यात् ।
२०. साकाङ्क्षं त्वेकवाक्यं स्यादसमाप्तं हि पूर्वेण ।
२१. सन्दिग्धे तु व्यवायाद् वाक्यभेदः स्यात् ।
२२. गुणानां च परार्थत्वादसम्बन्धः समत्वात् स्यात् ।
२३. मिथश्चानर्थसम्बन्धात् ।
२४. आनन्तर्यमचोदना ।
२५. वाक्यानाञ्च समाप्तत्वात् ।
२६. शेषस्तु गुणसंयुक्तः साधारणः प्रतीयेत, मिथस्तेषामसम्बन्धात् ।
२७. व्यवस्था वाऽर्थसंयोगात् लिङ्गस्यार्थेन सम्बन्धात् लक्षणार्था गुणश्रुतिः ।

॥ इति तृतीयाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. अर्थाभिधानसामर्थ्यान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात्तस्मादुत्पत्तिसम्बन्धोऽर्थेन नित्यसंयोगात् ।
२. संस्कारकत्वादचोदितेन स्यात् ।
३. वचनात्त्वयथार्थमैन्द्री स्यात् ।
४. गुणाद्वाऽप्यभिधानं स्यात्, सम्बन्धस्याशास्त्रहेतुत्वात् ।
५. तथाह्वानमपीति चेत् ?
६. नकालविधिश्चोदितत्वात् ।

७. गुणाभावात्।
८. लिङ्गाच्च ।
९. विधिकोपश्चोपदेशे स्यात्।
१०. तथोत्थानविसर्जने।
११. सूक्तवाके च कालविधिः, परार्थत्वात्।
१२. उपदेशो वा याज्याशब्दो हि नाकस्मात्।
१३. स देवतार्थस्तत्संयोगात्।
१४. प्रतिपत्तिरिति चेत्, स्विष्टकृद्वदुभयसंस्कारः स्यात्।
१५. कृत्स्नोपदेशादुभयत्र सर्ववचनम्।
१६. यथार्थं वा शेषभूतसंस्कारात्।
१७. वचनादिति चेत्।
१८. प्रकरणाविभागदुभे प्रति कृत्स्नशब्दः ।
१९. लिङ्गक्रमसमाख्यानात् काम्ययुक्तं समाम्नानम्।
२०. अधिकारे च मन्त्रविधिस्तदाख्येषु शिष्टत्वात्।
२१. तदाख्यो वा प्रकरणोपपत्तिभ्याम्।
२२. अनर्थकश्चोपदेशः स्यादसम्बन्धात् फलवता न ह्युपस्थानं फलवत्।
२३. सर्वेषां चोपदिष्टत्वात्।
२४. लिङ्गसमाख्यानाभ्यां भक्षार्थताऽनुवाकस्य ।
२५. तस्य रूपोपदेशाभ्यामपकर्षोऽर्थस्य चोदितत्वात्।
२६. गुणाभिधानान्मन्द्रादिरेकमन्त्रः स्यात्, तयोरेकार्थसंयोगात्।
२७. लिङ्गविशेषनिर्देशात् समानविधानेष्वनैन्द्राणाममन्त्रत्वम्।
२८. यथादेवतं वा तत्प्रकृतित्वं हि दर्शयति ।
२९. पुनरभ्युन्नीतेषु सर्वेषामुपलक्षणं द्विशेषत्वात्।
३०. अपनयाद्वा पूर्वस्याऽनुपलक्षणम् ।
३१. ग्रहणाद्वापनयः स्यात्।
३२. पात्नीवते तू पूर्ववत्।
३३. ग्रहणाद्वाऽपनीतं स्यात्।
३४. त्वष्टारं तूपलक्षयेत् पानात्।
३५. अतुल्यत्वात्तु नैवं स्यात्।
३६. त्रिंशच्च परार्थत्वात्।

३७. वषट्कारश्च कर्तृवत् ।
३८. छन्दःप्रतिषेधस्तु सर्वगामित्वात् ।
३९. ऐन्द्राग्ने तु लिङ्गभावात् स्यात् ।
४०. एकस्मिन् वा देवतान्तराद् विभागवत् ।
४१. छन्दश्च देवतावत् ।
४२. सर्वेषु वाऽभावादेकच्छन्दसः ।
४३. सर्वेषां त्वैकमन्त्यमैतिशायनस्य भक्तिपानत्वात् सवनाधिकारो हि ।

॥ इति तृतीयाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. श्रुतेर्जाताधिकारः स्यात् ।
२. वेदो वा प्रायदर्शनात् ।
३. लिङ्गाच्च ।
४. धर्म्मोपदेशाच्च न हि द्रव्येण सम्बन्धः ।
५. त्रयीविद्याख्या च तद्विदि ।
६. व्यतिक्रमे यथाश्रुतीति चेत् ।
७. न सर्व्वस्मिन्निवेशात् ।
८. वेदसंयोगान्न प्रकरणेन बाध्यते ।
९. गुणमुख्यव्यतिक्रमे तदर्थत्वान्मुख्येन वेदसंयोगः ।
१०. भूयस्त्वेनोभयश्रुति ।
११. असंयुक्तं प्रकरणादितिकर्तव्यतार्थित्वात् ।
१२. क्रमश्च देशसामान्यात् ।
१३. आख्या चैवं तदर्थत्वात् ।
१४. श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां समवाये परदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात् ।
१५. अहीनो वा प्रकरणाद् गौणः ।
१६. असंयोगात्तु मुख्यस्य तस्मादपकृष्येत ।
१७. द्वित्वबहुत्वयुक्तं चाचोदनात्तस्य ।
१८. पक्षेणार्थकृतस्येति चेत् ।
१९. न प्रकृतेरेकसंयोगात् ।
२०. जाघनी चैकदेशत्वात् ।

२१. चोदना वाऽपूर्वत्वात् ।
२२. एकदेश इति चेत् ।
२३. न प्रकृतेरशास्त्रनिष्पत्तेः ।
२४. सन्तर्दनं प्रकृतौ, क्रयणवदनर्थलोपात् स्यात् ।
२५. उत्कर्षो वा, ग्रहणाद्विशेषस्य ।
२६. कर्तृतो वा विशेषस्य तन्निमितत्वात् ।
२७. क्रतुतो वाऽर्थवादानुपपत्तेः स्यात् ।
२८. संस्थाश्च कर्तृवद्धारणार्थाविशेषात् ।
२९. उक्थ्यादिषु वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् ।
३०. अविशेषात् स्तुतिर्व्यर्थेति चेत् ।
३१. स्यादनित्यत्वात् ।
३२. सङ्ख्यायुक्त क्रतोः प्रकरणात् स्यात् ।
३३. नैमित्तिकं वा कर्तृसंयोगाल्लिङ्गस्य तन्निमित्तत्वात् ।
३४. पौष्णं पेषणं विकृतौ प्रतीयेताऽचोदनात् प्रकृतौ ।
३५. तत्सर्वार्थमविशेषात् ।
३६. चरौ वा, अर्थोक्तं पुरोडाशेऽर्थविप्रतिषेधात्पशौ स्यात् ।
३७. चरावपीति चेत् ।
३८. न पक्तिनामत्वात् ।
३९. एकस्मिन्नेकसंयोगात् ।
४०. धर्मविप्रतिषेधाच्च ।
४१. अपि वा, सद्वितीय स्याद् देवतानिमित्तत्वाद् ।
४२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
४३. वचनात्सर्वपेषणं तं प्रति शास्त्रवत्त्वादर्थाभावात् द्विचरावपेषणं भवति ।
४४. एकस्मिन् वाऽर्थधर्मत्वादैन्द्राग्नवदुभयोर्न स्यादचोदितत्वात् ।
४५. हेतुमात्रमदन्तत्वम् ।
४६. वचनं परम् ।

॥ इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. निवीतमिति मनुष्यधर्मः शब्दस्य तत्प्रधानत्वात् ।
२. अपदेशो वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् ।

३. विधिस्त्वपूर्वत्वात् स्यात् ।
४. स प्रायात्कर्मधर्मः स्यात् ।
५. वाक्यशेषत्वात् ।
६. तत्प्रकरणे यत्संयुक्तमविप्रतिषेधात् ।
७. तत्प्रधाने वा तुल्यवत्प्रसंख्यानादितरस्य तदर्थत्वात् ।
८. अर्थवादो वा प्रकरणात् ।
९. विधिना चैकवाक्यत्वात् ।
१०. दिग्विभागश्च तद्वत्सम्बन्धस्यार्थहेतुत्वात्।
११. परुषिहित-पूर्णघृत-विदग्धं तद्वत् ।
१२. अकर्म्म क्रतुसंयुक्तं संयोगान्नित्यानुवादः स्यात् ।
१३. विधिर्वा संयोगान्तरात् ।
१४. अहीनवत्पुरुषधर्मस्तदर्थत्वात् ।
१५. प्रकरणविशेषाद्वा तद्युक्तस्य संस्कारो द्रव्यवत् ।
१६. व्यपदेशादपकृष्येत ।
१७. शंयौ च सर्वपरिदानात् ।
१८. प्रागुपरोधात् मलवद्वाससः ।
१९. अन्नप्रतिषेधाच्च ।
२०. अप्रकरणे तु तद्धर्मस्ततो विशेषात् ।
२१. अद्रव्यत्वात्तु शेषः स्यात् ।
२२. वेदसंयोगात् ।
२३. द्रव्यसंयोगाच्च ।
२४. स्याद्वास्य संयोगवत् फलेन सम्बन्धस्तस्मात् कर्मैतिशायनः ।
२५. शेषोऽप्रकरणेऽविशेषात् सर्वकर्मणाम् ।
२६. होमास्तु व्यवतिष्ठेरन्नाहवनीयसंयोगात् ।
२७. शेषश्च समाख्यानात् ।
२८. दोषात्त्विष्टिलौकिके स्याच्छास्त्राद्धि वैदिके न दोषः स्यात् ।
२९. अर्थवादो वाऽनुपपातात् तस्माद्यज्ञे प्रतीयेत् ।
३०. अचोदितं च कर्मभेदात् ।
३१. सालिङ्गादार्त्विजे स्यात् ।
३२. पानव्यापच्च तद्वत् ।
३३. दोषात्तु वैदिके स्यादर्थाद्धि लौकिके न दोषः स्यात् ।

३४. तत्सर्वत्राविशेषात् ।
३५. स्वामिनो वा तदर्थत्वात् ।
३६. लिङ्गदर्शनाच्च ।
३७. सर्वप्रदानं हविषस्तदर्थत्वात् ।
३८. निरवदानात्तु शेषः स्यात् ।
३९. उपायो वा तदर्थत्वात् ।
४०. कृतत्वात्तु कर्मणः सकृत् स्याद् द्रव्यस्य गुणभूतत्वात् ।
४१. शेषदर्शनाच्च ।
४२. अप्रयोजकत्वादेकस्मात् क्रियेरन् शेषस्य गुणभूतत्वात् ।
४३. संस्कृतत्वाच्च ।
४४. सर्वेभ्यो वा कारणाविशेषात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
४५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
४६. एकस्माच्चेद् याथाकाम्यमविशेषात् ।
४७. मुख्याद्वा पूर्वकालत्वात् ।
४८. भक्षाश्रवणाद्दानशब्दः परिक्रये ।
४९. तत्संस्तवाच्च ।
५०. भक्षार्थो वा द्रव्ये समत्वात् ।
५१. व्यादेशाद्दानसंस्तुतिः ।

॥ इति तृतीयाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

पञ्चमः पादः

१. आज्याच्च सर्वसंयोगात् ।
२. कारणाच्च ।
३. एकस्मिन् समवत्तशब्दात् ।
४. आज्ये च दर्शनात् स्विष्टकृदर्थवादस्य ।
५. अशेषत्वात्तु नैवं स्यात् सर्वादानादशेषता
६. साधारण्यान्न ध्रुवायां स्यात् ।
७. अक्तत्वाच्च जुह्वां, तस्य च होमसंयोगात्
८. चमसवदिति चेत् ।
९. न, चोदनाविरोधाद्धविः प्रकल्पनाच्च ।
१०. उत्पन्नाधिकारात् सति सर्ववचनम् ।

११. जातिविशेषात् परम् ।
१२. अन्त्यमरेकार्थे ।
१३. साकम्प्रस्थाय्ये स्विष्टकृदिड्च तद्वत् ।
१४. सौत्रामण्यां च ग्रहेषु ।
१५. तद्वच्च शेषवचनम् ।
१६. द्रव्यैकत्वे कर्मभेदात् प्रतिकर्म क्रियेरन् ।
१७. अविभागाच्च शेषस्य, सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ।
१८. ऐन्द्रवायवे तु वचनात् प्रतिकर्म भक्षः स्यात् ।
१९. सोमेऽवचनाद्भक्षो न विद्यते ।
२०. स्याद् वाऽन्यार्थदर्शनात् ।
२१. वचनानि त्वपूर्वत्वात्तस्माद् यथोपदेशं स्युः ।
२२. चमसेषु समाख्यानात् संयोगस्य तन्निमित्तत्वात् ।
२३. उद्गातृचमसमेकः श्रुतिसंयोगात् ।
२४. सर्वे वा सर्वसंयोगात् ।
२५. स्तोत्रकारिणां वा तत्संयोगाद् बहुश्रुतेः ।
२६. सर्वे तु वेदसंयोगात् कारणादेकदेशे स्यात् ।
२७. ग्रावस्तुतो भक्षो न विद्यते अनाम्नानात् ।
२८. हारियोजने वा सर्वसंयोगात् ।
२९. चमसिनां वा सन्निधानात् ।
३०. सर्वेषां तु विधित्वात्तदर्था चमसिश्रुतिः।
३१. वषट्काराच्च भक्षयेत् ।
३२. होमाऽभिषवाभ्याञ्च ।
३३. प्रत्यक्षोपदेशाच्चमसानामव्यक्तः शेषे ।
३४. स्याद्वा कारणभावादनिर्देशश्चमसानां कर्तृस्तद्वचनत्वात् ।
३५. चमसे चान्यदर्शनात् ।
३६. एकपात्रे क्रमादध्वर्युः पूर्वो भक्षयेत् ।
३७. होता वा मंत्रवर्णात् ।
३८. वचनाच्च ।
३९. कारणानुपूर्व्याच्च ।
४०. वचनादनुज्ञातभक्षणम् ।
४१. तदुपहूत उपह्वस्वेत्यनेन अनुज्ञापयेल्लिङ्गात् ।

४२. तत्रार्थात् प्रतिवचनम् ।
४३. तदेकपात्राणां समावायात् ।
४४. याज्यापनयेनापनीतो भक्षः प्रवरवत् ।
४५. यष्टुर्वा कारणागमात् ।
४६. प्रवृत्तत्वात् प्रवरस्यानपायः ।
४७. फलचमसो नैमित्तिको भक्षविकारः श्रुतिसंयोगात् ।
४८. इज्याविकारो वा संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
४९. होमात् ।
५०. चमसैश्च तुल्यकालत्वात् ।
५१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५२. अनुप्रसर्पिषु सामान्यात् ।
५३. ब्राह्मणा वा तुल्यशब्दत्वात् ।

॥ इति तृतीयाऽध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्ठः पादः

१. सर्वार्थमप्रकरणात् ।
२. प्रकृतौ वाऽद्विरुक्तत्वात् ।
३. तद्वर्जं तु वचनप्राप्ते ।
४. दर्शनादिति चेत् ।
५. न चोदनैकार्थ्यात् ।
६. उत्पत्तिरिति चेत् ।
७. न, तुल्यत्वात् ।
८. चोदनार्थकात्स्र्यात्तु मुख्यविप्रतिषेधात् प्रकृत्यर्थः ।
९. प्रकरणविशेषात्तु विकृतौ विरोधि स्यात् ।
१०. नैमित्तिकं तु प्रकृतौ, तद्विकारः संयोगविशेषात् ।
११. इष्ट्यर्थमग्न्याधेयं प्रकरणात् ।
१२. न वा तासां तदर्थत्वात् ।
१३. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१४. तत्प्रकृत्यर्थं यथान्येऽनारभ्यवादाः ।
१५. सर्वार्थं वाऽऽधानस्य स्वकालत्वात् ।
१६. तासामग्निः प्रकृतितः प्रयाजवत् स्यात् ।

१७. न वा तासां तदर्थत्वात् ।
१८. तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणाविशेषात् ।
१९. स्थानाच्च पूर्वस्य ।
२०. श्वस्त्वेकेषां तत्र प्राक्श्रुतिर्गुणार्था ।
२१. तेनोत्कृष्टस्य कालविधिरिति चेत् ।
२२. नैकदेशत्वात् ।
२३. अर्थेनेति चेत् ।
२४. न, श्रुतिविप्रतिषेधात् ।
२५. स्थानात्तु पूर्वस्य संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
२६. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२७. अचोदना वा गुणार्थेन ।
२८. दोहयोः कालभेदादसंयुक्तं श्रृतं स्यात् ।
२९. प्रकरणाविभागाद्वा तत्संयुक्तस्य कालशास्त्रम् ।
३०. तद्वत् सवनान्तरे ग्रहाम्नानम् ।
३१. रशना च लिङ्गदर्शनात् ।
३२. आराच्छिष्टमसंयुक्तमितरैः सन्निधानात् ।
३३. संयुक्तं वा तदर्थत्वाच्छेषस्य तन्निमित्तत्वात् ।
३४. निर्देशाद् व्यवतिष्ठेत ।
३५. अग्न्यङ्गमप्रकरणे तद्वत् ।
३६. नैमित्तिकमतुल्यत्वादसमानविधानं स्यात्
३७. प्रतिनिधिश्च तद्वत् ।
३८. तद्वत् प्रयोजनैकत्वात् ।
३९. अशास्त्रलक्षणत्वाच्च ।
४०. नियमार्था गुणश्रुतिः ।
४१. संस्थास्तु समानविधानाः, प्रकरणाविशेषात् ।
४२. व्यपदेशश्च तुल्यवत् ।
४३. विकारास्तु कामसंयोगे नित्यस्य समत्वात् ।
४४. अपि वा द्विरुक्तत्वात् प्रकृतेर्भविष्यन्तीति
४५. वचनात्तु समुच्चयः ।
४६. प्रतिषेधाच्च पूर्वलिङ्गानाम् ।
४७. गुणविशेषादेकस्य व्यपदेशः ।

॥ इति तृतीयऽध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः

१. प्रकरणविशेषादसंयुक्तं प्रधानस्य ।
२. सर्वेषां वा शेषत्वस्याऽतत्प्रयुक्तत्वात् ।
३. आरादपीति चेत् ।
४. न तद्वाक्यं हि तदर्थत्वात् ।
५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
६. फलसंयोगात्तु स्वामियुक्तं प्रधानस्य ।
७. चिकीर्षया च संयोगात् ।
८. तद्युक्ते तु फलश्रुतिः तस्मात् सर्वचिकीर्षा स्यात् ।
९. तथाऽभिधानेन ।
१०. गुणाऽभिधानात् सर्वार्थमभिधानम् ।
११. दीक्षादक्षिणं तु वचनात् प्रधानस्य ।
१२. निवृत्तिदर्शनाच्च ।
१३. तथा यूपस्य वेदिः ।
१४. देशमात्रं वा शिष्येणैकवाक्यत्वात् ।
१५. सामिधेनीस्तदन्वाहुरिति हविर्धानयोर्वचनात् सामिधेनीनाम् ।
१६. देशमात्रं वा प्रत्यक्षं ह्यर्थकर्म सोमस्य ।
१७. समाख्यानं च तद्वत् ।
१८. शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणत्वात् तस्मात् स्वयं प्रयोगे स्यात् ।
१९. उत्सर्गे तु प्रधानत्वाच्छेषकारी प्रधानस्य, तस्मादन्यः स्वयं वा स्यात् ।
२०. प्रधानत्वात् शेषकारी प्रधानस्य, तस्मादन्यः स्वयं वा स्यात् ।
२१. अन्यो वा स्यात् परिक्रयाम्नानाद् विप्रतिषेधात् प्रत्यगात्मनि ।
२२. तत्रार्थात् कर्तृपरिमाणं स्यादनियमोऽविशेषात् ।
२३. अपि वा श्रुतिभेदात् प्रतिनामधेयं स्युः ।
२४. एकस्य कर्मभेदादिति चेत् । न, उत्पत्तौ हि ।
२५. चमसाध्वर्यवश्च तैर्व्यपदेशात् ।
२६. उत्पतौ तु बहुश्रुतेः ।
२७. दशत्वं लिङ्गदर्शनात् ।
२८. शमिता च शब्दभेदात् ।
२९. प्रकरणाद् वोत्पत्त्यसंयोगात् ।

३०. उपगाश्च लिङ्गदर्शनात् ।
३१. विक्रयी त्वन्यः कर्मणोऽचोदितत्वात् ।
३२. कर्मकार्यात् सर्वेषामृत्विक्त्वमविशेषात् ।
३३. न वा परिसङ्ख्यानात् ।
३४. पक्षेणेति चेत् ।
३५. न सर्वेषामधिकारः ।
३६. नियमस्तु दक्षिणाभिः श्रुतिसंयागात् ।
३७. उक्त्वा च यजमानत्वं तेषां दीक्षाविधानात् ।
३८. स्वामिसप्तदशाः कर्मसामान्यात् ।
३९. ते सर्वार्थाः प्रयुक्तत्वात्, अग्नयश्च स्वकालत्वात् ।
४०. तत्संयोगात् कर्मणो व्यवस्था स्यात्, संयोगस्यार्थवत्त्वात् ।
४१. तस्योपदेशसमाख्यानेन निर्देशः ।
४२. तद्वच्च लिङ्गदर्शनम् ।
४३. प्रैषाऽनुवचनं मैत्रावरुणस्योपदेशात् ।
४४. पुरोऽनुवाक्याधिकारो वा प्रैषसन्निधानात्
४५. प्रातरनुवाके च होतृदर्शनात् ।
४६. चमसांश्चमसाध्वर्यवः ।
४७. अध्वर्युर्वा तन्न्यायत्वात् ।
४८. चमसे चान्यदर्शनात् ।
४९. अशक्तौ ते प्रतीयेरन् ।
५०. वेदोपदेशात् पूर्ववद् वेदान्यत्वे यथोपदेशं स्युः ।
५१. तद्गुणाद्वा स्वधर्मः स्यादधिकारसामर्थ्यात् सहाङ्गैरव्यक्तः शेषे ।

॥ इति तृतीयाऽध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. स्वामिकर्म परिक्रयः कर्मणस्तदर्थत्वात् ।
२. वचनादितरेषां स्यात् ।
३. संस्कारास्तु पुरुषसामर्थ्ये यथावेदं कर्मवद्व्यवतिष्ठेरन् ।
४. याजमानास्तु तत्प्रधानत्वात् कर्मवत् ।
५. व्यपदेशाच्च ।
६. गुणत्वेन तस्य निर्देशः ।

७. चोदनां प्रति भावाच्च ।
८. अतुल्यत्वादसमानविधानाः स्युः ।
९. तपश्च फलसिद्धित्वाल्लोकवत् ।
१०. वाक्यशेषश्च तद्वत् ।
११. वचनादितरेषां स्यात् ।
१२. गुणत्वाच्च वेदेन न व्यवस्था स्यात् ।
१३. तथा कामोऽर्थसंयोगात् ।
१४. व्यपदेशादितरेषां स्यात् ।
१५. मन्त्राश्चाऽकर्मकारणास्तद्वत् ।
१६. विप्रयोगे च दर्शनात् ।
१७. द्व्याम्नातेषूभौ द्व्याम्नानस्याऽर्थवत्त्वात् ।
१८. ज्ञाते च वाचनं, न ह्यविद्वान् विहितोऽस्ति
१९. याजमाने समाख्यानात् कर्माणि याजमानं स्युः ।
२०. अध्वर्य्युर्वा तदर्थो हि, न्यायपूर्वं समाख्यानम् ।
२१. विप्रतिषेधे करणः, समवायविशेषादितरमन्यस्तेषां यतो विशेषः स्यात् ।
२२. प्रैषेषु च पराधिकारात् ।
२३. अध्वर्युस्तु दर्शनात् ।
२४. गौणो वा कर्मसामान्यात् ।
२५. ऋत्विक्फलं करणेष्वर्थवत्त्वात् ।
२६. स्वामिनो वा तदर्थत्वात् ।
२७. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२८. कर्मार्थं तु फलं तेषां स्वामिनं प्रत्यर्थवत्त्वात् स्यात् ।
२९. व्यपदेशाच्च ।
३०. द्रव्यसंस्कारः प्रकरणाऽविशेषात् सर्वकर्मणाम् ।
३१. निर्देशात्तु विकृतावपूर्वस्याऽनधिकारः ।
३२. विरोधे च श्रुतिविशेषाद्व्यक्तः शेषे ।
३३. अपनयस्त्वेकदेशस्य विद्यमानसंयोगात् ।
३४. विकृतौ सर्वार्थः शेषः प्रकृतिवत् ।
३५. मुख्यार्थो वाऽङ्गस्याचोदितत्वात् ।
३६. सन्निधानविशेषादसम्भवे तदङ्गानाम् ।

३७. आधानेऽपि तथेति चेत् ।
३८. न अप्रकरणत्वादङ्गस्य तन्निमित्तत्वात् ।
३९. तत्काले वा लिङ्गदर्शनात् ।
४०. सर्वेषां वाऽविशेषात् ।
४१. न्यायोक्ते लिङ्गदर्शनम् ।
४२. मांसं तु सवनीयानाम्, चोदनाविशेषात् ।
४३. भक्तिरसन्निधावन्याय्येति चेत् ।
४४. स्यात् प्रकृतिलिङ्गाद् वैराजवत् ।

॥ इति तृतीयाध्यास्याऽष्टमः पादः तृतीयाध्यायश्च ॥

अथ चतुर्थोध्याय :

प्रथमः पादः

१. अथातः क्रत्वर्थपुरुषार्थयोर्जिज्ञासा ।
२. यस्मिन् प्रीतिः पुरुषस्य तस्य लिप्साऽर्थलक्षणाविभक्तत्वात् ।
३. तदुत्सर्गे कर्माणि पुरुषार्थाय, शास्त्रस्यानतिशङ्क्यत्वान्न च द्रव्यं चिकीर्ष्यते, तेनार्थेनाभिसम्बन्धात् क्रियायां पुरुषश्रुतिः ।
४. अविशेषात्तु शास्त्रस्य यथाश्रुति फलानि स्युः ।
५. अपि वा कारणाऽग्रहणे तदर्थमर्थस्याऽनभिसम्बन्धात् ।
६. तथा च लोकभूतेषु ।
७. द्रव्याणि त्वविशेषणाऽऽनर्थक्यात् प्रदीयेरन् ।
८. स्वेन त्वर्थेन सम्बन्धो द्रव्याणां पृथगर्थत्वात् तस्माद्यथाश्रुतिस्युः ।
९. चोद्यन्ते चार्थकर्मसु ।
१०. लिङ्गदर्शनाच्च ।
११. तत्रैकत्वमयज्ञाङ्गमर्थस्य गुणभूतत्वात् ।
१२. एकश्रुतित्वाच्च
१३. प्रतीयते इति चेत् ।
१४. न अशब्दं तत्प्रमाणत्वात् पूर्ववत् ।
१५. शब्दवत् तूपलभ्यते, तदागमे हि तद् दृश्यते, यस्य ज्ञानं हि यथाऽन्येषाम् ।
१६. तद्वच्च लिङ्गदर्शनम् ।
१७. तथा च लिङ्गम् ।
१८. आश्रयिष्वविशेषेण भावोऽर्थः प्रतीयेत् ।

१९. चोदनायां त्वनारम्भो विभक्तत्वान्न ह्यन्येन विधीयते ।
२०. स्याद्वा द्रव्यचिकीर्षायां भावोऽर्थे च गुणभूतत्वाश्रयाद्विगुणीभावः ।
२१. अर्थे समवैषम्यमतो द्रव्यकर्मणाम् ।
२२. एकनिष्पत्तेः सर्वं समं स्यात् ।
२३. संसर्गरसनिष्पत्तेरामिक्षा वा प्रधानं स्यात् ।
२४. मुख्यशब्दाभिसंस्तवाच्च ।
२५. पदकर्म्माप्रयोजकं नयनस्य परार्थत्वात् ।
२६. अर्थाभिधानकर्म च भविष्यता संयोगस्य तन्निमित्तत्वात्तदर्थो हि विधीयते।
२७. पशावनालम्भाल्लोहितशकृतोरकर्मत्वम् ।
२८. एकदेशद्रव्यस्योत्पत्तौ विद्यमानसंयोगात्
२९. निर्देशात्तस्यान्यदर्थादिति चेत् ।
३०. न, शेषसन्निधानात् ।
३१. कर्मकार्यात् ।
३२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
३३. अभिधारणे विप्रकर्षादनुयाजवत् पात्रभेदः स्यात् ।
३४. न वाऽपात्रत्वादपात्रत्वं त्वेकदेशत्वात् ।
३५. हेतुत्वाच्च सहप्रयोगस्य ।
३६. अभावदर्शनाच्च ।
३७. सति सव्यवचनम् ।
३८. न तस्येति चेत् ।
३९. स्यात्तस्य मुख्यत्वात् ।
४०. समानयनं तु मुख्यं स्यात्, लिङ्गदर्शनात् ।
४१. वचने हि हेत्वसामर्थ्यम् ।
४२. तत्रौत्पत्तिविभक्ता स्यात् ।
४३. तत्र जौहवमनुयाजप्रतिषेधार्थम् ।
४४. औपभृतं तथेति चेत् ।
४५. स्यात् जुहूप्रतिषेधान्नित्यानुवादः ।
४६. तदष्टसंख्यं श्रवणात् ।
४७. अनुग्रहाच्च जौहवस्य ।
४८. द्वयोस्तु हेतुसामर्थ्यं श्रवणं च समानयने ।

॥ इति चतुर्थाऽध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. स्वरुस्त्वनेकनिष्पत्तिः स्वकर्मशब्दत्वात् ।
२. जात्यन्तराच्च शङ्कते ।
३. तदेकदेशो वा स्वरुत्वस्य तन्निमित्तत्वात् ।
४. शकलश्रुतेश्च ।
५. प्रतियूपं च दर्शनात् ।
६. आदाने करोति शब्दः ।
७. शाखायां तत्प्रधानत्वात् ।
८. शाखायां तत्प्रधानत्वादुपवेषेण विभागः स्याद् वैषम्यं तत् ।
९. श्रुत्यपायाच्च ।
१०. हरणे तु जुहोतिर्योगसामान्यात् द्रव्याणां चार्थशेषत्वात् ।
११. प्रतिपत्तिर्वा शब्दस्य तत्प्रधानत्वात् ।
१२. अर्थेऽपीति चेत् ।
१३. न, तस्यानधिकारादर्थस्य च कृतत्वात् ।
१४. उत्पत्त्यसंयोगात् प्रणीतानामाज्यवद्विभागः स्यात् ।
१५. संयवनार्थानां वा प्रतिपत्तिरितरासां तत्प्रधानत्वात् ।
१६. प्रासनवन्मैत्रावरुणाय दण्डप्रदानं कृतार्थत्वात् ।
१७. अर्थकर्म वा कर्तृसंयोगात् स्रग्वत् ।
१८. कर्मयुक्ते च दर्शनात् ।
१९. उत्पत्तौ येन संयुक्तं तदर्थं तत्, श्रुतिहेतुत्वात्तस्यार्थान्तरगमने शेषत्वात् प्रतिपत्तिः स्यात् ।
२०. सौमिके च कृतार्थत्वात् ।
२१. अर्थकर्म वाऽभिधानसंयोगात् ।
२२. प्रतिपत्तिर्वा तन्न्यायत्वाद् देशार्थाऽवभृथश्रुतिः ।
२३. कर्तृदेशकालानामचोदनं प्रयोगे नित्यसमवायात् ।
२४. नियमार्था वा श्रुतिः ।
२५. तथा द्रव्येषु गुणश्रुतिरुत्पत्तिसंयोगात् ।
२६. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।
२७. यजतिचोदना द्रव्यदेवताक्रियं समुदाये कृतार्थत्वात् ।
२८. तदुक्तेः श्रवणाज्जुहोतिरासेचनाधिकः स्यात् ।

२९. ददातिरूत्सर्गपूर्वकः परस्वत्वेन सम्बन्धः ।

३०. विधेः कर्मापवर्गित्वादर्थान्तरे विधिप्रदेशः स्यात् ।

३१. अपि वोत्पत्तिसंयोगादर्थसम्बन्धोऽविशिष्टानां प्रयोगैकत्वहेतुः स्यात् ।

॥ इति चतुर्थाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. द्रव्यसंस्कारकर्मसु परार्थत्वात् फलश्रुतिरर्थवादः स्यात् ।

२. उत्पत्तेश्चातत्प्रधानत्वात् ।

३. फलं तु तत्प्रधानायाम् ।

४. नैमित्तिके विकारत्वात् क्रतुप्रधानमन्यत् स्यात् ।

५. एकस्य तूभयत्वे संयोगपृथक्त्वम् ।

६. शेष इति चेत् ।

७. नार्थपृथक्त्वात् ।

८. द्रव्याणां तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मत्वात् ।

९. पृथक्त्वाद् व्यवतिष्ठेत ।

१०. चोदनायां फलाश्रुतेः, कर्ममात्रं विधीयेत, न ह्यशब्दं प्रतीयते ।

११. अपि वाऽऽम्नानसामर्थ्याच्चोदनार्थेन गम्यते, अर्थानां ह्यर्थवत्त्वेन वचनानि प्रतीयन्ते, अर्थतो ह्यसमर्थनामानन्तर्य्येऽप्यसम्बन्धः तस्माच्छ्रुत्येकदेश : ।

१२. वाक्यार्थश्च गुणार्थवत् ।

१३. तत्सर्वार्थमनादेशात् ।

१४. एकं वा चोदनैकत्वात् ।

१५. स स्वर्गः स्यात्, सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्

१६. प्रत्ययाच्च ।

१७. क्रतौ फलार्थवादमङ्गवत् कार्ष्णाजिनिः ।

१८. फलमात्रेयो निर्देशादश्रुतौ ह्यनुमानं स्यात्

१९. अङ्गेषु स्तुतिः परार्थत्वात् ।

२०. काम्ये कर्मणि नित्यः स्वर्गो यथा यज्ञाङ्गे क्रत्वर्थः ।

२१. वीते च कारणे नियमात् ।

२२. कामो वा तत्संयोगेन चोद्यते ।

२३. अङ्गे गुणत्वात् ।

२४. वीते च नियमस्तदर्थम् ।
२५. सार्वकाम्यसङ्गकामैः प्रकरणात् ।
२६. फलोपदेशो वा प्रधानशब्दसंयोगात् ।
२७. तत्र सर्वेऽविशेषात् ।
२८. योगसिद्धिर्वाऽर्थस्योत्पत्त्यसंयोगित्वात् ।
२९. समवाये चोदनासंयोगस्यार्थवत्वात् ।
३०. कालश्रुतौ काल इति चेत् ।
३१. न असमवायात् प्रयोजनेन स्यात् ।
३२. उभयार्थमिति चेत् ।
३३. न शब्दैकत्वात् ।
३४. प्रकरणादिति चेत् ।
३५. न उत्पत्तिसंयोगात् ।
३६ अनुत्पत्तौ तु कालः स्यात् प्रयोजनेन सम्बन्धात् ।
३७. उत्पत्तिकालविषये कालः स्याद्वाक्यस्य तत्प्रधानत्वात् ।
३८. फलसंयोगस्त्वचोदिते, न स्यादशेषभूतत्वात् ।
३९. अङ्गानां तूपघातसंयोगे निमित्तार्थः ।
४०. प्रधानेनाभिसंयोगादङ्गानां मुख्यकालत्वम् ।
४१. अप्रवृत्ते तु चोदना तत्सामान्यात् स्वकाले स्यात् ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. प्रकरणशब्दसामान्याच्चोदनानामनङ्गत्वम् ।
२. अपि वाङ्गमनिज्याः स्युस्ततो विशिष्टत्वात् ।
३. मध्यस्थं यस्य तन्मध्ये ।
४. सर्वासां वा समत्वाच्चोदनातः स्यान्न हि तस्य प्रकरणं देशार्थमुच्यते मध्ये ।
५. प्रकरणाविभागे च विप्रतिषिद्धं ह्युभयम् ।
६. अपि वा कालमात्रं स्याददर्शनाद्विशेषस्य
७. फलवद्वोक्तहेतुत्वादितरस्य प्रधानं स्यात् ।
८. दधिग्रहो नैमित्तिकः श्रुतिसंयोगात् ।
९. नित्यश्च ज्येष्ठशब्दात् ।
१०. सार्वरूप्याच्च ।

११. नित्यो वा स्यादर्थवादस्तयोः कर्मण्यसम्बन्धाद् भङ्गित्वाच्चान्तरायस्य ।
१२. वैश्वानरश्च नित्यः स्यान्नित्यः समानसङ्ख्यत्वात् ।
१३. पक्षे वोत्पन्नसंयोगात् ।
१४. षट्चितिः पूर्ववत्स्यात् ।
१५. ताभिश्च तुल्यसंख्यानात् ।
१६. अर्थवादोपपत्तेश्च ।
१७. एकचितिर्वा स्यादपवृक्ते हि चोद्यते निमित्तेन ।
१८. विप्रतिषेधात्ताभिः समानसङ्ख्यत्वम् ।
१९. पितृयज्ञः स्वकालत्वादनङ्गं स्यात् ।
२०. तुल्यवच्च ! प्रसङ्ख्यानात् ।
२१. विप्रतिषिद्धे च दर्शनात् ।
२२. पश्वङ्गं रशना स्यात्तदागमे विधानात् ।
२३. यूपाङ्गं वा तत्संस्कारात् ।
२४. अर्थवादश्च तदर्थवत् ।
२५. स्वरुश्चाप्येकदेशत्वात् ।
२६. निष्क्रयश्च तदङ्गवत् ।
२७. पश्वङ्गम् वार्थकर्मत्वात् ।
२८. भक्त्या निष्क्रयवादः स्यात् ।
२९. दर्शपूर्णमासयोरिज्याः प्रधानान्यविशेषात् ।
३०. अपि वाङ्गानि कानिचित् येष्वङ्गत्वेन संस्तुतिः, सामान्यो ह्यभिसम्बन्धः ।
३१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३२. अवशिष्टं तु कारणं प्रधानेषु गुणस्य विद्यमानत्वात् ।
३३. नानुक्तेऽन्यार्थदर्शनं परार्थत्वात् ।
३४. पृथक्त्वे त्वभिधानयोर्निवेशः, श्रुतितो व्यपदेशाच्च, तत्पुनर्मुख्यलक्षणं यत् फलवत्त्वं तत्सन्निधावसंयुक्तं तदङ्गं स्यात्, भागित्वात् कारण स्याश्रुतेश्चान्यसम्बन्धः ।
३५. गुणाश्च नामसंयुक्ता विधीयन्ते, नाङ्गेषूपपद्यन्ते ।
३६. तुल्या च करणश्रुतिरन्यैरङ्गाङ्गिसम्बन्धः ।
३७. उत्पत्तावाभिसम्बन्धस्तस्मादङ्गोपदेशः स्यात् ।
३८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

३९. ज्योतिष्टोमे तुल्यान्यविशिष्टं हि कारणम् ।

४०. गुणानां तूत्पत्तिवाक्येन सम्बन्धात् कारणश्रुतिः, तस्मात् सोमः प्रधानं स्यात् ।

४१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

इति चतुर्थाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. श्रुतिलक्षणमानुपूर्व्यं तत्प्रधानत्वात् ।

२. अर्थाच्च ।

३. अनियमोऽन्यत्र ।

४. क्रमेण वा नियम्येत क्रत्वेकत्वे तद्गुणत्वात् ।

५. अशाब्द इति चेत् । स्याद्वाक्यशब्दत्वात्।

६. अर्थकृते वाऽनुमानं स्यात्, क्रत्वेकत्वे परार्थत्वात्, स्वेन त्वर्थेन सम्बन्धः, तस्मात् स्वशब्दमुच्यते ।

७. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

८. प्रवृत्त्या तुल्यकालानां गुणानां तदुपक्रमात् ।

९. सर्वमिति चेत् ।

१०. न, अकृतत्वात् ।

११. क्रत्वन्तरवदिति चेत् ।

१२. न, असमवायात् ।

१३. स्थानाच्चोत्पत्तिसंयोगात् ।

१४. मुख्यक्रमेण वाऽङ्गानां तदर्थत्वात् ।

१५. प्रकृतौ तु स्वशब्दत्वाद् यथाक्रमं प्रतीयेत् ।

१६. मन्त्रतस्तु विरोधे स्यात् प्रयोगरूपसामर्थ्यात् तस्मादुत्पत्तिदेशः सः ।

१७. तद्वचनात्तु विकृतौ यथाप्रधानं स्यात् ।

१८. विप्रतिपत्तौ वा प्रकृत्यन्वयाद् यथाप्रकृति ।

१९. विकृतिः प्रकृतिधर्मत्वात्तत्काला स्याद्यथाशिष्टम् ।

२०. अपि वा क्रमकालसंयुक्ता सद्यः क्रियेत, तत्र विधेरनुमानात् प्रकृतिधर्मलोपः स्यात् ।

२१. कालोत्कर्ष इति चेत् ।

२२. न, तत्सम्बन्धात् ।

२३. अङ्गानां मुख्यकालत्वाद्यथोक्तमुत्कर्षे स्यात् ।

२४. तदादि वाऽभिसम्बन्धात्, तदन्तमपकर्षे स्यात् ।

२५. प्रकृत्या कृतकालानाम् ।

२६. शब्दविप्रतिषेधाच्च ।

२७. असंयोगात् तु वैकृतं तदेव प्रतिकृष्येत ।

२८. प्रासङ्गिकं च नोत्कर्षेदसंयोगात् ।

२९. तथाऽपूर्वम् ।

३०. सान्तपनीया·तूत्कर्षेदग्निहोत्रं सवनवद्वैगुण्यात् ।

३१. अव्यवायाच्च ।

३२. असम्बन्धात्तु नोत्कर्षेत् ।

३३. प्रापणाच्च निमित्तस्य ।

३४. सम्बन्धात् सवनोत्कर्षः ।

३५. षोडशी चोक्थ्यसंयोगात् ।

॥ इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सन्निपाते प्रधानानामेकैकस्य गुणानां सर्वकर्म स्यात् ।

२. सर्वेषां वैकजातीयं कृतानुपूर्व्यत्वात् ।

३. कारणादभ्यावृत्तिः ।

४. मुष्टिकपालावदानाञ्जनाभ्यञ्जनवपनपावनेषु चैकैकेन ।

५. सर्वाणि त्वेककार्य्यत्वादेषां तद्गुणत्वात् ।

६. संयुक्ते तु प्रक्रमात् तदङ्गं स्यादितरस्य तदर्थत्वात् ।

७. वचनात्तु परिव्याणान्तमञ्जनादिः स्यात् ।

८. कारणाद्वाऽनवसर्गः स्यात् यथा पात्रवृद्धिः ।

९. न वा शब्दकृतत्वान्न्यायमात्रमितरदर्थात्पात्रविवृद्धिः ।

१०. पशुगणे तस्य तस्यापवर्जयेत् पश्वेकत्वात् ।

११. दैवतैर्वैककर्म्यात् ।

१२. मन्त्रस्य चार्थवत्त्वात् ।

१३. नानाबीजेष्वेकमुलूखलं विभवात् ।

१४. विवृद्धिर्वा नियमादानु पूर्व्यस्य तदर्थत्वात् ।

१५. एकं वा तण्डुलभावाद्धन्तेस्तदर्थत्वात् ।
१६. विकारे त्वनूयाजानां पात्रभेदोऽर्थभेदात् स्यात् ।
१७. प्रकृतेः पूर्वोक्तत्वादपूर्वमन्ते स्यान्न ह्यचोदितस्य शेषाम्नानम् ।
१८. मुख्यानन्तर्य्यमात्रेयः, तेन तुल्यश्रुतित्वादशब्दत्वात्प्राकृतानां व्यवायाः स्यात् ।
१९. अन्ते तु बादरायणः, तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।
२०. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२१. कृतदेशात्तु पूर्वेषां स देशः स्यात्तेन प्रत्यक्षसंयोगात् न्यायमात्रमितरत् ।
२२. प्राकृताच्च पुरस्ताद्यत् ।
२३. सन्निपातश्चेत् यथोक्तमन्ते स्यात् ।

॥ इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. विवृद्धिः कर्मभेदात् पृषदाज्यवत्तस्य तस्योपदिश्येत ।
२. अपि वा सर्वसङ्ख्यत्वाद्विकारः प्रतीयेत् ।
३. स्वस्थानात्तु विवृध्येरन् कृतानुपूर्व्यत्वात् ।
४. समिध्यमानवतीं समिद्धवतीं चान्तरेण धाम्याः स्युर्द्यावापृथिव्योरन्तराले समर्हणात् ।
५. तच्छब्दो वा ।
६. उष्णिक्ककुभोरन्ते दर्शनात् ।
७. स्तोमविवृद्धौ बहिष्पवमाने पुरस्तात्पर्यासादागन्तवः स्युः तया हि दृष्टं द्वादशाहे ।
८. पर्यास इति चान्ताख्या ।
९. अन्ते वा तदुक्तम् ।
१०. वचनात्तु द्वादशाहे ।
११. अतद्विकारश्च ।
१२. तद्विकारेऽप्यपूर्वत्वात् ।
१३. अन्ते तूत्तरयोर्दध्यात् ।
१४. अपि वा गायत्रीबृहत्यनुष्टुप्सु वचनात् ।
१५. ग्रहेष्टकमोपानुवाक्यं सवनचितिशेषः स्यात् ।
१६. ऋत्वग्निशेषो वा चोदितत्वादचोदनानुपूर्वस्य ।

१७. अन्ते स्युरव्यवायात् ।
१८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१९. मध्यमायां तु वचनाद् ब्राह्मणवत्यः ।
२०. प्राग्लोकम्पृणायास्तस्याः सम्पूरणार्थत्वात् ।
२१. संस्कृते कर्म, संस्काराणां तदर्थत्वात् ।
२२. अनन्तरं व्रतं तद्भूतत्वात् ।
२३. पूर्वं च लिङ्गदर्शनात् ।
२४. अर्थवादो वाऽर्थस्य विद्यमानत्वात् ।
२५. न्यायविप्रतिषेधाच्च ।
२६. सञ्चिते त्वग्निचिद्युक्तं प्रापणान्निमित्तस्य
२७. क्रत्वन्ते वा प्रयोगवचनाभावात् ।
२८. अग्नेः कर्मत्वनिर्देशात् ।
२९. परेणाऽऽवेदनाद्दीक्षितः स्यात्, सर्वैर्दीक्षाभिसम्बन्धात् ।
३०. इष्ट्यन्ते वा तदर्था ह्यविशेषार्थसम्बन्धात्
३१. समाख्यानं च तद्वत् ।
३२. अङ्गवत् क्रतूमानुपूर्व्यम् ।
३३. न वाऽसम्बन्धात् ।
३४. काम्यत्वाच्च ।
३५. आनर्थक्यान्नेति चेत् ।
३६. स्याद्विद्यार्थत्वाद्यथा परेषु सर्वस्वारात् ।
३७. य एतेनेत्यग्निष्टोमः प्रकरणात् ।
३८. लिङ्गाच्च ।
३९. अथान्येनेति संस्थानां सन्निधानात् ।
४०. तत्प्रकृतेर्वाऽऽपत्तिविहारौ हि न तुल्येषूपपद्येते ।
४१. प्रशंसा वा विहरणाभावात् ।
४२. विधिप्रत्ययाद्वा न ह्येकस्मात् प्रशंसा स्यात् ।
४३. एकस्तोमे वा क्रतुसंयोगात् ।
४४. सर्वेषां वा चोदनाविशेषात् प्रशंसा स्तोमानाम् ।

॥ इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. क्रमको योऽर्थशब्दाभ्यां श्रुतिविशेषादर्थपरत्वाच्च ।
२. अवदानाऽभिधारणाऽऽसादनेष्वानुपूर्व्यं प्रवृत्त्या स्यात् ।
३. यथाप्रदानं वा तदर्थत्वात् ।
४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५. वचनादिष्टिपूर्वत्वम् ।
६. सोमश्चैकेषामग्न्याधेयस्यर्तुनक्षत्राऽतिक्रमवचनात् तदन्तेनानर्थकं हि स्यात् ।
७. तदर्थवचनाच्च नाविशेषात्तदर्थत्वम् ।
८. अयक्ष्यमाणस्य च पवमानहविषां कालनिर्देशादानन्तर्य्याद्विशङ्का स्यात् ।
९. इष्टिरयक्ष्यमाणस्य तादर्थ्ये सोमपूर्वत्वम् ।
१०. उत्कर्षाद् ब्राह्मणस्य सोमः स्यात् ।
११. पौर्णमासी वा श्रुतिसंयोगात् ।
१२. सर्वस्य वैककर्म्यात् ।
१३. स्याद्वा विधिस्तदर्थेन ।
१४. प्रकारणात्तु कालः स्यात् ।
१५. स्वकाले स्यादविप्रतिषेधात् ।
१६. अपनयो वाऽऽधानस्य सर्वकालत्वात् ।
१७. पौर्णमास्यूर्ध्वं सोमात् ब्राह्मणस्य वचनात् ।
१८. एवं शब्दसामर्थ्यात् प्राक् कृत्स्नविधानात्
१९. पुरोडाशस्त्वनिर्देशे तद्युक्ते देवताभावात्।
२०. आज्यमपीति चेत् ।
२१. न मिश्रदेवतत्वादैन्द्राग्नवत् ।
२२. विकृतेः प्रकृतिकालत्वात् सद्यः कालोत्तरा विकृतिः तयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।
२३. द्वैयहकाल्ये तु यथान्यायम् ।
२४. वचनाद् वैककाल्यं स्यात् ।
२५. सान्नाय्याग्नीषोमीयविकारा ऊर्ध्वं सोमात् प्रकृतिवत् ।
२६. तथा सोमविकारा दर्शपूर्णमासाभ्याम् ।

॥ इति पञ्चामाध्यायस्य चतुर्थः पादः पञ्चमोऽध्यायश्च ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. द्रव्याणां कर्मसंयोगात् गुणत्वेनाऽभिसम्बन्धः ।

२. असाधकं तु तादर्थ्यात् ।

३. प्रत्यर्थं चाऽभिसंयोगात् कर्मतो ह्यभिसम्बन्धः, तस्मात् कर्मोपदेशः स्यात् ।

४. फलार्थत्वात् कर्मणः शास्त्रं सर्वाधिकारं स्यात् ।

५. कर्तुर्वा श्रुतिसंयोगाद्विधिः कार्त्स्न्येन गम्यते ।

६. लिङ्गविशेषनिर्देशात्तु पुंयुक्तमैतिशायनः ।

७. तदुक्तित्वाच्च दोषश्रुतिरविज्ञाते ।

८. जातिं तु बादरायणोऽविशेषात्, तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत्, जात्यर्थस्या-विशिष्टत्वात्

९. चोदितत्वाद् यथाश्रुति ।

१०. द्रव्यवत्त्वात्तु पुंसां स्यात् द्रव्यसंयुक्तं क्रयविक्रया-भ्याम्, अद्रव्यत्वं स्त्रीणां द्रव्यैः समानयोगित्वात् ।

११. तथा चाऽन्यार्थदर्शनम् ।

१२. तादर्थ्यात् कर्मतादर्थ्यम् ।

१३. फलोत्साहाऽविशेषात्तु ।

१४. अर्थेन च समवेतत्वात् ।

१५. क्रयस्य धर्ममात्रत्वम् ।

१६. स्ववत्तामपि दर्शयति ।

१७. स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात् ।

१८. लिङ्गदर्शनाच्च ।

१९. क्रीतत्वात्तु भक्त्या स्वामित्वमुच्यते ।

२०. फलार्थित्वात्तु स्वामित्वेनाऽभिसम्बन्धः।

२१. फलवत्तां दर्शयति ।

२२. द्व्याधानं च द्वियज्ञवत् ।

२३. गुणस्य तु विधानत्वात् पत्न्या द्वितीयशब्दः स्यात् ।

२४. तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्य्यमतुल्यत्वात् ।

२५. चातुर्वर्ण्यमविशेषात् ।
२६. निर्देशाद्वा त्रयाणां स्यादग्न्याधेये ह्यसम्बन्धः, क्रतुषु ब्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः ।
२७. निमित्तार्थेन बादरिः, तस्मात् सर्वाधिकारः स्यात् ।
२८. अपि वाऽन्यार्थदर्शनात् यथाश्रुति प्रतीयेत् ।
२९. निर्देशात्तु पक्षे स्यात् ।
३०. वैगुण्यान्नेति चेत् ।
३१. न काम्यत्वात् ।
३२. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।
३३. अपि वा वेदनिर्देशादपशूद्राणां प्रतीयेत् ।
३४. गुणार्थित्वान्नेति चेत् ।
३५. संस्कारस्य तदर्थत्वात्, विद्यायां पुरुषश्रुतिः ।
३६. विद्यानिर्देशान्नेति चेत् ।
३७. अवैद्यत्वादभावः कर्मणि स्यात् ।
३८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३९. त्रयाणां द्रव्यसम्पन्नः कर्मणो द्रव्यसिद्धत्वात् ।
४०. अनित्यत्वात्तु नैवं स्यादर्थाद्धि द्रव्यसंयोगः ।
४१. अङ्गहीनश्च तद्धर्मा ।
४२. उत्पत्तौ नित्यसंयोगात् ।
४३. अत्र्यार्षेयस्य हानं स्यात् ।
४४. वचनाद् रथकारस्याधानेऽस्य सर्वशेषत्वात् ।
४५. न्याय्यो वा कर्म्मसंयोगात् शूद्रस्य प्रतिषिद्धत्वात् ।
४६. अकर्मत्वात्तु नैवं स्यात् ।
४७. आनर्थक्यं च संयोगात् ।
४८. गुणार्थेनेति चेत् ।
४९. उक्तमनिमित्तत्वम् ।
५०. सौधन्वनास्तु हीनत्वात् मन्त्रवर्णात् प्रतीयेरन् ।
५१. स्थपतिर्निषादः स्यात् शब्दसामर्थ्यात् ।
५२. लिङ्गदर्शनाच्च ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. पुरुषार्थैकसिद्धित्वात् तस्य तस्याधिकारः स्यात् ।
२. अपि चोत्पत्तिसंयोगो यथा स्यात् सत्त्वदर्शनम्, तथा भावो विभागे स्यात्
३. प्रयोगे पुरुषश्रुतेः यथाकामी प्रयोगे स्यात् ।
४. प्रत्यर्थं श्रुतिभाव इति चेत् ।
५. तादर्थ्ये न गुणार्थताऽनुक्तेऽर्थान्तरत्वात् कर्तुः प्रधानभूतत्वात् ।
६. अपि वा कामसंयोगे सम्बन्धात् प्रयोगायोपदि-श्येत, प्रत्यर्थं हि विधिश्रुतिर्विषाणावत् ।
७. अन्यस्य स्यादिति चेत् ।
८. अन्यार्थेनाभिसम्बन्धः ।
९. फलकामो निमित्तमिति चेत् ।
१०. न नित्यत्वात् ।
११. कर्म तथेति चेत् ।
१२. न समवायात् ।
१३. प्रक्रमात् तु नियम्येतासम्भवस्य क्रियानिमित्तत्वात् ।
१४. फलार्थित्वाद्वाऽनियमो यथानुपक्रान्ते ।
१५. नियमो वा तन्निमित्तत्वात् कर्तुस्तत्कारणं स्यात् ।
१६. लोके कर्माणि वेदवत्ततोऽधिपुरुषज्ञानम्
१७. अपराधेऽपि च तैः शास्त्रम् ।
१८. अशास्त्रात् तूपसम्प्राप्तिः, शास्त्रं स्यान्न प्रकल्पकं, तस्मादर्थेन गम्येताप्राप्ते शास्त्रमर्थवत् ।
१९. प्रतिषेधेष्वकर्मत्वात्क्रिया स्यात् प्रतिषिद्धानां विभक्तत्वादकर्मणाम् ।
२०. शास्त्राणां त्वर्थवत्त्वेन पुरुषार्थो विधीयते तयोरसमवायित्वात्तादर्थ्ये विध्यतिक्रमः ।
२१. तस्मिंस्तु शिष्यमाणानि जननेन प्रवर्तेरन्
२२. अपि वा वेदतुल्यत्वादुपायेन प्रवर्तेरन् ।
२३. अभ्यासे कर्मशेषत्वात् पुरुषार्थो विधीयते ।
२४. तस्मिन्नसम्भवन्नर्थात् ।
२५. न कालेभ्य उपदिश्यन्ते ।
२६. दर्शनात् काललिङ्गानां कालविधानम् ।

२७. तेषामौत्पत्तिकत्वादागमेन प्रवर्तेत ।

२८. तथा हि लिङ्गदर्शनम् ।

२९. तथान्तःक्रतुप्रयुक्तानि ।

३०. आचारादगृह्यमाणेषु तथा स्यात् पुरुषार्थत्वात् ।

३१. ब्राह्मणस्य तु सोमविद्याप्रजमृणवाक्येन संयोगात् ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. सर्वशक्तौ प्रवृत्तिः स्यात् तथाभूतोपदेशात् ।

२. अपि वाप्येकदेशे स्यात् प्रधाने ह्यर्थनिर्वृत्तिर्गुणमात्रमितरत्, तदर्थत्वात् ।

३. तदकर्मणि च दोषः, तस्मात् ततो विशेषः स्यात् प्रधानेनाऽभिसम्बन्धात् ।

४. कर्माभेदं तु जैमिनिः, प्रयोगवचनैकत्वात् सर्वेषामुपदेशः स्यादिति ।

५. सर्वस्य व्यपवर्गित्वादेकस्यापि प्रयोगे स्यात्, यथा क्रत्वन्तरेषु ।

६. विध्यपराधे च दर्शनात् समाप्तेः ।

७. प्रायश्चित्तविधानाच्च ।

८. काम्येषु चैवमर्थित्वात् ।

९. असंयोगात्तु नैवं स्यात् विधेः शब्दप्रमाणत्वात् ।

१०. अकर्मणि चाप्रत्यवायात् ।

११. क्रियाणामाश्रितत्वाद् द्रव्यान्तरे विभागः स्यात् ।

१२. अपि वाऽव्यतिरेकाद् रूपशब्दविभागाच्च गोत्ववदैककर्म स्यात् नामधेयं च सत्त्ववत् ।

१३. श्रुतिप्रमाणत्वाच्छिष्टाभावेऽनागमोऽन्यस्याऽशिष्टत्वात् ।

१४. क्वचिद्विधानाच्च ।

१५. आगमो वा चोदनार्थाविशेषात् ।

१६. नियमार्थः क्वचिद्विधिः ।

१७. तन्नित्यं तच्चिकीर्षा हि ।

१८. न देवताग्निशब्दक्रियमन्यार्थसंयोगात् ।

१९. देवतायां च तदर्थत्वात् ।

२०. प्रतिषिद्धं चाविशेषेण हि तच्छ्रुतिः ।

२१. तथा स्वामिनः फलसमवायात् फलस्य कर्मयोगित्वात् ।

२२. बहूनां तु प्रवृत्तेऽन्यमागमयेदवैगुण्यात् ।

२३. स स्वामी स्यात् तत्संयोगात् ।
२४. कर्मकरो वा भृतत्वात् ।
२५. तस्मिंश्च फलदर्शनात् ।
२६. स तद्धर्मा स्यात्, तत्कर्मसंयोगात् ।
२७. सामान्यं तच्चिकीर्षा हि ।
२८. निर्देशात्तु विकल्पे यत्प्रवृत्तम् ।
२९. अशब्दमिति चेत् ।
३०. न अनङ्गत्वात् ।
३१. वचनाच्च न्याय्यमभावे तत्सामान्येन प्रतिनिधिरभावादितरस्य ।
३२. न प्रतिनिधौ समत्वात् ।
३३. स्यात् श्रुतिलक्षणे नियतत्वात् ।
३४. न तदीप्सा हि ।
३५. मुख्याधिगमे मुख्यमागमो हि तदभावात्
३६. प्रवृत्तेऽपीति चेत् ।
३७. न अनर्थकत्वात् ।
३८. द्रव्यसंस्कारविरोधे द्रव्यं तदर्थत्वात् ।
३९. अर्थद्रव्यविरोधेऽर्थो द्रव्याभावे तदुत्पत्तेर्द्रव्याणामर्थशेषत्वात् ।
४०. विधिरप्येकदेशे स्यात् ।
४१. अपि वाऽर्थस्य शक्यत्वाद् एकदेशेन निर्वर्तेतार्थानामविभक्तत्वाद् गुणमात्रमितरत्तदर्थत्वात् ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. शेषाद्व्यवदाननाशे स्यात्तदर्थत्वात् ।
२. निर्देशाद्वाऽन्यदागमयेत् ।
३. अपि वा शेषभाजां स्याद्विशिष्टकारणत्वात् ।
४. निर्देशाच्छेषभक्षोऽन्यैः प्रधानवत् ।
५. सर्वैर्वा समवायात् स्यात् ।
६. निर्देशस्य गुणार्थत्वम् ।
७. प्रधाने श्रुतिलक्षणम् ।
८. अर्थवदिति चेत् ।

९. न चोदनाविरोधात् ।
१०. अर्थसमवायात् प्रायश्चित्तमेकदेशेऽपि ।
११. न त्वशेषे वैगुण्यात्तदर्थं हि ।
१२. स्याद्वा प्राप्तनिमित्तत्वादतद्धर्मो नित्यसंयोगान्नहि तस्य गुणार्थेनानित्यत्वात् ।
१३. गुणानाञ्च परार्थत्वाद्वचनाद् व्यपाश्रयः स्यात् ।
१४. भेदार्थमिति चेत् ।
१५. नाशेषभूतत्वात् ।
१६. अनर्थकश्च सर्वनाशे स्याद् ।
१७. क्षामे तु सर्वदाहे स्यादेकदेशस्याऽवर्जनीयत्वात् ।
१८. दर्शनाद्वैकदेशे स्यात् ।
१९. अन्येन वैतच्छास्त्राद्धि कारणप्राप्तिः ।
२०. तद्धविः शब्दान्नेति चेत् ।
२१. स्यादन्यायत्वादिज्यागामी हविः शब्दस्तल्लिङ्गसंयोगात् ।
२२. यथाश्रुतीति चेत् ।
२३. न तल्लक्षणत्वादुपपातो हि कारणम् ।
२४. होमाभिषवभक्षणं च तद्वत् ।
२५. उभाभ्यां वा न हि तयोर्धर्मशास्त्रम् ।
२६. पुनराधेयमोदनवत् ।
२७. द्रव्योत्पत्तेर्वोभयोः स्यात् ।
२८. पञ्चशरावस्तु द्रव्यश्रुतेः प्रतिनिधिः स्यात् ।
२९. चोदना वा द्रव्यदेवताविधिरवाच्ये हि ।
३०. स प्रत्यामनेत् स्थानात् ।
३१. अङ्गविधिर्वा निमित्तसंयोगात् ।
३२. विश्वजित्वप्रवृत्ते भावः कर्मणि स्यात् ।
३३. निष्क्रयवादाच्च ।
३४. वत्ससंयोगे व्रतचोदना स्यात् ।
३५. कालो वा उत्पन्नसंयोगात् यथोक्तस्य ।
३६. अर्थापरिमाणाच्च ।
३७. वत्सस्तु श्रुतिसंयोगात्तदङ्गं स्यात् ।

३८. कालस्तु स्यादचोदनात् ।
३९. अनर्थकश्च कर्मसंयोगे ।
४०. अवचनाच्च स्वशब्दस्य ।
४१. कालश्चेत् सन्नयत्पक्षे तल्लिङ्गसंयोगात् ।
४२. कालार्थत्वाद्वोभयोः प्रतीयेत् ।
४३. प्रस्तरे शाखाश्रयणवत् ।
४४. कालविधिर्वोभयोः विद्यमानत्वात् ।
४५. अतत्संस्कारार्थत्वाच्च ।
४६. तस्माच्च विप्रयोगे स्यात् ।
४७. उपवेषश्च पक्षे स्यात् ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

पञ्चमः पादः

१. अभ्युदये कालापराधादिज्याचोदना स्यात्, यथा पञ्चशरावे ।
२. अपनयो वा विद्यमानत्वात् ।
३. तद्रूपत्वाच्च शब्दानाम् ।
४. आतञ्चनाभ्यासस्य दर्शनात् ।
५. अपूर्वत्वाद्विधानं स्यात् ।
६. पयोदोषात् पञ्चशरावेऽदुष्टं हि कारणम् ।
७. सान्नाय्येऽपि तथेति चेत् ।
८. न तस्यादुष्टत्वादविशिष्टं हि कारणम् ।
९. लक्षणार्था शृतश्रुतिः ।
१०. उपांशुयागेऽवचनाद् यथा प्रकृति ।
११. अपनयो वा प्रवृत्त्या यथेतरेषाम् ।
१२. निरुप्ते स्यात्तत्संयोगात् ।
१३. प्रवृत्ते वा प्रापणान्निमित्तस्य ।
१४. लक्षणमात्रमितरत् ।
१५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
१६. अनिरुप्तेऽभ्युदिते प्राकृतीभ्यो निर्वपेदित्याश्मरथ्यस्तण्डुलभूतेष्वपनयात् ।
१७. व्यूर्ध्वभाग्भ्यस्त्वालेखनस्तत्कारित्वाद् देवतापनयस्य ।
१८. विनिरुप्ते न मुष्टीनामपनयस्तद्गुणत्वात् ।

१९. अप्राकृतेन हि संयोगस्तत्स्थानीयत्वात् ।
२०. अभावाच्चेतरस्य स्यात् ।
२१. सान्नाय्यसंयोगात् सन्नयतः स्यात् ।
२२. औषधसंयोगाद् वोभयोः ।
२३. वैगुण्यान्नेति चेत् ।
२४. न अतत्संस्कारत्वात् ।
२५. साभ्युत्थाने विश्वजित्क्रीते विभागसंयोगान् ।
२६. प्रवृत्ते वा प्रापणान्निमित्तस्य ।
२७. आदेशार्थेतरा श्रुतिः ।
२८. दीक्षापरिमाणे यथाकाम्यविशेषात् ।
२९. द्वादशाहस्तु लिङ्गात् स्यात् ।
३०. पौर्णमास्यामनियमोऽविशेषात् ।
३१. आनन्तर्यात् तु चैत्री स्यात् ।
३२. माघी वैकाष्टकाश्रुतेः ।
३३. अन्या अपीति चेत् ।
३४. न भक्तित्वादेषा हि लोके ।
३५. दीक्षापराधे चानुग्रहात् ।
३६. उत्थाने चानुप्ररोहात् ।
३७. अस्यां च सर्वलिङ्गानि ।
३८. दीक्षाकालस्य शिष्टत्वादतिक्रमे नियतानामनुत्कर्षः प्राप्तकालत्वात् ।
३९. उत्कर्षो वा दीक्षितत्वादविशिष्टं हि कारणम् ।
४०. तत्र प्रतिहोमो न विद्यते, यथा पूर्वेषाम् ।
४१. कालप्राधान्याच्च ।
४२. प्रतिषेधाच्चोर्ध्वमवभृथादिष्टः ।
४३. प्रतिहोमश्चेत् सायमग्निहोत्रप्रभृतीनि हूयेरन् ।
४४. प्रातस्तु षोडशिनि ।
४५. प्रायश्चित्तमधिकारे सर्वत्र दोषसामान्यात् ।
४६. प्रकरणे वा शब्दहेतुत्वात् ।
४७. अतद्विकारश्च ।
४८. व्यापन्नस्याप्सु गतौ यदभोज्यमार्य्याणां तत् प्रतीयेत ।

४९. विभागश्रुतेः प्रायश्चित्तं यौगपद्ये न विद्यते ।
५०. स्याद्वा प्राप्तनिमित्तत्वात् कालमात्रमेकम्।
५१. तत्र विप्रतिषेधाद्विकल्पः स्यात् ।
५२. प्रयोगान्तरे वोभयानुग्रहः स्यात् ।
५३. न चैकसंयोगात् ।
५४. पौर्वापर्ये पूर्वदौर्बल्यं प्रकृतिवत् ।
५५. यद्युद्गाता जघन्यः स्यात् पुनर्यज्ञे सर्ववेदसंदद्याद् यथेतरस्मिन् ।
५६. अहर्गणे यस्मिन्नपच्छेदस्तदावर्त्तेत कर्मपृथक्त्वात् ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्ठः पादः

१. सन्निपातेऽवैगुण्यात् प्रकृतिवत् तुल्यकल्पा यजेरन् ।
२. वचनाद्वा शिरोवत् स्यात् ।
३. न वाऽनारभ्यवादत्वात् ।
४. स्याद्वा यज्ञार्थत्वादौदुम्बरीवत् ।
५. न तत्प्रधानत्वात् ।
६. औदुम्बर्य्याः परार्थत्वात्कपालवत् ।
७. अन्येनापीति चेत् ।
८. न एकत्वात्तस्य चानधिकारात् शब्दस्य चाविभक्तत्वात् ।
९. सन्निपातात्तु निमित्तविघातः स्याद्बृहद्रथन्तरवद्विभक्तशिष्टत्वात् वसिष्ठनिर्वर्त्ये ।
१०. अपि वा कृत्स्नसंयोगादविघातः प्रतीयेत, स्वामित्वेनाभिसम्बन्धात् ।
११. साम्नोः कर्मवृद्ध्यैकदेशेन संयोगे गुणत्वेनाभिसम्बन्धः, तस्मात्तत्र विघातः स्यात् ।
१२. वचनात्तु द्विसंयोगः, तस्मादेकस्य पाणित्वम् ।
१३. अर्थाभावात्तु नैवं स्यात् ।
१४. अर्थानाञ्च विभक्तत्वाद् न तच्छ्रुतेन सम्बन्धः ।
१५. पाणेः प्रत्यङ्गभावाद-सम्बन्धः प्रतीयेत ।
१६. सत्राणि सर्ववर्णानामविशेषात् ।
१७. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१८. ब्राह्मणानां वेतरयोरार्त्विज्याभावात् ।

१९. वचनादिति चेत् ।
२०. न स्वामित्वं हि विधीयते ।
२१. गार्हपते वा स्यान्नामाविप्रतिषेधात् ।
२२. न वा कल्पविरोधात् ।
२३. स्वामित्वादितरेषामहीने लिङ्गदर्शनम् ।
२४. वासिष्ठानां वा ब्रह्मत्वस्य नियमात् ।
२५. सर्वेषां वा प्रतिप्रसवात् ।
२६. विश्वामित्रस्य होत्रनियमाद् भृगुशुनकवसिष्ठानाम् अनधिकारः ।
२७. विहारस्य प्रभुत्वादनग्नीनामपि स्यात् ।
२८. सारस्वते च दर्शनात् ।
२९. प्रायश्चित्तविधानाच्च ।
३०. साग्नीनां वेष्टिपूर्वत्वात् ।
३१. स्वार्थेन च प्रयुक्तत्वात् ।
३२. सन्निवापं च दर्शयति ।
३३. जुह्वादीनामप्रयुक्तत्वाद् सन्देहे यथाकामी प्रतीयेत ।
३४. अपि वाऽन्यानि पात्राणि साधारणानि कुर्वीरन् विप्रतिपधाच्छास्त्रकृतत्वात् ।
३५. प्रायश्चित्तमापदि स्यात् ।
३६. पुरुषकल्पेन वा विकृत्तौ कर्तृनियमः स्याद्यज्ञस्य तद्गुणत्वादभावादितरान् प्रत्येकस्मिन्नधिकारः स्यात् ।
३७. लिङ्गाच्चेज्याविशेषवत् ।
३८. न वा संयोगपृथक्त्वाद् गुणस्वेज्याप्रधानत्वादसंयुक्ता हि चोदना ।
३९. इज्यायां तद्गुणत्वाद्विशेषेण नियम्येत ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः

१. स्वदाने सर्वमविशेषात् ।
२. यस्य वा प्रभुः स्यादितरस्याऽशक्यत्वात् ।
३. न भूमिः स्यात् सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात् ।
४. अकार्यत्वाच्च ततः पुनर्विशेषः स्यात् ।
५. नित्यत्वाच्चानित्यैर्नास्ति सम्बन्धः ।

६. शूद्रश्च धर्मशास्त्रत्वात् ।
७. दक्षिणाकाले यत्स्वं तत्प्रतीयेत तद्दानसंयोगात् ।
८. अशेषत्वात्तदन्तः स्यात् कर्मणो द्रव्यसिद्धित्वात् ।
९. अपि वा शेषकर्म स्यात् क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।
१०. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
११. अशेषं तु समञ्जसादानेन शेषकर्म स्यात् ।
१२. नादानस्यानित्यत्वात् ।
१३. दीक्षासु तु विनिर्देशादक्रत्वर्थेन संयोगस्तस्मादविरोधः स्यात् ।
१४. अहर्गणे च तद्धर्मः स्यात् सर्वेषामविशेषात् ।
१५. द्वादशशतं वा प्रकृतिवत् ।
१६. अतद्गुणत्वात् तु नैवं स्यात् ।
१७. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१८. विकारः सन्नुभयतोऽविशेषात् ।
१९. अधिकं वा प्रतिप्रसवात् ।
२०. अनुग्रहाच्च पादवत् ।
२१. अपरिमिते शिष्टस्य सङ्ख्याप्रतिषेधस्तच्छ्रुतित्वात् ।
२२. कल्पान्तरं वा तुल्यवत्प्रसङ्ख्यानात् ।
२३. अनियमोऽविशेषात् ।
२४. अधिकं वा स्याद् बह्वर्थत्वादितरेषां सन्निधानात् ।
२५. अर्थवादश्च तद्वत् ।
२६. परकृतिपुराकल्पं च मनुष्यधर्मः स्यादर्थाय ह्यनुकीर्तनम् ।
२७. तद्युक्ते च प्रतिषेधात् ।
२८. निर्देशाद्वा तद्धर्मः स्यात् पञ्चावत्तवत् ।
२९. विधौ तु वेदसंयोगादुपदेशः स्यात् ।
३०. अर्थवादो वा विधिशेषत्वात्तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।
३१. सहस्रसंवत्सरं तदायुषामसम्भवात् मनुष्येषु ।
३२. अपि वा तदधिकारान्मनुष्यधर्मः स्यात् ।
३३. नासामर्थ्यात् ।
३४. सम्बन्धादर्शनात् ।
३५. स कुलकल्पः स्यादिति कार्ष्णाजिनिरेकस्मिन्नसम्भवात् ।

३६. अपि वा कृत्स्नसंयोगादेकस्यैव प्रयोगः स्यात् ।
३७. विप्रतिषेधात्तु गुण्यन्तरः स्यादिति लाबुकायनः ।
३८. संवत्सरो विचालित्वात् ।
३९. सा प्रकृतिः स्यादधिकारात् ।
४०. अहानि वाऽभिसंख्यत्वात् ।

॥ इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. इष्टिपूर्वत्वादक्रतुशेषो होमः संस्कृतेष्वग्निषु स्यादपूर्वोऽप्याधानस्य सर्वशेषत्वात् ।
२. इष्टित्वेन तु संस्तवश्चतुर्होतॄनसंस्कृतेषु दर्शयति ।
३. उपदेशस्त्वपूर्वत्वात् ।
४. स सर्वेषामविशेषात् ।
५. अपि वा क्रत्वभावादनाहिताग्नेरशेषभूतनिर्देशः ।
६. जपो वाऽनग्निसंयोगात् ।
७. इष्टत्वेन तु संस्तुते होमः स्यादनारभ्याग्निसंयोगादितरेषामवाच्यत्वात् ।
८. उभयोः पितृयज्ञवत् ।
९. निर्देशो वाऽनाहिताग्नेरनारभ्याग्निसंयोगात् ।
१०. पितृयज्ञे संयुक्तस्य पुनर्वचनम् ।
११. उपनयन्नादधीत होमसंयोगात् ।
१२. स्थपतीष्टिवल्लौकिके वा विद्याकर्मानुपूर्वत्वात् ।
१३. आधानं च भार्यासंयुक्तम् ।
१४. अकर्म चोर्ध्वमाधानात्तत्समवायो हि कर्मभिः ।
१५. श्राद्धवदिति चेत् ।
१६. न श्रुतिविप्रतिषेधात् ।
१७. सर्वार्थत्वाच्च पुत्रार्थो न प्रयोजयेत् ।
१८. सोमपानात्तु प्रापणं द्वितीयस्य तस्मादुपयच्छेत् ।
१९. पितृयज्ञे तु दर्शनात् प्रागाधानात् प्रतीयेत
२०. स्थपतीष्टिः प्रयाजवदग्न्याधेयं प्रयोजयेत्तादर्थ्याच्चापवृज्येत् ।
२१. अपि वा लौकिकेऽग्नौ स्यादाधानस्यासर्वशेषत्वात् ।
२२. अवकीर्णिपशुश्च तद्वदाधानस्याप्राप्तकालत्वात् ।
२३. उदगयनपूर्वपक्षाहः पुण्याहेषु दैवानि स्मृतिरूपान्यार्थदर्शनात् ।

२४. अहनि च कर्मसाकल्यम् ।
२५. इतरेषु तु पित्र्याणि ।
२६. याच्ञाक्रयणमविद्यमाने लोकवत् ।
२७. नियतं वार्थवत्त्वात् स्यात् ।
२८. तथा भक्षप्रैषाच्छादनसंज्ञप्तहोमद्वेषम् ।
२९. अनर्थकं त्वनित्यं स्यात् ।
३०. पशुचोदनायामनियमोऽविशेषात् ।
३१. छागो वा मन्त्रवर्णात् ।
३२. न चोदनाविरोधात् ।
३३. आर्षेयवदिति चेत् ।
३४. न तत्र ह्यचोदितत्त्वात् ।
३५. नियमो वैकार्थ्यं ह्यर्थभेदाद् भेदः पृथक्त्वेनाभिधानात् ।
३६. अनियमो वार्थान्तरत्वादन्यत्वं व्यतिरेकशब्दभेदाभ्याम् ।
३७. रूपाल्लिङ्गाच्च ।
३८. छागे न कर्माख्या रूपलिङ्गाभ्याम् ।
३९. रूपान्यत्वान्न जातिशब्दः स्यात् ।
४०. विकारो नोत्पत्तिकत्वात् ।
४१. स नैमित्तिकः पशोर्गुणस्याचोदितत्वात्।
४२. जातेर्वा तत्प्रायवचनार्थवत्त्वाभ्याम् ।

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः पादः समाप्तश्च षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. श्रुतिप्रमाणत्वाच्छेषाणां मुख्यभेदे यथाधिकारं भावः स्यात् ।
२. उत्पत्त्यर्थाविभागाद्वा सत्त्ववदैकधर्म्यं स्यात् ।
३. चोदनाशेषभावाद्वा तद्भेदाद्व्यवतिष्ठेरन् उत्पत्तेर्गुणभूतत्वात् ।
४. सत्त्वे लक्षणसंयोगात् सार्वत्रिकं प्रतीयेत् ।
५. अविभागात्तु नैवं स्यात् ।
६. द्व्यर्थत्वं च विप्रतिषिद्धम् ।
७. उत्पत्तौ विध्यभावाद्वा चोदनायां प्रवृत्तिः स्यात्, ततश्च कर्मभेदः स्यात् ।
८. यदि वाऽप्यभिधानवत् सामान्यात् सर्वधर्मः स्यात् ।

९. अर्थस्य त्वविभक्तत्वात्तथा स्यादभिधानेषु पूर्ववत्त्वात् प्रयोगस्य, कर्मणः शब्दभाव्यत्वाद्विभागाच्छेषाणामप्रवृत्तिः स्यात् ।
१०. स्मृतिरिति चेत् ।
११. न पूर्ववत्त्वात् ।
१२. अर्थस्य शब्दभाव्यत्वात् प्रकरणनिबन्धनाच्छब्दादेवान्यत्र भावः स्यात् ।
१३. समानेऽपूर्ववत्त्वादुत्पन्नाधिकारः स्यात् ।
१४. श्येनस्येति चेत् ।
१५. न असन्निधानात् ।
१६. अपि वा यद्यपूर्वत्वादितरदधिकार्थे ज्यौतिष्टोमिकाद्विधेस्तद्वाचकं समानं स्यात् ।
१७. पञ्चसञ्चरेष्वर्थवादातिदेशः सन्निधानात् ।
१८. सर्वस्य वैकाशब्द्यात् ।
१९. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२०. विहिताम्नानान्नेति चेत् ।
२१. न इतरार्थत्वात् ।
२२. एककपालैन्द्राग्नौ च तद्वत् ।
२३. एककपालानां वैश्वदेविकः प्रकृतिराग्रयणे सर्वहोमापरिवृत्तिदर्शनादवभृथे च सकृद् द्व्यवदानस्य वचनात् ।

॥ इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. साम्नोऽभिधानशब्देन प्रवृत्तिः स्याद्यथाशिष्टम् ।
२. शब्दैस्त्वर्थविधित्वादर्थान्तरेऽप्रवृत्तिः स्यात् पृथग्भावात् क्रियाया ह्यभिसम्बन्धः ।
३. स्वार्थे वा स्यात्प्रयोजनं क्रियायास्तदङ्गभावेनोपदिश्येरन् ।
४. शब्दमात्रमिति चेत् ।
५. न औत्पत्तिकत्वात् ।
६. शास्त्रं चैवमनर्थकं स्यात् ।
७. स्वरस्येति चेत् ।
८. न अर्थाभावाच्छ्रुतेरसम्बन्धः ।
९. स्वरस्तूत्पत्तिषु स्यान्मात्रावर्णाविभक्तत्वात् ।
१०. लिङ्गदर्शनाच्च ।

११. अश्रुतेस्तु विकारस्योत्तरासु यथाश्रुति ।
१२. शब्दानां चासामञ्जस्यम् ।
१३. अपि तु कर्मशब्दः स्याद्भावोऽर्थः प्रसिद्धग्रहणत्वाद्विकारो ह्यविशिष्टोऽन्यैः ।
१४. अद्रव्यं चापि दृश्यते ।
१५. तस्य च क्रिया ग्रहणार्था, नानार्थेषु विरूपित्वादर्थो ह्यासामलौकिको विधानात् ।
१६. तस्मिन् संज्ञाविशेषाः स्युर्विकारपृथक्त्वात् ।
१७. योनिशस्याश्च तुल्यवदितराभिर्विधीयन्ते ।
१८. अयोनौ चापि दृश्यतेऽतथायोनिः ।
१९. ऐकार्थ्ये नास्ति वैरूप्यमिति चेत् ।
२०. स्यादर्थान्तरेष्वनिष्पत्तेर्यथा पाके ।
२१. शब्दानाञ्च सामञ्जस्यम् ।

॥ इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. उक्तं क्रियाभिधानं तच्छ्रुतावन्यत्र विधिप्रदेशः स्यात् ।
२. अपूर्वे वापि भागित्वात् ।
३. नाम्नस्त्वौत्पत्तिकत्वात् ।
४. प्रत्यक्षाद् गुणसंयोगात् क्रियाभिधानं स्यात् तदभावेऽप्रसिद्धं स्यात् ।
५. अपि वा सत्रकर्मणि गुणार्थैषा श्रुतिः स्यात् ।
६. विश्वजिति सर्वपृष्ठे तत्पूर्वकत्वात् ज्योतिष्टोमिकानि पृष्ठानि अस्ति च पृष्ठशब्दः ।
७. षडहाद्वा तत्र हि चोदनाः ।
८. लिङ्गाच्च ।
९. उत्पन्नाधिकारो ज्योतिष्टोमः ।
१०. द्वयोर्विधिरिति चेत् ।
११. न व्यर्थत्वात्सर्वशब्दस्य ।
१२. तथावभृथः सोमात् ।
१३. प्रकृतेरिति चेत् ।
१४. न भक्तित्वात् ।
१५. लिङ्गदर्शनाच्च ।

१६. द्रव्यादेशे तद्द्रव्यं श्रुतिसंयागात् पुरोडाशस्त्वनादेशे तत्प्रकृतित्वात्।
१७. गुणविधिस्तु न गृह्णीयात् समत्वात्।
१८. निर्मन्थ्यादिषु चैवम्।
१९. प्रणयनं तु सौमिकमवाच्यं हीतरत्।
२०. उत्तरवेदिप्रतिषेधश्च तद्वत्।
२१. प्राकृतं वाऽनामत्वात्।
२२. परिसङ्ख्यार्थं श्रवणं गुणार्थमर्थवादो वा
२३. प्रथमोत्तमयोः प्रणयनमुत्तरवेदिविप्रतिषेधात्।
२४. मध्यमयोर्वा गत्यर्थवादात्।
२५. औत्तरवेदिकोऽनारभ्यवादप्रतिषेधः ।
२६. स्वरसामैककपालामिक्षं च लिङ्गदर्शनात्।
२७. चोदनासामान्याद्वा।
२८. कर्मजे कर्म यूपवत्।
२९. रूपं वाऽशेषभूतत्वात्।
३०. विशये लौकिकं स्यात्, सर्वार्थत्वात्।
३१. न वैदिकमर्थनिर्देशात्।
३२. तथोत्पत्तिरितरेषां समत्वात्।
३३. संस्कृतं स्यात् तच्छब्दत्वात्।
३४. भक्त्या वाऽयज्ञशेषत्वाद् गुणानामभिधानत्वाद्।
३५. कर्मणः पृष्ठशब्दः स्यात् तथाभूतोपदेशात्।
३६. अभिधानोपदेशाद्वा विप्रतिषेधात् द्रव्येषु पृष्ठशब्दः स्यात्।

॥ इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. इति कर्तव्यताविधेर्यजतेः पूर्ववत्त्वम्।
२. स लौकिकः स्याद् दृष्टप्रवृत्तित्वात्।
३. वचनात्तु ततोऽन्यत्वम्।
४. लिङ्गेन वा नियम्येत लिङ्गस्य तद् गुणत्वात्।
५. अपि वाऽन्यायपूर्वत्वाद्यत्र नित्यानुवादवचनानि स्युः।
६. मिथोविप्रतिषेधाच्च गुणानां यथार्थकल्पना स्यात्।
७. भागित्वात्तु नियम्येत गुणानामभिधानत्वा-त्सम्बन्धादभिधानवद् यथा धेनुः किशोरेण।

८. उत्पत्तीनां समत्वाद्वा यथाधिकारं भावः स्यात् ।
९. उत्पत्तिशेषवचनं च विप्रतिषिद्धमेकस्मिन् ।
१०. विध्यन्तो वा प्रकृतिवच्चोदनायां प्रवर्तेत, तथा हि लिङ्गदर्शनम् ।
११. लिङ्गहेतुत्वादलिङ्गे लौकिकं स्यात् ।
१२. लिङ्गस्य पूर्ववत्त्वाच्चोदनाशब्दसामान्यादेकेनापि निरूप्येत यथा स्थालीपुलाकेन ।
१३. द्वादशाहिकमहर्गणे तत्प्रकृतित्वादैकाहिकमधिकागमात्तदाख्यं स्यादेकाहवत्।
१४. लिङ्गाच्च ।
१५. न वा क्रत्वभिधानादधिकानामशब्दत्वम् ।
१६. लिङ्गं सङ्घातधर्मः स्यात्तदर्थापत्तेर्द्रव्यवत् ।
१७. न वार्थधर्मत्वात् सङ्घातस्य गुणत्वात् ।
१८. अर्थापत्तेर्द्रव्येषु धर्मलाभः स्यात् ।
१९. प्रवृत्त्या नियतस्य लिङ्गदर्शनम् ।
२०. विहारदर्शनं विशिष्टस्यानारभ्यवादानां प्रकृत्यर्थत्वात् ।

॥ इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथ विशेषलक्षणम् ।
२. यस्य लिङ्गमर्थसंयोगादभिधानवत् ।
३. प्रवृत्तित्वादिष्टेः सोमे प्रवृत्तिः स्यात् ।
४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५. कृत्स्नविधानाद्वाऽपूर्वत्वम् ।
६. स्रुगभिधारणाभावस्य च नित्यानुवादात्
७. विधिरिति चेत् ।
८. न वाक्यशेषत्वात् ।
९. शङ्कते चानुपोषणात् ।
१०. दर्शनमैष्टिकानां स्यात् ।
११. इष्टिषु दर्शपूर्णमासयोः प्रवृत्तिः स्यात् ।
१२. पशौ च लिङ्गदर्शनात् ।
१३. दैक्षस्य चेतरेषु ।

१४. ऐकादशिनेषु सौत्यस्य द्वैरशन्यस्य दर्शनात् ।

१५. तत्प्रवृत्तिर्गणेषु स्यात् प्रतिपशु यूपदर्शनात् ।

१६. अव्यक्तासु तु सोमस्य ।

१७. गणेषु द्वादशाहस्य ।

१८. गव्यस्य च तदादिषु ।

१९. निकायिनां च पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यात् ।

२०. कर्मणस्त्वप्रवृत्तित्वात्फलनियमकर्तृसमुदायस्यानन्वयस्तद्बन्धनत्वात् ।

२१. प्रवृत्तौ चापि तादर्थ्यात् ।

२२. अश्रुतित्वाच्च ।

२३. गुणकामेष्वाश्रितत्वात् प्रवृत्तिः स्यात् ।

२४. निवृत्तिर्वा कर्मभेदात् एकार्थ्याद्वा नियम्येत पूर्ववत्त्वाद् विकारो ।

२५. अपि वाऽतद्विकारत्वात् क्रत्वर्थत्वात् प्रवृत्तिः स्यात् ।

२६. एककर्मणि विकल्पोऽविभागो हि चोदनैकत्वात् ।

२७. लिङ्गसाधारण्याद्विकल्पः स्यात् ।

२८. ऐकार्थ्याद्वा नियम्येत पूर्ववत्त्वाद् विकारो हि ।

२९. अश्रुतित्वान्नेति चेत् ।

३०. स्याल्लिङ्गभावात् ।

३१. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

३२. विप्रतिपत्तौ हविषा नियम्येत कर्मणस्तदुपास्यत्वात् ।

३३. तेन च कर्मसंयोगात् ।

३४. गुणत्वेन देवताश्रुतिः ।

३५. हिरण्यमाज्यधर्मः तेजस्त्वात् ।

३६. धर्मानुग्रहाच्च ।

३७. औषधं वा विशदत्वात् ।

३८. चरुशब्दाच्च ।

३९. तस्मिंश्च श्रपणश्रुतेः ।

४०. मधूदके द्रव्यसामान्यात् पयोविकारः स्यात् ।

४१. आज्यं वा वर्णसामान्यात् ।

४२. धर्मानुग्रहाच्च ।

४३. पूर्वस्य चाविशिष्टत्वात् ।

॥ इति अष्टमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. वाजिनेषु सोमपूर्वत्वं सौत्रामण्यां च ग्रहेषु ताच्छब्द्यात् ।
२. अनुवषट्काराच्च ।
३. समुपहूय भक्षणाच्च ।
४. क्रयणश्रपणपुरोरुगुपयामग्रहणासादनवासोपनहनञ्च तद्वत् ।
५. हविषा वा नियम्येत तद्विकारत्वात् ।
६. प्रशंसा सोमशब्दः ।
७. वचनानीतराणि ।
८. व्यपदेशश्च तद्वत् ।
९. पशुपुरोडाशस्य च लिङ्गदर्शनम् ।
१०. पशुः पुरोडाशविकारः स्याद् देवतासामान्यात् ।
११. प्रोक्षणाच्च ।
१२. पर्य्यग्निकरणाच्च ।
१३. सान्नाय्यं वा तत्प्रभवत्वात् ।
१४. तस्य च पात्रदर्शनात् ।
१५. दध्नः स्यान्मूर्तिसामान्यात् ।
१६. पयो वा कालसामान्यात् ।
१७. पश्चानन्तर्यात् ।
१८. द्रव्यत्वं चाविशिष्टम् ।
१९. आमिक्षोभयभाव्यत्वादुभयविकारः स्यात् ।
२०. एकं वा चोदनैकत्वात् ।
२१. दधिसङ्घातसामान्यात् ।
२२. पयो वा तत्प्रधानत्वाल्लोकवद् दध्नस्तदर्थत्वात् ।
२३. धर्मानुग्रहाच्च ।
२४. सत्रमहीनश्च द्वादशाहस्तस्योभयथा प्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।
२५. अपि वा यजतिश्रुतेरहीनभूतप्रवृत्तिः स्यात्प्रकृत्या तुल्यशब्दत्वात् ।
२६. द्विरात्रादीनामैकादशरात्रादहीनत्वं यजतिचोदनात् ।
२७. त्रयोदशरात्रादिषु सत्रभूतस्तेष्वासनोपायिचोदनात् ।
२८. लिङ्गाच्च ।
२९. अन्यतरतोऽतिरात्रत्वात् पञ्चदशरात्रस्याहीनत्वं कुण्डपायिनामयनस्य च तद्भूतेष्वहीनत्वस्य दर्शनात् ।

३०. अहीनवचनाच्च ।

३१. सत्रे वोपायिचोदनात् ।

३२. सत्रलिङ्गञ्च दर्शयति ।

॥ इति अष्टमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. हविर्गणे परमुत्तरस्य देशसामान्यात् ।

२. देवतया वा नियम्येत शब्दवत्त्वादितरस्याश्रुतित्वात् ।

३. गणचोदनायां यस्य लिङ्गं तदावृत्तिः प्रतीयेताग्नेयवत् ।

४. नानाहानि वा सङ्घातत्वात् प्रवृत्तिलिङ्गेन चोदनात् ।

५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

६. कालाभ्यासे च बादरिः कर्मभेदात् ।

७. तदावृत्तिं तु जैमिनिरह्नामप्रत्यक्षसंख्यत्वात् ।

८. संस्थागणेषु तदभ्यासः प्रतीयेत कृतलक्षणग्रहणात् ।

९. अधिकाराद्वा प्रकृतिस्तद्विशिष्टा स्यादभिधानस्य तन्निमित्तत्वात् ।

१०. गणादुपचयस्तत्प्रकृतित्वात् ।

११. एकाहाद्वा तेषां समत्वात् स्यात् ।

१२. गायत्रीषु प्रकृतीनामवच्छेदः प्रकृत्यधिकारात् संख्यात्वादग्निष्टोमवदव्यतिरेकात्तदाख्यत्वम् ।

१३. तन्नित्यवच्च पृथक्सतीषु तद्वचनम् ।

१४. न विंशतौ दशेति चेत् ।

१५. एकसङ्ख्यमेव स्यात् ।

१६. गुणाद्वा द्रव्यशब्दः स्यादसर्वविषयत्वात् ।

१७. गोत्ववच्च समन्वयः ।

१८. सङ्ख्यायाश्च शब्दवत्त्वात् ।

१९. इतरस्याश्रुतित्वाच्च ।

२०. द्रव्यान्तरे निवेशादुक्थ्यलोपैर्विशिष्टं स्यात् ।

२१. अशास्त्रलक्षणत्वाच्च ।

२२. उत्पत्तिनामधेयत्वाद् भक्त्या पृथक्सतीषु स्यात् ।

२३. वचनमिति चेत् ।

२४. यावदुक्तम् ।

२५. अपूर्वे च विकल्पः स्याद्यदि सङ्ख्याविधानम् ।
२६. ऋग्गुणत्वान्नेति चेत् ।
२७. तथा पूर्ववति स्यात् ।
२८. गुणावेशश्च सर्वत्र ।
२९. निष्पन्नग्रहणान्नेति चेत् ।
३०. तथेहापि स्यात् ।
३१. यदि वाऽविषये नियमः प्रकृत्युपबन्धाच्छब्देष्वपि प्रसिद्धः स्यात् ।
३२. दृष्टः प्रयोग इति चेत् ।
३३. तथा शरेष्वपि ।
३४. भक्त्येति चेत् ।
३५. तथेतरस्मिन् ।
३६. अर्थस्य चासमाप्तत्वात् न तासामेकदेशे स्यात् ।

॥ इति अष्टमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. दर्विहोमो यज्ञाभिधानं होमसंयोगात् ।
२. स लौकिकानां स्यात् कर्तृस्तदाख्यत्वात् ।
३. सर्वेषां वा दर्शनाद्वास्तुहोमे ।
४. जुहोतिचोदनायां वा तत्संयोगात् ।
५. द्रव्योपदेशाद्वा गुणाभिधानं स्यात् ।
६. न लौकिकानामाचारग्रहणत्वाच्छब्दवतां चान्यार्थविधानात् ।
७. दर्शनाच्चान्यपात्रस्य ।
८. तथाग्निहविषोः ।
९. उक्तश्चार्थसम्बन्धः ।
१०. तस्मिन् सोमः प्रवर्तेताव्यक्तत्वात् ।
११. न वा स्वाहाकारेण संयोगाद्वषट्कारस्य च निर्देशात्तन्त्रे तेन विप्रतिषेधात् ।
१२. शब्दान्तरत्वात् ।
१३. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१४. उत्तरार्थस्तु स्वाहाकारो यथा साप्तदस्यं तत्राविप्रतिषिद्धा पुनः प्रवृत्ति-लिङ्गदर्शनात् पशुवत् ।
१५. अनुत्तरार्थो वाऽर्थवत्त्वादानर्थक्याद्धि प्राथम्यस्योपरोधः स्यात् ।

१६. न प्रकृतावपीति चेत् ।
१७. उक्तं समवाये पारदौर्बल्यम् ।
१८. तच्चोदना वेष्टेः प्रवृत्तित्वाद्विधिः स्यात् ।
१९. शब्दसामर्थ्याच्च ।
२०. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२१. तत्राभावस्य हेतुत्वात्, गुणार्थे स्याददर्शनम् ।
२२. विधिरिति चेत् ।
२३. न वाक्यशेषत्वात् गुणार्थे च समाधानं नानात्वेनोपपद्यते ।
२४. येषां वाऽपरयोर्होमस्तेषां स्यादविरोधात्।
२५. तत्रौषधानि चोद्यन्ते, तानि स्थानेन गम्येरन् ।
२६. लिङ्गाद्वा शेषहोमयोः ।
२७. प्रतिपत्ती तु ते भवतस्तस्मादतद्विकारत्वम् ।
२८. सन्निपाते विरोधिनामप्रवृत्तिः प्रतीयेत, विध्युत्पत्तिव्यवस्थानादर्थस्यापरिणेयत्वात् वचनादतिदेशः स्यात् ।

॥ इति अष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः अष्टमाध्यायश्च ॥

अथ नवमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. यज्ञकर्म प्रधानं, तद्धि चोदनाभूतं, तस्य द्रव्येषु संस्कारस्तत्प्रयुक्तस्तदर्थत्वात् ।
२. संस्कारे युज्यमानानां, तादर्थ्यात्तत्प्रयुक्तं स्यात् ।
३. तेन त्वर्थेन यज्ञस्य संयोगाद् धर्मसम्बन्धस्तस्माद्यज्ञप्रयुक्तं स्यात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
४. फलदेवतयोश्च ।
५. न चोदनातो हि ताद्गुण्यम् ।
६ देवता वा प्रयोजयेदतिथिवद् भोजनस्य तदर्थत्वात् ।
७. आर्थपत्याच्च ।
८. ततश्च तेन सम्बन्धः ।
९. अपि वा शब्दपूर्वत्वाद्यज्ञकर्म प्रधानं स्याद् गुणत्वे देवताश्रुतिः ।
१०. अतिथौ तत्प्रधानत्वमभावः कर्मणि स्यात्तस्य प्रीतिप्रधानत्वात् ।
११. द्रव्यसङ्ख्याहेतुसमुदायं वा श्रुतिसंयोगात् ।

१२. अर्थकारिते च द्रव्येण न व्यवस्था स्यात् ।
१३. अर्थो वा स्यात्प्रयोजनमितिरेषामचोदनात्तस्य च गुणभूतत्वात् ।
१४. अपूर्वत्वाद्व्यवस्था स्यात् ।
१५. तत्प्रयुक्तत्वं च धर्मस्य सर्वविषयत्वम् ।
१६. तद्युक्तस्येति चेत् ।
१७. न अश्रुतित्वात् ।
१८. अधिकारादिति चेत् ।
१९. तुल्येषु नाधिकारः स्यादचोदितश्च सम्बन्धः, पृथक् सतां यज्ञार्थेनाभिसम्बन्धस्तस्माद्यज्ञप्रयोजनम् ।
२०. देशबद्धमुपांशुत्वं तेषां स्यात् श्रुतिनिर्देशात्तस्य च तत्र भावात् ।
२१. यज्ञस्य वा तत्संयोगात् ।
२२. अनुवादश्च तदर्थवत् ।
२३. प्रणीतादि तथेति चेत् ।
२४. न यज्ञस्याश्रुतित्वात् ।
२५. तद्देशानां वा सङ्घातस्याचोदितत्वात् ।
२६. अग्निधर्मः प्रतीष्टकं सङ्घातात्पौर्णमासीवत् ।
२७. अग्नेर्वा स्याद् द्रव्यैकत्वादितरासां तदर्थत्वात् ।
२८. चोदनासमुदायात्तु पौर्णमास्यां तथा स्यात् ।
२९. पत्नीसंयाजान्तत्वं सर्वेषामविशेषात् ।
३०. लिङ्गाद्वा प्रागुत्तमात् ।
३१. अनुवादो वा दीक्षा यथा नक्तं संस्थापनस्य ।
३२. स्याद्वाऽनारभ्य विधानादन्ते लिङ्गविरोधात् ।
३३. अभ्यासः सामिधेनीनां प्राथम्यात् स्थानधर्मः स्यात् ।
३४. इष्ट्यावृत्तौ प्रयाजवदावर्तेतारम्भणीया ।
३५. सकृद्वाऽऽरम्भसंयोगात् एकः, पुनरारम्भो यावज्जीवप्रयोगात् ।
३६. अर्थाभिधानसंयोगान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात्तत्राचोदितमप्राप्तम्, चोदिताभिधानात् ।
३७. ततश्चावचनं तेषामितरार्थं प्रयुज्यते ।
३८. गुणशब्दस्तथेति चेत् ।
३९. न समवायात् ।

४०. चोदिते तु परार्थत्वाद्विधिवदविकारः स्यात् ।
४१. विकारस्तत्प्रधाने स्यात् ।
४२. असंयोगात्तदर्थेषु तद्विशिष्टं प्रतीयेत ।
४३. कर्माभावादेवमिति चेत् ।
४४. न परार्थत्वात् ।
४५. लिङ्गविशेषनिर्देशात् समानविधानेष्वप्राप्ता सारस्वती स्त्रीत्वात् ।
४६. पश्वभिधानाद्वा, तद्धि चोदनाभूतं पुंविषयं, पुनः पशुत्वम् ।
४७. विशेषो वा तदर्थनिर्देशात् ।
४८. पशुत्वं चैकशब्द्यात् ।
४९. यथोक्तं वा सन्निधानात् ।
५०. आम्नातादन्यदधिकारे वचनाद्विकारः स्यात् ।
५१. द्वैधं वा तुल्यहेतुत्वात् सामान्याद्विकल्पः स्यात् ।
५२. उपदेशाच्च साम्नः ।
५३. नियमो वा श्रुतिविशेषादितरत् साप्तदश्यवत् ।
५४. अप्रमाणाच्छब्दान्यत्वे तथाभूतोपदेशः स्यात् ।
५५. यत्स्थाने वा तद्गीतिः स्यात् पदान्यत्वप्रधानत्वात् ।
५६. गानसंयोगाच्च ।
५७. वचनमिति चेत् ।
५८. न तत्प्रधानत्वात् ।

॥ इति नवमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सामानि मन्त्रमेके स्मृत्युपदेशाभ्याम् ।
२. तदुक्तदोषम् ।
३. कर्म वा विधिलक्षणम् ।
४. तादृग्द्रव्यं वचनात् पाकयज्ञवत् ।
५. तत्राविप्रतिषिद्धो द्रव्यान्तरे व्यतिरेकः प्रदेशश्च ।
६. शब्दार्थत्वात्तु नैवं स्यात् ।
७. परार्थत्वाच्च शब्दानाम् ।
८. असम्बन्धश्च कर्मणा शब्दयोः पृथगर्थत्वात् ।
९. संस्कारश्चाप्रकरणेऽग्निवत् स्यात् प्रयुक्तत्वात् ।

१०. अकार्यत्वाच्च शब्दानामप्रयोगः प्रतीयेत
११. आश्रितत्वाच्च ।
१२. प्रयुज्यत इति चेत् ।
१३. ग्रहणार्थं प्रयुज्यते ।
१४. तृचे स्यात् श्रुतिनिर्देशात् ।
१५. शब्दार्थत्वाद्विकारस्य ।
१६. दर्शयति च ।
१७. वाक्यानां तु विभक्तत्वात् प्रतिशब्दं समाप्तिः स्यात्, संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।
१८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
१९. अनवानोपदेशश्च तद्वत् ।
२०. अभ्यासेनेतरा श्रुतिः ।
२१. तदभ्यासः समासः स्यात् ।
२२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२३. नैमित्तिकं तूत्तरात्वमानन्तर्यात् प्रतीयेत ।
२४. ऐकार्थ्याच्च तदभ्यासः ।
२५. प्रागाथिकं तु ।
२६. स्वे च ।
२७. प्रगाथे च ।
२८. लिङ्गदर्शनाव्यतिरेकाच्च ।
२९. अर्थैकत्वाद् विकल्पः स्यात् ।
३०. अर्थैकत्वाद्विकल्पः स्याद्, ऋक्सामयोस्तदर्थत्वात् ।
३१. वचनाद्विनियोगः स्यात् ।
३२. सामप्रदेशे विकारस्तदपेक्षः स्याच्छास्त्रकृतत्वात् ।
३३. वर्णे तु बादरिर्यथाद्रव्यं द्रव्यव्यतिरेकात्
३४. स्तोभस्यैके द्रव्यान्तरे निवृतिमृग्वत् ।
३५. सर्वातिदेशस्तु सामान्याल्लोकवद्विकारः स्यात् ।
३६. अन्वयश्चापि दर्शयति ।
३७. निवृत्तिर्वाऽर्थलोपात् ।
३८. अन्वयो वार्थवादः स्यात् ।

३९. अधिकञ्च विवर्णञ्च जैमिनिः स्तोभशब्दत्वात्।

४०. धर्मस्यार्थकृतत्वाद् द्रव्यगुणविकारव्यतिक्रमप्रतिषेधे चोदनानुबन्ध समवायात्।

४१. तदुत्पत्तेस्तु निवृत्तिस्तत्कृतत्वात् स्यात्।

४२. आवेश्येरन्वार्थवत्वात्संस्कारस्य तदर्थत्वात्।

४३. आख्या चैवं तदावेशाद् विकृतौ स्यादपूर्वत्वात्।

४४. परार्थे न त्वर्थसामान्यं संस्कारस्य तदर्थत्वात्।

४५. क्रियेरन् वार्थनिर्वृत्तेः।

४६. एकार्थत्वादविभागः स्यात्।

४७. निर्देशाद्वा व्यवतिष्ठेरन्।

४८. अप्राकृते तद्विकाराद्विरोधाद् व्यवतिष्ठेरन्।

४९. उभयसाम्नि चैवमेकार्थापत्तेः।

५०. स्वार्थत्वाद्वा व्यवस्था स्यात् प्रकृतिवत्।

५१. पार्वणहोमयोस्त्वप्रवृत्तिः समुदायार्थसंयोगात्तदभीज्या हि।

५२. कालस्येति चेत्।

५३. न अप्रकरणत्वात्।

५४. मन्त्रवर्णाच्च।

५५. तदभावेऽग्निवदिति चेत्।

५६. न आधिकारिकत्वात्।

५७. उभयोरविशेषात्।

५८. यदभीज्या वा तद्विषयौ।

५९. प्रयाजेऽपीति चेत्।

६०. न अचोदितत्वात्।

॥ इति नवमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. प्रकृतौ यथोत्पत्तिवचनमर्थानां तथोत्तरस्यां ततौ तत्कृतित्वादर्थे चाकार्यत्वात्।

२. लिङ्गदर्शनाच्च।

३. जातिर्नैमित्तिकं यथास्थानम्।

४. अविकारमेकेऽनार्षत्वात्।

५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
६. विकारो वा तदुक्तहेतुः ।
७. लिङ्गं मन्त्रचिकीर्षार्थम् ।
८. नियमो वोभयभागित्वात् ।
९. लौकिके दोषसंयोगादपवृक्ते हि चोद्यते, निमित्तेन प्रकृतौ स्यादभागित्वात् ।
१०. अन्यायस्त्वविकारेणादृष्टप्रतिघातित्वादविशेषाच्च तेनास्य ।
११. विकारो वा तदर्थत्वात् ।
१२. अपि त्वन्यायसम्बन्धात् प्रकृतिवत् परेष्वपि यथार्थं स्यात् ।
१३. यथार्थं त्वन्यायस्याचोदितत्वात् ।
१४. छन्दसि तु यथादृष्टम् ।
१५. विप्रतिपत्तौ विकल्पः स्यात् समत्वाद्, गुणे त्वन्यायकल्पनैकदेशत्वात् ।
१६. प्रकरणविशेषाच्च ।
१७. अर्थाभावात्तु नैवं स्याद् गुणमात्रमितरत्
१८. द्यावोस्तथेति चेत् ।
१९. न उत्पत्तिशब्दत्वात् ।
२०. अपूर्वे त्वविकारोऽप्रदेशात् प्रतीयेत ।
२१. विकृतौ चापि तद्वचनात् ।
२२. अध्रिगुः सवनीयेषु तद्वत्समानविधानाश्चेत् ।
२३. प्रतिनिधौ चाविकारात् ।
२४. अनाम्नानादशब्दत्वमभावाच्चेतरस्य स्यात् ।
२५. तादर्थ्याद्वा तदाख्यं स्यात् संस्कारैरविशिष्टत्वात् ।
२६. उक्तञ्च तत्त्वमस्य ।
२७. संसर्गिषु चार्थस्यास्थितपरिमाणत्वात् ।
२८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२९. एकधेत्येकसंयोगादभ्यासेनाभिधानं स्यात् ।
३०. अविकारो वा बहूनामेककर्मवत् ।
३१. सकृत्त्वं त्वैकध्यं स्यादेकत्वात्त्वचोऽनभिप्रेतं तत्प्रकृतित्वात् परेष्वभ्यासेनैवं विवृद्धावभिधानं स्यात् ।
३२. मेधपतित्वं स्वामिदेवतस्य समवायात् सर्वत्र च प्रयुक्तत्वात्तस्यान्यायनिगदत्वात् सर्वत्रैवाविकारः स्यात् ।

३३. अपि वा द्विसमवायोऽर्थान्यत्वे यथासंख्यं प्रयोगः स्यात् ।
३४. स्वामिनो वैकशब्द्यादुत्कर्षो देवतायां स्यात्पत्न्यां द्वितीयशब्दः स्यात् ।
३५. देवता तु तदाशीष्ट्वान् सम्प्राप्तत्वात् स्वामिन्यनर्थिका स्यात् ।
३६. उत्सर्गाच्च भक्त्या तस्मिन् पतित्वं स्यात् ।
३७. उत्कृष्येतैकसंयुक्तो द्विदेवते सम्भवात् ।
३८. एकस्तु समवायात् तस्य तल्लक्षणत्वात् ।
३९. संसर्गित्वाच्च तस्मात् तेन विकल्पः स्यात् ।
४०. एकत्वेऽपि गुणानपायात् ।
४१. नियमो वा बहुदेवते विकारः स्यात् ।
४२. विकल्पो वा प्रकृतिवत् ।
४३. अर्थान्तरे विकारः स्याद् देवतापृथक्त्वादेकाभिसमवायात् स्यात् ।

॥ इति नवमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. षड्विंशतिरभ्यासेन पशुगणे, तत्प्रकृतित्वाद् गुणस्य, प्रविभक्तत्वादविकारो हि तासामकात्स्न्यैंनाभिसम्बन्धो विकारान्न समासः स्यादसंयोगाच्च सर्वाभिः ।
२. अभ्यासेऽपि तथेति चेत् ।
३. न गुणादर्थकृतत्वाच्च ।
४. समासेऽपि तथेति चेत् ।
५. न असम्भवात् ।
६. स्वाभिश्च वचनं प्रकृत्तौ तथेह स्यात् ।
७. वङ्क्रीणा तु प्रधानत्वात् समासेनाभिधानं स्यात् प्राधान्यमध्रिगोस्तदर्थत्वात् ।
८. तासां च कृत्स्नवचनात् ।
९. अपि त्वसन्निपातित्वात् पत्नीवदाम्नातेनाभिधानं स्यात् ।
१०. विकारस्तु प्रदेशत्वाद्यजमानवत् ।
११. अपूर्वत्वात्तथा पत्न्याम् ।
१२. आम्नातस्त्वविकारात् सङ्ख्यासु सर्वगामित्वात् ।
१३. सङ्ख्या त्वेवं प्रधानं स्याद्वङ्क्रयः पुनः प्रधानम् ।
१४. अनाम्नातवचनमवचनेन हि वङ्क्रीनां स्यान्निर्देशः ।

१५. अभ्यासो वाऽविकारात् स्यात् ।

१६. पशुस्त्वेवं प्रधानं स्यादभ्यासस्य तन्निमित्तत्वात् तस्मात्समासशब्दः स्यात् ।

१७. अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् तस्य वचनाद् वैशेषिकम् ।

१८. तत् प्रतिषिध्य प्रकृतिर्नियुज्यते सा चतुस्त्रिंशद्वाच्यत्वात् ।

१९. ऋग्वा स्यादाम्नातत्वादविकल्पश्च न्याय्यः ।

२०. तस्यां तु वचनादैरवत् पदविकारः स्यात् ।

२१. सर्वप्रतिषेधो वाऽसंयोगात् पदेन स्यात् ।

२२. वनिष्ठुसन्निधानादुरूकेण वपाभिधानम् ।

२३. प्रशंसाऽस्यभिधानम् ।

२४. बाहुप्रशंसा वा ।

२५. श्येनशलाकश्यपकवषस्रेकपर्णेष्वाकृतिवचनं प्रसिद्धसन्निधानात् ।

२६. कार्त्स्न्यं वा स्यात्तथाभावात् ।

२७. अध्रिगोश्च तदर्थत्वात् ।

२८. प्रासङ्गिके प्रायश्चित्तं न विद्यते परार्थत्वात्तदर्थे हि विधीयते ।

२९. धारणे च परार्थत्वात् ।

३०. क्रियार्थत्वादितरेषु कर्म स्यात् ।

३१. न तूत्पन्ने यस्य चोदनाऽप्राप्तकालत्वात् ।

३२. प्रदानदर्शनं श्रपणे तद्धर्मभोजनार्थत्वात् संसर्गाच्च मधूदकवत् ।

३३. संस्कारप्रतिषेधश्च तद्वत् ।

३४. तत्प्रतिषेधे च तथाभूतस्य वर्जनात् ।

३५. अधर्मत्वमप्रदानात् प्रणीतार्थे विधानादतुल्यत्वादसंसर्गः ।

३६. परो नित्यानुवादः स्यात् ।

३७. विहितप्रतिषेधो वा ।

३८. वर्जने गुणभावित्वात् तदुक्तप्रतिषेधात् स्यात् कारणात् केवलाशनम् ।

३९. व्रतधर्माच्च लेपवत् ।

४०. रसप्रतिषेधो वा पुरुषधर्मत्वात् ।

४१. अभ्युदये दोहापनयः सधर्मा स्यात् प्रवृत्तत्वात् ।

४२. श्रुतोपदेशाच्च ।

४३. अपनयो वार्थान्तरे विमानाच्चरुपयोवत्

४४. लक्षणार्था श्रृतश्रुतिः ।

४५. श्रयणानां तत्पूर्वत्वात्प्रदानार्थे विधानं स्यात् ।
४६. गुणो वा श्रपणार्थत्वात् ।
४७. अनिर्देशाच्च ।
४८. श्रुतेश्च तत्प्रधानत्वात् ।
४९. अर्थवादश्च तदर्थवत् ।
५०. संस्कारं प्रति भावाच्च तस्मादथ प्रधानं स्यात् ।
५१. पर्यग्निकृतानामुत्सर्गे तादर्थ्यमुपधानवत्।
५२. शेषप्रतिषेधो वाऽर्थाभावादिडान्तवत् ।
५३. पूववत्त्वाच्च शब्दस्य संस्थापयतीति चाप्रवृत्ते नोपपद्यते ।
५४. प्रवृत्तेर्यज्ञहेतुत्वात् प्रतिषेधे संस्काराणामकर्म स्यात् तत्कारितत्वाद् यथा प्रयाजप्रतिषेधे ग्रहणमाज्यस्य ।
५५. क्रिया वा स्यादवच्छेदादकर्म सर्वहानं स्यात् ।
५६. आज्यसंस्थाने प्रतिनिधिः स्यात् द्रव्योत्सर्गात् ।
५७. समाप्तिवचनात् ।
५८. चोदना वा कर्मोत्सर्गादन्यैः स्यादविशिष्टत्वात् ।
५९. अनिज्यां च वनस्पतेः प्रसिद्धां तेन दर्शयति ।
६०. संख्या तद्देवतात्वात् स्यात् ।

॥ इति नवमाध्यायस्य चतुर्थः पादः नवमोऽध्यायश्च ॥

अथ दशमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. विधेः प्रकरणान्तरेऽतिदेशात् सर्वकर्म स्यात् ।
२. अपि वाऽभिधानसंस्कारद्रव्यमर्थे क्रियते तादर्थ्यात् ।
३. तेषामप्रत्यक्षविशिष्टत्वात् ।
४. इष्टिरारम्भसंयोगादङ्गभूतान्निवर्तेतारम्भस्य प्रधानसंयोगात् ।
५. प्रधानाच्चान्यसंयुक्तात् सर्वारम्भान्निवर्तेतानङ्गत्वात् ।
६. तस्यां तु स्यात् प्रयाजवत् ।
७. न वाङ्गभूतत्वात् ।
८. एकवाक्यत्वाच्च ।
९. कर्म च द्रव्यसंयोगार्थमर्थाभावान्निवर्तेत तादर्थ्यं श्रुतिसंयोगात् ।
१०. स्थाणौ तु देशमात्रत्वादनिवृत्तिः प्रतीयेत ।

११. अपि वा शेषभूतत्वात् तत्संस्कारः प्रतीयेत ।
१२. समाख्यानं च तद्वत् ।
१३. मन्त्रवर्णश्च तद्वत् ।
१४. प्रयाजे च तन्न्यायत्वात् ।
१५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१६. तथाज्यभागाग्निरपीति चेत् ।
१७. व्यपदेशाद् देवतान्तरम् ।
१८. समत्वाच्च ।
१९. पशावपीति चेत् ।
२०. न तद्भूतवचनात् ।
२१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२२. गुणो वा स्यात् कपालवद् गुणभूतविकाराच्च ।
२३. अपि वा शेषभूतत्वात्संस्कारः प्रतीयेत, स्वाहाकारवदङ्गानामर्थसंयोगात् ।
२४. वृद्धवचनं च विप्रतिपत्तौ तदर्थत्वात् ।
२५. गुणेऽपीति चेत् ।
२६. नासंहानात् कपालवत् ।
२७. ग्रहाणाञ्च सम्प्रतिपत्तौ तद्वचनं तदर्थत्वात् ।
२८. ग्रहाभावे च तद्वचनम् ।
२९. देवतायाश्च हेतुत्वं प्रसिद्धं तेन दर्शयति ।
३०. अविरुद्धोपपत्तिरर्थापत्तेः श्रृतवत् गुणभूतविकारः स्यात् ।
३१. स द्व्यर्थः स्यादुभयोः श्रुतिभूतत्वाद्विप्रतिपत्तौ तादर्थ्याद्विकारत्वमुक्तं तस्यार्थवादत्वम् ।
३२. विप्रतिपत्तौ तासामाख्याविकारः स्यात् ।
३३. अभ्यासो वा प्रयाजवदेकदेशोऽन्यदेवत्यः ।
३४. चरुर्हविर्विकारः स्यादिज्यासंयोगात् ।
३५. प्रसिद्धग्रहणत्वाच्च ।
३६. ओदनो वाऽन्नसंयोगात् ।
३७. न द्व्यर्थत्वात् ।
३८. कपालविकारो वा विषयेऽर्थोपपत्तिभ्याम् ।

३९. गुणमुख्यविशेषाच्च ।
४०. तच्छ्रुतौ चान्यहविष्ट्वात् ।
४१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
४२. ओदनो वा प्रयुक्तत्वात् ।
४३. अपूर्वव्यपदेशाच्च ।
४४. तथा च लिङ्गदर्शनम् ।
४५. स कपाले प्रकृत्या स्यादन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।
४६. एकस्मिन् वा विप्रतिषेधात् ।
४७. न वाऽर्थान्तरसंयोगादपूपे, पाकसंयुक्तं धारणार्थं चरौ भवति, तत्रार्थात् पात्रलाभः स्यादनियमोऽविशेषात् ।
४८. चरौ वा लिङ्गदर्शनात् ।
४९. तस्मिन् पेषणमर्थलोपात् स्यात् ।
५०. अक्रिया वा अपूपहेतुत्वात् ।
५१. पिण्डार्थत्वाच्च संयवनम् ।
५२. संवपनञ्च तादर्थ्यात् ।
५३. सन्तापनमधःश्रपणार्थत्वात् ।
५४. उपधानं च तादर्थ्यात् ।
५५. पृथुश्लक्ष्णे वाऽनपूपत्वात् ।
५६. अभ्यूहश्चोपरिपाकार्थत्वात् ।
५७. तथाऽज्वलनम् ।
५८. व्युद्धृत्यासादनं च प्रकृतावश्रुतित्वात् ।

॥ इति दशमाध्ययस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. कृष्णलेष्वर्थलोपादपाकः स्यात् ।
२. स्याद्वा प्रत्यक्षशिष्टत्वात् प्रदानवद् ।
३. उपस्तरणाभिधारणयोरमृतार्थत्वादकर्म स्यात् ।
४. क्रियेत वाऽर्थवादत्वात्तयोः संसर्गहेतुत्वात् ।
५. अकर्म वा चतुर्भिराप्तिवचनात् सह पूर्णं पुनश्चतुरवत्तम् ।
६. क्रिया वा मुख्यावदानपरिमाणात् सामान्यात् तद्गुणत्वम् ।
७. तेषां चैकावदानत्वात् ।

८. आप्तिः संख्यासमानत्वात् ।
९. सतोस्त्वाप्तिवचनं व्यर्थम् ।
१०. विकल्पस्त्वेकावदानत्वात् ।
११. सर्वविकारे त्वभ्यासानर्थक्यं हविषो हीतरस्य स्यादपि वा स्विष्टकृतः स्यादितरस्यान्याय्यत्वात् ।
१२. अकर्म वा संसर्गार्थनिवृत्तित्वात् तस्मादाप्तिसमर्थत्वम् ।
१३. भक्षाणां तु प्रीत्यर्थत्वादकर्म स्यात् ।
१४. स्याद्वा निर्द्धानदर्शनात् ।
१५. वचनं वाज्यभक्षस्य प्रकृतौ स्यादभागित्वात् ।
१६. वचनं वा हिरण्यस्य प्रदानवदाज्यस्य गुणभूतत्वात् ।
१७. एकधोपहारे सहत्वं ब्रह्मभक्षाणां प्रकृतौ व्याहृतत्वात् ।
१८. सर्वत्वं च तेषामधिकारात् स्यात् ।
१९. पुरुषापनयो वा तेषामवाच्यत्वात् ।
२०. पुरुषापनयात् स्वकालत्वम् ।
२१. एकार्थत्वादविभागःस्यात् ।
२२. ऋत्विग्दानं धर्ममात्रार्थं स्याद्ददातिसामर्थ्यात् ।
२३. परिक्रयार्थं वा कर्मसंयोगाल्लोकवत् ।
२४. दक्षिणायुक्तवचनाच्च ।
२५. न चाऽन्येनानम्येत परिक्रयात्, कर्मणः परार्थत्वात् ।
२६. परिक्रीतवचनाच्च ।
२७. सनिवन्येव भृतिवचनात् ।
२८. नैष्कर्तृकेण संस्तवाच्च ।
२९. शेषभक्षाश्च तद्वत् ।
३०. संस्कारो वा द्रव्यस्य परार्थत्वात् ।
३१. शेषे च समत्वात् ।
३२. स्वामिनि च दर्शनात् तत्सामान्यादितरेषां तथात्वम् ।
३३. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
३४. वरणमृत्विजामानमनार्थत्वात् सत्रे न स्यात् स्वकर्मत्वात् ।
३५. परिक्रयश्च तादर्थ्यात् ।
३६. प्रतिषेधश्च कर्मवत् ।
३७. स्याद्वा प्रासार्पिकस्य धर्ममात्रत्वात् ।

३८. न दक्षिणाशब्दात् तस्मान्नित्यानुवादः स्यात्।
३९. उदवसानीयः सत्रधर्मा स्यात् तदङ्गत्वात्तत्र दानं धर्ममात्रं स्यात् ।
४०. न त्वेतत्प्रकृतित्वाद्विभक्तचोदितत्वाच्च ।
४१. तेषां तु वचनाद् द्वियज्ञवत् सहप्रयोगः स्यात् ।
४२. तत्रान्यानृत्विजो वृणीरन् ।
४३. एकैकशस्त्वविप्रतिषेधात् प्रकृतेश्चैकसंयोगात् ।
४४. कामेष्टौ च दानशब्दात् ।
४५. वचनं वा सत्रत्वात् ।
४६. द्वेष्ये चाचोदनाद्दक्षिणापनयः स्यात् ।
४७. अस्थियज्ञोऽविप्रतिषेधादितरेषां स्याद्विप्रतिषेधादस्थिनाम् ।
४८. यावदुक्तमुपयोगः स्यात् ।
४९. यदि तु वचनात् तेषां जपसंस्कारमर्थलुप्तं सेष्टि तदर्थत्वात् ।
५०. काम्यानि तु न विद्यन्ते कामाज्ञानाद् यथेतरस्यानूच्यमानानि ।
५१. क्रत्वर्थं तु क्रियेत गुणभूतत्वात् ।
५२. ईहार्थाश्चाभावात् सूक्तवाकवत् ।
५३. स्युर्वा अर्थवादत्वात् ।
५४. नेच्छाभिधानात् तदभावादितरस्मिन् ।
५५. स्युर्वा होतृकामाः ।
५६. न तदाशिष्टत्वात् ।
५७. सर्वस्वारस्य दिष्टगतौ समापनं न विद्यते कर्मणो जीवसंयोगात् ।
५८. स्याद्वोभयोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।
५९. गते कर्मास्थियज्ञवत् ।
६०. जीवत्यवचनमायुराशिषस्तदर्थत्वात् ।
६१. वचनं वा भागित्वात् प्राग् यथोक्तात् ।
६२. क्रिया स्याद्धर्ममात्राणाम् ।
६३. गुणलोपे च मुख्यस्य ।
६४. मुष्टिलोपात् तु संख्यालोपस्तद्गुणत्वात् ।
६५. न निर्वापशेषत्वात् ।
६६. संख्या तु चोदनां प्रति सामान्यात् तद्विकारः संयोगाच्च परं मुष्टेः ।
६७. न चोदनाभिसम्बन्धात् प्रकृतौ संस्कारसंयोगात् ।
६८. औत्पत्तिके तु द्रव्यतो विकारः स्यादकार्यत्वात् ।

६९. नैमित्तिके तु कार्यत्वात् प्रकृतेः स्यात् तदापत्तेः ।
७०. विप्रतिषेधे तद्वचनात् प्राकृतगुणलोपः स्यात्, तेन च कर्मसंयोगात् ।
७१. परेषां प्रतिषेधः स्यात् ।
७२. प्रतिषेधाच्च ।
७३. अर्थाभावे संस्कारत्वं स्यात् ।
७४. अर्थेन च विपर्यासे तादर्थ्यात् तत्त्वमेव स्यात् ।

॥ इति दशमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. विकृतौ शब्दवत्त्वात् प्रधानस्य गुणानामधिकोत्पत्तिः सन्निधानात् ।
२. प्रकृतिवत् तस्य चानुपरोधः ।
३. चोदनाप्रभुत्वाच्च ।
४. प्रधानं त्वङ्गसंयुक्तं तथाभूतमपूर्वं स्यात् तस्य विध्युपलक्षणात् सर्वो हि पूर्ववान् विधिरविशेषात् प्रवर्तितः ।
५. न चाङ्गविधिरनङ्गे स्यात् ।
६. कर्मणश्चैकशब्द्यात् सन्निधाने विधेराख्यासंयोगो गुणेन तद्विकारः स्यात् शब्दस्य विधिगामित्वात् गुणस्य चोपदेश्यत्वात् ।
७. अकार्यत्वाच्च नाम्नः ।
८. तुल्या च प्रभुता गुणे ।
९. सर्वमेवं प्रधानमिति चेत् ।
१०. तथाभूतेन संयोगाद्यथार्थ विधयः स्युः ।
११. विधित्वं चाविशिष्टमेवं प्राकृतानां वैकृतैः कर्मणा योगात् तस्मात् सर्वं प्रधानार्थम् ।
१२. समत्वाच्च तदुत्पत्तेः संस्कारैरधिकारः स्यात् ।
१३. हिरण्यगर्भे पूर्वस्य मन्त्रलिङ्गात् ।
१४. प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।
१५. उत्तरस्य वा मन्त्रार्थित्वात् ।
१६. विध्यतिदेशात् तच्छ्रुतौ विकारः स्याद् गुणानामुपदेश्यत्वात् ।
१७. पूर्वस्मिंश्चामन्त्रत्वदर्शनात्।
१८. संस्कारे तु क्रियान्तरं तस्य विधायकत्वात् ।
१९. प्रकृत्यनुपरोधाच्च ।

२०. विधेस्तु तत्र भावात् सन्देहे यस्य शब्दस्तदर्थः स्यात् ।
२१. संस्कारसामर्थ्याद् गुणसंयोगाच्च ।
२२. विप्रतिषेधात् क्रियाप्रकरणे स्यात् ।
२३. षड्भिदीक्षयतीति तासां मन्त्रविकारः श्रुतिसंयोगात् ।
२४. अभ्यासात् तु प्रधानस्य ।
२५. आवृत्त्या मन्त्रकर्म स्यात् ।
२६. अपि वा प्रतिमन्त्रत्वात् प्राकृतानामहानिः स्यादन्यायश्च कृतेऽभ्यासः ।
२७. पौर्वापर्यञ्चाभ्यासे नोपपद्यते नैमित्तिकत्वात् ।
२८. तत्पृथकत्वं च दर्शयति ।
२९. न चाविशेषाद्व्यपदेशः स्यात् ।
३०. अग्न्याधेयस्य नैमित्तिके गुणविकारे दक्षिणादानमधिकं स्याद्वाक्यसंयोगात् ।
३१. शिष्टत्वाच्चेतरासां यथास्थानम् ।
३२. विकारस्त्वप्रकरणे हि काम्यानि ।
३३. शङ्कते च निवृत्तेरुभयत्वं हि श्रूयते ।
३४. वासो वत्सञ्च सामान्यात् ।
३५. अर्थापत्तेस्तद्धर्म्मा स्यान्निमित्ताख्याभिसंयोगात् ।
३६. दाने पाकोऽर्थलक्षणः ।
३७. पाकस्य चान्नकारित्त्वात् ।
३८. तथाभिधारणस्य ।
३९. द्रव्यविधिसन्निधौ सङ्ख्या तेषां गुणत्वात् स्यात् ।
४०. समत्वात् तु गुणानामेकस्य श्रुतिसंयोगात् ।
४१. यस्य वा सन्निधाने स्याद् वाक्यतो ह्यभिसम्बन्धः ।
४२. असंयुक्तास्तु तुल्यवदिताभिर्विधीयन्ते तस्मात्सर्वाधिकारः स्यात् ।
४३. असंयोगाद्विधिश्रुतादेकजाताधिकारः स्यात् श्रुत्याकोपात् क्रतोः ।
४४. शब्दार्थश्चापि लोकवत् ।
४५. सा पशूनामुत्पत्तितो विभागात् ।
४६. अनियमोऽविशेषात् ।
४७. भागित्वाद्वा गवां स्यात् ।
४८. प्रत्ययात् ।
४९. लिङ्गदर्शनाच्च ।

५०. तस्य दानं विभागेन प्रदानानां पृथक्त्वात्

५१. परिक्रयाच्च लोकवत् ।

५२. विभागं चापि दर्शयति ।

५३. समं स्यादश्रुतत्वात् ।

५४. अपि वा कर्मवैषम्यात् ।

५५. अतुल्याः स्युः परिक्रय विषमाख्या विधिश्रुतौ परिक्रयान्न कर्मण्युपपद्यते दर्शनाद्विशेषस्य तथाभ्युदये ।

५६. तस्य धेनुरिति गवां प्रकृतौ विभक्तचोदितत्वात् सामान्यात् तद्विकारः स्याद् यथेष्टिर्गुणशब्देन ।

५७. सर्वस्य वा क्रतुसंयोगादेकत्वं दक्षिणार्थस्य गुणानां कार्य्यैकत्वादर्थे विकृतौ श्रुतिभूतं स्यात् तस्मात् समवायाद्धि कर्मभिः ।

५८. चोदनानामनाश्रयाल्लिङ्गेन नियमः स्यात् ।

५९. एकां पञ्चेति धेनुवत् ।

६०. त्रिवत्सश्च ।

६१. तथा च लिङ्गदर्शनम् ।

६२. एके तु श्रुतिभूतत्वात् सङ्ख्यया गवां लिङ्गविशेषेण ।

६३. प्राकाशौ च तथेति चेत् ।

६४. अपि त्ववयवार्थत्वात् विभक्तप्रकृतित्वात् गुणेदन्ताविकारः स्यात् ।

६५. धेनुवच्चाश्वदक्षिणा, स ब्रह्मण इति पुरुषापनयो यथा हिरण्यस्य ।

६६. एके तु कर्तृसंयोगात् स्रग्वत्तस्य लिङ्गविशेषेण ।

६७. अपि वा तदधिकाराद्धिरण्यवद्विकारः स्यात् ।

६८. तथा च सोमचमसः ।

६९. सर्वविकारो वा क्रत्वर्थे प्रतिषेधात् पशूनाम् ।

७०. ब्रह्मदानेऽविशिष्टमिति चेत् ।

७१. उत्सर्गस्य क्रत्वर्थत्वात् प्रतिषिद्धस्य कर्म स्यात् न च गौणः प्रयोजनमर्थः स दक्षिणानां स्यात् ।

७२. यदि तु ब्रह्मणस्तदूनं तद्विकारः स्यात् ।

७३. सर्वं वा पुरुषापनयात्तासां क्रतुप्रधानत्वात् ।

७४. यजुर्युक्तेऽध्वर्य्योर्दक्षिणा विकारः स्यात्।

७५. अपि वा श्रुतिभूतत्वात् सर्वासां तस्य भागो नियम्यते ।

॥ इति दशमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. प्रकृतिलिङ्गसंयोगात् कर्मसंस्कारं विकृतावधिकं स्यात् ।
२. चोदनालिङ्गसंयोगे तद्विकारः प्रतीयेत प्रकृतिसन्निधानात् ।
३. सर्वत्र तु ग्रहाम्नातमधिकं स्यात् प्रकृतिवत् ।
४. अधिकैश्चैकवाक्यत्वात् ।
५. लिङ्गदर्शनाच्च ।
६. प्राजापत्येषु चाम्नानात् ।
७. आमने लिङ्गदर्शनाच्च ।
८. उपगेषु शरवत् स्यात् प्रकृतिलिङ्गसंयोगात् ।
९. आनर्थक्यात् त्वधिकं स्यात् ।
१०. संस्कारे चान्यसंयोगात् ।
११. प्रयाजवदिति चेत् ।
१२. न अर्थान्यत्वात् ।
१३. आच्छादाने त्वैकार्थ्यात् प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।
१४. अधिकं वान्यार्थत्वात् ।
१५. समुच्चयञ्च दर्शयति ।
१६. सामस्वर्थान्तरश्रुतेरविकारः प्रतीयेत ।
१७. अर्थे त्वश्रूयमाणे शेषत्वात् प्राकृतस्य विकारः स्यात् ।
१८. सर्वेषामविशेषात् ।
१९. एकस्य वा श्रुतिसामर्थ्यात् प्रकृतेश्चाविकारात् ।
२०. स्तोमविवृद्धौ त्वधिकं स्यादविवृद्धौ द्रव्यविकारः स्यादितरस्याश्रुतित्वाच्च ।
२१. पवमाने स्यातां तस्मिन्नावापोद्वापदर्शनात् ।
२२. वचनानि त्वपूर्वत्वात् ।
२३. विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे भावः स्यात् तेन चोदना ।
२४. शेषाणां चोदनैकत्वात्तस्मात् सर्वत्र श्रूयते ।
२५. तथोत्तरस्यां ततौ तत्प्रकृतित्वात् ।
२६. प्राकृतस्य गुणश्रुतौ सगुणेनाभिधानं स्यात् ।
२७. अविकारो वाऽर्थशब्दानपायात् स्याद् द्रव्यवत् ।
२८. तथारम्भासमवायाद्वा चोदितेनाभिधानं स्यादर्थस्य श्रुतिसमवायित्वादवचने च गुणशास्त्रमनर्थकं स्यात् ।

२९. द्रव्येष्वारम्भगामित्वादर्थे विकारः सामर्थ्याद् ।
३०. बुधन्वान् पवमानवद्विशेषनिर्देशात् ।
३१. मन्त्रविशेषनिर्देशान्न देवताविकारः स्यात् ।
३२. विधिनिगमभेदात् प्रकृतौ तत्प्रकृतित्वाद्विकृतावपि भेदः स्यात् ।
३३. यथोक्तं वा विप्रतिपत्तेर्न चोदना ।
३४. स्विष्टकृद् देवतान्यत्वे तच्छब्दत्वान्निवर्त्तेत ।
३५. संयोगे वाऽर्थापत्तेरभिधानस्य कर्मजत्वात् ।
३६. सगुणस्य गुणलोपे निगमेषु यावदुक्तं स्यात् ।
३७. सर्वस्य वैककर्म्यात् ।
३८. स्विष्टकृदावापिकोऽनुयाजे स्यात् प्रयोजनवद-ङ्गानामर्थसंयोगात् ।
३९. अन्वाहेति च शस्त्रवत् कर्म स्यात् चोदनान्तरात् ।
४०. संस्कारो वा चोदितस्य शब्दवचनार्थत्वात् ।
४१. स्याद् गुणार्थत्वात् ।
४२. मनोतायां तु वचनादविकारः स्यात् ।
४३. पृष्ठार्थेऽन्यद्रथान्तरात् तद्योनिपूर्वत्वात् स्यादृचां प्रविभक्तत्वात् ।
४४. स्वयोनौ वा सर्वाख्यत्वात् ।
४५. यूपवदिति चेत् ।
४६. न कर्मसंयोगात् ।
४७. कार्यत्वादुत्तरयोर्यथाप्रकृति ।
४८. समानदेवेते वा तृचस्याविभागात् ।
४९. ग्रहाणां देवतान्यत्वे स्तुतशस्त्रयोः कर्मत्वादविकारः स्यात् ।
५०. उभयपानात्पृषदाज्ये दध्नः स्यादुपलक्षणं निगमेषु पातव्यस्योपलक्षणात् ।
५१. न वा परार्थत्वाद्यज्ञपतिवत् ।
५२. स्याद्वा आवाहनस्य तादर्थ्यात् ।
५३. न वा संस्कारशब्दत्वात् ।
५४. स्याद्वा द्रव्याभिधानात् ।
५५. दध्नस्तुगुणभूतत्वादाज्यपानिगमाः स्युर्गुणत्वं श्रुतेराज्यप्रधानत्वात् ।
५६. दधि वा स्यात् प्रधानमाज्ये प्रथमान्त्यसंयोगात् ।
५७. अपि वाज्यप्रधानत्वाद् गुणार्थे व्यपदेशे भक्त्या संस्कारशब्दः स्यात् ।
५८. अपि वाख्याविकारत्वात् तेन स्यादुपलक्षणम् ।
५९. न वा स्याद् गुणशास्त्रत्वात् ।

॥ इति दशमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

पञ्चमः पादः

१. आनुपूर्व्यवतामेकदेशग्रहणेष्वागमवदन्त्यलोपः स्यात् ।
२. लिङ्गदर्शनाच्च ।
३. विकल्पो वा समत्वात् ।
४. क्रमादुपजनोऽन्ते स्यात् ।
५. लिङ्गमविशिष्टं सङ्ख्याया हि तद् वचनम् ।
६. आदितो वा प्रवृत्तिः स्यादारम्भस्य तदादित्वाद् वचनादन्त्यविधिः स्यात् ।
७. एकत्रिके तृचादिषु माध्यन्दिनेच्छन्दसां श्रुतिभूतत्वात् ।
८. आदितो वा तन्न्यायत्वादितरस्यानुमानिकत्वात् ।
९. यथानिवेशं च प्रकृतिवत् सङ्ख्यामात्रविकारत्वात् ।
१०. त्रिकं तृचेषु धुर्य्ये स्यात् ।
११. एकस्यां वा स्तोमस्यावृत्तिधर्मत्वात् ।
१२. चोदनासु त्वपूर्वत्वाल्लिङ्गेन धर्मनियमः स्यात् ।
१३. प्राप्तिस्तु रात्रिशब्दसम्बन्धात् ।
१४. अपूर्वासु तु सङ्ख्यासु विकल्पः स्यात् सर्वासामर्थवत्त्वात् ।
१५. स्तोमविवृद्धौ प्राकृतानामभ्यासेन सङ्ख्यापूर-णमविकारात् सङ्ख्यायां गुणशब्दत्वादन्यस्य चाश्रुतित्वात् ।
१६. आगमेन वाऽभ्यासस्याश्रुतित्वात् ।
१७. सङ्ख्यायाश्च पृथक्त्वनिवेशात् ।
१८. पराक्शब्दत्वात् ।
१९. उक्ताविकाराच्च ।
२०. अश्रुतित्वान्नेति चेत् ।
२१. स्यादर्थचोदितानां परिमाणशास्त्रम् ।
२२. आवापवचनं चाभ्यासे नोपपद्यते ।
२३. साम्नां चोत्पत्तिसामर्थ्यात् ।
२४. धुर्येष्वपीति चेत् ।
२५. न अवृतिधर्म्मत्वात् ।
२६. बहिष्पवमाने तु ऋगागमः सामैकत्वात् ।
२७. अभ्यासेन तु सङ्ख्यापूरणं, सामिधेनीष्वभ्यासप्रकृतित्वात् ।
२८. अविशेषात् नेति चेत् ।
२९. स्यात् तद्धर्मत्वात् प्रकृतिवदभ्यस्येताऽऽसङ्ख्यापूरणात् ।

३०. यावदुक्तं वा कृतपरिमाणत्वात् ।
३१. अधिकानां च दर्शनात् ।
३२. न कर्मस्वपीति चेत् ।
३३. न चोदितत्वात् ।
३४. षोडशिनो वैकृतत्वं तत्र कृत्स्नविधानात् ।
३५. प्रकृतौ चाभावदर्शनात् ।
३६. अयज्ञवचनाच्च ।
३७. प्रकृतौ वा शिष्टत्वात् ।
३८. प्रकृतिदर्शनाच्च ।
३९. आम्नातं परिसङ्ख्यार्थम् ।
४०. उक्तमभावदर्शनम् ।
४१. गुणादयज्ञत्वम् ।
४२. तस्याग्रयणाद् ग्रहणम् ।
४३. उक्थ्याच्च वचनात् ।
४४. स तृतीयसवने वचनात् स्यात् ।
४५. अनभ्यासे पराक् शब्दस्य तादर्थ्यात् ।
४६. उक्थ्याविच्छेदवचनत्वात् ।
४७. आग्रयणाद्वा पराक्शब्दस्य देशवाचित्वात् पुनराधेयवत् ।
४८. विच्छेदः स्तोमसामान्यात् ।
४९. उक्थ्याऽग्निष्टोमसंयोगादस्तुतशस्त्रः स्यात् सति हि संस्थान्यत्वम् ।
५०. सस्तुतशस्त्रो वा तदङ्गत्वात् ।
५१. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५२. वचनात् संस्थान्यत्वम् ।
५३. अभावादतिरात्रेषु गृह्यते ।
५४. अन्वयो वानारभ्य विधानात् ।
५५. चतुर्थे चतुर्थेऽहन्यहीनस्य गृह्यते, इत्यभ्यासेन प्रतीयेत भोजनवत् ।
५६. अपि वा सङ्ख्यावत्त्वात् नानाहीनेषु गृह्यते पक्षवदेकस्मिन् संख्यार्थभावात् ।
५७. भोजने तत्सङ्ख्यं स्यात् ।
५८. जगत्सामिन सामाभावाद् ऋक्तः साम तदाख्यं स्यात् ।
५९. उभयसाम्नि नैमित्तिकं विकल्पेन समत्वात् स्यात् ।

६०. मुख्येन वा नियम्येत ।
६१. निमित्तविघाताद् वा क्रतुयुक्तस्य कर्म स्यात् ।
६२. ऐन्द्रवायवस्याग्रवचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।
६३. अपि वा धर्माविशेषात् तद्धर्माणां स्वस्थाने प्रकरणादग्रत्वमुच्यते ।
६४. धारासंयोगाच्च ।
६५. कामसंयोगे तु वचनादादितः प्रतिकर्षः स्यात् ।
६६. तद्देशानां वाऽग्रसंयोगात् तद्युक्तं कामशास्त्रं स्यात्, नित्यसंयोगात् ।
६७. परेषु चाग्रशब्दः पूर्ववत् स्यात् तदादिषु ।
६८. प्रतिकर्षो वा नित्यार्थेनाग्रस्य तदसंयोगात् ।
६९. प्रतिकर्षञ्च दर्शयति ।
७०. पुरस्तादैन्द्रवायवस्याग्रस्य कृतदेशत्वात् ।
७१. तुल्यधर्मत्वाच्च ।
७२. तथा च लिङ्गदर्शनम् ।
७३. सादनं चापि शेषत्वात् ।
७४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
७५. प्रदानञ्चापि सादनवत् ।
७६. न वा प्रधानत्वात् शेषत्वाद् सादनं तथा ।
७७. त्र्यनीकायां न्यायोक्तेष्वाम्नानं गुणार्थं स्यात् ।
७८. अपि वाऽहर्गणेष्वग्निवत् समानविधानं स्यात् ।
७९. द्वादशाहस्य व्यूढसमूढत्वं पृष्ठवत् समानविधानं स्यात् ।
८०. व्यूढो वा लिङ्गदर्शनात् समूढविकारः ।
८१. कामसंयोगात् ।
८२. तस्योभयथा प्रवृत्तिरैककर्म्यात् ।
८३. एकादशिनवत् त्र्यनीका परिवृत्तिः स्यात्
८४. स्वस्थानविवृद्धिर्वाऽह्नामप्रत्यक्षसङ्ख्यत्वात् ।
८५. पृष्ठ्यावृत्तौ चाग्रयणस्य दर्शनात् त्रयस्त्रिंशे परिवृत्तौ पुनरैन्द्रवायवः स्यात् ।
८६. वचनात् परिवृत्तिरैकादशिनेषु ।
८७. लिङ्गदर्शनाच्च ।
८८. छन्दो व्यतिक्रमाद् व्यूढे, भक्षपवमानपरिधिकपालस्य मन्त्राणां यथोत्पत्तिवचन-मूहवत् स्यात् ।

॥ इति दशमाध्यायस्य पञ्चमः पादः ॥

षष्ठः पादः

१. एकर्चस्थानानि यज्ञे स्युः स्वाध्यायवत् ।
२. तृचे वा लिङ्गदर्शनात् ।
३. स्वर्दृशं प्रतिवीक्षणं कालमात्रं परार्थत्वात् ।
४. पृष्ठ्यस्य युगपद्विधेरेकाहवत् द्विसामत्वम् ।
५. विभक्ते वा समस्तविधानात् तद्विभागे विप्रतिषिद्धम् ।
६. समासस्त्वैकादशिनेशु तत्प्रकृतित्वात् ।
७. विहारप्रतिषेधाच्च ।
८. श्रुतितो वा लोकवद्विभागः स्यात् ।
९. विहारप्रकृतित्वाच्च ।
१०. विशये च तदासत्तेः ।
११. त्रयस्तथेति चेत् ।
१२. न समत्वात् प्रयाजवत् ।
१३. सर्वपृष्ठे पृष्ठशब्दात्तेषां स्वादेकदेशत्वं पृष्ठस्य कृतदेशत्वात् ।
१४. विधेस्तु विप्रकर्षः स्यात् ।
१५. वैरूपसामा क्रतुसंयोगात् त्रिवृद्वदेकसामा स्यात् ।
१६. पृष्ठार्थे वा प्रकृतिलिङ्गसंयोगात् ।
१७. त्रिवृद्वदिति चेत् ।
१८. न प्रकृतावकृत्स्नसंयोगात् ।
१९. विधित्वान्नेति चेत् ।
२०. स्याद् विशये तन्न्यायत्वात् कर्माविभागात् ।
२१. प्रकृतेश्चाविकारात् ।
२२. त्रिवृति संङ्ख्यात्वेन सर्वसङ्ख्याविकारः स्यात् ।
२३. स्तोमस्य वा तल्लिङ्गत्वात् ।
२४. उभयसाम्नि विश्वजिद्वद्विभागः स्यात् ।
२५. पृष्ठार्थे वाऽतदर्थत्वात् ।
२६. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२७. पृष्ठे रसभोजनमावृत्ते संस्थिते त्रयस्त्रिंशेऽहनि स्यात् तदानन्तर्य्यात् प्रकृतिवत् ।
२८. अन्ते वा कृतकालत्वात् ।

२९. अभ्यासे च तदभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात् ।
३०. अन्ते वा कृतकालत्वात् ।
३१. आवृत्तिस्तु व्यवाये कालभेदात् स्यात् ।
३२. मधु न दीक्षिता ब्रह्मचारित्वात् ।
३३. प्राश्येते वा यज्ञार्थत्वात् ।
३४. मानसमहरन्तरं स्याद् (द्वादशाहे ?) भेदव्यपदेशात् ।
३५. तेन च संस्तवात् ।
३६. अहरन्ताच्च परेण चोदना ।
३७. पक्षे सङ्ख्या सहस्रवत् ।
३८. अहरङ्गम् वांशुवच्चोदनाभावात् ।
३९. दशमविसर्गवचनाच्च ।
४०. दशमेऽहन्निति च तद्गुणशास्त्रात् ।
४१. सङ्ख्यासामञ्जस्यात् ।
४२. पश्वतिरेके चैकस्य भावात् ।
४३. स्तुतिव्यपदेशमङ्गेन विप्रतिषिद्धं व्रतवत्
४४. वचनादतदन्तत्त्वम् ।
४५. सत्रमेकः प्रकृतिवत् ।
४६. वचनात्तु बहूनां स्यात् ।
४७. अपदेशः स्यादिति चेत् ।
४८. न एकव्यपदेशात् ।
४९. सन्निवापञ्च दर्शयति ।
५०. बहूनामिति चैकस्मिन् विशेषवचनं व्यर्थम् ।
५१. अन्ये स्युर्ऋत्विजः प्रकृतिवत् ।
५२. अपि वा यजमानां स्युर्ऋत्विजामभिधानसंयोगात् तेषां स्याद्यजमानत्वम् ।
५३. कर्तृसंस्कारो वचनादाधातृवदिति चेत् ।
५४. स्याद्विशये तन्न्यायत्वात् प्रकृतिवत् ।
५५. स्वाम्याख्याः स्युर्गृहपतिवदिति चेत् ।
५६. नः प्रसिद्धग्रहणत्वादसंयुक्तस्य तद्धर्मेण ।
५७. दीक्षिताऽदीक्षितव्यपदेशश्च नोपपद्यतेऽर्थयोर्नित्य-भावित्वात् ।

५८. अदक्षिणत्वाच्च ।
५९. द्वादशाहस्य सत्रत्वमासनोपायिचोदनेन यजमानबहुत्वेन च सत्रशब्दाभिसंयोगात् ।
६०. यजतिचोदनादहीनत्वं स्वामिनां चाऽस्थितपरिमाणत्वात् ।
६१. अहीने दक्षिणाशास्त्रं गुणत्वात् प्रत्यहं कर्मभेदः स्यात् ।
६२. सर्वस्य वैककर्म्यात् ।
६३. पृषदाज्यवद्वाऽह्नां गुणशास्त्रं स्यात् ।
६४. ज्योतिष्टोम्यस्तु दक्षिणाः सर्वासामेककर्मत्वात् प्रकृतिवत्, तस्मान्नाऽऽसां विकारः स्यात् ।
६५. द्वादशाहे वचनात् प्रत्यहं दक्षिणाभेदस्तत्प्रकृतित्वात् परेषु तासां संख्याविकारः स्यात् ।
६६. परिक्रयाविभागाद्वा समस्तस्य विकारः स्यात् ।
६७. भेदस्तु गुणसंयोगात् ।
६८. प्रत्यहं सर्वसंस्कारः प्रकृतिवत् सर्वासां सर्वविशेषत्वात् ।
६९. एकार्थत्वान्नेति चेत् ।
७०. स्यादुत्पत्तौ कालभेदात् ।
७१. विभज्य तु संस्कारवचनाद् द्वादशाहवत् ।
७२. लिङ्गेन द्रव्यनिर्देशे सर्वत्र प्रत्ययः स्यात् लिङ्गस्य सर्वगामित्वादाग्नेयवत् ।
७३. यावदर्थं वाऽर्थशेषत्वादल्पेन परिमाणं स्यात् तस्मिंश्च लिङ्गसामर्थ्यम् ।
७४. आग्नेय कृत्स्नविधिः ।
७५. ऋजीषस्य प्रधानत्वादहर्गणे सर्वस्य स्यात् ।
७६. वाससि मानोपावहरणे प्रकृतौ सोमस्य वचनात् ।
७७. तत्राहर्गणेऽर्थाद्वासः प्रकृतिः स्यात् ।
७८. मानं प्रत्युत्पादयेत् प्रकृतौ तेन दर्शनादुपावहरणस्य ।
७९. हरणे वा श्रुत्यसंयोगादर्थाद्विकृतौ तेन ।

॥ इति दशमाध्यायस्य षष्ठः पादः ॥

सप्तमः पादः

१. पशोरेकहविष्ट्वं समस्तचोदितत्वात् ।
२. प्रत्यङ्गं वा ग्रहवदङ्गानां पृथक्प्रकल्पनत्वात् ।
३. हविर्भेदात् कर्मणोऽभ्यासस्तस्मात् तेभ्योऽवदानं स्यात् ।

'४. आज्यभागवद्वा निर्देशात् परिसङ्ख्या स्यात् ।
'५. तेषां वा द्व्यवदानत्वं विवक्षन्नभिनिर्द्दिशेत् पशोः पञ्चावदानत्वात् ।
'६. अंसशिरोनूकसक्थिप्रतिषेधश्च तदन्यपरिसङ्ख्यानेऽनर्थकः स्यात् प्रदानत्वात् तेषां निरवदानप्रतिषेधः स्यात्
'७. अपि वा परिसङ्ख्या स्यादनवदानीयशब्दत्वात् ।
'८. अब्राह्मणे च दर्शनात् ।
'९. शृताशृतोपदेशाच्च तेषामुत्सर्गवदयज्ञशेषत्वम् ।
१०. इज्याशेषात् स्विष्टकृदिज्येत प्रकृतिवत् ।
११. त्र्यङ्गैर्वा शरवद् विकारः स्यात् ।
१२. अध्यूध्नी तु होतुस्त्र्यङ्गवदिडाभक्षविकारः स्यात् ।
१३. शेषे वा समवैति तस्माद्रथवन्नियमः स्यात् ।
१४. अशास्त्रत्वात्तु नैवं स्यात् ।
१५. अपि वा दानमात्रं स्याद् भक्षशब्दानभिसम्बन्धात् ।
१६. दातुस्त्वविद्यमानत्वादिडाभक्षविकारः स्याच्छेषं प्रत्यविशिष्टत्वात् ।
१७. आग्नीधश्च वनिष्ठुरध्यूध्नीवत् ।
१८. अप्राकृतत्वान्मैत्रवरुणस्याभक्षत्वम् ।
१९. स्याद्वा होत्रध्वर्युविकारत्वात्तयोः कर्माभिसम्बन्धात् ।
२०. द्विभागः स्याद्द्विकर्मत्वाद् ।
२१. एकत्वाद् वैकभागः स्याद् भागस्याश्रुतिभूतत्वात् ।
२२. प्रतिप्रस्थातुश्च वपाश्रपणात् ।
२३. अभक्षो वा कर्मभेदात्तस्याः सर्वप्रदानत्वात् ।
२४. विकृतौ प्राकृतस्य विधेर्ग्रहणात् पुनः श्रुतिरनर्थिका स्यात् ।
२५. अपि वाऽऽग्नेयवद् द्विशब्दत्वं स्यात् ।
२६. न वा शब्दपृथक्त्वात् ।
२७. अधिकं वार्थवत्त्वात् स्यादर्थवादगुणाभावे वचनादविकारे तेषु हि तादर्थ्यं स्यादपूर्वत्वात् ।
२८. प्रतिषेधः स्यादिति चेत् ।
२९. न अश्रुतत्वात् ।
३०. अग्रहणादिति चेत् ।
३१. न तुल्यत्वात् ।

३२. तथा तद्ग्रहणे स्यात् ।
३३. अपूर्वतां तु दर्शयेत् ग्रहणस्यार्थवत्त्वात् ।
३४. ततोऽपि यावदुक्तं स्यात् ।
३५. स्विष्टकृद्भक्षप्रतिषेधः स्यात् तुल्यकारणत्वात् ।
३६. अप्रतिषेधो वा दर्शनादिडायां स्यात् ।
३७. प्रतिषेधो वा विधिपूर्वस्य दर्शनात् ।
३८. शंय्विडान्तत्वे विकल्पः स्यात् परेषु पत्न्यनुयाजप्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् ।
३९. नित्यानुवादो वा कर्मणः स्यादशब्दत्वात्
४०. प्रतिषेधार्थवत्त्वात् चोत्तरस्य परस्तात् प्रतिषेधः स्यात् ।
४१. प्राप्तेर्वा पूर्वस्य वचनादतिक्रमः स्यात् ।
४२. प्रतिषेधस्य त्वरायुक्तत्वात् तस्य च नान्यदेशत्वम् ।
४३. उपसत्सु यावदुक्तमकर्म स्यात् ।
४४. स्त्रौवेण वा गुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात्
४५. अप्रतिषिद्धं वा प्रतिषिध्य प्रतिप्रसवात् ।
४६. अनिज्या वा शेषस्य मुख्यदेवतानभीज्यत्वात् ।
४७. अवभृथे बर्हिषः प्रतिषेधात् शेषकर्म स्यात् ।
४८. आज्याभागयोर्वा गुणत्वात् शेषप्रतिषेधः स्यात् ।
४९. प्रयाजानां त्वेकदेशप्रति-षेधात् वाक्यशेषत्वम् तस्मान्नित्यानुवादः स्यात् ।
५०. आज्यभागयोर्ग्रहणं नित्यानुवादो गृहमेधीयवत् स्यात् ।
५१. विरोधिनामेकश्रुतौ नियमः स्यात् ग्रहणस्यार्थवत्त्वात् शरवच्च श्रुतितो विशिष्टत्वात् ।
५२. उभयप्रदेशान्नेति चेत् ।
५३. शरेष्वपीति चेत् ।
५४. विरोध्यग्रहणात्तथा शरेष्विति चेत् ।
५५. तथेतरस्मिन् ।
५६. श्रुत्यानर्थक्यमिति चेत् ।
५७. ग्रहणस्यार्थवत्त्वादुभयोरप्रतिपत्तिः स्यात् ।
५८. सर्वासाञ्च गुणानामर्थवत्त्वाद् ग्रहणमप्रवृत्ते स्यात् ।
५९. अधिकं स्यादिति चेत् ।

६०. न अर्थाभावात् ।

६१. तथैकार्थविकारे प्राकृतस्याप्रवृत्तिः प्रवृत्तौ हि विकल्पः स्यात् ।

६२. यावच्छ्रुतीति चेत् ।

६३. न प्रकृतावशब्दत्वात् ।

६४. विकृतौ त्वनियमः स्यात् पृषदाज्यवद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वात् उभयोश्च प्रदिष्टत्वाद् गुणशास्त्रं यदेति स्यात् ।

६५. ऐकार्थ्याद्वा नियम्येत श्रुतितो विशिष्टत्वात्

६६. विरोधित्वाच्च लोकवत् ।

६७. ऋतोश्च तद्गुणत्वात् ।

६८. विरोधिनाञ्च तच्छ्रुतावशब्दत्वात् विकल्पः स्यात् ।

६९. पृषदाज्ये समुच्चयाद् ग्रहणस्य गुणार्थत्वम् ।

७०. यद्यपि चतुरवत्तीति तु नियमे नोपपद्यते ।

७१. ऋत्वन्तरे वा तन्न्याय्यत्वात् कर्मभेदात् ।

७२. यथाश्रुतीति चेत् ।

७३. न चोदनैकत्वात् ।

॥ इति दशमाध्यायस्य सप्तमः पादः ॥

अष्टमः पादः

१. प्रतिषेधः प्रदेशेऽनारभ्यविधाने च, प्राप्तप्रतिषिद्धत्वाद् विकल्पः स्यात् ।

२. अर्थप्राप्तवदिति चेत् ।

३. न तुल्यहेतुत्वादुभयं शब्दलक्षणम् ।

४. अपि तु वाक्यशेषः स्यादन्याय्यत्वाद्विकल्पस्य विधीनामेकदेशः ।

५. अपूर्वे चार्थवादः स्यात् ।

६. शिष्ट्वा तु प्रतिषेधः स्यात् ।

७. न चेदन्यं प्रकल्पयेत् प्रक्लृप्तावर्थवादः स्यादानर्थक्यापरसामर्थ्याच्च ।

८. पूर्वैश्च तुल्यकालत्वात् ।

९. उपवादश्च तद्वत् ।

१०. प्रतिषेधादकर्मेति चेत् ।

११. न शब्दपूर्वत्वात् ।

१२. दीक्षितस्य दानहोमपाकप्रतिषेधोऽविशेषात् सर्वदानहोमपाकप्रतिषेधः स्यात् ।

१३. अक्रतुयुक्तानां वा धर्मः स्यात् क्रतोः प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।

१४. तस्य वाप्यानुमानिकमविशेषात् ।

१५. अपि तु वाक्यशेषत्वादितरपर्युदासः स्यात्प्रतिषेधे विकल्पः स्यात् ।

१६. अविशेषेण यत् शास्त्रमन्याय्यत्वात् विकल्पस्य तत् सन्दिग्धमाराद्विशेषा शिष्टं स्यात् ।

१७. अप्रकरणे तु यच्छास्त्रं विशेषे श्रूयमाणमविकृतमाज्यभागवत् प्राकृतप्रतिषेधार्थम् ।

१८. विकारे तु तदर्थं स्यात् ।

१९. वाक्यशेषो वा क्रतुना ग्रहणात् स्यादनारभ्यविधानस्य ।

२०. मन्त्रेष्ववाक्यशेषत्वं गुणोपदेशात् स्यात्।

२१. अनाम्नाते च दर्शनात् ।

२२. प्रतिषेधाच्च ।

२३. अग्न्यतिग्राह्यस्य विकृतावुपदेशादप्रवृत्तिः स्यात् ।

२४. मासि ग्रहणञ्च तद्वत् ।

२५. ग्रहणं वा तुल्यत्वात् ।

२६. लिङ्गदर्शनाच्च ।

२७. ग्रहणं समानविधानं स्यात् ।

२८. मासिग्रहणमभ्यासप्रतिषेधार्थम् ।

२९. उत्पत्तितादर्थ्याच्चतुरवत्तम् प्रधानस्य होमसंयोगादधिकमाज्यमतुल्यत्वाल्लोकवदुत्पत्तेर्गुणभूतत्वात् ।

३०. तत्संस्कारश्रुतेश्च ।

३१. ताभ्यां वा सह स्विष्टकृतः सकृत्त्वे द्विरभिधारणेन तदाप्तिवचनात् ।

३२. तुल्यवच्चाभिधाय सर्वेषु भक्त्यनुक्रमणात् ।

३३. साप्तदश्यवन्नियम्येत ।

३४. हविषो वा गुणभूतत्वात् तथाभूतविवक्षा स्यात् ।

३५. पुरोडाशाभ्यामित्याधिकृतानां पुराडाशयोरुपदेशस्तच्छ्रुतित्वाद्वैष्यस्तोमवत् ।

३६. न त्वनित्याधिकारोऽस्ति विधौ नित्येन सम्बन्धस्तस्मादवाक्यशेषत्वम् ।

३७. सति च नैकदेशेन कर्त्तुः प्रधानभूतत्वात् ।

३८. कृत्स्नत्वात्तु तथा स्तोमे ।

३९. कर्तुः स्यादिति चेत् ।
४०. न गुणार्थत्वात् प्राप्ते च नोपदेशार्थः ।
४१. कर्मणोस्तु प्रकरणे तन्न्यायत्वाद् गुणानां लिङ्गेन कालशास्त्रं स्यात् ।
४२. यदि तु सान्नाय्यं सोमयाजिनो न ताभ्यां समवायोऽस्ति विभक्तकालत्वात् ।
४३. अपि वा विहितत्वाद् गुणार्थायां पुनः श्रुतौ सन्देहे श्रुतिर्द्विदेवतार्था स्याद् यथानभिप्रेतः तथाऽऽग्नेयो दर्शनादेकदेवते ।
४४. विधिं तु बादरायणः ।
४५. प्रतिषिद्धविज्ञानाद् वा ।
४६. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
४७. उपांशुयाजमन्तरा यजतीति हविर्लिङ्गाश्रुतित्वाद् यथाकामी प्रतीयेत ।
४८. ध्रौवाद् वा सर्वसंयोगात् ।
४९. तद्वच्च देवतायां स्यात् ।
५०. तान्त्रीणां वा प्रकरणात् ।
५१. धर्माद्वा स्यात् प्रजापतिः ।
५२. देवतायास्त्वनिर्वचनं तत्र शब्दस्येह मृदुत्वं तस्मादिहाधिकारेण ।
५३. विष्णुर्वा स्याद्धौत्राम्नानादमावास्याहविश्च स्यात् हौत्रस्य तत्र दर्शनात् ।
५४. अपि वा पौर्णमास्यां स्यात् प्रधानशब्दसंयोगाद् गुणत्वान्मन्त्रो यथा प्रधानं स्यात् ।
५५. आनन्तर्य्यञ्च सान्नाय्यस्य पुरोडाशेन दर्शयति अमावास्याविकारे ।
५६. अग्नीषोमविधानात्तु पौर्णमास्यामुभयत्र विधीयते ।
५७. प्रतिषिद्ध्यविधानाद् वा विष्णुः समानदेशः स्यात् ।
५८. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
५९. न चानङ्ग सकृच्छ्रुतावुभयत्र विधीयेतासम्बन्धात् ।
६०. गुणानां च परार्थत्वात् प्रकृतौ विधिलिङ्गानि दर्शयति ।
६१. विकारे चाश्रुतित्वात् ।
६२. द्विपुरोडाशायां स्यादन्तरार्थत्वात् ।
६३. अजामिकरणार्थत्वाच्च ।
६४. तदर्थमिति चेन्न, तत्प्रधानत्वात् ।
६५. अशिष्टेन च सम्बन्धात् ।

६६. उत्पत्तेस्तु निवेशः स्याद् गुणस्यानुपरोधेनार्थस्य विद्यमानत्वाद् विधानादन्तरार्थस्य नैमित्तिकत्वात् तदभावेऽश्रुतौ स्यात्।

६७. उभयोस्तु विधानात्।

६८. गुणानाञ्च परार्थत्वादुपवेषवद्यदेति स्यात्।

६९. अनपायश्च कालस्य लक्षणं हि पुरोडाशौ।

७०. प्रशंसार्थमजामित्वम्।

॥ इति दशमाध्यायस्य अष्टमः पादः, दशमोऽध्यायश्च ॥

अथैकादशोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. प्रयोजनाभिसम्बन्धात् पृथक् सतां ततः स्यादैककर्म्यमेकशब्दाभिसंयोगात्।

२. शेषवद्वा प्रयोजनं प्रतिकर्म विभज्येत।

३. अविधानात्तु नैवं स्यात्।

४. शेषस्य हि परार्थत्वाद्विधानात् प्रतिप्रधानभावः स्यात्।

५. अङ्गानां तु शब्दभेदात् क्रतुवत् स्यात् फलान्यत्वम्।

६. अर्थभेदस्तु तत्रार्थेह्यैकार्थ्यादैककर्म्यम्।

७. शब्दभेदान्नेति चेत्।

८. कर्मार्थत्वात् प्रयोगे ताच्छब्द्यं स्यात् तदर्थत्वात्।

९. कर्तृविधेर्नानार्थत्वाद् गुणप्रधानेषु।

१०. आरम्भस्य शब्दपूर्वत्वात्।

११. एकेनापि समाप्येत कृतार्थत्वाद्यथा क्रत्वन्तरेषु प्राप्तेषु चोत्तरावत् स्यात्।

१२. फलाभावान्नेति चेत्।

१३. न कर्मसंयोगात् प्रयोजनमशब्ददोषं स्यात्।

१४. ऐकशब्द्यादिति चेत्।

१५. न अर्थपृथक्त्वात् समत्वादगुणत्वम्।

१६. विधेस्त्वेकश्रुतित्वादपर्य्यायविधानाद् नित्यवच्छुतभूताभिसंयोगात् अर्थेन युगपत् प्राप्तेर्यथाप्राप्तं स्वशब्दार्थो निवीतवत्तस्मात् सर्वप्रयोगे प्रवृत्तिः स्यात्।

१७. तथा कर्मोपदेशः स्यात्।

१८. क्रत्वन्तरेषु पुनर्वचनम् ।
१९. उत्तरास्वश्रुतित्वाद्विशेषाणां कृतार्थत्वात् स्वदोहे यथाकामी प्रतीयेत ।
२०. कर्मण्यारम्भभाव्यत्वात् कृषिवत् प्रत्यारम्भं फलानि स्युः ।
२१. अधिकारश्च सर्वेषां कार्य्यत्वादुपपद्यते विशेषः ।
२२. सकृत्तु स्यात् कृतार्थत्वादङ्गवत् ।
२३. शब्दार्थश्च तथा लोके ।
२४. अपि वा सम्प्रयोगे यथा-कामी सम्प्रतीयेताश्रुतित्वाद्विधिषु वचनानि स्युः ।
२५. ऐकशब्द्यात् तथाङ्गेषु ।
२६. लोके कर्माऽर्थलक्षणम् ।
२७. क्रियाणामर्थशेषत्वात् प्रत्यक्षोऽतस्तन्निर्वृत्त्याऽपवर्गः स्यात् ।
२८. धर्ममात्रे त्वदर्शनाच्छब्दार्थेनापवर्गः स्यात् ।
२९. क्रतुवच्चानुमानेनाभ्यासे फलभूमा स्यात् ।
३०. सकृद्वा कारणैकत्वात् ।
३१. परिमाणे चानियमे न स्यात् ।
३२. फलस्यारम्भनिर्वृत्तेः क्रतुषु स्यात् फलान्यत्वम् ।
३३. अर्थवांस्तु नैकत्वादभ्यासः स्यादनर्थको यथा भोजनमेकस्मिन्नर्थस्यापरिमाणत्वात् प्रधाने च क्रियार्थत्वादनियमः स्यात् ।
३४. पृथक्त्वाद्विधितः परिमाणं स्यात् ।
३५. अनभ्यासो वा प्रयोगवचनैकत्वात् सर्वस्य युगपच्छास्त्रादफलत्वाच्च कर्मणः स्यात् क्रियार्थत्वात् ।
३६. अभ्यासो वा छेदनसंमार्गाऽवदानेषु वचनात् सकृत्त्वस्य ।
३७. अनभ्यासस्तु वाच्यत्वात् ।
३८. बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यात् ।
३९. दृष्टः प्रयोग इति चेत् ।
४०. तथेह ।
४१. भक्त्येति चेत् ।
४२. तथेतरस्मिन् ।
४३. प्रथमं वा नियम्येत कारणादतिक्रमः स्यात् ।
४४. श्रुत्यर्थाविशेषात् ।

४५ (क). तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

४५ (ख). प्रकृत्या च पूर्ववत् तदासत्तेः ।

४६. उत्तरासु न यावत् स्वमपूर्वत्वात् ।

४७. यावत् स्वं वान्याविधानेनानुवादः स्यात् ।

४८. साकल्यविधानात् ।

४९. बह्वर्थत्वाच्च ।

५०. अग्निहोत्रे चाशेषवद्यवागूनियमः ।

५१. तथा पयःप्रतिशेधः कुमाराणाम् ।

५२. सर्वप्रायिणापि लिङ्गेन संयुज्यते देवताभिसंयोगात् ।

५३. प्रधानकर्मार्थत्वादङ्गानां तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् ।

५४. क्रमकोपश्च यौगपद्ये स्यात् ।

५५. तुल्यानां तु यौगपद्यमेकशब्दोपदेशात् स्याद्विशेषाग्रहणात् ।

५६. ऐकार्थ्यादव्यवायः स्यात् ।

५७. तथा चान्यार्थदर्शनं कामुकायनः ।

५८. तन्न्यायत्वादशक्तेरानुपूर्व्यं स्यात् संस्कारस्य तदर्थत्वात् ।

५९. असंस्पृष्टोऽपि तादर्थ्यात् ।

६०. विभवाद्वा प्रदीपवत् ।

६१. अर्थात्तु लोके विधिः प्रतिप्रधानं स्यात् ।

६२. सकृदिज्यां कामुकायनः परिमाणविरोधात् ।

६३. विधेस्त्वितरार्थत्वात् सकृदिज्याश्रुतिव्यतिक्रमः स्यात् ।

६४. विधिवत् प्रकरणाविभागे प्रयोगं बादरायणः ।

६५. अपि चैकेन सन्निधानमविशेषको हेतुः ।

६६. न विधेश्चोदितत्वात् ।

६७. व्याख्यातं तुल्यानां यौगपद्यमगृह्यमाणविशेषाणाम् ।

६८. भेदस्तु कालभेदाच्चोदनाव्यवायात् स्याद्विशिष्टानां विधिः प्रदानकालत्वात् ।

६९. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।

७०. विधिरिति चेन्न वर्तमानापदेशात् ।

॥ इति एकादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. एकदेशकालकर्तृत्वं मुख्यानामेकशब्दोपदेशात्।
२. अविधिश्चेत् कर्मणामभिसम्बन्धः प्रतीयेत तल्लक्षणार्थाभिसंयोगाद्विधित्वाच्चेतरेषां प्रतिप्रधानं भावः स्यात्।
३. अङ्गेषु च तदभावः प्रधानं प्रतिनिर्देशात्।
४. यदि तु कर्मणो विधिसम्बन्धः स्यादेकशब्द्यात् प्रधानार्थाभिसंयोगात्।
५. तथा चान्यार्थदर्शनम्।
६. श्रुतिश्चैषां प्रधानवत् कर्मश्रुतेः परार्थत्वात् कर्मणोऽश्रुतित्वाच्च।
७. अङ्गानि तु विधानत्वात् प्रधानेनोपदिश्येरन् तस्मात् स्यादेकदेशत्वम्।
८. द्रव्यदेवतं तथेति चेत्।
९. न चोदनाविधिशेषत्वात् नियमार्थो विशेषः।
१०. तेषु समवेतानां समवायात्तन्त्रमङ्गानि भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् तथा चान्यार्थदर्शनम्।
११. इष्टिराजसूयचातुर्मास्येष्वैककर्म्यादङ्गानां तन्त्रभावः स्यात्।
१२. कालभेदान्नेति चेत्।
१३. न एकदेशत्वात् पशुवत्।
१४. अपि वा कर्मपृथक्त्वात्तेषां तन्त्रविधानात् साङ्गानामुपदेशः स्यात्।
१५. तथा चान्यार्थदर्शनम्।
१६. तथा तदवयवेषु स्यात्।
१७. पशौ तु चोदनैकत्वात्तन्त्रस्य विप्रकर्षः स्यात्।
१८. तथा स्यादध्वरकल्पेष्टौ विशेषस्यैककालत्वात्।
१९. इष्टिरिति चैकवच्छुतिः।
२०. अपि वा कर्मपृथक्त्वात्तेषां तन्त्रविधानात् साङ्गानामुपदेशः स्यात्।
२१. प्रथमस्य वा कालवचनम्।
२२. फलैकत्वादिष्टिशब्दो यथान्यत्र।
२३. वसाहोमस्तन्त्रम् ऐकदेवतेषु स्यात् प्रदानस्यैककालत्वात्।
२४. कालभेदात्त्वावृत्तिर्देवताभेदे।
२५. अन्ते यूपाहुतिस्तद्वत्।
२६. इतरप्रतिषेधो वा।
२७. अशास्त्रत्वाच्च देशानाम्।

२८. अवभृथे प्रधानेऽग्निविकारः स्यान्न हि तद्धेतुरग्निसंयोगः ।

२९. द्रव्यदेवतावत् ।

३०. साङ्गो वा प्रयोगवचनैकत्वात् ।

३१. लिङ्गदर्शनाच्च ।

३२. शब्दविभागाच्च देवतानपनयः ।

३३. दक्षिणेऽग्नौ वरुणप्रघासेषु देशभेदात् सर्वं क्रियते ।

३४. अचोदनेति चेत् ।

३५. स्यात्, पौर्णमासीवत् ।

३६. प्रयोगचोदनेति चेत् ।

३७. इहापि मारुत्याः प्रयोगश्चोद्यते ।

३८. आसादनमिति चेत् ।

३९. न उत्तरेणैकवाक्यत्वात् ।

४०. अवाच्यत्वात् ।

४१. आम्नायवचनं तद्वत् ।

४२. कर्तृभेदस्तथेति चेत् ।

४३. न समावायात् ।

४४. लिङ्गदर्शनाच्च ।

४५. वेदिसंयोगादिति चेत् ।

४६. न देशमात्रत्वात् ।

४७. एकाग्नित्वापरेषु तन्त्रैः स्यात् ।

४८. नाना वा कर्तृभेदात् ।

४९. पर्य्यग्निकृतानामुत्सर्गे प्राजापत्यानां कर्मोत्सर्गः श्रुतिसामान्यादारण्यवत्तस्माद् ब्रह्मसाम्नि चोदनापृथक्त्वं स्यात् ।

५०. संस्कारप्रतिषेधो वा वाक्यैकत्वे क्रतुसामान्यात् ।

५१. वपानां चानभिधारणस्य दर्शनात् ।

५२. पञ्चशारदीयास्तथेति चेत् ।

५३. न चोदनैकवाक्यत्वात् ।

५४. संस्काराणां च तद्दर्शनात् ।

५५. दशपेये क्रयप्रतिकर्षात् प्रतिकर्षः, ततः प्राचां तत्समानं तन्त्रं स्यात् ।

५६. समानवचनं तद्वत् ।

५७. अप्रकर्षो वाऽर्थहेतुत्वात् सहत्वं विधीयते ।
५८. पूर्वस्मिंश्चावभृथस्य दर्शनात् ।
५९. दीक्षाणां चोत्तरस्य ।
६०. समानः कालसामान्यात् ।
६१. निष्कासस्यावभृथे तदेकदेशत्वात् पशुवत् प्रदानविप्रकर्षः स्यात् ।
६२. अपनयो वा प्रतिषिद्धेनाभिसंयोगात् ।
६३. प्रतिपत्तिरिति चेन्न, कर्मसंयोगात् ।
६४. उदयनीये च तद्वत् ।
६५. प्रतिपत्तिर्वाऽकर्मसंयोगात् ।
६६. अर्थकर्म वा शेषत्वाच्छ्रयणवत्तदर्थेनविधानात् ।

॥ इति एकादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. अङ्गानां मुख्यकालत्वाद्वचनादन्यकालत्वम् ।
२. द्रव्यस्याकर्मकालनिष्पत्तेः प्रयोगः सर्वार्थः स्यात् स्वकालत्वात् ।
३. यूपश्चाकर्मकालत्वात् ।
४. एकयूपं च दर्शयति ।
५. संस्कारास्त्वावर्तेरन्नर्थकालत्वात् ।
६. तत्कालस्तु यूपकर्मत्वात्तस्य धर्मविधानात् सर्वार्थानां च वचनादन्यकालत्वम् ।
७. सकृन्मानं च दर्शयति ।
८. स्वरुस्तन्त्रापवर्गः स्यादस्वकालत्वात् ।
९. साधारणे वाऽनुनिष्पत्तिस्तस्य साधारणत्वात् ।
१०. सोमान्ते च प्रतिपत्तिदर्शनात् ।
११. तत्कालो वा प्रस्तरवत् ।
१२. न चोत्पत्तिवाक्यत्वात् प्रदेशात् प्रस्तरे तथा ।
१३. अहर्गणे विषाणाप्रासनं धर्मविप्रतिषेधादन्त्ये प्रथमे वाहनि विकल्पः स्यात् ।
१४. पाणेस्त्वश्रुतिभूतत्वाद्विषाणानियमः स्यात् प्रातः सवनमध्यत्वाच्छिष्टं चाभिप्रवृत्तत्वात् ।
१५. वाग्विसर्गो हविष्कृता बीजभेदे तथा स्यात् ।

१६. पशौ च पुरोडाशे समानतन्त्रं भवेत् ।
१७. अग्नियोगः सोमकाले तदर्थत्वात् संस्कृतकर्मणः परेषु साङ्गस्य तस्मात् सर्वापवर्गे विमोकः स्यात् ।
१८. प्रधानापवर्गे वा तदर्थत्वात् ।
१९. अवभृथे च तद्वत् प्रधानार्थस्य प्रतिषेधोऽपवृक्तार्थत्वात् ।
२०. अहर्गणे च प्रत्यहं स्यात् तदर्थत्वात् ।
२१. सुब्रह्मण्या तु तन्त्रं दीक्षावदन्यकालत्वात्
२२. तत्कालत्वादावर्तेत प्रयोगवतो विशेषसंयोगात् ।
२३. अप्रयोगाङ्गमिति चेत् ।
२४. स्यात् प्रयोगनिर्देशात् कर्तृभेदवत् ।
२५. तद्भूतस्थानादग्निवदिति चेत्, तदपवर्गस्तदर्थत्वात् ।
२६. अग्निवदिति चेत् ।
२७. न प्रयोगसाधारण्यात् ।
२८. लिङ्गदर्शनाच्च ।
२९. तद्धि तथेति चेत् ।
३०. न शिष्टत्वादितरन्यायत्वाच्च ।
३१. विध्येकत्वादिति चेत् ।
३२. न कृत्स्नस्य पुनः प्रयोगात् प्रधानवत् ।
३३. लौकिकेषु यथाकामी संस्कारानर्थलोपात् स्यात् ।
३४. यज्ञायुधानि धार्येरन् प्रतिपत्तिविधानादृजीषवत् ।
३५. यजमानसंस्कारो वा तदर्थः श्रूयते तत्र यथाकामी तदर्थत्वात् ।
३६. मुख्यसाधारणं वा मरणस्यानियतत्वात्
३७. यो वा यजनीयेऽहनि म्रियते सोऽधिकृतः स्यादुपवेषवत् ।
३८. न शास्त्रलक्षणत्वात् ।
३९. उत्पत्तिर्वा प्रयोजकत्वादाशिरवत् ।
४०. शब्दासामञ्जस्यमिति चेत् ।
४१. तथाऽऽशिरे ।
४२. शास्त्रात्तु विप्रयोगस्तत्रैकद्रव्यचिकीर्षा प्रकृतावथेहापूर्वार्थवद् भूतोपदेशः ।
४३. प्रकृत्यर्थत्वात् पौर्णमास्याः ।

४४. अग्न्याधेये वा विप्रतिषेधात्तानि धारयेन्मरणस्यानिमित्तत्वात् ।
४५. प्रतिपत्तिर्वा यथान्येषाम् ।
४६. उपरिष्टात् सोमानां प्राजापत्यैश्चरन्तीति सर्वेषामविशेषादवाच्यो हि प्रकृतिकालः ।
४७. अङ्गविपर्यासो विना वचनादिति चेत् ।
४८. न उत्कर्षः संयोगात् कालमात्रमितरत्र ।
४९. प्रकृतिकालासत्तेः शस्त्रवतामिति चेत् ।
५०. न श्रुतिप्रतिषेधात् ।
५१. विकारस्थाने इति चेत् ।
५२. न चोदनापृथक्त्वात् ।
५३. उत्कर्षे सूक्तवाकस्य न सोमदेवतानामुत्कर्षः पश्वनङ्गत्वाद् यथा निष्कर्षेऽनन्वयः ।
५४. वाक्यसंयोगाद् वोत्कर्षः समानतन्त्रत्वादर्थलोपादनन्वयः ।

॥ इति एकादशध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. चोदनैकत्वाद्राजसूयेऽनुक्तदेशकालानां समवायात्तन्त्रमङ्गानि ।
२. प्रतिदक्षिणं वा कर्तृसम्बन्धदिष्टिवदङ्गभूतत्वात् समुदायो हि तन्निर्वृत्त्या तदेकत्वादेकशब्दोपदेशः स्यात् ।
३. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
४. अनियमः स्यादिति चेत् ।
५. न उपदिष्टत्वात् ।
६. लाघवातिपत्तिश्च ।
७. प्रयोजनैकत्वात् ।
८. विशेषार्था पुनः श्रुतिः ।
९. अवेष्टौ चैकतन्त्र्यं स्याल्लिङ्गदर्शनात् ।
१०. वचनात् कामसंयोगेन ।
११. क्रत्वर्थायामिति चेन्न, वर्णसंयोगात् ।
१२. पवमानहविःष्वैकतन्त्र्यं प्रयोगवचनैकत्वात् ।
१३. लिङ्गदर्शनाच्च ।
१४. वर्तमानापदेशाद् वचनात्तु तन्त्रभेदः स्यात् ।

१५. सहत्वे नित्यानुवादः स्यात् ।
१६. द्वादशाहे तु प्रकृतित्वादेकैकमहरपवृज्येत कर्मपृथक्त्वात् ।
१७. अह्नां वा श्रुतिभूतत्वात् तत्र साङ्गं क्रियेत यथा माध्यन्दिने ।
१८. अपि वा फलकर्तृसम्बन्धात् सहप्रयोगः स्यादाग्नेयाग्नीषोमीयवत् ।
१९. साङ्गकालश्रुतित्वाद्वा स्वस्थानानां विकारः स्यात् ।
२०. तदपेक्षं च द्वादशाहत्वम् ।
२१. दीक्षोपसदां च संख्या पृथक्पृथक् प्रत्यक्षसंयोगात् ।
२२. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२३. चोदनापृथक्त्वे त्वैकतन्त्र्यं समवेतानां कालसंयोगात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।
२४. भेदस्तु तद्भेदात् कर्मभेदः प्रयोगे स्यात् तेषां प्रधानशब्दत्वात् ।
२५. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२६. श्वः सुत्यावचनं तद्वत् ।
२७. पश्वतिरेकश्च ।
२८. सुत्याविवृद्धौ सुब्रह्मण्याणां सर्वेषामुपलक्षणम् प्रकृत्यन्वयादावाहनवत् ।
२९. अपि वेन्द्राभिधानत्वात् सकृत् स्यादुपलक्षणम्, कालस्य लक्षणार्थत्वात्, अविभागाच्च ।
३०. पशुगणे कुम्भीशूलवपाश्रपणीनां प्रभुत्वात् तन्त्रभावः स्यात् ।
३१. भेदस्तु सन्देहाद् देवतान्तरे स्यात् ।
३२. अर्थाद्वा लिङ्गकर्म स्यात् ।
३३. अयाज्यत्वाद्वसानां भेदः स्यात् स्वयाज्याप्रदानत्वात् ।
३४. अपि वा प्रतिपत्तित्वात् तन्त्रं स्यात् स्वत्वस्याश्रुतिभूतत्वात् ।
३५. सकृदिति चेत् ।
३६. न कालभेदात् ।
३७. जात्यन्तरेषु भेदः पंक्तिवैषम्यात् ।
३८. वृद्धिदर्शनाच्च ।
३९. कपालानि च कुम्भीवत्तुल्यसंख्यानाम् ।
४०. प्रतिप्रधानं वा प्रकृतिवत् ।
४१. सर्वेषां चाभिप्रथनं स्यात् ।
४२. एकद्रव्ये संस्काराणां व्याख्यातमेककर्मत्वम् ।

४३. द्रव्यान्तरे कृतार्थत्वात् तस्य पुनः प्रयोगान्मन्त्रस्य च तद्गुणत्वात् पुनः प्रयोगः स्यात्तदर्थेन विधानात्।

४४. निर्वपणलवनतरणाज्यग्रहणेषु चैकद्रव्यवत् प्रयोजनैकत्वात्।

४५. द्रव्यान्तरवद्वा स्यात् तत्संस्कारात्।

४६. वेदिप्रोक्षणे मन्त्राभ्यासः कर्मणः पुनः प्रयोगात्।

४७. एकस्य वा गुणविधिः द्रव्यैकत्वात् तस्मात् सकृत् प्रयोगः स्यात्।

४८. कण्डूयने प्रत्यङ्गं कर्मभेदात् स्यात्।

४९. अपि वा चोदनैककालमैव कर्म्यं स्यात्।

५०. स्वप्ननदीतरणाभिवर्षणामेध्यप्रतिमन्त्रणेषु चैवम्।

५१. प्रयाणे त्वार्थनिर्वृत्तेः।

५२. उपरवमन्त्रस्तन्त्रं स्याल्लोकवद् बहुवचनात्।

५३. न सन्निपातित्वात् असन्निपातिकर्मणां विशेषग्रहणे कालैकत्वात् सकृद्वचनम्।

५४. हविष्कृदध्रिगुपुरोऽनुवाक्यामनोतस्यावृत्तिः कालभेदात् स्यात्।

५५. अध्रिगोश्च विपर्यासात्।

५६. करिष्यद्वचनात्।

॥ इति एकादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तश्चैकादशोऽध्यायः ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. तन्त्रिसमवाये चोदनातः समानानामेकतन्त्रत्वमतुल्येषु तु भेदः विधिप्रक्रमतादर्थ्यात् तादर्थ्ये श्रुतिकालनिर्देशात्।

२. गुणकालविकाराच्च तन्त्रभेदः स्यात्।

३. तन्त्रमध्ये विधानाद्वा मुख्यतन्त्रेण सिद्धिः स्या-त्तन्त्रार्थस्याविशिष्टत्वात्।

४. विकाराच्च न भेदः स्यादर्थस्याविकृतत्वात्।

५. एकेषां चाशक्यत्वात्।

६. एकाग्निवच्च दर्शनम्।

७. जैमिनेः परतन्त्रत्वापत्तेः स्वतंत्र प्रतिषेधः स्यात्।

८. नानार्थत्वात् सोमे दर्शपूर्णमासप्रकृतीनां वेदिकर्म स्यात्।

९. अकर्म वा कृतदूषा स्यात्।

१०. पात्रेषु च प्रसङ्गः स्याद्धोमार्थत्वात्।

११. न्याय्यानि वा प्रयुक्तत्वादप्रयुक्ते प्रसङ्गः स्यात् ।

१२. शामित्रे च पशुपुरोडाशो न स्यादितरस्य प्रयुक्तत्वात् ।

१३. श्रपणं वाऽग्निहोत्रस्य शालामुखीये न स्यात्, प्राजहितस्य विद्यमानत्वात् ।

१४. हविर्धाने निर्वपणार्थं साधयेतां प्रयुक्तत्वात् ।

१५. असिद्धिर्वाऽन्यदेशत्वात् प्रधानवैगुण्यादवैगुण्ये प्रसङ्गः स्यात् ।

१६. अनसाञ्च दर्शनात् ।

१७. तद्युक्तञ्च कालभेदात् ।

१८. मन्त्राश्च सन्निपातित्वात् ।

१९. धारणार्थत्वात् सोमेऽग्न्यन्वाधानं न विद्यते ।

२०. तथा व्रतमुपेतत्त्वात् ।

२१. विप्रतिषेधाच्च ।

२२. सत्यवदिति चेत् ।

२३. न संयोगपृथक्त्वात् ।

२४. ग्रहणार्थं च पूर्वमिष्टेस्तदर्थत्वात् ।

२५. शेषवदिति चेत् ।

२६. न वैश्वदेवो हि ।

२७. स्याद् वा व्यपदेशात् ।

२८. न गुणार्थत्वात् ।

२९. सन्नहनञ्च वृत्तत्वात् ।

३०. अन्यविधानादारण्यभोजनं न स्यादुभयं वृत्त्यर्थम् ।

३१. शेषभक्षास्तथेति चेत् । नः अन्यार्थत्वात्

३२. भृतत्वाच्च परिक्रयः ।

३३. शेषभक्षास्तथेति चेत् ।

३४. न कर्मसंयोगात् ।

३५. प्रवृत्तवरणात् प्रतितन्त्रवरणात् प्रतितन्त्रवरणं होतुः क्रियेत ।

३६. ब्रह्मापीति चेत् ।

३७. न प्राक् नियमात्तदर्थं हि ।

३८. निर्दिष्टस्येति चेत् ।

३९. न अश्रुतत्वात् ।

४०. होतुस्तथेति चेत् ।

४१. न कर्मसंयोगात् ।

४२. यज्ञोत्पत्त्युपदेशे निष्ठितकर्मप्रयोगभेदात् प्रतितन्त्रं क्रियेत ।

४३. न वा कृतत्वात् तदुपदेशो हि ।

४४. देशपृथक्त्वात् मन्त्रोऽभ्यावर्त्तते ।

४५. सन्नहनहरणे तथेति चेत् ।

४६. न अन्यार्थत्वात् ।

॥ इति द्वादशाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. विहारो लौकिकानामर्थं साधयेत् प्रभुत्वात् ।

२. मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् ।

३. निर्देशाद् वा वैदिकानां स्यात् ।

४. सति चौपासनस्य दर्शनात् ।

५. अभावदर्शनाच्च ।

६. मांसपाको विहितप्रतिषेधः स्यादाहुतिसंयोगात् ।

७. वाक्यशेषो वा दक्षिणेऽस्मिन्नराभ्य विधानस्य ।

८. सवनीये छिद्रापिधानार्थत्वात् पशुपुरोडाशो न स्यादन्येषामेवमर्थत्वात् ।

९. क्रिया वा देवतार्थत्वात् ।

१०. लिङ्गदर्शनाच्च ।

११. हविष्कृत्सवनीयेषु न स्यात् प्रकृतौ यदि सर्वार्था पशुं प्रत्याहूता सा कुर्याद् विद्यमानत्वात् ।

१२. पशौ तु संस्कृते विधानात् ।

१३. योगाद्वा यज्ञाय तद्विमोके विसर्गः स्यात् ।

१४. निशि यज्ञे प्रकृतस्याप्रवृत्तिः स्यात् प्रत्यक्षशिष्टत्वात् ।

१५. कालवाक्यभेदाच्च तन्त्रभेदः स्यात् ।

१६. वेद्युद्धननव्रतं विप्रतिषेधात्तदेव स्यात् ।

१७. तन्त्रमध्ये विधानाद्वा तत्तन्त्रा सवनीयवत् ।

१८. वैगुण्यादिध्माबर्हिर्न साधयेदग्न्यन्वाधानं च यदि देवतार्थम् ।

१९. आरम्भणीया विकृतौ न स्यात् प्रकृतिकालमध्यत्वात् कृता पुनस्तदर्थेन ।

२०. स्याद्वा कालस्याशेषभूतत्वात् ।
२१. आरम्भविभागाच्च ।
२२. विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात् सधर्मत्वम् ।
२३. मुख्यं वा पूर्वचोदनाल्लोकवत् ।
२४. तथा चान्यार्थदर्शनम् ।
२५. अङ्गगुणविरोधे च तादर्थ्यात् ।
२६. परिधिर्द्व्यर्थत्वादुभयधर्मा स्यात् ।
२७. यौप्यस्तु विरोधे स्यान्मुख्यानन्तर्यात् ।
२८. इतरो वा तस्य तत्र विधानात् ।
२९. उभयोश्चाङ्गसंयोगः ।
३०. पशुसवनीयेषु विकल्पः स्यात् वैकृतश्चेदुभयोरश्रुतिभूतत्वात् ।
३१. पाशुकं वा तस्य वैशेषिकाम्नानात्तदनर्थकं विकल्पे स्यात् ।
३२. पशोश्च विप्रकर्षस्तन्त्रमध्ये विधानात् ।
३३. अपूर्वं च प्रकृतौ समानतन्त्रा चेदनित्यत्वादनर्थकं हि स्यात् ।
३४. अधिकश्च गुणः साधारणेऽविरोधात् कांस्यभोजिवदमुख्येऽपि ।
३५. तत्प्रवृत्त्या तु तन्त्रस्य नियमः स्याद्यथा पाशुकं सूक्तवाकेन ।
३६. न वाऽविरोधात् ।
३७. शास्त्रलक्षणत्वाच्च ।

॥ इति द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. विश्वजिति वत्सत्वङ्नामधेयादितरथातन्त्रभूयस्त्वादहतं स्यात् ।
२. अविरोधो वा उपरिवासो हि वत्सत्वक् ।
३. अनुनिर्वाप्येषु भूयस्त्वेन तन्त्रनियमः स्यात् ।
४. आगन्तुकत्वाद्वा स्वधर्मा स्यात् श्रुतिविशेषादितरस्य च मुख्यत्वात् ।
५. स्वस्थानत्वाच्च ।
६. स्विष्टकृच्छ्रपणान्नेति चेत् ।
७. विकारः पवमानवत् ।
८. अविकारो वा प्रकृतिवच्चोदनां प्रति भावाच्च ।
९. एककर्मणि शिष्टत्वाद् गुणानां सर्वकर्म स्यात् ।
१०. एकार्थास्तु विकल्पेरन् समुच्चये ह्यावृत्तिः स्यात् प्रधानस्य ।

११. अभ्यस्येतार्थवत्त्वादिति चेत् ।

१२. न अश्रुतित्वात् ।

१३. सति चाभ्यासशास्त्रत्वात् ।

१४. विकल्पवच्च दर्शयति ।

१५. कालान्तरेऽर्थवत्त्वं स्यात् ।

१६. प्रायश्चित्तेषु चैकार्थ्यान्निष्पन्नेनाभिसंयोगः तस्मात् सर्वस्य निर्घातः ।

१७. समुच्चयस्त्वदोषनिर्घातार्थेषु ।

१८. मन्त्राणां कर्मसंयोगात् स्वधर्मेण प्रयोगः स्याद् धर्मस्य तन्निमित्तत्वात् ।

१९. विद्यां प्रति विधानाद्वा सर्वकालं प्रयोगः स्यात् कर्मार्थत्वात् प्रयोगस्य ।

२०. भाषास्वरोपदेशादैरवत्प्रायवचनप्रतिषेधः स्यात् ।

२१. मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः ।

२२. विकारः कारणाग्रहणे ।

२३. तन्न्यायत्वाददृष्टेऽप्येवम् ।

२४. तदुत्पेत्तर्वा प्रवचनलक्षणत्वात् ।

२५. मन्त्राणां करणार्थत्वात् मन्त्रान्तेन कर्मादिसन्निपातः स्यात् सर्वस्य वचनार्थत्वात् ।

२६. सन्ततवचनाद्धारायामादिसंयोगः ।

२७. कर्मसन्तानो वा नानाकर्मत्वादितरस्याशक्यत्वात् ।

२८. आधारे च दीर्घाधारत्वात् ।

२९. मन्त्राणां सन्निपातित्वादेकार्थानां विकल्पः स्यात् ।

३०. संख्याविहितेषु समुच्चयोऽसन्निपातित्वात् ।

३१. ब्राह्मणविहितेषु च संख्यावत् सर्वेषामुपदिष्टत्वात् ।

३२. याज्यावशट्कारयोश्च समुच्चयदर्शनं तद्वत् ।

३३. विकल्पो वा समुच्चयस्याश्रुतित्वात् ।

३४. गुणार्थत्वादुपदेशस्य ।

३५. वषट्कारे नानार्थत्वात् समुच्चयः ।

३६. हौत्रास्तु विकल्प्येरन्नेकार्थत्वात् ।

३७. समुच्चयो वा क्रियमाणानुवादित्वात् ।

३८. समुच्चयं च दर्शयति ।

॥ इति द्वादशाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. जपाश्चा कर्मयुक्ताः स्तुत्याशीरभिधानं च याजमानेसु समुच्चयः स्यादाशीः पृथक्त्वात् ।
२. समुच्चयं च दर्शयति ।
३. याज्यानुवाक्यासु तु विकल्पः स्याद् देवतोपलक्षणार्थत्वात् ।
४. लिङ्गदर्शनाच्च ।
५. क्रयणेषु त्वविकल्पः स्यादेकार्थत्वात् ।
६. समुच्चयो वा प्रयोगद्रव्यसमवायात् ।
७. समुच्चयं च दर्शयति ।
८. संस्कारे च तत्प्रधानत्वात् ।
९. संख्यासु तु विकल्पः स्यात् श्रुतिविप्रतिषेधात् ।
१०. द्रव्यविकारं तु पूर्ववदर्थकर्म स्यात् तथा विकल्पेन नियमः प्रधानत्वात् ।
११. द्रव्यत्वेऽपि समुच्चयो द्रव्यकर्मनिष्पत्तेः प्रतिपशु कर्मभेदादेवं सति यथाप्रकृति ।
१२. कपालेऽपि तथेति चेत् ।
१३. न कर्मणः परार्थत्वात् ।
१४. प्रतिपत्तिस्तु शेषत्वात् ।
१५. श्रृतेऽपि पूर्ववत्त्वात् स्यात् ।
१६. विकल्पोऽन्वर्थकर्मनियमप्रधानत्वात् शेषे च कर्मकार्य्यसमवायात्, तस्मात् तेनार्थकर्म स्यात् ।
१७. उखायां काम्यनित्यसमुच्चयो नियोगे कामदर्शनात् ।
१८. असति चासंस्कृतेषु कर्म स्यात् ।
१९. तस्य च देवतार्थत्वात् ।
२०. विकारो वा तदुक्तहेतुः ।
२१. वचनादसंस्कृतेषु कर्म स्यात् ।
२२. संसर्गे चापि दोषः स्यात् ।
२३. वचनादिति चेत् ।
२४. तथेतरस्मिन् ।
२५. उत्सर्गेऽपि परिग्रहः कर्मणः कृतत्वात् ।
२६. स आहवनीयः स्यादाहुतिसंयोगात् ।

२७. अन्यो वोद्धृत्याहरणात् ।

२८. तस्मिंस्तु संस्कारकर्म शिष्टत्वात् ।

२९. स्थानाद्वा परिलुप्येरन् ।

३०. नित्यधारणे विकल्पो न ह्यकस्मात् प्रतिषेधः स्यात् ।

३१. नित्यधारणाद्वा प्रतिषेधो गतश्रियः ।

३२. परार्थान्येको यजमानगणे ।

३३. अनियमोऽविशेषात् ।

३४. मुख्यो वा विप्रतिषेधात् ।

३५. सत्रे गृहपतिसंयोगाद्धौत्रवत् ।

३६. आम्नायवचनाच्च ।

३७. सर्वैर्वा तदर्थत्वात् ।

३८. गृहपतिरिति च समाख्यासामान्यात् ।

३९. विप्रतिषेधे परम् ।

४०. हौत्रे परार्थत्वात् ।

४१. वचनं परम् ।

४२. प्रभुत्वादार्त्विज्यं सर्ववर्णानां स्यात् ।

४३. स्मृतेर्वा स्याद् ब्राह्मणानाम् ।

४४. फलचमसविधानाच्चेतरेषाम् ।

४५. सान्नाय्येप्येवं प्रतिषेधोऽसोमपीयहेतुत्वात्

४६. चतुर्धाकरणे च निर्देशात् ।

४७. अन्वाहार्ये च दर्शनात् ।

॥ इति द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

॥ सम्पूर्णश्च द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ मीमांसाशास्त्रञ्च सम्पूर्णम् ॥

श्री वेदव्यासकृतम् वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठः

(३) ॥ वेदान्तदर्शनम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।
२. जन्माद्यस्य यतः ।
३. शास्त्रयोनित्वात् ।
४. तत्तु समन्वयात् ।
५. ईक्षतेर्नाशब्दम् ।
६. गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ।
७. तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ।
८. हेयत्वावचनाच्च ।
९. स्वाप्ययात् ।
१०. गतिसामान्यात् ।
११. श्रुतत्वाच्च ।
१२. आनन्दमयोऽभ्यासात् ।
१३. विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ।
१४. तद्धेतुव्यपदेशाच्च ।
१५. मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ।
१६. नेतरोऽनुपपत्तेः ।
१७. भेदव्यपदेशाच्च ।
१८. कामाच्च नानुमानापेक्षा ।
१९. अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ।
२०. अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ।
२१. भेदव्यपदेशाच्चान्यः ।
२२. आकाशस्तल्लिङ्गात् ।
२३. अत एव प्राणः ।
२४. ज्योतिश्चरणाभिधानात् ।
२५. छन्दोऽभिधान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् ।

२६. भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ।
२७. उपदेशभेदान्नेति चेन्न, उभयस्मिन्नप्यविरोधात् ।
२८. प्राणस्तथानुगमात् ।
२९. न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्ध भूमा ह्यस्मिन् ।
३०. शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ।
३१. जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्न, उपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे
प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।
२. विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।
३. अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ।
४. कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।
५. शब्दविशेषात् ।
६. स्मृतेश्च ।
७. अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न, निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।
८. सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न, वैशेष्यात् ।
९. अत्ता चराचरग्रहणात् ।
१०. प्रकरणाच्च ।
११. गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।
१२. विशेषणाच्च ।
१३. अन्तर उपपत्तेः ।
१४. स्थानादिव्यपदेशाच्च ।
१५. सुखविशिष्टाभिधानादेव च ।
१६. श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ।
१७. अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ।
१८. अन्तर्याम्यधिदेवादिषु तद्धर्म्मव्यपदेशात्
१९. न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ।
२०. शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ।
२१. अदृश्यत्वादिगुणतो धर्मोक्तेः ।

२२. विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ।
२३. रूपोपन्यासाच्च ।
२४. वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ।
२५. स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ।
२६. शब्दादिभ्योऽन्तः प्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्नः, तथादृष्ट्युपदेशादसम्भवात् पुरुषमपि चैनमधीयते ।
२७. अत एव न देवता भूतं च ।
२८. साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ।
२९. अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ।
३०. अनुस्मृतेर्बादरिः ।
३१. सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथाहि दर्शयति ।
३२. आमनन्ति चैनमस्मिन् ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।
२. मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ।
३. नानुमानमतच्छब्दात् ।
४. प्राणभृच्च ।
५. भेदव्यपदेशात् ।
६. प्रकरणात् ।
७. स्थित्यदनाभ्यां च ।
८. भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ।
९. धर्मोपपत्तेश्च ।
१०. अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।
११. सा च प्रशासनात् ।
१२. अन्यभावव्यावृत्तेश्च ।
१३. ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् स ।
१४. दहर उत्तरेभ्यः ।
१५. गतिशब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गञ्च ।

१६. धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ।

१७. प्रसिद्धेश्च ।

१८. इतरपरामर्शात् स इति चेन्न असम्भवात्

१९. उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ।

२०. अन्यार्थश्च परामर्शः ।

२१. अल्पश्रुतेरिति चेत् तदुक्तम् ।

२२. अनुकृतेस्तस्य च ।

२३. अपि च स्मर्यते ।

२४. शब्दादेव प्रमितः ।

२५. हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ।

२६. तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् ।

२७. विरोधः कर्मणीति चेन्न अनेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ।

२८. शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।

२९. अत एव च नित्यत्वम् ।

३०. समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च ।

३१. मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ।

३२. ज्योतिषि भावाच्च ।

३३. भाव तु बादरायणोऽस्ति हि ।

३४. शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि ।

३५. क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ।

३६. संस्कारपरामर्शात् तद्भावाभिलापाच्च ।

३७. तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ।

३८. श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ।

३९. कम्पनात् ।

४०. ज्योतिर्दर्शनात् ।

४१. आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ।

४२. सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ।

४३. पत्यादिशब्देभ्यः ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः दर्शयति च ।
२. सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ।
३. तदधीनत्वादर्थवत् ।
४. ज्ञेयत्वावचनाच्च ।
५. वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।
६. त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।
७. महद्वच्च ।
८. चमसवदविशेषात् ।
९. ज्योतिरुपक्रमा तु तथा ह्यधीयत एके ।
१०. कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ।
११. न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ।
१२. प्राणादयो वाक्यशेषात् ।
१३. ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ।
१४. कारणत्वेन चाकाशादिषु यथा व्यपदिष्टोक्तेः ।
१५. समाकर्षात् ।
१६. जगद्वाचित्वात् ।
१७. जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत् तद्व्याख्यातम् ।
१८. अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्याभ्यामपि चैवमेके ।
१९. वाक्यान्वयात् ।
२०. प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ।
२१. उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिः ।
२२. अविस्थितेरिति काशकृत्स्नः ।
२३. प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।
२४. अभिध्योपदेशाच्च ।
२५. साक्षाच्चोभयाम्नानात् ।
२६. आत्मकृतेः परिणामात् ।
२७. योनिश्च हि गीयते ।
२८. एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः प्रथमोऽध्यायश्च ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रथमः पादः

१. स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ।

२. इतरेषां चानुपलब्धेः ।

३. एतेन योगः प्रत्युक्तः ।

४. न विलक्षणत्वादस्य तथात्वञ्च शब्दात् ।

५. अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ।

६. दृश्यते तु ।

७. असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ।

८. अपीतौ तद्वत् प्रसङ्गादसमञ्जसम् ।

९. न तु दृष्टान्तभावात् ।

१०. स्वपक्षदोषाच्च ।

११. तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ।

१२. एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ।

१३. भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत्।

१४. तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ।

१५. भावे चोपलब्धेः ।

१६. सत्त्वाच्चावरस्य ।

१७. असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्म्मान्तरेण वाक्यशेषात् ।

१८. युक्तेः शब्दान्तराच्च ।

१९. पटवच्च ।

२०. यथा च प्राणादि ।

२१. इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ।

२२. अधिकं तु भेदनिर्देशात् ।

२३. अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ।

२४. उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवृद्धिः ।

२५. देवादिवदपि लोके ।

२६. कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ।

२७. श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।

२८. आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ।

२९. स्वपक्षदोषाच्च ।

३०. सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ।
३१. विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ।
३२. न प्रयोजनवत्त्वात् ।
३३. लोकवत् तु लीलाकैवल्यम् ।
३४. वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ।
३५. न कर्माविभागादिति चेन्न अनादित्वात् ।
३६. उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ।
३७. सर्वधर्मोपपत्तेश्च ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ।
२. प्रवृत्तेश्च ।
३. पयोऽम्बुवच्चेत् तत्रापि ।
४. व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ।
५. अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ।
६. अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ।
७. पुरुषाश्मवदिति चेत् तथापि ।
८. अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ।
९. अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ।
१०. विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ।
११. महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ।
१२. उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ।
१३. समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ।
१४. नित्यमेव च भावात् ।
१५. रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ।
१६. उभयथा च दोषात् ।
१७. अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ।
१८. समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ।
१९. इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्न उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ।
२०. उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ।

२१. असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ।
२२. प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ।
२३. उभयथा च दोषात्।
२४. आकाशे चाविशेषात् ।
२५. अनुस्मृतेश्च ।
२६. नासतोऽदृष्टत्वात् ।
२७. उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ।
२८. नाभाव उपलब्धेः ।
२९. वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ।
३०. न भावोऽनुपलब्धेः ।
३१. क्षणिकत्वाच्च ।
३२. सर्वथानुपपत्तेश्च ।
३३. नैकस्मिन्नसम्भवात् ।
३४. एवं चात्माऽकार्त्स्न्यम् ।
३५. न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।
३६. अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ।
३७. पत्युरसामञ्जस्यात् ।
३८. सम्बन्धानुपपत्तेश्च ।
३९. अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ।
४०. करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ।
४१. अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ।
४२. उत्पत्त्यसम्भवात् ।
४३. न च कर्तुः करणम् ।
४४. विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ।
४५. विप्रतिषेधाच्च ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. न वियदश्रुतेः ।
२. अस्ति तु ।
३. गौण्यसम्भवात् ।
४. शब्दाच्च ।

५. स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ।
६. प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ।
७. यावद्विकारन्तु विभागो लोकवत् ।
८. एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ।
९. असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ।
१०. तेजोऽतस्तथा ह्याह ।
११. आपः ।
१२. पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ।
१३. तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ।
१४. विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ।
१५. अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्न अविशेषात् ।
१६. चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ।
१७. नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ।
१८. ज्ञोऽत एव ।
१९. उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ।
२०. स्वात्मना चोत्तरयोः ।
२१. नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्न इतराधिकारात्
२२. स्वशब्दोन्मानाभ्याञ्च ।
२३. अविरोधश्चन्दनवत् ।
२४. अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्न अभ्युपगमाद्धृदि हि ।
२५. गुणाद्वा लोकवत् ।
२६. व्यतिरेको गन्धवत् ।
२७. तथा च दर्शयति ।
२८. पृथगुपदेशात् ।
२९. तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ।
३०. यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्
३१. पुंस्त्वादिवत्तस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ।
३२. नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ।
३३. कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ।
३४. विहारोपदेशात् ।
३५. उपादानात् ।

३६. व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ।

३७. उपलब्धिवदनियमः ।

३८. शक्तिविपर्य्ययात् ।

३९. समाध्यभावाच्च ।

४०. यथा च तक्षोभयथा ।

४१. परात्तु तच्छ्रुतेः ।

४२. कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ।

४३. अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ।

४४. मन्त्रवर्णाच्च ।

४५. अपि च स्मर्यते ।

४६. प्रकाशादिवन्नैवं परः ।

४७. स्मरन्ति च ।

४८. अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ।

४९. असन्ततेश्चाव्यतिकरः ।

५०. आभास एव च ।

५१. अदृष्टानियमात् ।

५२. अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ।

५३. प्रदेशादिति चेन्न अन्तर्भावात् ।

॥ इति वैंयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. तथा प्राणाः ।

२. गौण्यसम्भवात् ।

३. तत्प्राक्श्रुतेश्च ।

४. तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ।

५. सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ।

६. हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ।

७. अणवश्च ।

८. श्रेष्ठश्च ।

९. न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ।

१०. चक्षुरादिवत्तु तत् सहशिष्ट्यादिभ्यः ।

११. अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ।
१२. पञ्चवृत्तिर्मनोवद् व्यपदिश्यते ।
१३. अणुश्च ।
१४. ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ।
१५. प्राणवता शब्दात् ।
१६. तस्य च नित्यत्वात् ।
१७. त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ।
१८. भेदश्रुतेः ।
१९. वैलक्षण्याच्च ।
२०. संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात्
२१. मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ।
२२. वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः द्वितीयोऽध्यायश्च ।

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रथमः पादः

१. तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ।
२. त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ।
३. प्राणगतेश्च ।
४. अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ।
५. प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न् ता एव ह्युपपत्तेः।
६. अश्रुतत्वादिति चेन्न इष्टादिकारिणां प्रतीतेः ।
७. भाक्तं वाऽनात्मवित्त्वात्तथा हि दर्शयति ।
८. कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्याम् यथेतमनेवं च ।
९. चरणादिति चेन्न उपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ।
१०. आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ।
११. सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ।
१२. अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ।
१३. संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।
१४. स्मरन्ति च ।
१५. अपि च सप्त ।
१६. तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ।

१७. विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ।
१८. न तृतीये तथोपलब्धेः ।
१९. स्मर्यतेऽपि च लोके ।
२०. दर्शनाच्च ।
२१. तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ।
२२. साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ।
२३. नातिचिरेण विशेषात् ।
२४. अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ।
२५. अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ।
२६. रेतः सिग्योगोऽथ ।
२७. योनेः शरीरम् ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. सन्ध्ये सृष्टिराह हि ।
२. निर्म्मातारं चैके पुत्रादयश्च ।
३. मायामात्रन्तु कार्त्स्न्येनाभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ।
४. सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ।
५. पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ।
६. देहयोगाद्वा सोऽपि ।
७. तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ।
८. अतः प्रबोधोऽस्मात् ।
९. स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ।
१०. मुग्धेऽर्धसम्पत्तिः परिशेषात् ।
११. न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ।
१२. न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ।
१३. अपि चैवमेके ।
१४. अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात् ।
१५. प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ।
१६. आह च तन्मात्रम् ।
१७. दर्शयति चाथोअपि स्मर्यते ।
१८. अत एव चोपमा सूर्य्यकादिवत् ।

१९. अम्बुदवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ।
२०. वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम् ।
२१. दर्शनाच्च ।
२२. प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ।
२३. तदव्यक्तमाह हि ।
२४. अपि च संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।
२५. प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं, प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ।
२६. अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ।
२७. उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ।
२८. प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ।
२९. पूर्ववद्वा ।
३०. प्रतिषेधाच्च ।
३१. परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ।
३२. सामान्यात् तु ।
३३. बुद्ध्यर्थः पादवत् ।
३४. स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ।
३५. उपपत्तेश्च ।
३६. तथान्यप्रतिषेधात् ।
३७. अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ।
३८. फलमत उपपत्तेः ।
३९. श्रुतत्वाच्च ।
४०. धर्मं जैमिनिरत एव ।
४१. पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ।
२. भेदान्नेति चेन्न एकस्यामपि ।
३. स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेऽधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः ।
४. दर्शयति च ।
५. उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत् समाने च ।

६. अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्न अविशेषात् ।
७. न वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवत्
८. संज्ञातश्चेत् तदुक्तमस्ति तु तदपि ।
९. व्याप्तेश्च समञ्जसम् ।
१०. सर्वाभेदादन्यत्रेमे ।
११. आनन्दादयः प्रधानस्य ।
१२. प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे ।
१३इतरे त्वर्थसामान्यात् ।
१४. आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ।
१५. आत्मशब्दाच्च ।
१६. आत्मगृहीतिरितवदुत्तरात् ।
१७. अन्वयादिति चेत् ? स्यादवधारणात् ।
१८. कार्य्याख्यानादपूर्वम् ।
१९. समान एवं चाभेदात् ।
२०. सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ।
२१. न वा विशेषात् ।
२२. दर्शयति च ।
२३. सम्भृतिद्युव्याप्त्यापि चातः ।
२४. पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नात् ।
२५. वेधाद्यर्थभेदात् ।
२६. हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दः स्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ।
२७. साम्पराये कर्त्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये ।
२८. छन्दत उभयाविरोधात् ।
२९. गतेरर्थवत्त्वमुभयथा अन्यथा हि विरोधः
३०. उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ।
३१. अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ।
३२. यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ।
३३. अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम् ।
३४. इयदामननात् ।
३५. अन्तरा भूतग्रामवत् स्वात्मनः ।
३६. अन्यथा भेदानुपपत्तिरिति चेन्न उपदेशान्तरवत् ।

३७. व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् ।

३८. सैव हि सत्यादयः ।

३९. कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ।

४०. आदरादलोपः ।

४१. उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ।

४२. तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्ध्यप्रतिबन्धः फलम् ।

४३. प्रदानवदेव तदुक्तम् ।

४४. लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि ।

४५. पूर्वविकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रिया मानसवत् ।

४६. अतिदेशाच्च ।

४७. विद्यैव तु निर्धारणात् ।

४८. दर्शनाच्च ।

४९. श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ।

५०. अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टश्च तदुक्तम् ।

५१. न सामान्यादप्युपलब्धे-र्वृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ।

५२. परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ।

५३. एक आत्मनः शरीरे भावात् ।

५४. व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ।

५५. अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम्

५६. मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ।

५७. भूम्नः क्रतुवत् ज्यायस्त्वं तथा दर्शयति ।

५८. नानाशब्दादिभेदात् ।

५९. विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ।

६०. काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्न वाऽपूर्वहेत्वभावात् ।

६१. अङ्गेषु यथाश्रयभावः ।

६२. शिष्टेश्च ।

६३. समाहारात् ।

६४. गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ।

६५. न वा तत् सहभावाश्रुतेः ।

६६. दर्शनाच्च ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ।
२. शेषत्वात् पुरुषार्थवादो यथाऽन्येष्विति जैमिनिः ।
३. आचारदर्शनात् ।
४. तच्छ्रुतेः ।
५. समन्वारम्भणात् ।
६. तद्वतो विधानात् ।
७. नियमाच्च ।
८. अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ।
९. तुल्यं तु दर्शनम् ।
१०. असार्वत्रिकी ।
११. विभागः शतवत् ।
१२. अध्ययनमात्रवतः ।
१३. नाविशेषात् ।
१४. स्तुतयेऽनुमतिर्वा ।
१५. कामकारेण चैके ।
१६. उपमर्दञ्च ।
१७. ऊर्ध्वरेतःसु च शब्दे हि ।
१८. परामर्श जैमिनिरचोदना चापवदिति हि ।
१९. अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः।
२०. विधिर्वा धारणवत् ।
२१. स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्न अपूर्वत्वात्
२२. भावशब्दाच्च ।
२३. पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ।
२४. तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ।
२५. अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ।
२६. सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ।
२७. शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ।
२८. सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ।
२९. अबाधाच्च ।

३०. अपि च स्मर्यते ।
३१. शब्दश्चातोऽकामकारे ।
३२. विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ।
३३. सहकारित्वेन च ।
३४. सर्वथापि तु त एवोभयलिङ्गात् ।
३५. अनभिभवं च दर्शयति ।
३६. अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ।
३७. अपि च स्मर्य्यते ।
३८. विशेषानुग्रहश्च ।
३९. अतस्त्वितरज्यायो लिङ्गाच्च ।
४०. तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः ।
४१. न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात् तदयोगात् ।
४२. उपपूर्वमति त्वेके भावमशनवत् तदुक्तम् ।
४३. बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ।
४४. स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ।
४५. आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ।
४६. श्रुतेश्च ।
४७. सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।
४८. कृतस्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ।
४९. मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ।
५०. अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ।
५१. एहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ।
५२. एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तश्च तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रथमः पादः

१. आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।
२. लिङ्गाच्च ।
३. आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ।
४. न प्रतीके न हि सः ।
५. ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ।

६. आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ।
७. आसीनः सम्भवात् ।
८. ध्यानाच्च ।
९. अचलत्वं चापेक्ष्य ।
१०. स्मरन्ति च ।
११. यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ।
१२. आप्रायणात् तत्रापि हि दृष्टम् ।
१३. तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।
१४. इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ।
१५. अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।
१६. अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।
१७. अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ।
१८. यदेव विद्ययेति हि ।
१९. भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः पादः

१. वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ।
२. अत एव च सर्वाण्यनु ।
३. तन्मनः प्राण उत्तरात् ।
४. सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ।
५. भूतेषु तत्श्रुतेः।
६. नैकस्मिन् दर्शयतो हि ।
७. समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ।
८. तदापीते संसारव्यपदेशात् ।
९. सूक्ष्म प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः ।
१०. नोपमर्देनातः ।
११. अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ।
१२. प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात् ।
१३. स्पष्टो ह्यकेषाम् ।
१४. स्मर्य्यते च ।

१५. तानि परे तथा ह्याह ।
१६. अविभागो वचनात् ।
१७. तदोकोग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृति-योगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ।
१८. रश्म्यनुसारी ।
१९. निशि नेति चेन्न सम्बन्धात् यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ।
२०. अतश्चायनेऽपि हि दक्षिणे ।
२१. योगिनः प्रति च स्मर्य्यते स्मार्त्ते चैते।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

तृतीयः पादः

१. अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ।
२. वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम् ।
३. तडितोऽधिवरुणः सम्बन्धात् ।
४. आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात् ।
५. उभयव्यामोहात् तत्सिद्धेः ।
६. वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ।
७. कार्यं वादरिरस्य गत्युपपत्तेः ।
८. विशेषितत्वाच्च ।
९. सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ।
१०. कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।
११. स्मृतेश्च ।
१२. परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ।
१३. दर्शनाच्च ।
१४. न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ।
१५. अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथा च दोषात् तत्क्रतुश्च ।
१६. विशेषञ्च दर्शयति ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

१. सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ।
२. मुक्तः प्रतिज्ञानात् ।

३. आत्मा प्रकरणात् ।
४. अविभागेनैव दृष्टत्वात् ।
५. ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।
६. चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ।
७. एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।
८. सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ।
९. अत एव चानन्याधिपतिः ।
१०. अभावं बादरिराह ह्येवम् ।
११. भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ।
१२. द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ।
१३. तन्वभावे सन्ध्यवदुपपद्यते ।
१४. भावे जाग्रद्वत् ।
१५. प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ।
१६. स्वाप्ययसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ।
१७. जगद्व्यापारवर्ज्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।
१८. प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्न आधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ।
१९. विकारवर्ति च तथाहि स्थितिमाह ।
२०. दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ।
२१. भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ।
२२. अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।

॥ इति वैयासिकब्रह्मसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

॥ समाप्तं च वेदान्तदर्शनम् ॥

कपिलसांख्यसूत्रपाठः

(४) ॥ सांख्यदर्शनम् ॥

अथ विषयाख्यः प्रथमोऽध्यायः प्रथमः पादः

१. अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।
२. न दृष्टात् तत्सिद्धिर्निवृत्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात् ।
३. प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत् तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम् ।
४. सर्वासम्भवात् सम्भवेऽपि सत्त्वासम्भवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः ।
५. उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ।
६. अविशेषश्चोभयोः ।
७. न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः
८. स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम् ।
९. नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुपदेशः ।
१०. शुक्लपटवद् बीजवच्चेत् ।
११. शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः ।
१२. न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ।
१३. न देशयोगतोऽप्यस्मात् ।
१४. नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः ।
१५. असङ्गोऽयं पुरुष इति ।
१६. न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ।
१७. विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ।
१८. प्रकृतिनिबन्धनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम् ।
१९. न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।
२०. नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बन्धायोगात् ।
२१. वस्तुत्वे सिद्धान्तहानिः ।
२२. विजातीयद्वैतापत्तिश्च ।
२३. विरुद्धोभयरूपा चेत् ।
२४. न तादृक्पदार्थाप्रतीतेः ।
२५. न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ।
२६. अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्वम् ।

२७. नानादिविषयोपरागनिमित्तकोऽप्यस्य ।
२८. न बाह्याभ्यन्तरयोरुपरज्योपरञ्जकभावोऽपि देशव्यवधानात् स्रुघ्नस्थ-पाटलिपुत्रस्थयोरिव ।
२९. द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्न व्यवस्था ।
३०. अदृष्टवशाच्चेत् ।
३१. न द्वयोरेककालायोगादुपकार्योपकारकभावः ।
३२. पुत्रकर्मवदिति चेत् ।
३३. नास्ति हि तत्र स्थिर एकात्मा यो गर्भाधानादिना संस्क्रियेत ।
३४. स्थिरकार्यासिद्धेः क्षणिकत्वम् ।
३५. न प्रत्यभिज्ञाबाधात् ।
३६. श्रुतिन्यायविरोधाच्च ।
३७. दृष्टान्तऽसिद्धेश्च ।
३८. युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ।
३९. पूर्वापाये उत्तरायोगात् ।
४०. तद्भावे तदयोगादुभयव्यभिचारादपि न ।
४१. पूर्वभावमात्रे न नियमः ।
४२. न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ।
४३. तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ।
४४. शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ।
४५. अपवादमात्रमबुद्धानाम् ।
४६. उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ।
४७. अपुरुषार्थत्वमुभयथा ।
४८. न गतिविशेषात् ।
४९. निष्क्रियस्य तदसम्भवात् ।
५०. मूर्तत्वाद्घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धान्तः ।
५१. गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत् ।
५२. न कर्मणाऽप्यतद्धर्मत्वात् ।
५३. अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ।
५४. निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ।
५५. तद्योगोऽप्यविवेकान्न समानत्वम् ।

५६. विपर्ययाद् बन्धः ।
५७. नियतकारणात् तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ।
५८. प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम् ।
५९. वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः ।
६०. युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते ।
६१. अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः ।
६२. सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ।
६३. स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ।
६४. बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाऽहङ्कारस्य ।
६५. तेनान्तःकरणस्य ।
६६. ततः प्रकृतेः ।
६७. संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ।
६८. मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ।
६९. पारम्पर्येऽप्येकत्र परिनिष्ठेति संज्ञामात्रम् ।
७०. समानः प्रकृतेर्द्वयोः ।
७१. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।
७२. महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ।
७३. चरमोऽहङ्कारः ।
७४. तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ।
७५. आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्येऽप्यणुवत् ।
७६. पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ।
७७. परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ।
७८. तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ।
७९. नाऽवस्तुनो वस्तुसिद्धिः ।
८०. अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ।
८१. भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात् कुतस्तरां तत्सिद्धिः ।
८२. न कर्मण उपदानत्वाऽयोगात् ।
८३. नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ।

८४. तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ।
८५. दुःखाद्दुःखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोकः ।
८६. काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात् ।
८७. निजमुक्तस्य बन्धध्वं-समात्रं परं न समानत्वम् ।
८८. द्वयोरेकतरस्य वाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा, तत्साधकतमं यत् तत् त्रिविधं प्रमाणं ।
८९. त्रिविधं प्रमाणम् तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ।
९०. यत् सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ।
९१. योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ।
९२. लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बन्धाद्वा दोषः ।
९३. ईश्वरासिद्धेः ।
९४. मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः ।
९५. उभयथाप्यसत्करत्वम् ।
९६. मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासना सिद्धस्य वा
९७. तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ।
९८. विशेषकार्येष्वपि जीवानाम् ।
९९. सिद्धरूपबोद्धृत्वाद् वाक्यार्थोपदेशः ।
१००. अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम् ।
१०१. प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ।
१०२. आप्तोपदेशः शब्दः ।
१०३. उभयसिद्धिः प्रमाणात् तदुपदेशः ।
१०४. सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः ।
१०५. चिदवसानो भोगः ।
१०६. अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत् ।
१०७. अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः ।
१०८. नोभयं च तत्त्वाख्याने ।
१०९. विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ।
११०. सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः ।
१११. कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः ।
११२. वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत् ।

११३. तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धेर्नापलापः ।
११४. त्रिविधविरोधापत्तेः ।
११५. नासदुत्पादो नृशृङ्गवत् ।
११६. उपादाननियमात् ।
११७. सर्वत्र सर्वदा सर्वासम्भवात् ।
११८. शक्तस्य शक्यकरणात् ।
११९. कारणभावाच्च ।
१२०. न भावे भावयोगश्चेत् ।
१२१. नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ ।
१२२. नाशः कारणलयः ।
१२३. पारम्पर्यतोऽन्वेषणाद् बीजाङ्कुरवत् ।
१२४. उत्पत्तिवद्वा दोषः ।
१२५. हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।
१२६. आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा ।
१२७. त्रिगुणाचेतनत्वादि द्वयोः ।
१२८. प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योन्यं वैधर्म्यम् ।
१२९. लघ्वादिधर्मैः अन्योन्यं साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ।
१३०. उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत् ।
१३१. परिमाणात् ।
१३२. समन्वयात् ।
१३३. शक्तितश्चेति ।
१३४. तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा ।
१३५. तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम् ।
१३६. कार्यात् कारणानुमानं तत्साहित्यात् ।
१३७. अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात् ।
१३८. तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ।
१३९. सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न साधनम् ।
१४०. शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान् ।
१४१. संहतपरार्थत्वात् ।
१४२. त्रिगुणादिविपर्ययात् ।

१४३. अधिष्ठानाच्चेति ।

१४४. भोक्तृभावात् ।

१४५. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः ।

१४६. जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः ।

१४७. निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा ।

१४८. श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् ।

१४९. सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ।

१५०. जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ।

१५१. उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः ।

१५२. उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान् ।

१५३. एवमेकत्वेन परिवर्त्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः।

१५४. अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात् तत्सिद्धिरेकत्वात् ।

१५५. नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात् ।

१५६. विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम् ।

१५७. नान्धाऽदृष्ट्या चक्षुष्मतामनुपलम्भः ।

१५८. वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम् ।

१५९. अनादावद्य यावदभावाद्भविष्यदप्येवम्

१६०. इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ।

१६१. व्यावृत्तो भूयरूपः ।

१६२. साक्षात्सम्बन्धात् साक्षित्वम् ।

१६३. नित्यमुक्तत्वम् ।

१६४. औदासीन्यं चेति ।

१६५. उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात् ।

॥ इति कापिलसूत्रपाठे विषयाध्यायः प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ प्रधानकार्याख्यो द्वितीयोऽध्यायः

१. विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।

२. विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।

३. न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।

४. बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।

५. प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याऽध्यासिसिद्धिः

६. कार्यतस्तत्सिद्धेः ।
७. चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत् ।
८. अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ।
९. रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ।
१०. महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।
११. आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः ।
१२. दिक्कालावाकाशादिभ्यः ।
१३. अध्यवसायो बुद्धिः ।
१४. तत्कार्यं धर्मादिः ।
१५. महदुपरागाद्विपरीतम् ।
१६. अभिमानोऽहङ्कारः ।
१७. एकादश पञ्चतन्मात्रं यत्कार्यम् ।
१८. सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात् ।
१९. कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।
२०. आहङ्कारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ।
२१. देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।
२२. तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च ।
२३. अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठानम्
२४. शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम् ।
२५. न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।
२६. उभयात्मकं मनः ।
२७. गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।
२८. रूपादिरममलान्त उभयोः ।
२९. द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।
३०. त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।
३१. सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ।
३२. क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।
३३. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ।
३४. तन्निवृतावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।
३५. कुसुमवच्च मणिः ।

३६. पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ।
३७. धेनुवद्वत्साय ।
३८. करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ।
३९. इन्द्रियेषु साधकतमत्वगुणयोगात् कुठारवत् ।
४०. द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।
४१. अव्यभिचारात् ।
४२. तथाऽशेषसंस्काराधारत्वात् ।
४३. स्मृत्यानुमानाच्च ।
४४. सम्भवेन्न स्वतः ।
४५. आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।
४६. तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।
४७. समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत् ।

॥ इति कापिलसूत्रपाठे प्रधानकार्याख्यो द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ वैराग्याख्यस्तृतीयोऽध्यायः

१. अविशेषाद्विशेषारम्भः ।
२. तस्माच्छरीरस्य ।
३. तद्बीजात् संसृतिः ।
४. आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ।
५. उपभोगादितरस्य ।
६. सम्प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम् ।
७. मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न तथा ।
८. पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।
९. सप्तदशैकं लिङ्गम् ।
१०. व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।
११. तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।
१२. न स्वातन्त्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ।
१३. मूर्तत्वेऽपि न सङ्घातयोगात् तरणिवत् ।
१४. अणुपरिमाणं तत् कृतिश्रुतेः ।
१५. तदन्नमयत्वश्रुतेश्च ।
१६. पुरुषार्थं संसृतिर्लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः ।

१७. पाञ्चभौतिको देहः ।
१८. चातुर्भौतिकमित्येके ।
१९. एकभौतिकमित्यपरे ।
२०. न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।
२१. प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च ।
२२. मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सांहित्ये तदुद्भवः ।
२३. ज्ञानान्मुक्तिः ।
२४. बन्धो विपर्ययात् ।
२५. नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ।
२६. स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।
२७. इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ।
२८. सङ्कल्पितेऽप्येवम् ।
२९. भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।
३०. रागोपहतिर्ध्यानम् ।
३१. वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।
३२. धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।
३३. निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।
३४. स्थिरसुखमासनम् ।
३५. स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।
३६. वैराग्यादभ्यासाच्च ।
३७. विपर्ययभेदाः पञ्च ।
३८. अशक्तिरष्टाविंशतिधा तु ।
३९. तुष्टिर्नवधाः ।
४०. सिद्धिरष्टधा ।
४१. अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।
४२. एवमितरस्याः ।
४३. आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः ।
४४. ऊहादिभिः सिद्धिः ।
४५. नेतरादितरहानेन विना ।
४६. दैवादिप्रभेदाः ।

४७. आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।
४८. ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ।
४९. तमोविसाला मूलतः ।
५०. मध्ये रजोविशाला ।
५१. कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।
५२. आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ।
५३. समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।
५४. न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।
५५. अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।
५६. स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।
५७. ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।
५८. प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।
५९. अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।
६०. कर्मवद् दृष्टेर्वा कालादेः ।
६१. स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।
६२. कर्माकृष्टेर्वानादितः ।
६३. विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।
६४. इतर इतरवत् तद्दोषात् ।
६५. द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।
६६. अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्यैवोरगः ।
६७. कर्मनिमित्तयोगाच्च ।
६८. नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।
६९. नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ।
७०. दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।
७१. नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।
७२. प्रकृतेराञ्जस्यात् ससङ्गत्वात् पशुवत् ।
७३. रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्विमोचयत्येकरूपेण ।
७४. निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ।
७५. तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः।
७६. अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ।

७७. बाधितानुवृत्त्या मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।
७८. जीवन्मुक्तश्च ।
७९. उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।
८०. श्रुतिश्च ।
८१. इतरथान्धपरम्परा ।
८२. चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ।
८३. संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।
८४. विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात् ।

॥ इति कापिलसूत्रपाठे वैराग्यख्यस्तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ आख्यायिकाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः

१. राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात् ।
२. पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि ।
३. आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।
४. पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ।
५. श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम्
६. अहिनिर्ल्वयनीवत् ।
७. छिन्नहस्तवद्वा ।
८. असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत् ।
९. बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत् ।
१०. द्वाभ्यामपि तथैव ।
११. निराशः सुखी पिङ्गलावत् ।
१२. अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत् ।
१३. बहुशास्त्रगुरुपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत् ।
१४. इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः ।
१५. कृतनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत् ।
१६. तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत् ।
१७. नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत् ।
१८. दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ।
१९. प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत् ।
२०. न कालनियमो वामदेववत् ।

२१. अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ।
२२. इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः ।
२३. विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् ।
२४. लब्धातिशययोगाद्वा तद्वत् ।
२५. न कामचारित्वं रागोपहते शुकवत् ।
२६. गुणयोगाद् बद्धः शुकवत् ।
२७. न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत् ।
२८. दोषदर्शनादुभयोः ।
२९. न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ।
३०. नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत् ।
३१. न तज्जस्यापि तद्रूपता पङ्कजवत् ।
३२. न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ।

॥ इति कापिलसूत्रपाठे आख्यायिकाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ परपक्षनिर्जयाख्यः पञ्चमोऽध्यायः

१. मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ।
२. नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः ।
३. स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत् ।
४. लौकिकेश्वरवदितरथा ।
५. पारिभाषिको वा ।
६. न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात् ।
७. तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः ।
८. प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः ।
९. सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् ।
१०. प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ।
११. सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ।
१२. श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ।
१३. नाविद्याशक्तियोगो निःसङ्गस्य ।
१४. तद्योगे तत्सिद्धावन्योन्याश्रयत्वम् ।
१५. न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः ।
१६. विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसङ्गः ।

१७. अबाधे नैष्फल्यम् ।
१८. विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम् ।
१९. तद्रूपत्वे सादित्वम् ।
२०. न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ।
२१. श्रुतिलिङ्गादिभिस्तत्सिद्धिः ।
२२. न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात् ।
२३. उभयत्राप्येवम् ।
२४. अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः ।
२५. अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ।
२६. गुणादीनां च नात्यन्तबाधः ।
२७. पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः ।
२८. न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः ।
२९. नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ।
३०. न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ।
३२. आधेयशक्तियोग इति पंचशिखः ।
३३. न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः ।
३४. विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ।
३५. पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ।
३६. आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।
३७. वाच्यवाचकभावः सम्बन्धः शब्दार्थयोः ।
३८. त्रिभिः सम्बन्धसिद्धिः ।
३९. न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।
४०. लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः ।
४१. न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद् वेदस्य तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात् ।
४२. न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।
४३. निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।
४४. योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।
४५. न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।
४६. न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।
४७. मुक्ताऽमुक्तयोरयोग्यत्वात् ।

४८. नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ।
४९. तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ।
५०. यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।
५१. निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।
५२. नासतः ख्यानं नृश्रृङ्गवत् ।
५३. न सतो बाधदर्शनात् ।
५४. नानिर्वचनीयसरू तदभावात् ।
५५. नान्यथाख्यातिः स्ववचोव्याघातात् ।
५६. सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।
५७. प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः
५८. न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः ।
५९. पूर्वसिद्धसत्त्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेव घटस्य ।
६०. सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत् सिद्धसाधनम् ।
६१. नाद्वैतमात्मनो लिङ्गात् तद्भेदप्रतीतेः ।
६२. नानात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् ।
६३. नोभाभ्यां तेनैव ।
६४. अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।
६५. नात्माविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसङ्गत्वात् ।
६६. नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।
६७. दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।
६८. विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।
६९. न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा ।
७०. सक्रियत्वाद् गतिश्रुतेः।
७१. न निर्भागत्वं तद्योगाद् घटवत् ।
७२. प्रकृतिपुरुषयोरन्यत् सर्वमनित्यम् ।
७३. न भागलाभो भागिनो निर्भागत्वश्रुतेः
७४. नानंदाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ।
७५. न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।
७६. न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।
७७. नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।

७८. न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।
७९. एवं शून्यमपि ।
८०. संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभोऽपि ।
८१. न भागियोगो भागस्य ।
८२. नाणिमादियोगोऽप्यवश्यम्भावित्वात् तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।
८३. नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।
८४. न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहङ्कारिकत्वश्रुतेः ।
८५. न षट्पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ।
८६. षोडशादिष्वप्येवम् ।
८७. नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ।
८८. न निर्भागत्वं कार्यत्वात् ।
८९. न रुपनिबन्धात् प्रत्यक्षनियमः ।
९०. न परिमाणचातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगाच्च
९१. अनित्यत्वेऽपि स्थिरतायोगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ।
९२. न तदपलापस्तस्मात् ।
९३. नान्यनिवृतिरूपत्वं भावप्रतीतेः ।
९४. न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः ।
९५. निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्यात् तदुपलब्धेः ।
९६. न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धोऽपि ।
९७. न सम्बन्धनित्यतोभयानित्यत्वात् ।
९८. नातः सम्बन्धो धर्मिग्राहकप्रमाणबाधात् ।
९९. न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ।
१००. उभयत्राऽप्यन्यथासिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ।
१०१. नानुमेयत्वमेव क्रियाया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ।
१०२. न पाञ्चभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ।
१०३. न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ।
१०४. नाप्राप्तप्रकाशकत्व-मिन्द्रियाणामप्राप्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ।
१०५. न तेजोऽपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तितस्तत्सिद्धेः ।
१०६. प्राप्तायार्थप्रकाशलिङ्गाद् वृत्तिसिद्धिः ।
१०७. भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बन्धार्थं सर्पतीति ।

१०८. न द्रव्यं नियमस्तद्योगात् ।

१०९. न देशभेदेऽप्यन्योपादानतास्मदादिवन्नियमः ।

११०. निमित्तव्यपदेशात् तद्व्यपदेशः ।

१११. ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिकमांसिद्धिकं चेति न नियमः ।

११२. सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात् तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ।

११३. न देहारम्भकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्तितस्तत्सिद्धेः ।

११४. भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसङ्गात् ।

११५. भृत्यद्वारा स्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात् ।

११६. समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।

११७. द्वयोः सबीजमन्यत्र तद्धतिः ।

११८. द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्नतु द्वौ ।

११९. वासनया न स्वार्थख्यापनं दोषयोगेऽपि न निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।

१२०. एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको न तु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा, बहुकल्पनाप्रसक्तेः ।

१२१. न बाह्यबुद्धिनियमः वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ।

१२२. स्मृतेश्च ।

१२३. न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।

१२४. त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।

१२५. न किञ्चिदप्यनुशयिनः ।

१२६. न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ।

१२७. आश्रयासिद्धेश्च ।

१२८. योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।

१२९. न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ।

॥ इति सांख्यसूत्रपाठे परपक्षनिर्जयाख्यः पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ तन्त्राख्यः षष्ठोऽध्यायः

१. अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ।

२. देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ।

३. षष्ठीव्यपदेशादपि ।

४. न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ।
५. अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ।
६. यथा दुःखात् क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ।
७. कुत्रापि कोऽपि सुखीति ।
८. तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ।
९. सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमिति चेन्न द्वैविध्यात् ।
१०. निर्गुणत्वमात्मनोऽसङ्गत्वादिश्रुतेः ।
११. परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।
१२. अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ।
१३. न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ।
१४. प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ।
१५. अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात् ।
१६. प्रकारान्तरासम्भवादविवेक एव बन्धः ।
१७. न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ।
१८. अपुरुषार्थत्वमन्यथा ।
१९. अविशेषापत्तिरुभयोः ।
२०. मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः ।
२१. तत्राप्यविरोधः ।
२२. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।
२३. दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम् ।
२४. स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ।
२५. ध्यानं निर्विषयं मनः ।
२६. उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ।
२७. निःसङ्गेऽप्युपरागोऽविवेकात् ।
२८. जपास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः ।
२९. ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।
३०. लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः ।
३१. न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ।
३२. प्रकृतेराद्योपादानतान्येषां कार्यत्वश्रुतेः ।
३३. नित्यत्वेऽपि नात्मनो योगात्वाभावात् ।

३४. श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ।
३५. पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् ।
३६. सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ।
३७. गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ।
३८. प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ।
३९. सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ।
४०. अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।
४१. कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ।
४२. साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम् ।
४३. विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ।
४४. नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ।
४५. पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः ।
४६. उपाधिश्चेत् तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम् ।
४७. द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः ।
४८. द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साधकाभावात् ।
४९. प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः ।
५०. जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ।
५१. न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः ।
५२. जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात् ।
५३. प्रकारान्तरासम्भवात् सदुत्पत्तिः ।
५४. अहङ्कारः कर्ता न पुरुषः ।
५५. चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ।
५६. चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ।
५७. लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ।
५८. पारम्पर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ।
५९. गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद्भोगदेशकाललाभो व्योमवत् ।
६०. अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसङ्गान्न तत्सिद्धिः ।
६१. अदृष्टद्वारा चेदसम्बन्धस्य तदसम्भवाज्जलादिवदङ्कुरे ।
६२. निगुर्णत्वात् तदसम्भवादहङ्कारधर्मा ह्येते ।
६३. विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ।
६४. अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात् ।

६५. अदृष्टोद्भूतिवत् समानत्वम् ।

६६. महतोऽन्यत् ।

६७. कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजाङ्कुरवत् ।

६८. अविवेकनिमित्तो वा पञ्चशिखः ।

६९. लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः ।

७०. यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ।

॥ इति कपिलमुनिविरचिते सांख्यसूत्रपाठे षष्ठस्तन्त्राध्यायः समाप्तः ॥

॥ समाप्तं च सांख्यदर्शनम् ॥

पातञ्जलयोगसूत्रपाठः

(५) ॥ योगदर्शनम् ॥

प्रथमः समाधिपादः

१. अथ योगानुशासनम् ।
२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।
४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ।
५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ।
६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।
७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।
८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।
९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।
१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।
११. अनुभूतविषयाऽसम्प्रमोषः स्मृतिः ।
१२. अभ्यासवैराग्यभ्यां तन्निरोधः ।
१३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ।
१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेवितोदृढभूमिः ।
१५. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम् ।
१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ।
१७. वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञातः ।
१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ।
१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।
२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।
२१. तीव्रसंवेगानामासन्नः ।
२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ।
२३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।
२४. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।
२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।

२६. स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

२७. तस्य वाचकः प्रणवः ।

२८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ।

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।

३०. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।

३१. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वास विक्षेपसहभुवः ।

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।

३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ।

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ।

३७. वीतरागविषयं वा चित्तम् ।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ।

३९. यथाभिमतध्यानाद्वा ।

४०. परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ।

४२. तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।

४४. एतयैव समविचारानिर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ।

४६. ता एव सबीजः समाधिः ।

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ।

४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।

४९. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ।

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ।

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ।

॥ इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे समाधिनिर्देशो नाम प्रथमः पादः ॥

द्वितीयः साधनपादः

१. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।
२. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ।
३. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ।
४. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।
५. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।
६. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।
७. सुखानुशयी रागः ।
८. दुःखानुशयी द्वेषः ।
९. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ।
१०. ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।
११. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।
१२. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।
१३. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।
१४. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।
१५. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।
१६. हेयं दुःखमनागतम् ।
१७. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।
१८. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।
१९. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ।
२०. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।
२१. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ।
२२. कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ।
२३. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।
२४. तस्य हेतुरविद्या ।
२५. तदभावे संयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम् ।
२६. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।
२७. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमौ प्रज्ञा ।
२८. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।

२९. यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि ।
३०. अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमः ।
३१. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौम महाव्रतम् ।
३२. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।
३३. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।
३४. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।
३५. तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।
३६. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।
३७. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।
३८. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।
३९. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ।
४०. शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।
४१. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयाऽऽत्मदर्शनयोग्यत्वानि च ।
४२. सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ।
४३. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।
४४. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।
४५. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।
४६. स्थिरसुखमासनम् ।
४७. प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम् ।
४८. ततो द्वन्द्वानभिघातः ।
४९. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।
५०. स तु बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।
५१. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।
५२. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।
५३. धारणासु च योग्यता मनसः
५४. स्वविषयासम्प्रयोगाभावे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।
५५. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।

॥ इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे साधननिर्देशो नाम द्वितीयः पादः ॥

तृतीयो विभूतिपादः

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।
२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।
३. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।
४. त्रयमेकत्र संयमः ।
५. तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।
६. तस्य भूमिषु विनियोगः ।
७. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः।
८. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ।
९. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधलक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ।
१०. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।
११. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।
१२. शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ।
१३. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः।
१४. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ।
१५. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।
१६. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।
१७. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम् ।
१८. संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम् ।
१९. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।
२०. न च तत् सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ।
२१. कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।
२२. एतेन शब्दाद्यन्तर्धानमुक्तम् ।
२३. सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ।
२४. मैत्र्यादिषु बलानि ।
२५. बलेषु हस्तिबलादीनि ।
२६. प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ।
२७. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।

२८. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।
२९. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ।
३०. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।
३१. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः।
३२. कूर्मनाड्या स्थैर्यम् ।
३३. मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।
३४. प्रातिभाद्वा सर्वम् सर्वनिमित्तानपेक्षम् ।
३५. हृदये चित्तसंवित् ।
३६. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थ-
संयमात् पुरुषज्ञानम् ।
३७. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।
३८. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।
३९. बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरप्रवेशः ।
४०. उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्गउत्क्रान्तिश्च ।
४१. समानजयाज्ज्वलनम् ।
४२. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ।
४३. कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ।
४४. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।
४५. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ।
४६. ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ।
४७. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ।
४८. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ।
४९. ततो मनोजवित्वं विकर-णभावः प्रधानजयश्च ।
५०. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।
५१. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।
५२. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ।
५३. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ।
५४. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ।
५५. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ।
५६. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ।

॥ इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे विभूतिनिर्देशो नाम तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः कैवल्यपादः

१. जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः।
२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।
३. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ।
४. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ।
५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम्
६. तत्र ध्यानजमनाशयः ।
७. कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।
८. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ।
९. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ।
१०. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ।
११. हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ।
१२. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ।
१३. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मनः ।
१४. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ।
१५. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ।
१६. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ।
१७. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।
१८. सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ।
१९. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ।
२०. एकसमये चोभयानवधारणम् ।
२१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ।
२२. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदा-कारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ।
२३. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।
२४. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ।
२५. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ।
२६. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।
२७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।
२८. हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ।
२९. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ।

३०. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ।

३१. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज् ज्ञेयमल्पम् ।

३२. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।

३३. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः।

३४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।

॥ इति पातञ्जलयोगसूत्रपाठे कैवल्यनिरूपणं नाम चतुर्थः पादः ॥

॥ समाप्तं च पातञ्जलयोगदर्शनसूत्रपाठः ॥

गौतमीयन्यायसूत्रपाठः

(६) ॥ न्यायदर्शनम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवित-ण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः।

२. दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।

३. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।

४. इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेशमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।

५. अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतोदृष्टञ्च।

६. प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्।

७. आप्तोपदेशः शब्दः।

८. स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्।

९. आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्।

१०. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

११. चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्।

१२. घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः।

१३. पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि।

१४. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः।

१५. बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्।

१६. युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।

१७. प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः।

१८. प्रवर्तनालक्षणा दोषाः।

१९. पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः।

२०. प्रवृत्तिदोषजनितोऽर्थः फलम्।

२१. बाधनालक्षणं दुःखम्।

२२. तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः।

२३. समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः ।

२४. यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते तत् प्रयोजनम् ।

२५. लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः ।

२६. तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः ।

२७. स चतुर्विधः सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यर्थान्तरभावात् ।

२८. सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः ।

२९. समानतन्त्रसिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्रसिद्धान्तः ।

३०. यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसिद्धान्तः ।

३१. अपरीक्षिताभ्युपगमात् तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धान्तः ।

३२. प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः ।

३३. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ।

३४. उदाहरणसाधर्म्यात् साध्यसाधनं हेतुः ।

३५. तथा वैधर्म्यात् ।

३६. साध्यसाधर्म्यात् तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम् ।

३७. तद्विपर्ययाद्वा विपरीतम् ।

३८. उदाहरणापेक्षस्तथेत्युपसंहारो न तथेति वा साध्यस्योपनयः ।

३९. हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनम् ।

४०. अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ।

४१. विमृश्यपक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे प्रथमाध्याये प्रथमाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धान्ताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रति-पक्षपरिग्रहो वादः ।

२. यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।

३. स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।

४. सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमातीतकाला हेत्वाभासाः ।

५. अनैकान्तिकः सव्यभिचारः ।

६. सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ।

७. यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः ।
८. साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः ।
९. कालात्ययापदिष्टः कालातीतः ।
१०. वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम् ।
११. तत् त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं चेति ।
१२. अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम् ।
१३. सम्भवतोऽर्थस्यातिसामान्ययोगादसम्भूतार्थकल्पना सामान्यच्छलम् ।
१४. धर्मविकल्पनिर्देशेऽर्थसद्भावप्रतिषेध उपचारच्छलम् ।
१५. वाक्छलमेवोपचारच्छलं तदविशेषात् ।
१६. न तदर्थान्तरभावात् ।
१७. अविशेषे वा किञ्चित्साधर्म्यादेकच्छलप्रसङ्गः ।
१८. साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः ।
१९. विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ।
२०. तद्विकल्पाज्जातिनिग्रहस्थानबहुत्वम् ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे प्रथमाध्याये द्वितीयमाह्निकम् प्रथमोऽध्यायश्च ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. समानानेकधर्माध्यवसायादन्यतरधर्माध्यवसायाद्वा न संशयः ।
२. विप्रतिपत्त्यव्यवस्थाध्यवसायाच्च ।
३. विप्रतिपत्तौ च सम्प्रतिपत्तेः ।
४. अव्यवस्थात्मनि व्यवस्थितत्वाच्चाव्यवस्थायाः ।
५. तथाऽत्यन्तसंशयस्तद्धर्मसातत्योपपत्तेः ।
६. यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात् संशयेनासंशयो नात्यन्तसंशयो वा ।
७. यत्र संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसङ्गः ।
८. प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ।
९. पूर्वं हि प्रमाणसिद्धौ नेन्द्रियार्थसन्निकर्षात् प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।
१०. पश्चात् सिद्धौ न प्रमाणेभ्यः प्रमेयसिद्धिः ।
११. युगपत्सिद्धौ प्रत्यर्थनियतत्वात् क्रमवृत्तित्वाभावो बुद्धीनाम् ।
१२. त्रैकाल्यासिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः ।
१३. सर्वप्रमाणप्रतिषेधाच्च प्रतिषेधासिद्धिः ।
१४. तत्प्रामाण्ये वा न सर्वप्रमाणविप्रतिषेधः ।

१५. त्रैकाल्याप्रतिषेधश्च शब्दादातोद्यसिद्धिवत्तत्सिद्धेः ।
१६. प्रमेयता च तुला प्रामाण्यवत् ।
१७. प्रमाणतः सिद्धेः प्रमाणानां प्रमाणान्तरसिद्धिप्रसङ्गः ।
१८. तद्विनिवृत्तेर्वा प्रमाणसिद्धिवत् प्रमेयसिद्धिः ।
१९. न प्रदीपप्रकाशवत् तत्सिद्धेः ।
२०. प्रत्यक्षलक्षणानुपपत्तिरसमग्रवचनात् ।
२१. नात्ममनसोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।
२२. दिग्देशकालाकाशेष्वप्येवं प्रसङ्गः ।
२३. ज्ञानलिङ्गत्वादात्मनो नानवरोधः ।
२४. तदयौगपद्यलिङ्गत्वाच्च न मनसः ।
२५. प्रत्यक्षनिमित्तत्वाच्चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षस्य स्वशब्देन वचनम् ।
२६. सुप्तव्यासक्तमनसां चेन्द्रियार्थयोः सन्निकर्षानिमित्तत्वात् ।
२७. तैश्चापदेशो ज्ञानविशेषाणाम् ।
२८. व्याहतत्वादहेतुः ।
२९. नार्थविशेषप्राबल्यात् ।
३०. प्रत्यक्षमनुमानमेकदेशग्रहणादुपलब्धेः ।
३१. न प्रत्यक्षेण यावत्तावदप्युपलम्भात् ।
३२. न चैकदेशोपलब्धिरवयविसद्भावात् ।
३३. साध्यत्वादवयविनि सन्देहः ।
३४. सर्वाग्रहणमवयव्यसिद्धेः ।
३५. धारणाऽऽकर्षणोपपत्तेश्च ।
३६. सेनावनवत् ग्रहणमिति चेन्नातीन्द्रियत्वादणूनाम् ।
३७. रोधोपघातसादृश्येभ्यो व्यभिचारादनुमानमप्रमाणम् ।
३८. न एकदेशत्राससादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ।
३९. वर्तमानाभावः पततः पतितपतितव्यकालोपपत्तेः ।
४०. तयोरप्यभावो वर्तमानाभावे तदपेक्षत्वात् ।
४१. नातीतानागतयोरितरेतारापेक्षासिद्धिः ।
४२. वर्तमानाभावे सर्वाग्रहणम्प्रत्यक्षानुपपत्तेः ।
४३. कृतताकर्तव्यतोपपत्तेरुभयथा ग्रहणम् ।
४४. अत्यन्तप्रायैकदेशसाधर्म्यादुपमानासिद्धिः ।
४५. प्रसिद्धसाधर्म्यादुपमानसिद्धेर्यथोक्तदोषानुपपत्तिः ।

४६. प्रत्यक्षेणाप्रत्यक्षसिद्धेः ।

४७. नाप्रत्यक्षे गवये प्रमाणार्थमुपमानस्य पश्यामः ।

४८. तथेत्युपसंहारादुपमानसिद्धेर्नाविशेषः ।

४९. शब्दोऽनुमानमर्थस्यानुपलब्धेरनुमेयत्वात् ।

५०. उपलब्धेरद्विप्रवृत्तित्वात् ।

५१. सम्बन्धाच्च ।

५२. आप्तोपदेशसामर्थ्याच्छब्दादर्थसंप्रत्ययः ।

५३. प्रमाणतोऽनुपलब्धेः ।

५४. पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च सम्बन्धाभावः ।

५५. शब्दार्थव्यवस्थानादप्रतिषेधः ।

५६. न सामयिकत्वाच्छब्दार्थसम्प्रत्ययस्य ।

५७. जातिविशेषे चानियमात् ।

५८. तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः ।

५९. न कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यात् ।

६०. अभ्युपेत्य कालभेदे दोषवचनात् ।

६१. अनुवादोपपत्तेश्च ।

६२. वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् ।

६३. विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ।

६४. विधिर्विधायकः ।

६५. स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः ।

६६. विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः ।

६७. नानुवादपुनरुक्तयोर्विशेषः शब्दाभ्यासोपपत्तेः ।

६८. शीघ्रतरगमनोपदेशवदभ्यासान्नाविशेषः ।

६९. मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. न चतुष्ट्यमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ।

२. शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्तिसम्भवाभावानामर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ।

३. अर्थापत्तिप्रमाणमनैकान्तिकत्वात् ।

४. अनर्थापत्तावर्थापत्त्यभिमानात् ।
५. प्रतिषेधाप्रामाण्यञ्चानैकान्तिकत्वात् ।
६. तत्प्रामाण्ये वा नार्थापत्त्यप्रामाण्यम् ।
७. नाभावप्रामाण्यं प्रमेयासिद्धेः ।
८. लक्षितेष्वलक्षणलक्षितत्वादलक्षितानां तत्प्रमेयसिद्धिः ।
९. असत्यर्थे नाभाव इति चेन्न, अन्यलक्षणोपपत्तेः ।
१०. तत्सिद्धेरलक्षितेष्वहेतुः ।
११. न लक्षणावस्थितापेक्षासिद्धेः ।
१२. प्रागुत्पत्तेरभावोपपत्तेश्च ।
१३. विमर्शहेत्वनुयोगे च विप्रतिपत्तेः संशयः ।
१४. आदिमत्त्वादैन्द्रियकत्वात् कृतकवदुपचाराच्च ।
१५. न घटाभावसामान्यनित्यत्वात् नित्येष्वप्यनित्यवदुपचाराच्च ।
१६. तत्त्वभाक्तयोर्नानात्वविभागादव्यभिचारः ।
१७. सन्तानानुमानविशेषणात् ।
१८. कारणद्रव्यस्य प्रदेशशब्देनाभिधानात् नित्येष्वप्यव्यभिचार इति ।
१९. प्रागुच्चारणादनुपलब्धेरावरणाद्यनुपलब्धेश्च ।
२०. तदनुपलब्धेरनुपलम्भादावरणोपपत्तिः ।
२१. अनुपलम्भादप्यनुपलब्धिसद्भाववन्नावरणानुपपत्तिरनुपलम्भात् ।
२२. अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ।
२३. अस्पर्शत्वात् ।
२४. न कर्मानित्यत्वात् ।
२५. न अणु नित्यत्वात् ।
२६. सम्प्रदानात् ।
२७. तदन्तरालानुपलब्धेरहेतुः ।
२८. अध्यापनादप्रतिषेधः ।
२९. उभयोः पक्षयोरन्यतरस्याध्यापनादप्रतिषेधः ।
३०. अभ्यासात् ।
३१. नान्यत्वेऽप्यभ्यासस्योपचारात् ।
३२. अन्यादन्यस्मादनन्यत्वादनन्यदित्यन्यताऽभावः ।
३३. तदभावे नास्त्यनन्यता तयोरितरेतरापेक्षसिद्धेः ।
३४. विनाशकारणानुपलब्धेः ।

३५. अश्रवणकारणानुपलब्धेः सततश्रवणप्रसङ्गः ।
३६. उपलभ्यमाने चानुपलब्धेरसत्त्वादनपदेशः ।
३७. पाणिनिमित्तप्रश्लेषाच्छब्दाभावे नानुपलब्धिः ।
३८. विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसङ्गः ।
३९. अस्पर्शत्वादप्रतिषेधः ।
४०. विभक्त्यन्तरोपपत्तेश्च समासे ।
४१. विकारादेशोपदेशात् संशयः ।
४२. प्रकृतिविवृद्धौ विकारविवृद्धेः ।
४३. न्यूनसमाधिकोपलब्धेर्विकाराणामहेतुः ।
४४. द्विविधस्यापि हेतोरभावादसाधनं दृष्टान्तः ।
४५. न अतुल्यप्रकृतीनां विकारविकल्पात् ।
४६. द्रव्यविकारे वैषम्यवद्वर्णविकारविकल्पः ।
४७. न विकारधर्मानुपपत्तेः ।
४८. विकारप्राप्तानामपुनरापत्तेः ।
४९. सुवर्णादीनां पुनरापत्तेरहेतुः ।
५०. न तद्विकाराणां सुवर्णभावाव्यतिरेकात् ।
५१. वर्णत्वाव्यतिरेकाद्वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ।
५२. सामान्यवतो धर्मयोगो न सामान्यस्य ।
५३. नित्यानामतीन्द्रियत्वात्तद्धर्मविकल्पाच्च वर्णविकाराणामप्रतिषेधः ।
५४. नित्यत्वेऽविकारादनित्यत्वे चानवस्थानात् ।
५५. अनवस्थायित्वे च वर्णोपलब्धिवत्तद्विकारोपपत्तिः ।
५६. विकारधर्मित्वे नित्यत्वाभावात् कालान्तरे विकारोपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ।
५७. प्रकृत्यनियमाद्वर्णविकाराणाम् ।
५८. अनियमे नियमान्नानियमः ।
५९. नियमानियमविरोधादनियमे नियमाच्चाप्रतिषेधः ।
६०. गुणान्तरापत्त्युपमर्दह्रासवृद्धिलेशश्लेषेभ्यस्तु विकारोपपत्तेर्वर्णविकारः ।
६१. ते विभक्त्यन्ताः पदम् ।
६२. तदर्थे व्यक्त्याकृतिजातिसन्निधावुपचारात् संशयः ।
६३. याशब्दसमूहत्यागपरिग्रहसंख्यावृद्ध्युपचयवर्णसमासानुबन्धानां व्यक्तावुपचाराद्व्यक्तिः ।
६४. न तदनवस्थानात् ।

६५. सहचरणस्थानतादर्थ्यवृत्तमानधारणसामीप्ययोगसाधनाधिपत्येभ्यो ब्राह्मणमञ्चकट राजशक्तु चन्दनगङ्गाशाटकान्नपुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचारः ।

६६. आकृतिस्तदपेक्षत्वात् सत्त्वव्यवस्थानसिद्धेः ।

६७. व्यक्त्याकृतियुक्तेऽप्यप्रसङ्गात् प्रोक्षणादीनां मृद्गवके जातिः ।

६८. नाकृतिव्यक्त्यपेक्षत्वाज्जात्यभिव्यक्तेः ।

६९. व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ।

७०. व्यक्तिर्गुणविशेषाश्रयो मूर्तिः ।

७१. आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या ।

७२. समानप्रसवात्मिका जातिः ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे द्वितीयाध्याये द्वितीयमाह्निकम् द्वितीयोऽध्यायश्च ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ।

२. न विषयव्यवस्थानात् ।

३. तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः ।

४. शरीरदाहे पातकाभावात् ।

५. तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ।

६. न कार्याश्रयकर्तृवधात् ।

७. सव्यदृष्टस्येतरेण प्रत्यभिज्ञानात् ।

८. नैकस्मिन्नासास्थिव्यवहिते द्वित्वाभिमानात् ।

९. एकविनाशे द्वितीयाविनाशान्नैकत्वम् ।

१०. अवयवनाशेऽप्यवयव्युपलब्धेरहेतुः ।

११. दृष्टान्तविरोधादप्रतिषेधः ।

१२. इन्द्रियान्तरविकारात् ।

१३. न स्मृतेः स्मर्त्तव्यविषयत्वात् ।

१४. तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः ।

१५. अपरिसङ्ख्यानाच्च स्मृतिविषयस्य ।

१६. न आत्मप्रतिपत्तिहेतूनां मनसि सम्भवात् ।

१७. ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ।

१८. नियमश्च निरनुमानः ।

१९. पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धात् जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः ।
२०. पद्मादिषु प्रबोधसम्मीलनविकारवत्तद्विकारः ।
२१. न उष्णाशीतवर्षाकालनिमित्तत्वात् पञ्चात्मकविकाराणाम् ।
२२. प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात् ।
२३. अयसोऽयस्कान्ताभिगमनवत्तदुपसर्पणम् ।
२४. न अन्यत्र प्रवृत्यभावात् ।
२५. वीतरागजन्मादर्शनात् ।
२६. सगुणद्रव्योत्पत्तिवत् तदुत्पत्तिः ।
२७. न सङ्कल्पनिमित्तत्वाद्रागादीनाम् ।
२८. पार्थिवं गुणान्तरोपलब्धेः ।
२९. श्रुतिप्रामाण्याच्च ।
३०. कृष्णसारे सत्युपलम्भाद्व्यतिरिच्य चोपलम्भात् संशयः ।
३१. महदणुग्रहणात् ।
३२. रश्म्यर्थसन्निकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम् ।
३३. तदनुपलब्धेरहेतुः ।
३४. नानुमीयमानस्य प्रत्यक्षतोऽनुपलब्धिरभावहेतुः ।
३५. द्रव्यगुणधर्मभेदाच्चोपलब्धिनियमः ।
३६. अनेकद्रव्यसमवायात् रुपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ।
३७. कर्मकारितश्चेन्द्रियाणां व्यूहः पुरुषार्थतन्त्रः ।
३८. अव्यभिचाराच्च प्रतिघातो भौतिकधर्मः
३९. मध्यन्दिनोल्काप्रकाशानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः ।
४०. न रात्रावप्यनुपलब्धेः
४१. बाह्यप्रकाशानुग्रहाद्विषयोपलब्धेरनभिव्यक्तितोऽनुपलब्धिः ।
४२. अभिव्यक्तौ चाभिभवात् ।
४३. नक्तञ्चरनयनरश्मिदर्शनाच्च ।
४४. अप्राप्य ग्रहणं काचाभ्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः ।
४५. न कुड्यान्तरितानुपलब्धेरप्रतिषेधः ।
४६. अप्रतिघातात् सन्निकर्षोपपत्तिः ।
४७. आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्येऽविघातात् ।
४८. नेतरेतरधर्मप्रसङ्गात् ।
४९. आदर्शोदकयोः प्रसादस्वाभाव्यद्रूपोपलब्धि-वत्तदुपलब्धिः ।

५०. दृष्टानुमितानां नियोगप्रतिषेधानुपपत्तिः ।

५१. स्थानान्यत्वेनानात्वादवयविनानास्थानत्वाच्च संशयः ।

५२. त्वगव्यतिरेकात् ।

५३. न इन्द्रियान्तरार्थानुपलब्धेः ।

५४. त्वगवयवविशेषेण धूमोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ।

५५. व्याहतत्वादहेतुः ।

५६. न युगपदर्थानुपलब्धेः ।

५७. विप्रतिषेधाच्च न त्वगेका ।

५८. इन्द्रियार्थपञ्चत्वात् ।

५९. न तदर्थबहुत्वात् ।

६०. गन्धत्वाद्यव्यतिरेकाद् गन्धादीनामप्रतिषेधः ।

६१. विषयत्वाव्यतिरेकादेकत्वम् ।

६२. न बुद्धिलक्षणाधिष्ठानगत्याकृतिजातिपञ्चत्वेभ्यः ।

६३. भूतगुणविशेषोपलब्धेस्तादात्म्यम् ।

६४. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ता पृथिव्याः ।

६५. अप्तेजोवायूनां पूर्वं पूर्वमपोह्याकाशस्योत्तरः ।

६६. न सर्वगुणानुपलब्धेः ।

६७. एकैकश्येनोत्तरोत्तरगुणसद्भावादुत्तरोत्तराणां तदनुपलब्धिः ।

६८. संसर्गाच्चानेकगुणग्रहणम् ।

६९. विष्टं ह्यपरम्परेण ।

७०. न पार्थिवाप्ययोः प्रत्यक्षत्वात् ।

७१. पूर्वपूर्वगुणोत्कर्षात् तत्तत्प्रधानम् ।

७२. तद्व्यवस्थानन्तु भूयस्त्वात् ।

७३. सगुणानामिन्द्रियभावात् ।

७४. तेनैव तस्याग्रहणाच्च ।

७५. न शब्दगुणोपलब्धेः ।

७६. तदुपलब्धिरितरेतरद्रव्यगुणवैधर्म्यात् ।

॥ इति गौतमीयन्यायसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. कर्माकाशसाधर्म्यात् संशयः ।

२. विषयप्रत्यभिज्ञानात् ।
३. साध्यसमत्वादहेतुः ।
४. न युगपदग्रहणात् ।
५. अप्रत्यभिज्ञाने च विनाशप्रसङ्गः ।
६. क्रमवृत्तित्वादयुगपद् ग्रहणम् ।
७. अप्रत्यभिज्ञानञ्च विषयान्तरव्यासङ्गात् ।
८. न गत्यभावात् ।
९. स्फटिकान्यत्वाभिमानवत्तदन्यत्वाभिमानः ।
१०. न हेत्वभावात् ।
११. स्फटिकेऽप्यपरापरोत्पत्तेः क्षणिकत्वाद्व्यक्तीनामहेतुः ।
१२. नियमहेत्वभावाद् यथादर्शनमभ्यनुज्ञा ।
१३. नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ।
१४. क्षीरविनाशे कारणानुपलब्धिवद्दध्युत्पत्तिवच्च तदुपपत्तिः ।
१५. लिङ्गतोग्रहणान्नानुपलब्धिः ।
१६. न पयसः परिणामगुणान्तरप्रादुर्भावात् ।
१७. व्यूहान्तराद् द्रव्यान्तरोत्पत्तिदर्शनं पूर्वद्रव्यनिवृत्तेरनुमानम् ।
१८. क्वचिद्विनाशकारणानुपलब्धेः क्वचिच्चोपलब्धेरनेकान्तः ।
१९. नेन्द्रियार्थयोस्तद्विनाशेऽपि ज्ञानावस्थानात् ।
२०. तदात्मगुणत्वेऽपि तुल्यम् ।
२१. इन्द्रियैर्मनसः सन्निकर्षाभावात् तदनुत्पत्तिः ।
२२. न उत्पत्तिकारणानपदेशात् ।
२३. विनाशकारणानुपलब्धेश्चावस्थाने तन्नित्यत्वप्रसङ्गः ।
२४. अनित्यत्वग्रहाद् बुद्धेर्बुद्ध्यन्तराद्विनाशः शब्दवत् ।
२५. ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ।
२६. न अन्तः शरीरवृत्तित्वान्मनसः ।
२७. साध्यत्वादहेतुः ।
२८. स्मरतः शरीरधारणोपपत्तेरप्रतिषेधः ।
२९. न तदाशुगतित्वान्मनसः ।
३०. न स्मरणकालानियमात् ।
३१. आत्मप्रेरणयदृच्छाज्ञताभिश्च न संयोगविशेषः ।
३२. व्यासक्तमनसः पादव्यथनेन संयोगविशेषेण समानम् ।

३३. प्रणिधानलिङ्गादिज्ञानानामयुगपद्भावाद्युगपत्स्मरणम् ।
३४. प्रातिभवत्तु प्रणिधानाद्यनपेक्षे स्मार्ते यौगपद्यप्रसङ्गः ।
३५. ज्ञस्येच्छाद्वेषनिमित्तत्वादारम्भनिवृत्त्योः ।
३६. तल्लिङ्गत्वादिच्छाद्वेषयोः पार्थिवाद्येष्वप्रतिषेधः ।
३७. परश्वादिष्वारम्भनिवृत्तिदर्शनात् ।
३८. कुम्भादिष्वनुपलब्धेरहेतुः ।
३९. नियमानियमौ तु तद्विशेषकौ ।
४०. यथोक्तहेतुत्वात् पारतन्त्र्यादकृताभ्यागमाच्च न मनसः ।
४१. परिशेषाद्यथोक्तहेतूपपत्तेश्च ।
४२. स्मरणं त्वात्मनो ज्ञस्वाभाव्यात् ।
४३. प्रणिधाननिबन्धाभ्यासलिङ्गलक्षणसादृश्यपरिग्रहाश्रयाश्रित-सम्बन्धानन्तर्यवियोगैककार्यविरोधातिशयप्राप्तिव्यवधानसुखदुःखे-च्छाद्वेषभयाऽर्थित्वक्रियारागधर्माधर्मनिमित्तेभ्यः ।
४४. कर्मानवस्थायिग्रहणात् ।
४५. बुद्ध्यवस्थानात् प्रत्यक्षत्वे स्मृत्यभावः ।
४६. अव्यक्तग्रहणमनवस्थायित्वात् विद्युत्सम्पाते रूपाद्यव्यक्तग्रहणवत् ।
४७. हेतूपादानात् प्रतिषेद्धव्याभ्यनुज्ञा ।
४८. प्रदीपार्च्चिः सन्तत्यभिव्यक्तग्रहणवत् तद्ग्रहणम् ।
४९. द्रव्ये स्वगुणपरगुणोपलब्धेः संशयः ।
५०. यावच्छरीरभावित्वाद्रूपादीनाम् ।
५१. न पाकगुणान्तरोत्पत्तेः ।
५२. प्रतिद्वन्द्विसिद्धेः पाकजानामप्रतिषेधः ।
५३. शरीरव्यापित्वात् ।
५४. न केशनखादिष्वनुपलब्धेः ।
५५. त्वक्पर्यन्तत्वाच्छरीरस्य केशनखादिष्वप्रसङ्गः ।
५६. शरीरगुणवैधर्म्यात् ।
५७. न रूपादीनामितरेतरवैधर्म्यात् ।
५८. ऐन्द्रियकत्वाद्रूपादीनामप्रतिषेधः ।
५९. ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ।
६०. न युगपदनेकक्रियोपलब्धेः ।
६१. अलातचक्रदर्शनवत्तदुपलब्धिराशुसञ्चारात् ।

६२. यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु ।
६३. पूर्वकृतफलानुबन्धात्तदुत्पत्तिः ।
६४. भूतेभ्यो मूर्त्युपादानवत् तदुपादानम् ।
६५. न साध्यसमत्वात् ।
६६. न उत्पत्तिनिमित्तत्वान्मातापित्रोः ।
६७. तथाऽऽहारस्य ।
६८. प्राप्तौ चानियमात् ।
६९. शरीरोत्पत्तिनिमित्तवत् संयोगोत्पत्तिनिमित्तं कर्म ।
७०. एतेनानियमः प्रयुक्तः ।
७१. उपपन्नश्च तद्वियोगः कर्मक्षयोपपत्तेः ।
७२. तददृष्टकारितमिति चेत् पुनस्तत्प्रसङ्गोऽपवर्गे ।
७३. न करणाकरणयोरारम्भदर्शनात् ।
७४. मनः कर्मनिमित्तत्वाच्च संयोगानुच्छेदः ।
७५. नित्यत्वप्रसङ्गश्च प्रायेणानुपपत्तेः ।
७६. अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत् स्यात् ।
७७. न अकृताभ्यागमप्रसङ्गात् ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, तृतीयोऽध्यायश्च ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. प्रवृत्तिर्यथोक्ता ।
२. तथा दोषाः ।
३. तत्त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात् ।
४. न एकप्रत्यनीकभावात् ।
५. व्यभिचारादहेतुः ।
६. तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्येतरोत्पत्तेः ।
७. निमित्तनैमित्तिकभावादर्थान्तरभावो दोषेभ्यः ।
८. न दोषलक्षणावरोधान्मोहस्य ।
९. निमित्तनैमित्तिकोपपत्तेश्च तुल्यजातीयानामप्रतिषेधः ।
१०. आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।
११. व्यक्ताद्व्यक्तानां प्रत्यक्षप्रामाण्यात् ।
१२. न घटाद् घटानिष्पत्तेः ।

१३. व्यक्ताद् घटनिष्पत्तेरप्रतिषेधः ।
१४. अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ।
१५. व्याघातादप्रयोगः ।
१६. न अतीतानागतयोः कारकशब्दप्रयोगात् ।
१७. न विनष्टेभ्योऽनिष्पत्तेः ।
१८. क्रमनिर्देशादप्रतिषेधः ।
१९. ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ।
२०. न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः ।
२१. तत्कारितत्वादहेतुः ।
२२. अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ।
२३. अनिमित्तनिमित्तत्वान्नानिमित्ततः ।
२४. निमित्तानिमित्तयोरर्थान्तरभावादप्रतिषेधः ।
२५. सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ।
२६. न अनित्यतानित्यत्वात् ।
२७. तदनित्यत्वमग्नेर्दाह्यं विनाश्यानुविनाशवत् ।
२८. नित्यस्याप्रत्याख्यानं यथोपलब्धि व्यवस्थानात् ।
२९. सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ।
३०. न उत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ।
३१. तल्लक्षणावरोधादप्रतिषेधः ।
३२. न उत्पत्तितत्कारणोपलब्धेः ।
३३. न व्यवस्थानुपपत्तेः ।
३४. सर्वं पृथग्भावलक्षणपृथक्त्वात् ।
३५. न अनेकलक्षणैरेकभावनिष्पत्तेः ।
३६. लक्षणव्यवस्थानादेवाप्रतिषेधः ।
३७. सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ।
३८. न स्वभावसिद्धेर्भावानाम् ।
३९. न स्वभावसिद्धिरापेक्षिकत्वात् ।
४०. व्याहतत्वादयुक्तम् ।
४१. संख्यैकान्तासिद्धिः कारणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ।
४२. न कारणावयवभावात् ।
४३. निरवयवत्वादहेतुः ।

४४. सद्यः कालान्तरे च फलनिष्पत्तेः संशयः ।
४५. न सद्यः कालान्तरोपभोग्यत्वात् ।
४६. कालान्तरेणानिष्पत्तिर्हेतुविनाशात् ।
४७. प्राङ् निष्पत्तेर्वृक्षफलवत्तत् स्यात् ।
४८. नासन्न सन्न सदसत् सत्सतोर्वैधर्म्यात् ।
४९. उत्पादव्ययदर्शनात् ।
५०. बुद्धिसिद्धन्तु तदसत् ।
५१. आश्रयव्यतिरेकाद् वृक्षफलोत्पत्तिवदित्यहेतुः ।
५२. प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः ।
५३. न पुत्रपशुस्त्रीपरिच्छदहिरण्यान्नादिफलनिर्देशात् ।
५४. तत्सम्बन्धात् फलनिष्पत्तेस्तेषु फलवदुपचारः ।
५५. विविधबाधनायोगाद् दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः ।
५६. न सुखस्यान्तरालनिष्पत्तेः ।
५७. बाधनाऽनिवृत्तेर्वेदयतः पर्येषणदोषादप्रतिषेधः ।
५८. दुःखविकल्पे सुखाभिमानाच्च ।
५९. ऋणक्लेशप्रवृत्त्यनुबन्धादपवर्गाभावः ।
६०. प्रधानशब्दानुपपत्तेर्गुणशब्देनानुवादी निन्दाप्रशंसोपपत्तेः ।
६१. अधिकाराच्च विधानं विद्यान्तरवत् ।
६२. समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः ।
६३. पात्रचयान्तानुपपत्तेश्च फलाभावः ।
६४. सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभाववदपवर्गः ।
६५. न प्रवृत्तिः प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य ।
६६. न क्लेशसन्ततेः स्वाभाविकत्वात् ।
६७. प्रागुत्पत्तेरभावनित्यत्ववत् स्वाभाविकेऽप्यनित्यत्वम् ।
६८. अणुश्यामताऽनित्यत्ववद्वा ।
६९. न सङ्कल्पनिमित्तत्वाच्च रागादीनाम् ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. दोषनिमित्तानां तत्त्वज्ञानादहङ्कारनिवृत्तिः ।
२. दोषनिमित्तं रूपादयो विषयाः सङ्कल्पकृताः ।

३. तन्निमित्तन्त्ववयव्यभिमानः ।
४. विद्याऽविद्याद्वैविध्यात् संशयः ।
५. तदसंशयः पूर्वहेतुप्रसिद्धत्वात् ।
६. वृत्त्यनुपपत्तेरपि तर्हि न संशयः ।
७. कृत्स्नैकदेशावृत्तित्वादवयवानामवयव्यभावः ।
८. तेषु चावृत्तेरवयव्यभावः ।
९. पृथक् चावयवेभ्योऽवृत्तेः ।
१०. न चावयव्यवयवाः ।
११. एकस्मिन् भेदाभावाद् भेदशब्दप्रयोगानुपपत्तेरप्रश्नः ।
१२. अवयवान्तरभावेऽप्यवृत्तेरहेतुः ।
१३. केशसमूहे तैमिरिकोपलब्धिवत्तदुपलब्धिः ।
१४. स्वविषयानतिक्रमेणेन्द्रियस्य पटुमन्दभावाद् विषयग्रहणस्य तथाभावो नाविषये प्रवृत्तिः ।
१५. अवयवावयविप्रसङ्गश्चैवमाप्रलयात् ।
१६. न प्रलयोऽणुसद्भावात् ।
१७. परं वा त्रुटेः ।
१८. आकाशव्यतिभेदात् तदनुपपत्तिः ।
१९. आकाशासर्वगतत्वं वा ।
२०. अन्तर्बहिश्च कार्यद्रव्यस्य कारणान्तरवचनादकार्ये तदभावः ।
२१. शब्दसंयोगविभवाच्च सर्वगतम् ।
२२. अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्माः ।
२३. मूर्तिमताञ्च संस्थानोपपत्तेरवयवसद्भावः ।
२४. संयोगोपपत्तेश्च ।
२५. अनवस्थाकारित्वादनवस्थानुपपत्तेश्चाप्रतिषेधः ।
२६. बुद्ध्या विवेचनात्तु भावानां याथात्म्यानुपलब्धिस्तन्त्वपकर्षणे पटसद्भावानुपलब्धिवत् तदनुपलब्धिः ।
२७. व्याहतत्वादहेतुः ।
२८. तदाश्रयत्वादपृथग्ग्रहणम् ।
२९. प्रमाणतश्चाऽर्थप्रतिपत्तेः ।
३०. प्रमाणानुपपत्त्युपपत्तिभ्याम् ।
३१. स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ।

३२. मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णिकावद्वा ।
३३. हेत्वभावादसिद्धिः ।
३४. स्मृतिसङ्कल्पवच्च स्वप्नविषयाभिमानः ।
३५. मिथ्योपलब्धिविनाशस्तत्त्वज्ञानात् स्वप्नविषयाभिमानप्रणाशवत् प्रतिबोधे ।
३६. बुद्धेश्चैवं निमित्तसद्भावोपलम्भात् ।
३७. तत्त्वप्रधानभेदाच्च मिथ्याबुद्धेर्द्वैविध्योपपत्तिः ।
३८. समाधिविशेषाभ्यासात् ।
३९. नार्थविशेषप्राबल्यात् ।
४०. क्षुदादिभिः प्रवर्तनाच्च ।
४१. पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः ।
४२. अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ।
४३. अपवर्गेऽप्येवं प्रसङ्गः ।
४४. न निष्पन्नावश्यम्भावित्वात् ।
४५. तदभावश्चापवर्गे ।
४६. तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः ।
४७. ज्ञानग्रहणाभ्यासस्तद्विद्यैश्च सह संवादः ।
४८. तं शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयोऽर्थिभिरनसूयिभिरभ्युपेयात् ।
४९. प्रतिपक्षहीनमपि वा प्रयोजनार्थमर्थित्वे ।
५०. तत्त्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखावरणवत् ।
५१. ताभ्यां विगृह्य कथनम् ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, चतुर्थोऽध्यायश्च ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. साधर्म्यवैधर्म्योत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्यविकल्पसाध्यप्राप्त्यप्राप्ति-प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तानुत्पत्तिसंशयप्रकरणाहेत्वर्थापत्त्यविशेषोपपत्त्यु-पलब्ध्यनुपलब्धिनित्यानित्यकार्यसमाः ।
२. साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामुपसंहारे तद्धर्मविपर्ययोपपत्तेः साधर्म्यवैधर्म्यसमौ ।
३. गोत्वाद् गोसिद्धिवत् तत्सिद्धिः ।
४. साध्यदृष्टान्तयोर्धर्मविकल्पादुभयसाध्यत्वाच्चोत्कर्षापकर्षवर्ण्या-वर्ण्यविकल्पसाध्यसमाः ।

५. किञ्चित्साधर्म्यादुपसंहारसिद्धेर्वैधर्म्यादिप्रतिषेधः ।
६. साध्यातिदेशाच्च दृष्टान्तोपपत्तेः ।
७. प्राप्य साध्यमप्राप्य वा हेतोः प्राप्त्या अविशिष्टत्वादप्राप्त्याअसाधकत्वाच्च प्राप्त्यप्राप्तिसमौ ।
८. घटादिनिष्पत्तिदर्शनात् पीडने चाभिचारादप्रतिषेधः ।
९. दृष्टान्तस्य कारणानपदेशात् प्रत्यवस्थानाच्च प्रतिदृष्टान्तेन प्रसङ्गप्रतिदृष्टान्तसमौ ।
१०. प्रदीपोपादानप्रसङ्गनिवृत्तिवत्तद्विनिवृत्तिः ।
११. प्रतिदृष्टान्तहेतुत्वे च नाहेतुर्दृष्टान्तः ।
१२. प्रागुत्पत्तेः कारणाभावादनुत्पत्तिसमः ।
१३. तथाभावादुत्पन्नस्य कारणोपपत्तेर्न कारणप्रतिषेधः ।
१४. सामान्यदृष्टान्त-योरैन्द्रियकत्वे समाने नित्यानित्यसाधर्म्यात् संशयसमः ।
१५. साधर्म्यात् संशये न संशयो वैधर्म्यादुभयथा वा संशयेऽत्यन्तसंशयप्रसङ्गो नित्यत्वानभ्युपगमाच्च सामान्यस्याप्रतिषेधः ।
१६. उभयसाधर्म्यात् प्रक्रियासिद्धेः प्रकरणसमः ।
१७. प्रतिपक्षात् प्रकरणसिद्धेः प्रतिषेधानुपपत्तिः प्रतिपक्षोपपत्तेः ।
१८. त्रैकाल्यासिद्धेर्हेतोरहेतुसमः ।
१९. न हेतुतः साध्यसिद्धेस्त्रैकाल्यासिद्धिः ।
२०. प्रतिषेधानुपपत्तेश्च प्रतिषेद्धव्याप्रतिषेधः ।
२१. अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरर्थापत्तिसमः ।
२२. अनुक्तस्यार्थापत्तेः पक्षहानेरुपपत्तिरनुक्तत्वादनैकान्तिकत्वाच्चार्थापत्तेः ।
२३. एकधर्मोपपत्तेरविशेषे सर्वाविशेषप्रसङ्गात् सद्भावोपपत्तेरविशेषसमः ।
२४. क्वचिद्धर्मानुपपत्तेः क्वचिच्चोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ।
२५. उभयकारणोपपत्तेरुपपत्तिसमः ।
२६. उपपत्तिकारणाभ्यनुज्ञानादप्रतिषेधः ।
२७. निर्दिष्टकारणाभावेऽप्युपलम्भादुपलब्धिसमः ।
२८. कारणान्तरादपि तद्धर्मोपपत्तेरप्रतिषेधः ।
२९. तदनुपलब्धेरनुपलम्भादभावसिद्धौ तद्विपरीतोपपत्तेरनुपलब्धिसमः ।
३०. अनुपलम्भात्मकत्वादनुपलब्धेरहेतुः ।
३१. ज्ञानविकल्पानाञ्च भावाभावसंवेदनादध्यात्मम् ।

३२. साधर्म्यात् तुल्यधर्मोपपत्तेः सर्वानित्यत्वप्रसङ्गादनित्यसमः ।

३३. साधर्म्यादसिद्धेः प्रतिषेधासिद्धिः प्रतिषेध्यसाधर्म्याच्च ।

३४. दृष्टान्ते च साध्यसाधनभावेन प्रज्ञातस्य धर्मस्य हेतुत्वात्तस्य चोभयथाभावान्नाविशेषः ।

३५. नित्यमनित्यभावादनित्ये नित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसमः ।

३६. प्रतिषेध्ये नित्यमनित्यभावादनित्येऽनित्यत्वोपपत्तेः प्रतिषेधाभावः ।

३७. प्रयत्नकार्यानेकत्वात् कार्यसमः ।

३८. कार्यान्यत्वे प्रयत्नाहेतुत्वमनुपलब्धिकारणोपपत्तेः।

३९. प्रतिषेधेऽपि समानो दोषः ।

४०. सर्वत्रैवम् ।

४१. प्रतिषेधविप्रतिषेधे प्रतिषेधदोषवद्दोषः।

४२. प्रतिषेधं सदोषमभ्युपेत्य प्रतिषेधविप्रतिषेधे समानो दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा।

४३. स्वपक्षलक्षणापेक्षोपपत्त्युपसंहारे हेतुनिर्देशे परपक्षदोषाभ्युपगमात् समानो दोष इति ।

॥ इति गौतमीयन्यायसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञान्तरं प्रतिज्ञाविरोधः प्रतिज्ञासंन्यासो हेत्वन्तरमर्थान्तरं निरर्थकमविज्ञातार्थमपार्थकमप्राप्तकालं न्यूनमधिकं पुनरुक्तमननुभाषणमज्ञानमप्रतिभा विक्षेपो मतानुज्ञा पर्युनुयोज्योपेक्षणं निरनुयोज्यानुयोगोऽपसिद्धान्तो हेत्वाभासाश्च निग्रहस्थानानि ।

२. प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानिः ।

३. प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम् ।

४. प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः ।

५. पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयनं प्रतिज्ञासंन्यासः ।

६. अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् ।

७. प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम् ।

८. वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् ।

९. परिषत्प्रतिवादिभ्यां त्रिरभिहितमप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् ।

१०. पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बद्धार्थमपार्थकम् ।

११. अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् ।

१२. हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् ।
१३. हेतूदाहरणाधिकमधिकम् ।
१४. शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् ।
१५. अनुवादे त्वपुनरुक्तं शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्तेः ।
१६. अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् ।
१७. विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याप्यनुच्चारणमननुभाषणम् ।
१८. अविज्ञातञ्चाज्ञानम् ।
१९. उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा ।
२०. कार्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो विक्षेपः ।
२१. स्वपक्षदोषाभ्युपगमात् परपक्षदोषप्रसङ्गोमतानुज्ञा ।
२२. निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षणम् ।
२३. अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोगः ।
२४. सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात् कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः ।
२५. हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः ।

॥ इति गौतमीयसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य, द्वितीयमाह्निकम् पञ्चमोऽध्यायश्च ॥

॥ समाप्तं च न्यायदर्शनम् ॥

काणादसूत्रपाठः

(७) ॥ वैशेषिकदर्शनम् ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः ।

२. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

३. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।

४. धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ।

५. पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ।

६. रूपरसगन्धस्पर्शाः सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ।

७. उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि ।

८. सदनित्यं द्रव्यवत् कार्यं कारणं सामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ।

९. द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ।

१०. द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम् ।

११. कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते ।

१२. न द्रव्यं कार्यं कारणं च भवति ।

१३. उभयथा गुणाः ।

१४. कार्यविरोधि कर्म ।

१५. क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ।

१६. द्रव्याश्रयगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ।

१७. एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ।

१८. द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ।

१९. तथा गुणः ।

२०. संयोगविभागवेगानां कर्म समानम् ।

२१. न द्रव्याणां कर्म ।

२२. व्यतिरेकात् ।

२३. द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम्।
२४. गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म।
२५. द्वित्वप्रभृतयः संख्यां पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च।
२६. असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते।
२७. संयोगानां द्रव्यम्।
२८. रूपाणां रूपम्।
२९. गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम्।
३०. संयोगविभागाश्च कर्मणाम्।
३१. कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणां कर्माकारणमुक्तम्।

॥ इति कणादसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. कारणाभावात् कार्याभावः।
२. न तु कार्याभावात् कारणाभावः।
३. सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम्।
४. भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव।
५. द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वं च सामान्यानि विशेषाश्च।
६. अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः।
७. सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता।
८. द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता।
९. गुणकर्मसु च भावान्न कर्म न गुणः।
१०. सामान्यविशेषाभावेन च।
११. अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम्।
१२. सामान्यविशेषाभावेन च।
१३. तथा गुणेषु भावाद् गुणत्वमुक्तम्।
१४. सामान्यविशेषाभावेन च।
१५. कर्मसु भावात् कर्मत्वमुक्तम्।
१६. सामान्यविशेषाभावेन च।
१७. सदिति लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चैको भावः।

॥ इति कणादसूत्रपाठे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, प्रथमोऽध्यायश्च ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ।
२. रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ।
३. तेजो रूपस्पर्शवत् ।
४. स्पर्शवान् वायुः ।
५. त आकाशे न विद्यन्ते ।
६. सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद्द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ।
७. त्रपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम् ।
८. विषाणी ककुद्मान् प्रान्तेबालधिः सास्नावान् इति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम् ।
९. स्पर्शश्च वायोः ।
१०. न च दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गो वायुः ।
११. अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् ।
१२. क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ।
१३. अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् ।
१४. वायोर्वायुसम्मूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ।
१५. वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ।
१६. सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ।
१७. तस्मादागमिकम् ।
१८. संज्ञाकर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् ।
१९. प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ।
२०. निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्।
२१. तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात् कर्मणः ।
२२. कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ।
२३. संयोगादभावः कर्मणः ।
२४. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ।
२५. कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ।
२६. परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः।
२७. परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ।
२८. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।
२९. तत्त्वम्भावेन ।

३०. शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च ।

३१. तदनुविधानादेकपृथक्त्वं चेति ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे द्वितीयाऽध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भावो वस्त्रो गन्धाभावलिङ्गम् ।

२. व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ।

३. एतेनोष्णता व्याख्याता ।

४. तैजस उष्णता ।

५. अप्सु शीतता ।

६. अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ।

७. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।

८. तत्त्वम्भावेन ।

९. नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ।

१०. इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ।

११. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।

१२. तत्त्वम्भावेन ।

१३. कार्यविशेषेण नानात्वम् ।

१४. आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतो भूताच्च प्राची ।

१५. तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च ।

१६. एतेन दिगन्तरालाानि व्याख्यातानि ।

१७. सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्च संशयः ।

१८. दृष्टश्च दृष्टवत् ।

१९. यथादृष्टमयथादृष्टत्वाच्च ।

२०. विद्याऽविद्यातश्च संशयः ।

२१. श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः ।

२२. तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्य उभयथा दृष्टत्वात् ।

२३. एकद्रव्यत्वान्न द्रव्यम् ।

२४. नापि कर्माऽचाक्षुषत्वात् ।

२५. गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ।

२६. सतो लिङ्गाभावात् ।

२७. नित्यवैधर्म्यात् ।

२८. अनित्यश्चायं कारणतः ।

२९. न चासिद्धं विकारात् ।

३०. अभिव्यक्तौ दोषात् ।

३१. संयोगाद्विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः ।

३२. लिङ्गाच्चानित्यः शब्दः ।

३३. द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात् ।

३४. प्रथमाशब्दात् ।

३५. सम्प्रतिपत्तिभावाच्च ।

३६. सन्दिग्धाः सति बहुत्वे ।

३७. संख्याभावः सामान्यतः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, द्वितीयाध्यायश्च ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ।

२. इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः ।

३. सोऽनपदेशः ।

४. कारणाज्ञानात् ।

५. कार्येषु ज्ञानात् ।

६. अज्ञानाच्च ।

७. अन्यदेव हेतुरित्यनपदेशः ।

८. अर्थान्तरं ह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ।

९. संयोगि समवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च ।

१०. कार्यं कार्यान्तरस्य ।

११. विरोध्यभूतं भूतस्य ।

१२. भूतमभूतस्य ।

१३. भूतो भूतस्य ।

१४. प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ।

१५. अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसन् सन्दिग्धश्चानपदेशः ।

१६. यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः ।

१७. यस्माद्विषाणी तस्माद् गौरिति चानैकान्तिकस्यौदाहरणम् ।

१८. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद् यन्निष्पद्यते तदन्यत् ।

१९. प्रवृत्तिनिवृत्ती च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र लिङ्गम् ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ।

२. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।

३. प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायोगपद्याच्चैकम् ।

४. प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ।

५. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ।

६. यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद् दृष्टं लिङ्गं न विद्यते ।

७. सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ।

८. तस्मादागमिकः ।

९. अहमितिशब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकम् ।

१०. यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति ।

११. दृष्ट्यात्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत् प्रत्ययः ।

१२. देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छतीत्युपचाराच्छरीरे प्रत्ययः।

१३. सन्दिग्धस्तूपचारः ।

१४. अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ।

१५. देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहङ्कारः ।

१६. सन्दिग्धस्तूपचारः ।

१७. न तु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानं विषयः

१८. अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद्व्यतिरेकाव्यभिचाराद् विशेषसिद्धेर्नागमिकः ।

१९. सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ।

२०. व्यवस्थातो नाना ।

२१. शास्त्रसामर्थ्याच्च ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् तृतीयोऽध्यायश्च ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. सदकारणवन्नित्यम् ।
२. तस्य कार्यं लिङ्गम् ।
३. कारणभावात् कार्यभावः ।
४. अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः ।
५. अविद्या ।
६. महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः
७. सत्यपि द्रव्यत्त्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद्वायोरनुपलब्धिः ।
८. अनेकद्रव्यसमवायात् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ।
९. तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् ।
१०. तस्याभावादव्यभिचारः ।
११. सङ्ख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायात् चाक्षुषाणि ।
१२. अरूपिष्वचाक्षुषाणि ।
१३. एतेन गुणत्वे भावे च सर्वेन्द्रियं ज्ञानं व्याख्यातम् ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम् ।
२. प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात् पञ्चात्मकं न विद्यते ।
३. गुणान्तराप्रादुर्भावाच्च न त्र्यात्मकम् ।
४. अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ।
५. तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ।
६. अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ।
७. धर्मविशेषाच्च ।
८. समाख्याभावाच्च ।
९. संज्ञाया आदित्वात् ।
१०. सन्त्ययोनिजाः ।
११. वेदलिङ्गाच्च ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, चतुर्थाऽध्यायश्च ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ।
२. तथा हस्तसंयोगाच्च मुषले कर्म ।
३. अभिघातजे मुषलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः ।
४. तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि ।
५. अभिघातान्मुषलसंयोगाद्धस्ते कर्म ।
६. आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च ।
७. संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ।
८. नोदनविशेषाभावान्नोदूर्ध्वं न तिर्यग्गमनम् ।
९. प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ।
१०. नोदनविशेषादुदसनविशेषः ।
११. हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्यातम् ।
१२. तथा दग्धस्य विस्फोटने ।
१३. यत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम् ।
१४. तृणे कर्म वायुसंयोगात् ।
१५. मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् ।
१६. इषावयुगपत् संयोगविशेषाः कर्मान्यत्वे हेतुः ।
१७. नोदनादाद्यमिषोः कर्म तत्कर्मकारिताच्च संस्कारदुत्तरं तथोत्तरमुत्तरं च ।
१८. संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां कर्म ।
२. तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ।
३. अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ।
४. द्रवत्वात् स्यन्दनम् ।
५. नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम् ।
६. नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च ।
७. वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ।
८. अपां सङ्घातो विलयनं च तेजःसंयोगात् ।
९. तत्र विस्फूर्जथुर्लिङ्गम् ।

१०. वैदिकं च ।

११. अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नोः ।

१२. पृथिवीकर्मणा तेजः कर्म वायुकर्म च व्याख्यातम् ।

१३. अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्य्यक्पवनमणूनां मनसश्चाद्यं कर्म्मादृष्टकारितम् ।

१४. हस्तकर्मणा मनसः कर्म व्याख्यातम् ।

१५. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे ।

१६. तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः ।

१७. अपसर्पणमुपसर्पणमशि-तपीतसंयोगाः कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि ।

१८. तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ।

१९. द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तमः

२०. तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च ।

२१. दिक्कालावकाशं च क्रियावद् वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ।

२२. एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः ।

२३. निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्यो निषिद्धः ।

२४. कारणं त्वसमवायिनो गुणाः ।

२५. गुणैर्दिग्व्याख्याता ।

२६. कारणेन कालः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् पञ्चमाध्यायश्च ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ।

२. ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् ।

३. बुद्धिपूर्वो ददातिः ।

४. तथा प्रतिग्रहः ।

५. आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ।

६. तद्दुष्टभोजने न विद्यते ।

७. दुष्टं हिंसायाम् ।

८. तस्य समभिव्याहारतो दोषः ।

९. तददुष्टे न विद्यते ।

१०. पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः ।

११. समे हीने वा प्रवृत्तिः ।

१२. एतेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं व्याख्यातम् ।

१३. तथा विरुद्धानां त्यागः ।

१४. हीने परे त्यागः ।

१५. समे आत्मत्यागः परत्यागो वा ।

१६. विशिष्टे आत्मत्याग इति ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युदयाय ।

२. अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षण-दिङ्नक्षत्रकालनियमाश्चादृष्टाय ।

३. चातुराश्रम्यमुपधा अनुपधाश्च ।

४. भावदोष उपधादोषोऽनुपधा ।

५. यदिष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्युक्षितं च तच्छुचि ।

६. अशुचीति शुचिप्रतिषेधः ।

७. अर्थान्तरं च ।

८. अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नियमाभावाद् विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद् यमस्य ।

९. असति चाभावात् ।

१०. सुखाद्रागः ।

११. तन्मयत्वाच्च ।

१२. अदृष्टाच्च ।

१३. जातिविशेषाच्च ।

१४. इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः ।

१५. तत्संयोगो विभागः ।

१६. आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् षष्ठाध्यायश्च ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. उक्ता गुणाः ।
२. पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ।
३. एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ।
४. अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात् ।
५. अनित्येष्वनित्या द्रव्यानित्यत्वात् ।
६. कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः ।
७. एकद्रव्यत्वात् ।
८. अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ।
९. कारणबहुत्वाच्च ।
१०. अतो विपरीतमणु ।
११. अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषाभावाच्च ।
१२. एककालत्वात् ।
१३. दृष्टान्ताच्च ।
१४. अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणैर्व्याख्यातः ।
१५. कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा व्याख्याताः ।
१६. अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणाश्च व्याख्याताः ।
१७. एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते ।
१८. अनित्येऽनित्यम् ।
१९. नित्ये नित्यम् ।
२०. नित्यं परिमण्डलम् ।
२१. अविद्या च विद्यालिङ्गम् ।
२२. विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा ।
२३. तदभावादणु मनः ।
२४. गुणैर्दिग्व्याख्याता ।
२५. कारणे कालः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ।
२. तथा पृथक्त्वम् ।

३. एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।
४. निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ।
५. भ्रान्तं तत् ।
६. एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ।
७. कार्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादेकत्वैकपृथक्त्वं न विद्यते ।
८. एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ।
९. अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः।
१०. एतेन विभागो व्याख्यातः ।
११. संयोगविभागयोः संयोगविभागाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।
१२. कर्मभिः कर्माणि गुणैर्गुणा अणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति ।
१३. युतसिद्ध्यभावात् कार्यकारणयोः संयोगविभागौ न विद्येते ।
१४. गुणत्वात् ।
१५. गुणोऽपि विभाव्यते ।
१६. निष्क्रियत्वात् ।
१७. असति नास्तीति च प्रयोगात् ।
१८. शब्दार्थावसम्बन्धौ ।
१९. संयोगिनो दण्डात् समवायिनो विशेषाच्च ।
२०. सामयिकः शब्दार्थप्रत्ययः ।
२१. एकदिक्कालाभ्यामेककालाभ्यां सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां परम्परं च ।
२२. कारणपरत्वात् कारणापरत्वाच्च ।
२३. परत्वापरत्वयोः परत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ।
२४. कर्मभिः कर्माणि ।
२५. गुणैर्गुणाः ।
२६. इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ।
२७. द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो भावेन व्याख्यातः।
२८. तत्त्वम्भावेन ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, सप्तमोऽध्यायश्च ॥

अथाष्टमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् ।
२. तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे ।

३. ज्ञाननिर्देशे ज्ञाननिष्पत्तिविधिरुक्तः ।
४. गुणकर्मसु सन्निकृष्टेषु ज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यं कारणम् ।
५. सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावात्तदेव ज्ञानम् ।
६. सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुणकर्मसु ।
७. द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ।
८. गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद् गुणकर्मापेक्षं न विद्यते ।
९. समवायिनः श्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च श्वेते बुद्धिस्त एते कार्यकारणभूते ।
१०. द्रव्येष्वनितरेतरकारणाः ।
११. कारणायौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादिबुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात् ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. अयमेष त्वया कृतं भोजयैनमिति बुद्ध्यपेक्षम् ।
२. दृष्टेषु भावाददृष्टेष्वभावात् ।
३. अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु ।
४. द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम् ।
५. भूयस्त्वाद्गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः ।
६. तथापस्तेजोवायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात्

॥ इति कणादसूत्रपाठे अष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् अष्टमोऽध्यायश्च ॥

अथ नवमोऽध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् ।
२. सदसत् ।
३. असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ।
४. सच्चासत् ।
५. यच्चान्यदसदतस्तदसत् ।
६. असदिति भूतप्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ।
७. तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च ।
८. एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः ।
९. अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ।
१०. नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ।

११. आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ।
१२. तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ।
१३. असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्तेषां च ।
१४. तत्समवायात् कर्मगुणेषु ।
१५. आत्मसमवायादात्मगुणेषु ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ।
२. अस्येदं कार्यकारणसम्बन्धश्चावयवाद्भवति ।
३. एतेन शाब्दं व्याख्यातम् ।
४. हेतुरपदेशो लिङ्गं निमित्तं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ।
५. अस्येदमिति बुद्ध्यपेक्षितत्वात् ।
६. आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः ।
७. तथा स्वप्नः ।
८. स्वप्नान्तिकम् ।
९. धर्माच्च ।
१०. इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ।
११. तद्दुष्टज्ञानम् ।
१२. अदुष्टं विद्या ।
१३. आर्षं सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे नवमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, नवमोऽध्यायश्च ॥

अथ दशमोध्यायः प्रथममाह्निकम्

१. इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथः सुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ।
२. संशयनिर्णयान्तराभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः ।
३. तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् ।
४. अभूदित्यपि ।
५. सति च कार्यादर्शनात् ।
६. एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ।
७. एकदेश इत्येकस्मिन् शिरः पृष्ठमुदरं मर्माणि तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे दशमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

द्वितीयमाह्निकम्

१. कारणमिति द्रव्ये कार्यसमवायात् ।

२. संयोगाद्वा ।

३. कारणे समवायात् कर्माणि ।

४. तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ।

५. कारणसमवायात् संयोगः पटस्य ।

६. कारणाकारणसमवायाच्च ।

७. संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ।

८. दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय ।

९. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति ।

॥ इति कणादसूत्रपाठे दशमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम्, दशमोऽध्यायश्च ॥

॥ समाप्तं च वैशेषिकदर्शनम् ॥

विभाग-२
षड्दर्शनविषयककृतयः

षड्दर्शन समुच्चयः

(१) ।। श्रीसोमतिलकसूरिकृता लघुवृत्तिः ।।

सज्ज्ञानदर्पणतले विमलेऽत्र यस्य ये केचिदर्थनिवहाः प्रकटीबभूवुः ।

तेऽद्यापि भान्ति कलिकालजदोषभस्मप्रोद्दीपिता इव शिवाय स मेऽस्तु वीरः ।।१।।

जैनं यदेकमपि बोधविधायि वाक्यमेवं श्रुतिः फलवती भुवि येन चक्रे ।

चारित्रमाप्य वचनेन महत्तरायाः श्रीमान् स नन्दतु चिरं हरिभद्रसूरिः ।।२।।

संनिधेहि तथा वाणि षड्दर्शनाङ्कषड्भुजे । यथा षड्दर्शनव्यक्तिस्पष्टने प्रभवाम्यहम् ।।३।।

व्यासं विहाय संक्षेपरुचिसत्त्वानुकम्पया । टीका विधीयते स्पष्टा षड्दर्शनसमुच्चये ।।४।।

इह हि श्रीजिनशासनप्रभावनाविभावकप्रभोदयभूरियशाश्चतुर्दशशतप्रकरण-करणोपकृतजिनधर्मो भगवान् श्रीहरिभद्रसूरिः षड्दर्शनप्रमाणपरिभाषास्वरूपजिज्ञासु-शिष्यहितहेतवे प्रकरणमारिप्समानो निर्विघ्नशास्त्रपरिसमाप्त्यर्थं स्वपरश्रेयोऽर्थं च समुचितेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकमभिधेयमाह –

(मू. श्लो.) सद्दर्शनं जिनं नत्वा वीरं स्याद्वाददेशकम् ।

सर्वदर्शनवाच्योऽर्थः संक्षेपेण निगद्यते ।।१।।

अर्थो निगद्यतेऽभिधीयत इति संबन्धः । अर्थशब्दोऽत्र अभिधेयवाचको ग्राह्यः । "**अर्थोऽभिधेयैरवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु**'' ( ) इत्यनेकार्थवचनात् । 'मया' इत्यनुक्तस्यापि गतार्थत्वात् । किंविशिष्टोऽर्थः । **सर्वदर्शनवाच्य** इति । सर्वाणि च तानि दर्शनानि बौद्धनैयायिकजैनवैशेषिकसांख्यजैमिनीयादीनि समस्तमतानि वक्ष्यमाणानि तेषु वाच्यः कथनीयः । किं कृत्वा । **जिनं नत्वा** । सामान्यमुक्त्वा विशेषमाह । कं जिनम् । **वीरं** वर्द्धमानस्वामिनम् । वीरमिति साभिप्रायम् । प्रमाणवक्तव्यस्य परपक्षोच्छेदादिसुभटवृत्तित्वात् । भगवतश्च दुःखसंपादिविषमोप-सर्गसहिष्णुत्वेन सुभटरूपत्वात् । तथा चोक्तम् -

"विदारणात्कर्मततेर्विराजनात्तपःश्रिया विक्रमतस्तथाद्भुतात् ।

भवत्प्रमोदः किल नाकनायकश्चकार ते वीर इति स्फुटाभिधाम् ।।" [ ] इति ।

युक्तियुक्तं ग्रन्थारम्भे वीरजिननमस्करणं प्रकरणकृतः । यद्वा आसन्नोपकारित्वेन युक्ततरमेव श्रीवर्द्धमानतीर्थकृतो नमस्करणम् । तमेव विशिनष्टि । किंभूतम् । सद्दर्शनं सत् शोभनं दर्शनं शासनं सामान्यावबोधलक्षणं ज्ञानं सम्यक्त्वं वा यस्य स तमिति । ननु दर्शनचारित्रयोरुभयोरपि मुक्त्यङ्गत्वात् किमर्थं सद्दर्शनमित्येकमेव विशेषणमाविष्कृतम् । न, दर्शनस्यैव प्राधान्यात् । यत्सूत्रम् -

"भट्टेण चरित्ताउ दंसणमिह दढयरं गहेयव्वं ।
सिज्झंति चरणरहिया दंसणरहिया न सिज्झंति ।।" [ ]

इति तद्विशेषणमेव युक्तम् । पुनः किंभूतम् । स्याद्वाददेशकम् । स्यात् विकल्पितो वादः स्याद्वादः सदसन्नित्यानित्याभिलाप्यानभिलाप्यसामान्यविशेषात्मकस्तं दिशति भविकेभ्य उपदिशति यस्तम् । अत्रादिमार्द्धे भगवतोऽतिशयचतुष्टयमाक्षिप्तम् । सद्दर्शनमिति दर्शनज्ञानयोः सहचारित्वा**ज्ज्ञानातिशयः** । जिनं वीरमिति रागादिजेतृत्वात् अष्टकर्माद्यपायनिराकर्तृत्वाच्च **अपायापगमातिशयः** । स्याद्वाददेशकमिति **वचनातिशयः** । ईदृग्विधस्य निरन्तरभक्तिभरनिर्भरसुरासुरनिकायनिषेव्यत्वमानुषङ्गिकमिति **पूजातिशयः**, इति प्रथमश्लोकार्थः ।।१।।

कानि तानि दर्शनानीति व्यक्तितस्तत्संख्यामाह -

(मू. श्लो.) दर्शनानि षडेवात्र मूलभेदव्यपेक्षया ।
देवतातत्त्वभेदेन ज्ञातव्यानि मनीषिभिः ।।२।।

अत्र जगति प्रसिद्धानि षडेव दर्शनानि । एवशब्दोऽवधारणे । यद्यपि भेदप्रभेदतया बहूनि दर्शनानि प्रसिद्धानि । यदुक्तं सूत्रे -

"असियसयं किरियाणं अकिरियवाईण हुंति चुलसीई ।
अन्नाणि य सत्तट्ठी वेणइआणं च बत्तीसं ।।"

इति त्रिषष्ट्यधिका त्रिशती पाषण्डिकानाम् । बौद्धानां चाष्टादश निकायभेदाः, वैभाषिकसौत्रान्तिकयोगाचारमाध्यमिकादयो भेदाः । जैमिनेश्च शिष्यकृता बहवो भेदाः ।

"उत्पलः कारिकां वेत्ति तन्त्रं वेत्ति प्रभाकरः ।
वामनस्तूभयं वेत्ति न किंचिदपि रेवणः ।।"

अपरेऽपि बहूदककुटीचरहंसपरमहंसभाट्टप्रभाकरादयो बहवोऽन्तर्भेदाः । अपरेषामपि दर्शनानां देवतातत्त्वप्रमाणादिभिन्नतया बहुभेदाः प्रादुर्भवन्ति, तथापि परमार्थतस्तेषामेष्वेवान्तर्भावात् षडेवेति सावधारणं पदम् । ननु संघटमानानियतो भेदानुपेक्ष्य किमर्थं षडेवेत्याह । मूलभेदव्यपेक्षया । मूलभेदास्तावत् षडेव षट्संख्यास्तेषां व्यपेक्षया तानाश्रित्येत्यर्थः । तानि च दर्शनानि मनीषिभिः पण्डितैर्ज्ञातव्यानि बोद्धव्यानि । केन प्रकारेणेति । देवतातत्त्वभेदेन । देवता दर्शनाधिष्ठायिकाः, तत्त्वानि च मोक्षसाधनानि रहस्यानि, तेषां भेदस्तेन पृथक्-पृथक् दर्शनदेवतादर्शनतत्त्वानि च ज्ञेयानीत्यर्थः ।।२।।

तेषामेव दर्शनानां नामान्याह -

(मू. श्लो.) बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा ।
जैमिनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो ।।३।।

अहो इति इष्टामन्त्रणे । दर्शनानां मतानाममूनि नामानीति संग्रहः । ज्ञेयानीति क्रिया, अस्तिभवत्यादिवदनुक्ताप्यवगन्तव्या। तत्र बौद्धमिति बुद्धो देवतास्येति बौद्धं सौगतदर्शनम् । नैयायिकं पाशुपतदर्शनम् । तत्र न्यायः प्रमाणमार्गस्त-स्मादनपेतं नैयायिकमिति व्युत्पत्तिः । सांख्यमिति कापिलदर्शनम् । आदिपुरुष-निमित्तेयं संज्ञा । जैनमिति जिनो देवतास्येति जैनमार्हतं दर्शनम् । वैशेषिकम् इति काणाददर्शनम् । दर्शनदेवतादिसाम्येऽपि नैयायिकेभ्यो द्रव्यगुणादिसामग्र्या विशिष्टमिति वैशेषिकम् । जैमनीयं जैमनिऋषिमतं भाट्टदर्शनम् । चः समुच्चयस्य दर्शकः । एवं तावत् षड्दर्शननामानि ज्ञेयानि शिष्येणेत्यवसेयम् ।।३।।

अथ द्वारश्लोके प्रथममुपन्यस्तत्वाद्बौद्धदर्शनमेवादावाचष्टे -

(मू. श्लो.) तत्र बौद्धमते तावद्देवता सुगतः किल ।
चतुर्णामार्यसत्यानां दुःखादीनां प्ररूपकः ।।४।।

तत्र तस्मिन् बौद्धमते सौगतशासने । तावदिति प्रक्रमे सुगतो देवता बुद्धो देवता बुद्धभट्टारको दर्शनादिकरः किलेत्याप्तप्रवादे । तमेव विशिनष्टि । कथंभूतस्तत्त्वनिरूपकत्वेन । प्ररूपको दर्शकः कथयितेति यावत् । केषामित्याह - आर्यसत्यानाम् । आर्यसत्यनामधेयानां तत्त्वानाम् । कतिसंख्यानामिति चतुर्णां

चतूरूपाणाम् । किंरूपाणामित्याह । दुःखादीनां दुःखसमुदयमार्गनिरोध-लक्षणानाम् । आदिशब्दोऽवयवार्थोऽत्र । यदुक्तम् - "**सामीप्येऽथ व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा । चतुर्ष्वर्थेषु मेधावी आदिशब्दं तु लक्षयेत् ।। [ ]**
एवंविधः सुगतो बौद्धमते देवता ज्ञेय इत्यर्थः ।।४।।

आदिममेव तत्त्वं विवृण्वन्नाह –

(मू. श्लो.) दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः ।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ।।५।।

दुःखं किमुच्यत इत्याशङ्कायां संसारिणः स्कन्धाः । संसरन्तीति संसारिणो विस्तरणशीलाः स्कन्धाः प्रचयविशेषाः । संसारेऽमी चयापचयरूपा भवन्तीत्यर्थः। ते च स्कन्धाः पञ्च प्रकीर्तिताः पञ्चसंख्याः कथिताः । के ते इत्याह । विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव चेति । तत्र विज्ञानमिति-विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं सर्व-क्षणिकत्वज्ञानम् । यदुक्तम् -

"यत् सत्तत् क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा इमे
सत्ताशक्तिरिहार्थकर्मणि मितेः सिद्धेषु सिद्धा च सा ।
नाप्येकैव विधान्यथापि परकृन्नैव क्रिया वा भवेद्
द्वेधापि क्षणभङ्गसंगतिरतः साध्ये च विश्राम्यति ।।" [ ] इति ।

विज्ञानम् । वेदनेति-वेद्यत इति वेदना पूर्वभवपुण्यपापपरिणामबद्धाः सुखदुःखानुभवरूपाः । तथा च भिक्षुर्भिक्षामटंश्चरणे कण्टके लग्ने प्राह –

"इत एकनवतेः कल्पे शक्त्या मे पुरुषो हतः ।
तेन कर्मविपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः ।।" [ ] इत्यादि ।

संज्ञेति-संज्ञानामकोऽर्थः । सर्वमिदं सांसारिकं सचेतनाचेतनस्वरूपव्यवहरणं संज्ञामात्रं नाममात्रम् । नात्र कलत्रपुत्रमित्रभ्रात्रादिसंबन्धो घटपटादिपदार्थसार्थो वा पारमार्थिकः । तथा च तत्सूत्रम् । "**तानीमानि भिक्षवः संज्ञामात्रं व्यवहारमात्रं कल्पनामात्रं संवृतिमात्रमतीतोऽध्वानागतोऽध्वा सहेतुको विनाश आकाशं पुद्गलाः" [ ]** इति । संस्कार इति-इहपरभवविषयः संतानपदार्थनिरीक्षण-प्रबुद्धपूर्वानुभूतसंस्कारस्य प्रमातुः स एवायं देवदत्तः, सैवेयं दीपकलिकेत्या-द्याकारेण ज्ञानोत्पत्तिः संस्कारः । यदाह -

"यस्मिन्नेव हि संताने आहिता कर्मवासना ।

फलं तत्रैव संधत्ते कार्पासे रक्तता यथा ।।" [ ] इति ।

रूपमिति-रगरगायमाणपरमाणुप्रचयः । बौद्धमते हि स्थूलरूपस्य जगति विवर्तमानपदार्थजातस्य तद्दर्शनोपपत्तिभिर्निराक्रियमाणत्वात् परमाणव एव तात्त्विकाः । च पुनरर्थः । एवेति पूरणार्थः ।।५।।

दुःखनामधेयमार्यसत्यं पञ्चभेदतया निरूप्य अथ समुदयतत्त्वस्य स्वरूपमाह -

(मू. श्लो.) समुदेति यतो लोके रागादीनां गणोऽखिलः ।

आत्मात्मीयस्वभावाख्यःसमुदयः स संमतः ।।६।।

यतो यस्माल्लोके रागादीनां रागद्वेषमोहानामखिलः समस्तो गणः समुदेत्युद्भवति। कीदृगित्याह । आत्मात्मीयस्वभावाख्यः । अयमात्मा, अयं चात्मीयः, पदे पदसमुदायोपचारादयं परः अयं च परकीय इत्यादिभावो रागद्वेष-निबन्धनं तदाख्यस्तन्मूलो रागादीनां गणः । आत्मात्मीयरूपेण रागरूपः, परपरकीयपरिणामेन च द्वेषरूपो यतः समुदेति स समुदयः समुदयो नाम तत्त्वं संमतो बौद्धदर्शनेऽभिमत इति ।।६।।

अथ तृतीयचतुर्थतत्त्वे प्रपञ्चयन्नाह -

(मू. श्लो.) क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इत्येवं वासना तु या ।

स मार्ग इति विज्ञेयो निरोधो मोक्ष उच्यते ।।७।।

सर्वसंस्काराः क्षणिकाः । सर्वेषां विश्वत्रयविवरविवर्तमानानां घटपटस्तम्भाम्भोरुहादीनां द्वितीयादिक्षणेषु स एवायं स एवायमित्याद्युल्लेखेन ये संस्कारा ज्ञानसंताना उत्पद्यन्ते ते विचारगोचरगताः क्षणिकाः । यत्प्रमाणयन्ति, सर्वं सत् क्षणिकम्, अक्षणिके क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधादिति वादस्थलमभ्यूह्यं क्षणिकत्वाविशेषकम् । विशेषोपपत्तिश्च समग्रं तावदौत्पत्तिकं पदार्थकदम्बकं घटपटादिकं मुद्गरादि-सामग्रीसाकल्ये विनश्वरमाकलय्यते । तत्र योऽस्य प्रान्त्यावस्थायां विनाशस्वभावः स पदार्थोत्पत्तिसमये विद्यते, न वा । अथ विद्यते चेत्; आपतितं तदुत्पत्तिसमयानन्तरमेव विनश्वरत्वम् । अथेदृश एव स्वभावो यत्कियन्तमपि कालं स्थित्वा विनष्टव्यम् । एवं चेन्मुद्गरादिसंनिधानेऽप्येष

एव तस्य स्वभाव इति भूयोऽपि तावत्कालं स्थेयम् । एवं मुद्गरादिघातशतपातेऽपि न विनाशो जातं कल्पान्तस्थायित्वं घटस्य । तथा च जगद्व्यवहार-व्यवस्थालोपपातकपङ्किलतेत्यभ्युपेयमनिच्छताऽपि क्षणक्षयित्वं पदार्थानाम् । प्रयोगस्त्वेवम् । **वस्तु उत्पत्तिसमयेऽपि विनश्वररूपं, विनश्वरस्वभावत्वाद्, यद्विनश्वरं तदुत्पत्तिसमयेऽपि तत्स्वरूपं यथा अन्त्यक्षणवर्त्तिघटस्य स्वरूपम्,** विनश्वरस्वभावं च रूपरसादिकमुदयत आरभ्येति स्वभावहेतुः ।

ननु यदि क्षणक्षयिणो भावाः कथं तर्हि स एवायमिति वासनाज्ञानम् । उच्यते- निरन्तरसदृशापरापरक्षणनिरीक्षणचैतन्योदयादविद्यानुबन्धाच्च पूर्वक्षणप्रलयकाल एव दीपकलिकायामिव सैवेयं दीपकलिकेति संस्कारमुत्पाद्य तत्सदृशम-परक्षणान्तरमुदयते । तेन समानाकारज्ञानपरम्परापरिचयचिरतरपरिणामान्नि-रन्तरोदयाच्च पूर्वक्षणानामत्यन्तोच्छेदेऽपि स एवायमित्यध्यवसायः प्रसभं प्रादुर्भवति । दृश्यते चावलूनपुनरुत्पन्नेषु नखकेशकलापादिषु स एवायमिति प्रतीतिः । तथेहापि किं न संभाव्यते सुजनेन। तस्मात्सिद्धं साधनमिदं यत्सत्तत् क्षणिकमिति । युक्तियुक्तं च क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इत्येवं वासना इति । प्रस्तुतार्थमाह । एवं या वासना स मार्गो नामार्यसत्यम्; इह बौद्धमते, विज्ञेयोऽ-वगन्तव्यः । तुशब्दः पाश्चात्त्यार्थसंग्रहः पूर्वसमुच्चयार्थे । चतुर्थमार्यसत्यमाह । निरोधः किमित्याशङ्कायां मोक्ष उच्यते । मोक्षोऽपवर्गः । सर्वक्षणिकत्व-सर्वनैरात्म्यवासनारूपो निरोधो नामार्यसत्यमभिधीयत इत्यर्थः ।।७।।

अथ तत्त्वानि व्याख्याय तत्संलग्नान्येवायतनान्याह -

(मू. श्लो.) पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् ।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि च ।।८।।

पञ्चसंख्यानीन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्ररूपाणि । शब्दाद्या विषयाः पञ्च, शब्दरूपरस-स्पर्शगन्धरूपाः पञ्च विषया इन्द्रियव्यापारा इत्यर्थः । मानसं चित्तम् । धर्मायतनमिति धर्मप्रधानमायतनं धर्मायतनं चैत्यस्थानमिति । एतानि द्वादशसंख्यानि ज्ञातव्यानि न केवलमेतानि द्वादशायतनानि जातिजरामरण-भवोपादानतृष्णावेदनास्पर्शनामरूपविज्ञानसंस्कारा अविद्यारूपाणि द्वादशायतनानि । चः समुच्चये । अमी सर्वेऽपि संस्काराः क्षणिकाः । शेषं तदेवेति ।।८।।

तत्त्वानि व्याख्यायाधुना प्रमाणमाह -

(मू. श्लो.) प्रमाणे द्वे च विज्ञेये यथा सौगतदर्शने ।
प्रत्यक्षमनुमानं च सम्यग्ज्ञानं द्विधा यतः ।।९।।

तथेति प्रस्तुतानुसंधाने । सौगतदर्शने बौद्धमते । द्वे प्रमाणे विज्ञेये । च शब्दः पुनरर्थे । तदेवाह-प्रत्यक्षमनुमानं च । अक्षमक्षं प्रति गतं प्रत्यक्षमैन्द्रियकमित्यर्थः। अनुमीयत इत्यनुमानं लैङ्गिकमित्यर्थः । यतः सम्यग्ज्ञानं निश्चितावबोधो द्विधा द्विप्रकारः । सम्यग्ग्रहणं मिथ्याज्ञाननिराकरणार्थम् । प्रत्यक्षानुमानाभ्यामेवेत्यर्थः ।।९।।

पृथक्पृथग्दर्शनापेक्षलक्षणसांकर्यभीरु कीदृक् प्रत्यक्षमत्र ग्राह्यमित्याशङ्कायामाह -

(मू. श्लो.) प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तं तत्र बुध्यताम् ।
त्रिरूपाल्लिङ्गतो लिङ्गिज्ञानं त्वनुमानसंज्ञितम् ।।१०।।

तत्र प्रमाणोभय्यां [भये] प्रत्यक्षं बुद्ध्यतां ज्ञायतां शिष्येणेति । किंभूतं कल्पनापोढं शब्दसंसर्गवती प्रतीतिः कल्पना, तयापोढं रहितं निर्विकल्पकमित्यर्थः। अन्यच्चाभ्रान्तं भ्रान्तिरहितं रगरगायमाणपरमाणुलक्षणं स्वलक्षणं हि प्रत्यक्षं निर्विकल्पकमभ्रान्तं च तद् घटपटादिबाह्यस्थूलपदार्थप्रतिबद्धं च ज्ञानं सविकल्पकम् । तच्च बाह्यस्थूलार्थानां तत्तन्मतानुमानोपपत्तिभिर्निराकरिष्यमाणत्वात् । नीलाकारपरमाणुस्वरूपस्यैव तात्त्विकत्वात् ।

ननु यदि बाह्यार्था न सन्ति, किंविषयस्तर्ह्ययं घटपटशकटादि बाह्यस्थूलप्रतिभास इति चेत्; निरालम्बन एवायमनादिवितथवासनाप्रवर्तितो व्यवहाराभासो निर्विषयत्वादाकाशकेशवत्स्वप्नज्ञानवद्वेति । यदुक्तम् -

"नान्योऽनुभाव्यो बुद्ध्यास्ति तस्या नानुभवोऽपरः ।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते ।।" [ ] इति ।
"बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते ।
वासनालुठितं चित्तमर्थाभासे प्रवर्तते ।।" [ ] इति ।
तदुक्तम् - निर्विकल्पमभ्रान्तं च प्रत्यक्षम् । [ ] इति ।

अनुमानलक्षणमाह - तु पुनः त्रिरूपात् पक्षधर्मत्वसपक्षसत्त्वविपक्षव्यावृत्तिरूपाल्लिङ्गतो धूमादेरुपलक्षणाद्यल्लिङ्गिनो वैश्वानरादेर्ज्ञानं तदनुमानसंज्ञित-

मनुमानप्रमाणमित्यर्थः । सूत्रे लक्षणं नान्वेषणीयमिति चरमपादस्य नवाक्षरत्वेऽपि न दोष इति ।।१०।।

रूपत्रयमेवाह -

(मू. श्लो.) रूपाणि पक्षधर्मत्वं सपक्षे विद्यमानता ।
विपक्षे नास्तिता हेतोरेवं त्रीणि विभाव्यताम् ।।११।।

हेतोरनुमानस्य त्रीणि रूपाणि विभाव्यतामिति संबन्धः । तत्र पक्षधर्मत्वमिति। साध्यधर्मविशिष्टो धर्मी पक्षः । यथा 'पर्वतोऽयं वह्निमान् धूमवत्त्वात्' अत्र पर्वतः पक्षः, तत्र धर्मत्वम् । धूमवत्त्वं वह्निमत्त्वेन व्याप्तं धूमोऽग्निं न व्यभिचरतीत्यर्थः । सपक्षे सत्त्वमिति यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसप्रदेशः । अत्र धूमवत्त्वेन हेतुना सपक्षे महानसे (विद्यमानता) सत्त्वं वह्निमत्त्वमस्तीत्यर्थः । विपक्षे नास्तितेति यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा जलाशये । जलाशये हि वह्निमत्त्वं व्यावर्तमानं व्याप्यं धूमवत्त्वमादाय व्यावर्तते इति एवं प्रकारेण हेतोः अनुमानस्य त्रीणि रूपाणि ज्ञायतामित्यर्थः ।।११।।

उपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) बौद्धराद्धान्तवाच्यस्य संक्षेपोऽयं निवेदितः ।
नैयायिकमतस्येतः कथ्यमानो निशम्यताम् ।।१२।।

अयं संक्षेपो निवेदितः कथितः निष्ठां नीत इत्यर्थः । कस्य ? बौद्धराद्धान्तवाच्यस्य बौद्धानां राद्धान्तः सिद्धान्तस्तत्र वाच्योऽभिधातव्योऽर्थस्तस्य । इतोऽनन्तरं नैयायिकमतस्य शैवशासनस्य कथ्यमानो निशम्यतां संक्षेपः कथ्यमानः श्रूयतामित्यर्थः ।।१२।।

तदेवाह -

(मू. श्लो.) आक्षपादमते देवः सृष्टिसंहारकृच्छिवः ।
विभुर्नित्यैकसर्वज्ञो नित्यबुद्धिसमाश्रयः ।।१३।।

आक्षपादा नैयायिकास्तेषां मते शासने देवो दर्शनाधिष्ठायकः शिवो महेश्वरः । स कथंभूतः । सृष्टिसंहारकृत् सृष्टिः प्राणिनामुत्पत्तिः, संहारस्तद्विनाशः, सृष्टिश्च संहारश्चेति द्वन्द्वः तौ करोतीति क्विपितोऽन्तः । तथा हि । अस्य प्रत्यक्षोप-

लक्ष्यमाणचराचरस्वरूपस्य जगतः कश्चिदनिर्वचनीयमाहात्म्यः पुरुषः स्रष्टा ज्ञेयः । केवलसृष्टौ च निरन्तरोत्पद्यमानापारप्राणिगणस्य भुवनत्रयेऽप्यमातृत्वमिति संहारकर्तापि कश्चिदभ्युपगन्तव्यः । यत्प्रमाणम् **सर्वं धरणिधरणीधरतरु-पुरप्राकारादिकं बुद्धिमत्पूर्वकम्, कार्यत्वात्, यद्यत् कार्यं तत्तद्बुद्धिमत्पूर्वकं, यथा घटः, कार्यं चेदम्, तस्माद् बुद्धिमत्पूर्वकमिति प्रयोगः ।** स च भगवानीश्वर एवेत्यर्थः । व्यतिरेके गगनम् । न चायमसिद्धो हेतुः, भुभूधरादीनां स्वकारणकलापजन्यत्वेनावयवितया वा कार्यत्वस्य जगत्प्रसिद्धत्वात् । नापि विरुद्धानैकान्तिकदोषौ; विपक्षादत्यन्तव्यावृत्तत्वात् । नापि कालात्ययापदिष्टः, प्रत्यक्षानुमानोपमानागमाबाध्यमानधर्मधर्मित्वात् । नापि प्रकरणसमः, तत्परि-पन्थिपदार्थस्वरूपसमर्थनः प्रथितप्रत्यनुमानोदयाभावात् । अथ निर्वृतात्मव-दशरीरत्वादेव न संभवति सृष्टिसंहारकर्तेश्वर इति प्रत्यनुमानोदयात् कथं प्रकरणसमदूषणाभाव इति चेत्; उच्यते; अत्र साध्यमान ईश्वररूपो धर्मी प्रतीतः अप्रतीतो वानुमन्यते सुहृदा । अप्रतीतश्चेत्; भवत्परिकल्पितहेतोरेवाश्रया-सिद्धिदोषप्रसङ्गः । प्रतीतश्चेत्; तर्हि येनैव प्रमाणेन प्रतीतस्तेनैव स्वयमुद्भा-वितस्वतनुरपि किमर्थं नाभ्युपगम्यत इति कथमशरीरत्वम् । अतो न दुष्टो हेतुरिति साधूक्तं सृष्टिसंहारकृच्छिवः ।

तथा विभुः सर्वव्यापकः । एकनियतस्थानवृत्तित्वे ह्यनियतप्रदेशनिष्ठितानां पदार्थानां प्रतिनियत-यथावन्निर्माणानुपपत्तेः । न ह्येकस्थानस्थितः कुम्भकारोऽपि दूरदूरतरघटघटनायां व्याप्रियते । तस्माद्विभुर्भगवान् । तथा नित्यैकः । नित्यश्चासावेकश्चेति । यतो नित्योऽत एव एकोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यम् । भगवतो ह्यनित्यत्वे पराधीनोत्पत्तिसव्यपेक्षतया कृतकत्वप्राप्तिः । स्वोत्पत्तावपेक्षितपरव्यापारो हि भावः कृतक इष्यत इति । अथ चेत् कश्चिज्जगत्कर्तारमपरमभिदधातिः, स एवानुयुज्यते । सोऽपि नित्योऽनित्यो वा । नित्यश्चेत्; अधिकृतेश्वरेण किमपराद्धम् । अनित्यश्चेत्; तस्याप्यन्येनोत्पाद-कान्तरेण भाव्यमनित्यत्वादेव तस्याप्यन्येनेति नित्यानित्यवादविकल्पशिल्प-शतस्वीकारे कल्पान्तेऽपि न जल्पसमाप्तिः । तस्मान्नित्य एव भगवान् । अन्यच्च,

एकोऽद्वितीयो बहूनां हि जगत्कर्तृत्वस्वीकारे परस्परं पृथक् पृथगन्योन्यमसदृशमतिव्यापारतयैकैकपदार्थस्य विसदृशनिर्माणे सर्वमसमञ्जसमापद्येतेति भगवानेक एवेति युक्तियुक्तं नित्यैकेति विशेषणम् ।

तथा सर्वज्ञ इति सर्वपदार्थानां सर्वविशेषज्ञाता । सर्वज्ञत्वाभावे हि विधित्सितपदार्थोपयोगयोग्यजगत्प्रसृमरविप्रकीर्णपरमाणुकणप्रचयसम्यक्सामग्रीमीलनाक्षमतया याथातथ्येन पदार्थनिर्माणरचना दुर्घटा । सर्वज्ञश्च सन् सकलप्राणिनां संमीलितसमुचितकारणकलापानुरूपपारिमाण्डल्यानुसारेण कार्यवस्तु निर्मिमाणः स्वार्जितपुण्यपापानुमानेन च स्वर्गनरकयोः सुखदुःखोपभोगं च ददानः केषां नाभिमतः । तथा चोक्तम् -

"ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ।
अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः ।।" [ ] इति ।

भूयोऽपि विशेषयन्नाह 'नित्यबुद्धिसमाश्रयः' इति शाश्वतबुद्धिस्थानम् । क्षणिकबुद्धिमतो हि पराधीनकार्यापेक्षितया मुख्यकर्तृत्वाभावादनीश्वरत्वप्रसक्तिरिति । ईदृग्गुणविशिष्टः शिवो नैयायिकमतेऽभ्युपगन्तव्यः ।।१३।।

अथ तत्त्वानि प्ररूपयन्नाह -

(मू. श्लो.) तत्त्वानि षोडशामुत्र प्रमाणादीनि तद्यथा ।
प्रमाणं च प्रमेयं च संशयश्च प्रयोजनम् ।।१४।।
दृष्टान्तोऽप्यथ सिद्धान्तोऽवयवास्तर्कनिर्णयौ ।
वादो जल्पो वितण्डा च हेत्वाभासाश्छलानि च ।।१५।।
जातयो निग्रहस्थानान्येषामेवं प्ररूपणा ।
अर्थोपलब्धिहेतुः स्यात्प्रमाणं तच्चतुर्विधम् ।।१६।।

अमुत्रास्मिन् प्रस्तुते नैयायिकमते षोडश तत्त्वानि प्रमाणादीनि प्रमाणप्रभृतीनि। तद्यथेति । बालावबोधाय नामान्यप्याह-प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-

छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसिद्धिरिति (न्यायसूत्र-१.१.१) इति षोडश । एषामेवं प्ररूपणेति - तत्त्वानामेवम् अमुना प्रकारेण प्ररूपणा नाममात्र-प्रकटनमित्यर्थः ।

अथैकैकस्वरूपमाह । तत्रादौ प्रमाणस्वरूपं प्रकटयन्नाह - **अर्थोपलब्धिहेतुः प्रमाणं स्यात् ।** अर्थस्य पदार्थस्योपलब्धि-ज्ञानं तस्य हेतुः कारणं प्रमाणं स्याद् भवेत् । परापरदर्शनापेक्षया प्रमाणानामनियतत्वात्संदिहानस्य संख्यामुपदिशन्नाह-तच्चतुर्विधमिति । तत्प्रमाणं चतुर्विधं ज्ञेयमिति ।।१४-१६।।

(मू. श्लो.) प्रत्यक्षमनुमानं चोपमानं शाब्दिकं तथा ।
तत्रेन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नमव्यभिचारिकम् ।।१७।।
व्यवसायात्मकं ज्ञानं व्यपदेशविवर्जितम् ।
प्रत्यक्षमितरन्मानं तत्पूर्वं त्रिविधं भवेत् ।।१८।।

व्याख्या - प्रमाणनामानि निगदसिद्धान्येव, केवलमुपमया सह इत्युपमानं । अथ प्रत्यक्षानुमानस्वरूपमाह तत्र प्रमाणचातुर्विध्ये प्रत्यक्षं कीदृगिति संबन्धः । विशेषणान्याह - इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नमिति । इन्द्रियं चार्थश्चेति द्वन्द्वः, तयोः संनिकर्षात्संयोगादुत्पन्नं जातम् । इन्द्रियं हि नैकट्यात् पदार्थे संयुज्यते । इन्द्रियार्थसंयोगाज्ज्ञानमुत्पद्यते । यदुक्तम् -

"आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण,
स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एषः शीघ्रम् ।
योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति
यस्मिन्मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ।।" [ ]

तत्राव्यभिचारिकं ज्ञानान्तरेण नान्यथाभावि । शुक्तिशकले कलधौतबोधो हीन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नोऽपि व्यभिचारी दृष्टोऽतोऽव्यभिचारिकं ग्राह्यम् । तथा व्यवसायात्मकं व्यवहारसाधकम् । सजलधरणितले हि बहलशाड्वलवृक्षावल्या-मिन्द्रियार्थसांनिध्योद्गतमपि जलज्ञानं तत्प्रदेशसंगमेऽपि स्नानपानादिव्यवहारा-साधकत्वादप्रमाणम् । अतः सफलं व्यवसायात्मकमिति विशेषणम् । तथा

व्यपदेशविवर्जितमिति । व्यपदेशो विपर्ययस्तेन रहितम् । तथाहि - आजन्मकाचकामलादिदोषदूषितचक्षुषः पुरुषस्य धवलशङ्खे पीतज्ञानमुदेति तद्यद्यपि सकलकालं तन्नेत्रदोषाविरामादिन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नमस्ति तथाप्यन्य-वस्तुनोऽन्यथाबोधान्न तद्यथोक्तलक्षणं प्रत्यक्षमिति प्रत्यक्षसाधकं विशेषण-चतुष्टयमुक्तम् ।

साम्प्रतमनुमानमाह । इतरदन्यन्मानमनुमानमुपदिशति तदनुमानं पूर्वं प्रथमं त्रिविधं त्रिप्रकारकं भवेज्ज्ञायेत । पूर्वमितिपदेनानुमानान्तरभेदानन्त्यमाह । तत्पूर्वं प्रत्यक्षपूर्वं चेति श्लोकद्वयार्थः ।।१७-१८।।

अनुमानत्रैविध्यमाह -

(मू. श्लो.) पूर्ववच्छेषवच्चैव दृष्टं सामान्यस्तथा ।
तत्राद्यं कारणात्कार्यमनुमानमिह गीयते ।।१९।।

पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टं चेत्यनुमानत्रयम् । चः समुच्चये । एवेति पूरणार्थे। तथेति उपदर्शने । तत्र त्रिषु मध्ये, आद्यमनुमानमिह शास्त्रे कारणात्कार्य-मनुमानमुदितं कारणान्मेघात् कार्यं वृष्टिलक्षणं यतो ज्ञायते तत्कारणकार्यं नामानुमानं कथितमित्यर्थः ।।१९।।

निदर्शनेन तमेवार्थं द्रढयन्नाह यथा -

(मू. श्लो.) रोलम्बगवलव्यालतमालमलिनत्विषः ।
वृष्टिं व्यभिचरन्तीह नैवंप्रायाः पयोमुचः ।।२०।।

यथेति दृष्टान्तकथारम्भे । रोलम्बाः भ्रमराः, गवलं माहिषं श्रृङ्गम्, व्याला गजाः, सर्पा वा, तमाला वृक्षविशेषाः, सर्वेऽप्यमी कृष्णाः पदार्थाः स्वभावतो ज्ञेयाः । द्वन्द्वसमासो बहुव्रीहिश्च । एवंप्राया एवंविधाः पयोमुचो मेघा वृष्टिं न व्यभिचरन्तीति। एवंप्राया इत्युपलक्षणेन परेऽपि वृष्टिहेतवोऽभ्युन्नत्यादि विशेषा ज्ञेयाः । यदुक्तम् -

"गम्भीरगर्जितारम्भनिर्भिन्नगिरिगह्वराः ।" तुङ्गत्तडिल्लतासङ्गपिशङ्गोत्तुङ्गविग्रहाः ।।" (न्याय मं०) इत्यादयोऽपि वृष्टिं न व्यभिचरन्ति ।।२०।।

शेषवन्नामधेयं द्वितीयमनुमानभेदमाह -

(मू. श्लो.) कार्यात्कारणानुमानं यच्च तच्छेषवन्मतम् ।
तथाविधनदीपूरान्मेघो वृष्टो यथोपरि ।।२१।।

यत्कार्यात् फलात्कारणानुमानं फलोत्पत्तिहेतुपदार्थावगमनं तच्छेषवदनुमानं मतं कथितं नैयायिकशासने । यथा तथाविधनदीपूरादुपरि मेघो वृष्टस्तथाविध-प्रवहत्सलिलसंभारभरितो यो नदीपूरः सरित्प्रवाहस्तस्मादुपरि शिखरिशिखरोपरि जलधराभिवर्षणज्ञानं तच्छेषवत् । अत्र कार्यं नदीपूरः कारणं च पर्वतोपरि मेघो वृष्ट इति । उक्तं च नैयायिकैः -

"आवर्तवर्तनाशालिविशालकलुषोदकः ।
कल्लोलविकटास्फालस्फुटफेनच्छटाङ्कितः ।।
वहद्बहुलशेवालफलाशाड्वलसंकुलः ।
नदीपूरविशेषोऽपि शक्यते न निवेदितुम् ।।" [ ] इति।।२१।।

तृतीयानुमानमाह -

(मू. श्लो.) यच्च सामान्यतो दृष्टं तदेवं गतिपूर्विका ।
पुंसि देशान्तरप्राप्तिर्यथा सूर्येऽपि सा तथा ।।२२।।

चः पुनरर्थे । यत् सामान्यतो दृष्टमनुमानं तदेवममुना वक्ष्यमाणप्रकारेण । यथा पुंसि पुरुषे देवदत्तादौ देशान्तरप्राप्तिगतिपूर्विका । एकस्माद्देशान्तरगमनं गमनपूर्वकमित्यर्थः । यथोज्जयिन्याः प्रस्थितो देवदत्तो माहिष्मतीं पुरीं प्राप्तः । सूर्येऽपि सा तथेति, यथा पुंसि तथा सूर्येऽपि सा गतिरभ्युपगम्यते । यद्यपि गगने संचरतः सूर्यस्य नेत्रावलोकप्रसारणाभावेन गतिर्नोपलभ्यते, तथाप्युदयाचलात् सायमस्ताचलचूलिकावलम्बनं गतिं सूचयति । एवं सामान्यतोदृष्टमनुमानं ज्ञेयमित्यर्थः ।।२२।।

अथ क्रमायातमपि शाब्दप्रमाणं स्वल्पवक्तव्यत्वादुपेक्ष्यादावुपमानलक्षणमाह -

(मू. श्लो.) प्रसिद्धवस्तुसाधर्म्यादप्रसिद्धस्य साधनम् ।
उपमानं तदाख्यातं यथा गौर्गवयस्तथा ।।२३।।

तदुच्यमानमुपमानमाख्यातं कथितम् । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् । यत्किंचित् अप्रसिद्धस्य साधनम् अज्ञायमानस्यार्थस्य ज्ञापनं क्रियते । प्रसिद्धधर्म-साधर्म्यादिति, प्रसिद्धा(द्धः) आबालगोपालाङ्गनाविदितोऽसौ धर्मोऽसाधारण-लक्षणं तस्य साधर्म्यं समानधर्मत्वं तस्मादित्युपमानमाख्यातम् । दृष्टान्तमाह - यथा गौर्गवयस्तथेति । यथा कश्चिदरण्यवासी नागरिकेण कीदृग्गवय इति पृष्टः, स च परिचितगोगवयलक्षणो नागरिकं प्राह यथा गौस्तथा गवयः, खुरककुदलाङ्गूल-सास्नादिमान् यादृशो गौस्तथा जन्मसिद्धो गवयोऽपि ज्ञेय इत्यर्थः । अत्र प्रसिद्धो गौस्तत्साधर्म्यादप्रसिद्धस्य गवयस्य साधनमिति ।।२३।।

उपमानं व्यावर्ण्य शब्दप्रमाणमाह -

(मू. श्लो.) शाब्दमाप्तोपदेशस्तु मानमेवं चतुर्विधम् ।
प्रमेयं त्वात्मदेहार्थबुद्धीन्द्रियसुखादि च ।।२४।।

तु पुनराप्तोपदेशः शाब्दम् । अवितथवादी हितश्चाप्तः प्रत्ययितजनस्तस्य य उपदेश आदेशवाक्यं तच्छाब्दम् आगमप्रमाणं ज्ञेयमिति । एवमुक्तभङ्ग्या मानं प्रमाणं चतुर्विधं चतुष्प्रकारं निष्ठितमित्यर्थः ।

अथ प्रमेयलक्षणमाह - 'प्रमेयं त्वात्मदेहार्थबुद्धीन्द्रियसुखादि चेति' प्रमाणग्राह्योऽर्थः प्रमेयं, तु पुनरर्थे । आत्मा च देहश्चेति द्वन्द्वः । आदिशब्देन शेषाणामपि षण्णां प्रमेयार्थानां संग्रहः । तच्च नैयायिकसूत्रे आत्मशरीरेन्द्रियार्थ-बुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गभेदेन द्वादशविधम् । तत्र सचेतनत्व-कर्तृत्वसर्वगतत्वादिधर्मैरात्मा प्रमीयते । एवं देहादयोऽपि प्रमेयता ज्ञेयाः । अत्र तु ग्रन्थविस्तारभयान्न प्रपञ्चिता इतरग्रन्थेभ्योऽपि सुज्ञेयत्वाच्चेति ।।२४।।

संशयादिस्वरूपमाह -

(मू. श्लो.) किमेतदिति संदिग्धः प्रत्ययः संशयो मतः ।
प्रवर्तते यदर्थित्वात्तत्तु साध्यं प्रयोजनम् ।।२५।।

दूरावलोकनेन पदार्थपरिच्छेदकधर्मेषु संशयानः प्राह-किमेतदिति । एतत्किं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति यः संदिग्धः प्रत्ययः स संशयो नाम तत्त्वविशेषो मतः संमतः तच्छासन इति । प्रयोजनमाह - तत्तु तत्पुनः प्रयोजनं नाम तत्त्वं यत्किमित्याह -

अर्थित्वात्प्राणी साध्यं कार्यं प्रति प्रवर्तते । प्रतीत्यध्याहार्यम् । 'न हि निष्फल-कार्यारम्भ' इत्यर्थित्वादुक्तम् । एवं यत्प्रवर्तनं तत्प्रयोजनमित्यर्थः ।।२५।।

(मू. श्लो.) दृष्टान्तस्तु भवेदेष विवादविषयो न यः ।
सिद्धान्तस्तु चतुर्भेदः सर्वतन्त्रादिभेदतः ।।२६।।

व्याख्या - तु पुनरेष दृष्टान्तो नाम तत्त्वं भवेत् । यत्किमिति । विवादविषयो न यः यस्मिन्नुपन्यस्ते वचने वादगोचरो न भवति । इदमित्थं भवति न वेति विवादो न भवतीत्यर्थः । तावच्चान्वयव्यतिरेकयुक्तोऽर्थः स्खलति यावन्न स्पष्टं दृष्टान्तोपष्टम्भः । उक्तं च -

"तावदेव चलत्यर्थो मन्तुर्गोचरमागतः ।
यावन्नोत्तम्भनेनैव दृष्टान्तेनावलम्ब्यते ।।"

एष दृष्टान्तो ज्ञेयः ।

सिद्धान्तः पुनश्चतुर्भेदो भवेत् । कथमित्याह - सर्वतन्त्रादिभेदत इति । सर्वतन्त्रसिद्धान्त इति प्रथमो भेदः । आदिशब्दाद्भेदत्रयमिदं ज्ञेयम् । यथा प्रतितन्त्रसिद्धान्तोऽधिकरणसिद्धान्तोऽभ्युपगमसिद्धान्तश्चेति । अमी चत्वारः सिद्धान्तभेदाः । नाममात्रकथनमिदम्, विस्तरग्रन्थेभ्यस्तु विशेषो ज्ञेयः ।।२६।।

अवयवादितत्त्वत्रयस्वरूपमाह -

(मू. श्लो.) प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनया निगमस्तथा ।
अवयवाः पञ्च तर्कः संशयोपरमो भवेत् ।।२७।।
यथा काकादिसंपातात् स्थाणुना भाव्यमत्र हि ।
ऊर्ध्वं संदेहतर्काभ्यां प्रत्ययो निर्णयो मतः ।।२८।।

अवयवाः पञ्चेति संबन्धः । पूर्वार्द्धमाह - प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तोपनया निगमनं चेति पञ्चावयवाः । तत्र प्रतिज्ञा पक्षः, कृशानुमानयं सानुमानित्यादि । हेतुर्लिङ्गवचनम्, धूमवत्त्वादित्यादि । दृष्टान्त उदाहरणवचनम्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान् यथा महानसप्रदेश इत्यादि । उपनयो हेतोरुपसंहारकं वचनम्, धूमवांश्चायमित्यादि । निगमनं हेतूपदेशेन पुनः साध्यधर्मोपसंहरणं तस्माद्वह्निमानित्यादि । इति पञ्चावयवस्वरूपनिरूपणम्, इति अवयवतत्त्वं ज्ञेयमिति । तर्कः संशयोपरमो

भवेत् । यथा काकेत्यादि । दूराद्-दृग्गोचरे स्पष्टप्रतिभासाभावात् किमयं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयस्तस्योपरमेऽभावे सति तर्को भवेत् तर्को नाम तत्त्वं स्यात् । कथमित्याह - यथेति । दूरादूर्ध्वस्थं पदार्थं विलोक्य स्थाणुपुरुषयोः संदिहानोऽवहितीभूय विमृशति । काकादिसंपातादादिशब्दाद्वल्ल्युत्सर्पणादयः स्थाणुधर्मा ग्राह्याः । वायसप्रभृतिसंबन्धादत्र स्थाणुना भाव्यं कीलकेन भवितव्यम् । पुरुषे हि शिरःकम्पनहस्तचालनादिभिः काकपातानुपपत्तेः । एवं संशयाभावे तर्कतत्त्वं ज्ञेयमिति । ऊर्ध्वमित्यादि पूर्वोक्तलक्षणाभ्यां संदेहतर्काभ्यामूर्ध्वमुत्तरं यः प्रत्ययः, स्थाणुरेवायं पुरुष एवायमिति प्रतीतिविषयः, स निर्णयः निर्णयनामा तत्त्वविशेषो ज्ञेयः । यत्तदावर्थसंबन्धादनुक्तावपि ज्ञेयौ ।।२७-२८।।

वादतत्त्वमाह –

(मू. श्लो.) आचार्यशिष्ययोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहात् ।
यः कथाभ्यासहेतुः स्यादसौ वाद उदाहृतः ।।२९।।

असौ वाद उदाहृतः कथितस्तज्ज्ञैरित्यर्थः । यः कः । इत्याह - कथाभ्यासहेतुः । कथा प्रामाणिकी तस्या अभ्यासहेतुः कारणम् । कयोः आचार्यशिष्ययोः । आचार्यो गुरुरध्यापकः, शिष्यश्चाध्येता विज्ञेय इति । कस्मात् । पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहात् । पक्षः पूर्वपक्षः प्रतिज्ञादिपरिग्रहः, प्रतिपक्ष उत्तरपक्षः पूर्वपक्षवादिप्रयुक्तप्रतिज्ञादिप्रतिपन्थिकोपन्यासप्रौढिः तयोः परिग्रहात्संग्रहादित्यर्थः । आचार्यः पूर्वपक्षमङ्गीकृत्याचष्टे । शिष्यश्चोत्तरपक्षमुररीकृत्य पूर्वपक्षं खण्डयति । एवं निग्राहकजयपराजयच्छलजात्यादिनिरपेक्षतया अभ्यासनिमित्तम् । पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहेण यत्र गुरुशिष्यौ गोष्ठीं कुरुतः स वादो ज्ञेयः ।।२९।।

अथ तद्विशेषमाह -

(मू. श्लो.) विजिगीषुकथायां तु छलजात्यादिदूषणम् ।
स जल्पः सा वितण्डा तु या प्रतिपक्षविवर्जिता ।।३०।।

स जल्प इति संबन्धः । यत् तु विजिगीषुकथायां विजयाभिलाषिवादिप्रतिवादिप्रारब्धप्रमाणोपन्यासगोष्ठ्यां सत्यां छलजात्यादिदूषणम् । छलं त्रिप्रकारम् - वाक्छलं, सामान्यच्छलम्, उपचारच्छलं चेति, जातयश्चतु-

विंशतिभेदाः, आदिशब्दान्निग्रहस्थानादिपरिग्रहः, एतैः कृत्वा दूषणं परोपन्यस्तपक्षादेर्दूषणजालमुत्पाद्य निराकरणम् । अभिमतं च स्वपक्षस्थापनेन सन्मार्गप्रतिपत्तिनिमित्ततया छलजात्याद्युपन्यासैः परप्रयोगस्य दूषणोत्पादनम् । तथा चोक्तम् –

"दुःशिक्षितकुतर्कांशलेशवाचालिताननाः ।
शक्याः किमन्यथा जेतुं वितण्डादोषमण्डिताः ।।
गतानुगतिको लोकः कुमार्गं तत्प्रतारितः ।
मा गादिति च्छलादीनि प्राह कारूणिको मुनिः ।।" (न्यायम. प्रमा.) इति।

संकटे प्रस्तावे च सति छलादिभिरपि स्वपक्षस्थापनमनुमतम् । परविजये हि धर्मध्वंसादिदोषसंभवस्तस्माद्वरं छलादिभिरपि जयः । सा वितण्डा तु या प्रतिपक्षविवर्जिता । सा पुनर्वितण्डा, या किम् ? विजिगीषुकथेव प्रतिपक्षविवर्जिता । वादिप्रयुक्तपक्षप्रतिरोधकः प्रतिवाद्युपन्यासः प्रतिपक्षस्तेन विवर्जिता रहितेति प्रतिपक्षसाधनविहीनो वितण्डावादः । वैतण्डिको हि स्वाभ्युपगतपक्षमस्थापयन् यत्किञ्चिद्वादेन परोक्तमेव दूषयतीत्यर्थः ।।३०।।

(मू. श्लो.) हेत्वाभासा असिद्धाद्याच्छलं कूपो नवोदकः ।
जातयो दूषणाभासाः पक्षादिर्दूष्यते न यैः ।।३१।।

हेत्वाभासा ज्ञेया इति । के ते ? इत्याह - **असिद्धाद्याः**, असिद्धविरुद्धानैकान्तिककालात्ययापदिष्टप्रकरणसमाः पञ्च हेत्वाभासा ज्ञेयाः । तत्र पक्षे धर्मत्वं यस्य नास्ति सोऽसिद्धः । विपक्षे सन् सपक्षे चासन् विरुद्धः । पक्षत्रयवृत्तिरनैकान्तिकः । प्रत्यक्षानुमानागमविरुद्धपक्षप्रवृत्तिः कालात्ययापदिष्टः । विशेषाग्रहणे हेतुत्वेन प्रयुज्यमानः प्रकरणसमः । उदाहरणानि स्वयमभ्यूह्यानि ।

छलं कूपो नवोदक इति । परोपन्यस्तवादे स्वाभिमतार्थान्तरकल्पनया वचनविघातश्छलम् । कथमित्याह - वादिना कूपो नवोदक इति कथायां प्रत्यग्रार्थवाचकतया नवशब्दप्रयोगे छलवादी नवसंख्यामारोप्य दूषयति । कुत एक एव कूपो नवसंख्योदक इति वाक्छलम् । प्रस्तावागतत्वेन शेषच्छलद्वयमप्याह - संभावनयातिप्रसङ्गिनोऽपि सामान्यस्योपन्यासे हेतुत्वारोपणेन

तन्निषेधः सामान्यच्छलम् । यथा 'अहो नु खल्वसौ ब्राह्मणो विद्याचरणसंपन्न' इति ब्राह्मणस्तुतिप्रसङ्गे कश्चिद्वदति-संभवति ब्राह्मणे विद्याचरणसंपदिति । तच्छलवादी ब्राह्मणत्वस्य हेतुत्वमारोप्य निराकुर्वन्नभियुङ्क्ते । यदि ब्राह्मणे विद्याचरणसंपद्भवति व्रात्येऽपि सा भवेद् व्रात्योऽपि ब्राह्मण एवेति । औपचारिके प्रयोगे मुख्यप्रतिषेधेन प्रत्यवस्थानम्, उपचारच्छलम् । यथा मञ्चाः क्रोशन्तीत्युक्ते परः प्रत्यवतिष्ठते कथमचेतना मञ्चाः क्रोशन्ति मञ्चस्थाः पुरुषाः क्रोशन्तीति छलत्रयस्वरूपं ज्ञेयमिति ।

जातय इत्यादि । **दूषणाभासा जातयः** । अदूषणान्यपि दूषणवदाभासन्त इति दूषणाभासाः । यैः, किम् ? **पक्षादिर्न दूष्यते,** आभासमात्रत्वान्न पक्षदोषः समुद्भावयितुं शक्यते केवलं सम्यग्हेतौ हेत्वाभासे वा वादिना प्रयुक्ते झगिति तद्दोषतत्त्वानवभासे हेतुप्रतिबिम्बनप्रायं किमपि प्रत्यवस्थानं जातिः । सा चतुर्विंशतिभेदाः साधर्म्यादिप्रत्यवस्थानभेदेन । यथा साधर्म्य-वैधर्म्य-उत्कर्ष-अपकर्ष-वर्ण्य-अवर्ण्य-विकल्प-साध्य-प्राप्ति-अप्राप्ति-प्रसङ्ग-प्रतिदृष्टान्त-अनुत्पत्ति-संशय-प्रकरण-अहेतु-अर्थापत्ति-अविशेष-उपपत्ति-उपलब्धि-अनुपलब्धि-नित्य-अनित्य-कार्यसमाः । तत्र साधर्म्येन प्रत्यवस्थानं **साधर्म्यसमा** जातिर्भवति । 'अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवत्' इति प्रयोगे कृते साधर्म्यप्रयोगेणैव प्रत्यवस्थानम्-नित्यः शब्दो निरवयवत्वात् आकाशवत् । न चास्ति विशेषहेतुः घटसाधर्म्यात् कृतकत्वात् अनित्यः शब्दः, न पुनः आकाशसाधर्म्यान्निरवयवत्वात् नित्य इति (१)। वैधर्म्येण प्रत्यवस्थानं **वैधर्म्यसमा** जातिर्भवति अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवत् इत्यत्रैव प्रयोगे स एव हेतुर्वैधर्म्येण प्रयुज्यते नित्यः शब्दो निरवयवत्वात्, अनित्यं हि सावयवं दृष्टं घटादीति । न चास्ति विशेषहेतुः घटसाधर्म्यात् कृतकत्वात् अनित्यः शब्दः, न पुनस्तद्वैधर्म्यात् निरवयवत्वान्नित्य इति (२)। उत्कर्षापकर्षाभ्यां प्रत्यवस्थान-**मुत्कर्षापकर्षसमे** जाती भवतः । तत्रैव प्रयोगे दृष्टान्तधर्मं कंचित्साध्यधर्मिण्यापादयन्नुत्कर्षसमां जातिं प्रयुङ्क्ते । यदि घटवत्कृतकत्वादनित्यः शब्दो घटवदेव मूर्तोऽपि भवेद्, न चेन्मूर्तो घटवदनित्योऽपि मा भूदिति शब्दे धर्मान्तरोत्कर्ष-मापादयति (३)। (अपकर्षस्तु घटः कृतकः सन्नश्रावणो दृष्टः एवं शब्दोऽपि भवेत्, नो चेद् मूर्तो घटवदनित्योऽपि माभूदिति शब्दे धर्मान्तरोत्कर्षमापादयति ।)

अपकर्षस्तु घटः कृतकः सन्नश्रावणो दृष्टः एवं शब्दोऽपि भवेत् । नो चेद् घटवदनित्योऽपि मा भूदिति शब्दे श्रावणत्वं धर्ममपकर्षति (४)। वर्ण्यावर्ण्याभ्यां प्रत्यवस्थानं **वर्ण्यावर्ण्यसमे** जाती भवतः । ख्यापनीयो वर्ण्यस्तद्विपरीतोऽ-वर्ण्यस्तावेतौ वर्ण्यावर्ण्यौ साध्यदृष्टान्तधर्मौ विपर्यस्यन् वर्ण्यावर्ण्यसमे जाती प्रयुङ्क्ते । यथाविधः शब्दधर्मः कृतकत्वादि न तादृग् घटधर्मो, यादृग् घटधर्मो न तादृक् शब्दधर्म इति साध्यधर्मदृष्टान्तधर्मौ हि तुल्यौ कर्तव्यौ । अत्र तु विपर्यासः, यतो यादृग्घटधर्मः कृतकत्वादि न तादृक् शब्दधर्मः । घटस्य ह्यन्यादृशं कुम्भकारादिजन्यं कृतकत्वम् । शब्दस्य हि ताल्वोष्ठादिव्यापारजमिति (५-६)। धर्मान्तरविकल्पेन प्रत्यवस्थानं **विकल्पसमा** जातिः । यथा कृतकं किंचिन्मृदुं दृष्टं राङ्कवशय्यादि, किंचित्कठोरं कुठारादि, एवं कृतकं किंचिदनित्यं भविष्यति घटादिकम्, किंचिन्नित्यं शब्दादीति (७)। साध्यसाम्यापादनेन प्रत्यवस्थानं **साध्यसमा** जातिः । यथा-कृतकः यदि यथा घटः तथा शब्दः प्राप्तः तर्हि यथा शब्दस्तथा घट इति । शब्दश्च साध्य इति घटोऽपि साध्यो भवेत्, ततश्च न साध्यं साध्यस्य दृष्टान्तः स्यात् । न चेदेवं तथापि वैलक्षण्यात् सुतरामदृष्टान्त इति (८)। प्राप्त्यप्राप्ति-विकल्पाभ्यां प्रत्यवस्थानं **प्राप्त्यप्राप्तिसमे** जाती । यथा यदेतत्कृतकत्वं त्वया साधनमुपन्यस्तं तत्किं प्राप्य साधयत्यप्राप्य वा । प्राप्य चेत् द्वयोर्विद्यमान-योरेव प्राप्तिर्भवति न तत्सदसतोरिति, द्वयोश्च सत्त्वात्किं कस्य साध्यं साधनं वा । अप्राप्य तु साधनमयुक्तम्; अतिप्रसङ्गादिति (९-१०)। अतिप्रसङ्गापादनेन प्रत्यवस्थानं **प्रसङ्गसमा** जातिः । यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवदित्युक्ते जातिवाद्याह-यद्यनित्यत्वे कृतकत्वं साधनं कृतकत्वे इदानीं किं साधनं तत्साधने किं साधनमिति (११)। प्रतिदृष्टान्तेन प्रत्यवस्थानं **प्रतिदृष्टान्त-समा** जातिः । यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वाद् घटवदित्युक्ते जातिवाद्याह - यथा घटः प्रयत्नानन्तरीयकोऽनित्यो दृष्ट एवं प्रतिदृष्टान्त आकाशं नित्यमपि प्रयत्नानन्तरीयकं दृष्टं कूपखननप्रयत्नानन्तरमुपलम्भादिति । न चेदमनैकान्तिकत्वोद्भावनं भङ्ग्यन्तरेण प्रत्यवस्थानात् (१२)। अनुत्पत्त्या प्रत्यव-स्थानम् **अनुत्पत्तिसमा** जातिः । यथानुत्पन्ने शब्दाख्ये धर्मिणि कृतकत्वं धर्मः क्व वर्तते ?, तदेवं हेत्वभावादसिद्धिरनित्यत्वस्येति (१३) । साधर्म्यसमा वैधर्म्यसमा

वा या जातिर्यथा पूर्वमुदाहृता, सैव संशयेनोपसंह्रियमाणा **संशयसमा** जातिर्भवति। यथा किं घटसाधर्म्यात्कृतकत्वादनित्यः शब्दः, किं वा तद्वैधर्म्येणाकाश-साधर्म्यान्निरवयवत्वान्नित्य ? इति (१४)। द्वितीयपक्षोत्थापनबुद्ध्या प्रयुज्यमाना सैव साधर्म्यसमा वैधर्म्यसमा वा जातिः **प्रकरणसमा** भवति । तत्रैवानित्यः शब्दः कृतकत्वाद् घटवदिति प्रयोगे नित्यः शब्दः श्रावणत्वात् शब्दत्ववदिति, उद्भावनप्रकारभेदमात्रे सति नानात्वं द्रष्टव्यम् (१५)। त्रैकाल्यानुपपत्त्या हेतोः प्रत्यवस्थापन**महेतुसमा** जातिः । यथा हेतुः साधनम्, तत्साध्यात्पूर्वं पश्चाद्वा सह वा भवेत् । यदि पूर्वम्, असति साध्ये तत्कस्य साधनम् । अथ पश्चात्साधनम्; पूर्वं तर्हि साध्यं, तस्मिंश्च पूर्वसिद्धे किं साधनेन ?। अथ युगपत्साध्यसाधने; तर्हि तयोः सव्येतरगोविषाणयोरिव साध्यसाधनभाव एव न भवेदिति (१६) । अर्थापत्त्या प्रत्यवस्थानम् **अर्थापत्तिसमा** जातिः । यथा - यद्यनित्यसाधर्म्यात्कृत-कत्वादनित्यः शब्दोऽर्थादापद्यते, नित्य साधर्म्यान्नित्य इति । अस्ति चास्य नित्येनाकाशेन साधर्म्यं निरवयवत्वमित्युद्भावनप्रकारभेद एवायमिति (१७)। अविशेषापादनेन प्रत्यवस्थान**मविशेषसमा** जातिः । यथा यदि शब्दघटयोरेको धर्मः कृतकत्वमिष्यते तर्हि समानधर्मयोगात्तयोरविशेषे तद्वदेव सर्वपदार्था-नामविशेषः प्रसज्यत इति (१८)। उपपत्त्या प्रत्यवस्थान**मुपपत्तिसमा** जातिः । यथा यदि कृतकत्वोपपत्त्या शब्दस्यानित्यत्वं निरवयवत्वोपपत्त्या नित्यत्वमपि कस्मान्न भवति ? पक्षद्वयोपपत्त्या अनध्यवसायपर्यवसानत्वं विवक्षितमित्युद्भावनप्रकारभेद एवायम् (१९)। उपलब्ध्या प्रत्यवस्थान**मुपलब्धिसमा** जातिः । यथा अनित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति प्रयुक्ते प्रत्यवतिष्ठते न खलु प्रयत्नानन्तरीयकत्व-मनित्यत्वे साधनम्, साधनं तदुच्यते येन विना न साध्यमुपलभ्यते, उपलभ्यते च प्रयत्नानन्तरीयकत्वेन विनापि विद्युदादावनित्यत्वम्, शब्देऽपि क्वचिद्वायुवेग-भज्यमानवनस्पत्यादिजन्ये तथेति (२०)। अनुपलब्ध्या प्रत्यवस्थान**मनुप-लब्धिसमा** जातिः । यथा तत्रैव प्रयत्नानन्तरीयकत्वहेतावुपन्यस्ते, सत्याह जातिवादी न प्रयत्नकार्यः शब्दः प्रागुच्चारणादस्त्येवासौ, आवरणयोगात्तु नोपलभ्यते । आवरणानुपलम्भेऽप्यनुपलम्भान्नास्त्येव शब्द इति चेत्; न;

आवरणानुपलम्भेऽप्यनुपलम्भसद्भावादावरणानुपलब्धेश्चानुलपम्भादभावः, तदभावे चावरणोपलब्धेर्भावो भवति । ततश्च मृदन्तरितमूलकीलोदकादिवदावरणोपलब्धिकृतमेव शब्दस्य प्रागुच्चारणादग्रहणमिति प्रयत्नकार्याभावान्नित्यः शब्द इति (२१)। साध्यधर्मनित्यानित्यत्वविकल्पेन शब्दनित्यतापादनं **नित्यसमा** जातिः । यथा अनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञाते जातिवादी विकल्पयति येयमनित्यता शब्दस्योच्यते सा किमनित्या, नित्या वेति । यद्यनित्या; तदियमवश्यमपायिनीत्यनित्यताया अभावान्नित्यः शब्दः । अथ अनित्यता नित्यैवेति तथापि धर्मस्य नित्यत्वात्तस्य च निराश्रितस्यानुपपत्तेः तदाश्रयभूतः शब्दोऽपि नित्य एव भवेत् । स चेन्न; तदनित्यत्वे तद्धर्मनित्यत्वायोगादित्युभयथापि नित्यः शब्द इति (२२)। एवं सर्वभावानित्यत्वोपपादनेन प्रत्यवस्थान**मनित्यसमा** जातिः । यथा घटसाधर्म्यमनित्यत्वेन शब्दस्यास्तीति तस्यानित्यत्वं यदि प्रतिपाद्यते तद् घटेन सर्वपदार्थानामस्त्येव किमपि साधर्म्यमिति तेषामप्यनित्यत्वं स्यात् । अथ पदार्थान्तराणां तथाभावेऽपि नानित्यत्वं तर्हि शब्दस्यापि तन्माभूदिति अनित्यत्वमात्रापादनपूर्वकविशेषोद्भावनाच्चाविशेषसमातो भिन्नेयं जातिः । प्रयत्नकार्यना-नात्वोपन्यासेन प्रत्यवस्थानं **कार्यसमा** जातिः (२३)। यथानित्यः शब्दः प्रयत्नानन्तरीयकत्वादित्युक्ते जातिवाद्याह-प्रयत्नस्य द्वैरूप्यं दृष्टं किंचिदसदेव तेन जन्यते यथा घटादिकम्, किंचित्सदेवावरणव्युदासादिना अभिव्यजते यथा मृदन्तरितमूलकीलादि । एवं प्रयत्नकार्यनानात्वादेषः प्रयत्नेन शब्दो व्यज्यते जन्यते वेति संशय इति संशयापादानप्रकारभेदाच्च संशयसमातः कार्यसमा जातिर्भिद्यते (२४)। तदेवमुद्भावनविषयविकल्पभेदेन जातीनामानन्त्ये [अ] संकीर्णोदाहरणविवक्षया चतुर्विंशतिजातिभेदा एते दर्शिता इति ।

दूषणाभासानुक्त्वा निग्रहस्थानमाह -

(मू. श्लो.) निग्रहस्थानमाख्यातं परो येन निगृह्यते ।
प्रतिज्ञाहानिसंन्यासविरोधादिविभेदवत् ।।३२।।

येन केनचिद्रूपेण **परो** विपक्षो **निगृह्यते** परवादी वचननिग्रहे पात्यते तन्निग्रहस्थानमाख्यातं कथितमिति। कतिचिद्भेदान् नामतो निर्दिशन्नाह-

प्रतिज्ञाहानिसंन्यासविरोधादिविभेदवत् । हानिसंन्यासविरोधाः प्रतिज्ञाशब्देन संबध्यते । आदिशब्देन शेषानपि भेदान् परामृशति । एतद्दूषणजालमुत्पाद्यते येन तन्निग्रहस्थानम् । **यदुक्तं - "विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्" [न्यायसू० १.२.१९]** । तत्र **विप्रतिपत्तिः** साधनाभासे साधनबुद्धिः दूषणाभासे च दूषणबुद्धिरिति । **अप्रतिपत्तिः** साधनस्यादूषणं दूषणस्य चानुद्धरणम् । **तद्धि निग्रहस्थानं द्वाविंशतिभेदम्** । तद्यथा-प्रतिज्ञाहानिः, प्रतिज्ञान्तरं, प्रतिज्ञाविरोधः प्रतिज्ञासंन्यासः, हेत्वन्तरम्, अर्थान्तरं, निरर्थकम्, अविज्ञातार्थम्, अपार्थकम्, अप्राप्तकालम्, न्यूनम्, अधिकम्, पुनरुक्तम्, अननुभाषणम्, अज्ञानम्, अप्रतिभा, विक्षेपः, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षणम्, निरनुयोज्यानुयोगः, अपसिद्धान्तः, हेत्वाभासश्च । तत्र हेतावनैकान्तिकीकृते प्रतिदृष्टान्तधर्मं स्वदृष्टान्तेऽभ्युपगच्छतः **प्रतिज्ञाहानि**र्नाम निग्रहस्थानं भवति । यथा अनित्यः शब्दः, ऐन्द्रियिकत्वाद् घटवदिति प्रतिज्ञासाधनाय वादी वदन् परेण सामान्यमैन्द्रियिकमपि नित्यं दृष्टमिति हेतावनैकान्तिकी कृते यद्येवं ब्रूयात् सामान्यवत् घटोऽपि नित्यो भवति, स एवं ब्रुवाणः शब्दानित्यत्वप्रतिज्ञां जह्यात् (१)। प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे परेण कृते तत्रैव धर्मिणि धर्मान्तरसाधनमभिदधतः **प्रतिज्ञान्तरं** नाम निग्रहस्थानं भवति । अनित्यः शब्द ऐन्द्रियिकत्वादित्युक्ते तथैव सामान्येनैव व्यभिचारेणोदिते यदि ब्रूयाद् युक्तं सामान्यमैन्द्रियिकं नित्यं तद्धि सर्वगतमसर्वगतस्तु शब्द इति, सोऽयमनित्यः शब्द इति पूर्वप्रतिज्ञातः प्रतिज्ञान्तरमसर्वगतः शब्द इति प्रतिज्ञान्तरेण निगृहीतो भवति (२)। प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः **प्रतिज्ञाविरोधो** नाम निग्रहस्थानं भवति । यथा गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धेरिति, सोऽयं प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधो यदि गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं कथं रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धिः, अथ रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धिः कथं गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यमिति तदयं प्रतिज्ञाविरुद्धाभिधानात्पराजीयते (३)। पक्षसाधने परेण दूषिते तदुद्धरणाशक्त्या प्रतिज्ञामेव निह्नुवानस्य **प्रतिज्ञासंन्यासो** नाम निग्रहस्थानं भवति । यथा अनित्यः शब्दः ऐन्द्रियिकत्वादित्युक्ते तथैव सामान्येनानैकान्तिकतायामुद्भावितायां यदि ब्रूयात् क एवमाह 'अनित्यः शब्दः'

इति प्रतिज्ञासंन्यासात् पराजितो भवतीति (४)। अविशेषाभिहिते हेतौ प्रतिषिद्धे तद्विशेषणमभिदधतो **हेत्वन्तरं** नाम निग्रहस्थानं भवति । तस्मिन्नेव प्रयोगे तथैव सामान्येऽस्य व्यभिचारेण दूषिते जातिमत्त्वे सतीत्यादिविशेषणमुपाददानो हेत्वन्तरेण निगृहीतो भवति (५) । प्रकृतादर्थादर्थान्तरं तदौ (तदनौ)-पयिकम-भिदधतो**ऽर्थान्तरं** नाम निग्रहस्थानं भवति । अनित्यः शब्दः कृतकत्वादिति हेतुः । हेतुरिति हिनोतेर्धातोस्तुप्रत्यये कृदन्तं पदम्, पदं च नामतद्धितनि-पातोपसर्गा इति प्रस्तुत्य नामादीनि व्याचक्षाणोऽर्थान्तरेण निगृह्यत इति (६)। अभिधेयरहितवर्णानुपूर्वीप्रयोगमात्रं **निरर्थकं** नाम निग्रहस्थानं भवति । यथा अनित्यः शब्दः कचतटपानां गजडदबवत्त्वाद् घझढधभवदित्येतदपि सर्वथा अर्थशून्यत्वान्निग्रहाय कल्पेत, साध्यानुपयोगाद्वा (७)। यत्साधनवाक्यं दूषणवाक्यं वा त्रिवारमभिहितमपि पर्षत्प्रतिवादिभ्यां बोद्धुं न शक्यते **तदाविज्ञातार्थं** नाम निग्रहस्थानं भवति (८)। पूर्वापरासंगतपदसमूहप्रयोगाद-प्रतिष्ठितवाक्यार्थमपार्थकं नाम निग्रहस्थानं भवति, दश दाडिमानि षडपूपा इति (९)। प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनवचनक्रममुल्लङ्घ्य अवयव-विपर्यासेन प्रयुज्यमानमनुमानवाक्यम**प्राप्तकालं** नाम निग्रहस्थानं भवति । स्वप्रतिपत्तिवत् परप्रतिपत्तेर्जनने परार्थानुमानक्रमस्यापगमात् (१०) । पञ्चावयवे वाक्ये प्रयोक्तव्ये तदेकतमेनानुमानावयवेन हीनं **न्यूनं** नाम निग्रहस्थानं भवति, साधनाभावे साध्यसिद्धेरभावात् प्रतिज्ञादीनां पञ्चानामपि साधनत्वात् (११)। एकेनैव हेतुनोदाहरणेन वा प्रतिपादितेऽर्थे हेत्वन्तरमुदाहरणान्तरं वा वदतो**ऽधिकं** नाम निग्रहस्थानं भवति (१२)। शब्दार्थयोः पुनर्वचनं **पुनरुक्तं** नाम निग्रहस्थानं भवति, अन्यत्रानुवादात् । शब्दपुनरुक्तं नाम यत्र स एव शब्दः पुनरुच्चार्यते यथा अनित्यः शब्दोऽनित्यः इति । अर्थपुनरूक्तं तु यत्र सोऽर्थः प्रथममन्येन शब्देनोच्चार्यते पुनः पर्यायान्तरेणोच्यते यथा अनित्यः शब्दो विनाशी ध्वनिरिति । अनुवादे तु पौनरुक्त्यमदोषः । यथा हेतूपदेशात् प्रतिज्ञायाः पुनर्वचनं निगमनमिति (१३)। पर्षदाविदितस्य वादिभिरभिहितस्यापि यदप्रत्युच्चारणं **तदननुभाषणं** नाम निग्रहस्थानं भवति (१४)। पर्षदा विज्ञातस्यापि वादिवाक्यार्थस्य प्रतिवादिनो यदज्ञानं **तदज्ञानं** नाम निग्रहस्थानं भवति । अविदितोत्तरविषयो हि किमुत्तरं

ब्रूयात् । न चाननुभाषणमेवेदम्, ज्ञातेऽपि वस्तुन्यनुभाषणासामर्थ्यदर्शनात् (१५)। परपक्षे गृहीतेऽप्यनुभाषितेऽपि तस्मिन्नुत्तराप्रतिप**त्तिरप्रतिभा** नाम निग्रहस्थानं भवति (१६) । कार्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो **विक्षेपो** नाम निग्रहस्थानं भवति । सिषाधयिषितस्यार्थस्याशक्यसाधनतामवसाय कथां विच्छिनत्तीदं मम करणीयं परिहीयते, पीनसेन कण्ठ उपरुद्ध इत्याद्यभिधाय कथां विच्छिन्दन् विक्षेपेण पराजीयते (१७)। स्वपक्षे परापादितदोषमनुद्धृत्य तमेव परपक्षे प्रतीपमापादयतो **मतानुज्ञा** नाम निग्रहस्थानं भवति । चौरो भवान् पुरुषत्वात् प्रसिद्धचौरवदित्युक्ते, भवानपि चौरः पुरुषत्वादिति ब्रुवन्नात्मनः परापादितचौरत्वदोषमभ्युपगतवान् भवतीति मतानुज्ञया निगृह्यते (१८)। निग्रहप्राप्तस्यानिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षपणं नाम निग्रहस्थानं भवति । पर्यनुयोज्यो नाम निग्रहोपपत्त्यावश्यं नोदनीयः 'इदं ते निग्रहस्थानमुपनतमतो निगृहीतोऽसि' इत्येवं वचनीयस्तमुपेक्ष्य न निगृह्णाति यः स पर्यनुयोज्योपेक्षणेन निगृह्यते (१९)। अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानानुयोगा**न्निरनुयोज्यानुयोगो** नाम निग्रहस्थानं भवति । उपपन्नवादिनमप्रमादिनमनिग्रहार्हमपि निगृहीतोऽसीति यो ब्रूयात्स एवाभूतदोषोद्भावनान्निगृह्यत इति (२०)। सिद्धान्तमभ्युपेत्य [अ] नियमात्कथाप्रसङ्गोऽ**पसिद्धान्तो** नाम निग्रहस्थानम् । यः प्रथमं किंचित्सिद्धान्तमभ्युपगम्य कथामुपक्रमते, तत्र च सिषाधयिषितार्थसाधनाय परोपालम्भाय वा सिद्धान्तविरुद्धमभिधत्ते सोऽपसिद्धान्तेन निगृह्यते (२१)। हेत्वाभासाश्च यथोक्ता असिद्धविरुद्धादयो निग्रहस्थानम् इति (२२)। भेदान्तरानन्त्येऽपि निग्रहस्थानानां द्वाविंशतिर्मूलभेदा निवेदिता इति ।।३२।।

अथोपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) नैयायिकमतस्यैवं समासः कथितोऽधुना ।
सांख्याभिमतभावानामिदानीमयमुच्यते ।।३३।।

एवम् इत्थंप्रकारतया नैयायिकमतस्य शैवशासनस्य समासः संक्षेपोऽधुना कथितो निवेदितः साम्प्रतमेव निष्ठित इत्यर्थः । इदानीं पुनरयं समासः

सांख्याभिमतभावानाम् उच्यते । सांख्याः कापिला इत्यर्थः । तदभिमता 'तदभीष्टा ये भावाः पञ्चविंशतितत्त्वादयस्तेषां संक्षेपोऽतः परं कथ्यत इत्यर्थः ।।' ।।३३।।

[सांख्यमत]

दर्शनस्वरूपमाह -

(मू. श्लो.) सांख्या निरीश्वराः केचित्केचिदीश्वरदेवताः ।
सर्वेषामपि तेषां स्यात्तत्त्वानां पञ्चविंशतिः ।।३४।।

केचित्सांख्या निरीश्वरा ईश्वरं देवतया न मन्यन्ते केवलाध्यात्मवेदिनः । केचित्पुनरीश्वरदेवता महेश्वरं स्वशासनाधिष्ठातारमाहुः । सर्वेषामपि । तेषां केवलनित्यात्मवादिनामीश्वरदेवतानां च सर्वेषां सांख्यमतानुसारिणां शासने तत्त्वानां पञ्चविंशतिः स्यात् । तत्त्वं ह्यपवर्गसाधकं बीजमिति सर्ववादिसंवादः । यदुक्तम् - **"पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतः ।**
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ।।" तन्मते पञ्चविंशतिस्तत्त्वानीत्यर्थः ।।३४।।

गुणत्रयमाह -

(मू. श्लो.) सत्त्वं रजस्तमश्चेति ज्ञेयं तावद् गुणत्रयम् ।
प्रसादतोषदैन्यादिकार्यलिङ्गं क्रमेण तत् ।।३५।।

तावदिति प्रक्रमे । तेषु तत्त्वेषु सत्त्वं सुखलक्षणं रजो दुःखलक्षणं तमश्चेति मोहलक्षणं प्रथमं तावत् (गुणत्रयम्) सत्त्वं रजस्तमश्चेति **गुणत्रयं ज्ञेयम्** । तद् गुणत्रयं क्रमेण परिपाट्या, प्रसादतोषदैन्यादिकार्यलिङ्गं गुणत्रयेणेदं लिङ्गत्रयं क्रमेण जन्यते । सत्त्वगुणेन प्रसादकार्यलिङ्गं वदननयनादिप्रसन्नता सत्त्वगुणेन स्यादित्यर्थः । रजोगुणेन तोषः स चानन्दपर्यायः, तल्लिङ्गानि स्फूर्त्यादीनि रजोगुणेनाभिव्यज्यन्त इत्यर्थः । तमोगुणेन च दैन्यं जन्यते 'हा दैव नष्टोऽस्मि, वञ्चितोऽस्मि' इत्यादिवचनविच्छायतानेत्रसंकोचादिव्यङ्ग्यं दैन्यं तमोगुणलिङ्गमिति । दैन्यादीत्यादिशब्देन दुःखत्रयमाक्षिप्यते, तद्यथा आध्यात्मिकम्, आधिभौतिकम्, आधिदैविकं चेति । तत्राध्यात्मिकं द्विविधं शारीरं मानसं च । शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तम्, मानसं कामक्रोधलोभमोहेर्ष्या-

विषयादर्शननिबन्धनम् सर्वं चैतदान्तरोपायसाध्यत्वादाध्यात्मिकं दुःखम् । बाह्योपायसाध्यं दुःखं द्वेधा, आधिभौतिकम् आधिदैविकं चेति । तत्राधिभौतिकं मानुषपशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तम्, आधिदैविकं यक्षराक्षसग्रहाद्यावेश-हेतुकमिति ।।३५।।

तदेवाह -

(मू. श्लो.) एतेषां या समावस्था सा प्रकृतिः किलोच्यते ।
प्रधानाव्यक्तशब्दाभ्यां वाच्या नित्यस्वरूपिका ।।३६।।

एतेषां सांख्यानां **प्रकृतिः** प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकानां लाघवोपष्टम्भगौरवधर्माणां परस्परोपकाराणां सत्त्वरजस्तमसां त्रयाणामपि गुणानां या **साम्यावस्था** समतयावस्थितिः **सा किल प्रकृतिरुच्यते,** किलेत्याप्तप्रवादे, सा प्रकृतिः कथ्यते । अन्यच्च सा प्रधानाव्यक्तशब्दाभ्यां वाच्या प्रधानशब्देन अव्यक्तशब्देन च प्रकृतिराख्यायते । शास्त्रे प्रकृतिः प्रधानमव्यक्तं चेति पर्याया न तत्त्वान्तरमित्यर्थः। तथा **नित्यस्वरूपिका** शाश्वतभावतया **प्रसिद्धे**त्यर्थः । उच्यते च नित्या नानापुरुषाश्रया च तद्दर्शनेन प्रकृतिर्यदाह -

"तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः ।।"
इति (सांख्यका-६२) ।।३६।।

अनेन दुःखत्रयेणाभिहतस्य प्राणिनस्तत्त्वजिज्ञासोत्पद्यते अतस्तान्येव तत्त्वान्याह -

(मू. श्लो.) ततः संजायते बुद्धिर्महानिति यकोच्यते ।
अहंकारस्ततोऽपि स्यात्तस्मात्षोडशको गणः ।।३७।।

ततो गुणत्रयाभिघाताद् बुद्धिः संजायते यका बुद्धिर्महानिति उच्यते महच्छब्देन कीर्त्यत इत्यर्थः । एवमेतन्नान्यथा, गौरयं नाश्वः, स्थाणुरेष नायं पुरुष इत्येवं निश्चयस्तेन पदार्थप्रतिपत्तिहेतुर्योऽध्यवसायः सा बुद्धिरिति । तस्यास्त्वष्टौ रूपाणि तद्दर्शनविश्रुतानि । यदाह - धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यरूपाणि चत्वारि सात्त्विकानि, अधर्मादीनि तु तत्प्रतिपक्षभूतानि चत्वारि तामसानीत्यष्टौ । ततो बुद्धेरहंकारः स

चाभिमानात्मको यथा [१]अहं शब्दे, अहं रूपे, अहं रसे, अहं स्पर्शे, अहं गन्धे, अहं स्वामी, अहम् ईश्वरः, असौ मया हतः, अहं त्वां हनिष्यामीत्यादिप्रत्ययरूपः **तस्मादहंकारात्षोडशको गणो** 'जायते' इत्यध्याहारः अस्ति भवतीत्यादिवत् । पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि एकादशं मनः पञ्च भूतानि षोडशको गणः । तथाह ईश्वरकृष्णः-

"मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ।।"

(सांख्यका-३) इति ।।३७।।

षोडशकगणमेवाह -

(मू. श्लो.) स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं च पञ्चमम् ।
पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुस्तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।।३८।।
पायूपस्थवचःपाणिपादाख्यानि मनस्तथा ।
अन्यानि पञ्चरूपाणि तन्मात्राणीति षोडश ।।३९।। युग्मम् ।

पञ्च बुद्धीन्द्रियाणीति संबन्धः । **स्पर्शनं** त्वगिन्द्रियम्, **रसनं** जिह्वा, **घ्राणं** नासिका, **चक्षु**र्नेत्रं, **पञ्चमं** च **श्रोत्रं** कर्ण इति, एतानि पञ्चबुद्धिप्रधानानि बुद्धिसहचराण्येव ज्ञानं जनयन्तीति कृत्वा बुद्धीन्द्रियाण्याहुः कथयन्ति तन्मतीया इति । तथा कर्मेन्द्रियाणि चेति । तथा पूर्वोद्दिष्टपञ्चसंख्यामात्रमपि परामृशति । तान्येवाह - पायूपस्थवचःपाणिपादाख्यानीति । पायुरपानम्, उपस्थः प्रजननम्, वचो वाक्यम्, पाणिर्हस्तः, पादश्चरणस्तदाख्यानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, कर्म कार्यव्यापारस्तस्य साधनानीन्द्रियाणीति कर्मेन्द्रियाणि । तथा मन एकादश-मिन्द्रियमित्यर्थः । अन्यानि पञ्चरूपाणि तन्मात्राणि चेति । रूपरसगन्धशब्द-स्पर्शाख्यानि तन्मात्राणीति षोडश ज्ञेयाः ।।३८-३९।।

---

१. अत्र क्रमेण प्रतीतिपञ्चकाकारस्थाने, अहं श्रृणोमि, अहं रूपयामि, अहं रसयामि, अहं स्पृशामि, अहं जिघ्रामि, इत्येवाकारपञ्चकं ज्याय इति भाति, मूले निर्दिष्टाकारकप्रतीतीनामनानुभविकत्वाद् । ग्रन्थकारलेखानुपूर्वीभङ्गभिया तु मूलस्थपाठो न परावर्ति ।

पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्चभूतोत्पत्तिमाह -

(मू. श्लो.) रूपात्तेजो रसादापो गन्धाद्भूमिः स्वरान्नभः ।
स्पर्शाद्वायुस्तथैवं पञ्चभ्यो भूतपञ्चकम् ।।४०।।

पञ्चभ्य इति, पञ्चतन्मात्रेभ्यः **पञ्चभूतक**मिति संबन्धः । रूपतन्मात्रात्तेजः, रसतन्मात्रादापः, गन्धतन्मात्राद् भूमिः, स्वरतन्मात्रादाकाशम्, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, एवं पञ्चतन्मात्रेभ्यः पञ्च भूतान्युत्पद्यते । असाधारणैकैकगुणकथनमिदम्, उत्पत्तिश्च शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दगुणम्, शब्दो ह्यम्बरगुण इति । शब्दतन्मात्र-सहितात् स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणमिति । शब्दस्पर्शतन्मात्रसहिताद् रुपतन्मात्रात्तेजः शब्दस्पर्शरुपगुणमिति । शब्दस्पर्शरुपतन्मात्रसहिताद्रसत-न्मात्रादापः शब्दस्पर्शरूपरसगुणा इति । शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रसहिताद् गन्धतन्मात्रात् शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणा पृथिवी जायत इति पञ्चभूतकमित्यर्थः ।

प्रकृतिविस्तरमेवोपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) एवं चतुर्विंशतितत्त्वरूपं निवेदितं सांख्यमते प्रधानम् ।
अन्यस्त्वकर्ता विगुणस्तु भोक्ता तत्त्वं पुमान्नित्यचिदभ्युपेतः ।।४१।।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सांख्यमते चतुर्विंशतितत्त्वरूपं प्रधानं निवेदितम् । प्रकृतिर्महानहंकारश्चेति त्रयम्, पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, मनस्त्वेकम्, पञ्च तन्मात्राणि, पञ्चभूतानि, चेति चतुर्विंशतिस्तत्त्वानि रूपं यस्येति, एवंविधा प्रकृतिः कथितेत्यर्थः । पञ्चविंशतितमं तत्त्वमाह - अन्यस्त्विति । अन्योऽकर्ता पुरुषः, प्रकृतेरेव संसरणादिधर्मत्वात् । यदुक्तं - **प्रकृतिः करोति प्रकृतिर्बध्यते प्रकृतिर्मुच्यते, न तु पुरुषः, पुरुषोऽबद्धः पुरुषो मुक्तः** । पुरुषस्तु -

"अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्मः आत्मा कापिलदर्शने ।।"

पुरुषगुणानाह - **विगुण** इति । सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयविकलः । तथा भोक्ता भोगी, एवंप्रकारः पुमान् तत्त्वं पञ्चविंशतितमं तत्त्वमित्यर्थः । तथा नित्यचिदभ्युपेतः, नित्या चासौ चिच्चैतन्यशक्तिस्तयाभ्युपेतः सहितः । आत्मा हि स्वं बुद्धेरव्यतिरिक्तमभिमन्यते । सुखदुःखादयश्च विषया इन्द्रियद्वारेण बुद्धौ

संक्रामन्ति । बुद्धिश्चोभयमुखदर्पणाकारा । ततस्तस्यां चैतन्यशक्तिः प्रतिबिम्बते । ततः सुख्यहं दुःख्यहमित्युपचर्यते । आह च पातञ्जले, **"शुद्धोऽपि पुरुषः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति तमनुपश्यन्नतदात्माऽपि तदात्मक इव प्रतिभासते"** [योगभा०] इति मुख्यतस्तु चिच्छक्तिर्विषयपरिच्छेदशून्या, बुद्धेरेव विषयपरिच्छेदस्वभावत्वात् चिच्छक्तिसंनिधानाच्चाचेतनापि बुद्धिश्चेतनावतीवावभासते । वादमहार्णवोऽप्याह - **"बुद्धिदर्पणसंक्रान्तमर्थविप्रतिबिम्बकम् । द्वितीयदर्पणकल्पे पुरुषे ह्यधिरोहति ।।"** तदेव भोक्तृत्वमस्य न तु विकारोत्पत्तिरिति ।

तथा चासुरिः -

"विविक्ते दृक्परिणतौ बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते ।
प्रतिबिम्बोदयः स्वच्छे यथा चन्द्रमसोऽम्भसि ।।"

विन्ध्यवासी त्वेवं भोगमाचष्टे -

"पुरुषोऽविकृतात्मैव स्वनिर्भासमचेतनम् ।
मनः करोति सांनिध्यादुपाधेः स्फटिकं यथा ।।" [ ] इति ।

नित्यचिज्ज्ञानयुक्तः । बन्धमोक्षसंसाराश्च नित्येऽप्यात्मनि भृत्यगतयोर्जयपराजययोरिव तत्फलकोशलाभादिसंबन्धेन स्वामिन्युपचारवदत्राप्युपचर्यन्त इत्यदोषः ।।४१।।

तत्त्वोपसंहारमाह -

(मू. श्लो.) पञ्चविंशतितत्त्वानि सांख्यस्यैव भवन्ति च ।
प्रधाननरयोश्चात्र वृत्तिः पङ्ग्वन्धयोरिव ।।४२।।

पूर्वार्धं निगदसिद्धम् । अत्र सांख्यमते प्रधाननरयोः प्रकृतिपुरुषयोर्वृत्तिर्वर्तनं पङ्ग्वन्धयोरिव पङ्गुश्चरणविकलः, अन्धश्च नेत्रविकलः । यथा पङ्ग्वन्धौ संयुक्तावेव कार्यसाधनाय प्रभवतो न पृथग्भूतौ । प्रकृतिपुरुषयोरपि तथैव कार्यकर्तृत्वम् । प्रकृत्युपात्तं पुरुषो भुङ्क्त इत्यर्थः ।।४२।।

मोक्षं प्रमाणं चाह -

(मू. श्लो.) प्रकृतिवियोगो मोक्षः पुरुषस्यैवान्तरज्ञानात् ।
मानत्रितयं च भवेत् प्रत्यक्षं लैङ्गिकं शाब्दम् ।।४३।।

मोक्षः किमुच्यत इत्याह । पुरुषस्यात्मन आन्तरज्ञानात् त्रिविधबन्धविच्छेदात्प्रकृतिवियोगो यः स मोक्षः प्रकृत्या सह वियोगे विरहे सति पुरुषस्यापवर्ग इति । आन्तरज्ञानं च बन्धविच्छेदाद्भवति । बन्धश्च प्राकृतिकवैकृतिकदाक्षिणभेदात् त्रिविधः । तद्यथा, प्रकृतावात्मज्ञानाद् ये प्रकृतिमुपासते तेषां प्राकृतिको बन्धः । ये विकारानेव भूतेन्द्रियाहंकारबुद्धीः पुरुषबुद्ध्योपासते तेषां वैकारिकः । इष्टापूर्ते दाक्षिणः, इष्टापूर्तं जनभोजनदानादिकं तस्मिन्, पुरुषतत्त्वानभिज्ञो हीष्टापूर्तकारी कामोपहतमना बध्यत इति ।

"इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यत् श्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेन भूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।"

[ ] इति वचनात् ।

इति त्रिविधबन्धविच्छेदात्परमब्रह्मज्ञानानुभवस्ततः प्रकृतिवियोगः पुरुषस्य, प्रकृतिपुरुषविवेकदर्शनाच्च निवृत्तायां प्रकृतौ, पुरुषस्य स्वरूपावस्थानं मोक्ष इति श्लोकपूर्वार्द्धार्थः । मानत्रितयं च प्रमाणत्रयं च, भवेत् स्यात्, प्रत्यक्षं लैङ्गिकं शब्दं च, चकारः सर्वत्र संबध्यते । प्रत्यक्षमिन्द्रियोपलभ्यम्, लैङ्गिकमनुमानगम्यम्, शाब्दं चागमस्वरूपमिति प्रमाणत्रयम् ।

अथोपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) एवं सांख्यमतस्यापि समासः कथितोऽधुना ।
जैनदर्शनसंक्षेपः कथ्यते सुविचारवान् ।।४४।।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सांख्यमतस्यापि समासः संक्षेपः कथितः । अपि समुच्चयार्थे न केवलं बौद्धनैयायिकयोः संक्षेप उक्तः, सांख्यमतस्याप्यधुना कथित इति । सांख्य इति पुरुषनिमित्तेयं संज्ञा । संख्यस्य इमे सांख्याः । [1]तालव्यो वा शकारः, शङ्खनामाऽऽदिपुरुषः ।

१. अप्रामाणिकोऽयं कल्पः । प्रथमकल्पस्तु कथमपि संगमनीयः । वस्तुतस्तु, "शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते" इति व्यासस्मृत्या भावार्थकाङ्प्रत्ययनिष्पन्नज्ञानवाचकसंख्याशब्दात्संबन्धिबोधकशैषिकाणा "सांख्य" शब्दः सिद्धः । यद्वा "संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते । चतुर्विंशतितत्त्वानि तेन सांख्याः प्रकीर्त्तिताः" इति (महा) भारतात्, संख्याशब्दाद्वेदार्थकाणां निष्पन्नः "सांख्य" शब्दः । उभयथाऽपि योगरूढः । मु० टि० ।

[जैनमत]

अथ क्रमायातं जैनमतोद्देशमाह - अधुनेत्युत्तरार्द्धेन वा संबध्यते । अधुना इदानीं जैनदर्शनसंक्षेपः कथ्यते कथंभूत इति । सुविचारवान् । सुष्ठु शोभनो विचारोऽर्थोस्यास्तीति मत्त्वर्थीये मतुप् । सुविचारवानिति साभिप्रायं पदम् । अपरदर्शनानि हि ।

"पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।।" [मनु. १२-११०]

इत्याद्युक्त्या न विचारपदवीमाद्रियन्ते । जैनस्त्वाह -

"अस्ति वक्तव्यता काचित्तेनेदं न विचार्यते ।
निर्दोषं काञ्चनं चेत्स्यात्परीक्षाया बिभेति किम् ।।" [ ]

इति युक्तियुक्तविचारपरम्परापरिचयपथपथिकत्वेन जैनो युक्तिमार्गमेवावगाहते। न च पारम्पर्यादिपक्षपातेन युक्तिमुल्लङ्घयति परमार्हतः । उक्तं च -

"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ।।" [लोकतत्त्व. १/३८]

इत्यादिहेतुहेतिशतनिरस्तविपक्षप्रसरत्वेन 'सुविचारवान्' इत्यसाधारणं विशेषणं ज्ञेयमिति ।

तदेवाह -

(मू. श्लो.) जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जितः ।
हतमोहमहामल्लः केवलज्ञानदर्शनः ।।४५।।
सुरासुरेन्द्रसंपूज्यः सद्भूतार्थोपदेशकः ।
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा संप्राप्तः परमं पदम् ।।४६।।

तत्र तस्मिन् जैनमते जिनेन्द्रो देवता कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा परमं पदं समाप्त इति संबन्धः । जिनेन्द्र इति जयन्ति रागादीनिति जिनाः सामान्यकेवलिनस्तेषामिन्द्रः स्वामी तादृशासदृशचतुस्त्रिंशदतिशयसंपत्सहितो जिनेन्द्रो देवता दर्शनप्रवर्तक आदिपुरुषः, एष कीदृक् सन् शिवं संप्राप्त इति परासाधारणानि विशेषणान्याह -

रागद्वेषविवर्जित इति रागः सांसारिकस्नेहोऽनुग्रहलक्षणः, द्वेषो वैराग्याद्यनुबन्धान्निग्रहलक्षणः, ताभ्यां विवर्जितो रहितः । एतावेव, दुर्जयौ दुरन्तभवसंपातहेतुकतया च मुक्तिप्रतिरोधकौ समये प्रसिद्धौ । यदाह -

"को दुक्खं पाविज्ञा कस्स न सुक्खेहिं विम्हहो हुज्ञा ।
को य न लभेज्ञ मुक्खं रागद्दोसा जइ न हुज्ञा ।।"

[उपदेशमाला-१२९] इति ।

तथा हतमोहमहामल्लः मोहनीयकर्मोदयात् हिंसात्मकशास्त्रेभ्योऽपि मुक्तिकाङ्क्षादिव्यामोहो मोहः स एव दुर्जेयत्वान्महामल्ल इव महामल्लः, हतो मोहमहामल्लो येनेति स तथा । रागद्वेषमोहसद्भावादेव न चान्यतीर्थाधिष्ठातारो मुक्त्यङ्गतया प्रतिभासन्ते, तत्सद्भावश्च तेषु सुज्ञेय एव । यदुक्तम् -

"रागोऽङ्गनासङ्गमनानुमेयो द्वेषो द्विषाद् दारणहेतिगम्यः ।
मोहः कुवृत्तागमदोषसाध्यो नो यस्य देवस्य स चैवमर्हन् ।।"

इति रागद्वेषमोहरहितो भगवान् । तथा केवलज्ञानदर्शनः । धवखदिरपलाशादिव्यक्तिविशेषावबोधो ज्ञानम् । वनमिति सामान्यावबोधो दर्शनम् । केवलशब्दश्चोभयत्र संबध्यते । केवलमिन्द्रियादिज्ञानानपेक्षं ज्ञानं दर्शनं च यस्येति । केवलज्ञान-केवलदर्शनात्मको हि भगवान् करतलकलितविमलमुक्ताफलवद्द्रव्यपर्यायविशुद्धमखिलमिदमनवरतं जगत्स्वरूपं पश्यतीति केवलज्ञानदर्शन इति पदं साभिप्रायम् । छद्मस्थस्य हि प्रथमं दर्शनमुत्पद्यते, ततो ज्ञानं, केवलिनस्त्वादौ ज्ञानं ततो दर्शनमिति । तथा सुरासुरेन्द्रसंपूज्यः । सेवावधानसावधाननिरन्तरढौकमानदासायमानदेवदानवनायकवन्दनीयः । तादृशैरपि पूज्यस्य मानवतिर्यक्खेचरकिंनरनिकरसंसेव्यत्वमानुषङ्गिकमिति । तथा सद्भूतार्थोपदेशकः । सद्भूतार्थान् द्रव्यपर्यायरूपान् नित्यानित्यसामान्यविशेषसदसदभिलाप्यानभिलाप्याद्यनन्तधर्मात्मकान् पदार्थानुपदिशति यः स इति ।

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं च सदिति अभिमन्यमानो जैनः एकान्तनित्यपक्षमेकान्तानित्यपक्षं चेत्थं विघटयति । तथा हि - **वस्तुनस्तावदर्थक्रियाकारित्वं**

लक्षणम् । तच्च नित्यैकान्ते न घटते । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपो हि नित्यः, स च क्रमेणार्थक्रियां कुर्वीताक्रमेण वा । अन्योन्यव्यतिरिक्तधर्माणा-मर्थानां प्रकारान्तरेणोत्पादाभावात् । तत्र न क्रमेण; स हि कालान्तरभाविनीः क्रियाः प्रथमक्रियाकाल एव प्रसह्य कुर्यात् समर्थस्य कालक्षेपायोगात्, कालक्षेपिणो वासामर्थ्यप्राप्तेः । समर्थोऽपि हि तत्तत्सहकारिसमवधाने तं तमर्थं करोतीति चेद्, न तर्हि तस्य सामर्थ्यमपरसहकारिसापेक्षवृत्तित्वात् **'सापेक्षमसमर्थम्'** [ ] इति न्यायात् । न तेन सहकारिणोऽपेक्ष्यन्ते, अपि तु कार्यमेव सहकारिष्व-सत्स्वभवत्तानपेक्षत इति चेत्, तत्किं स भावोऽसमर्थः समर्थो वा । समर्थश्चेत्किं सहकारिमुखप्रेक्षणदीनानि, तान्यपेक्षते न पुनर्झटिति घटयति । ननु समर्थमपि बीजमिलाजलानिलादिसहकारिसहितमेवाङ्कुरं करोति नान्यथा,· तत्किं बीजस्य सहकारिभिः किंचिदुपक्रियते, न वा । यदि नोपक्रियते तदा सहकारि-संनिधानात्प्रागिव किं न सोऽर्थक्रियायामुदास्ते, उपक्रियते चेत्, स तर्हि तैरुपकारो भिन्नोऽभिन्नो वा क्रियत इति वाच्यम् । अभेदे, स एव क्रियत इति लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाता, कृतकत्वेन तस्यानित्यत्वापत्तेः । भेदे सति कथं तस्योपकारः किं न सह्यविन्ध्यादेरपि । तत्संबन्धात्तस्यायमिति चेत्, उपकार्योपकारकयोः क संबन्धः ? न तावत्संयोगः, द्रव्ययोरेव तस्य भावात् । अत्र तूपकार्यं द्रव्यमुपकारश्च क्रियेति न संयोगः । नापि समवायः, तस्यैकत्वाद्व्यापकत्वाच्च प्रत्यासत्ति-विप्रकर्षाभावेन सर्वत्र तुल्यत्वान्न नियतैः संबन्धिभिः संबन्धो युक्तः । नियतसंबन्धिसंबन्धे चाङ्गीक्रियमाणे तत्कृतोपकारोऽस्य समवायस्याभ्युपगन्तव्यः, तथा च सत्युपकारस्य भेदाभेदकल्पना तदवस्थैव । उपकारस्य समवायादभेदे समवाय एव कृतः स्यात् भेदे पुनरपि समवायस्य न नियतसंबन्धे संबन्धत्वम् । तन्नैकान्तनित्यो भावः क्रमेणार्थक्रियां कुरुते । नाप्यक्रमेणः, न ह्येको भावः सकलकालकलाभाविनीर्युगपत्सर्वाः क्रियाः करोतीति प्रातीतिकम्, कुरुतां वा तथापि स द्वितीयक्षणे किं कुर्यात् । करणे वा क्रमपक्षभावी दोषः । अकरणे त्वर्थक्रियाकारित्वाभावादवस्तुत्वप्रसंग इत्येकान्तनित्यात् क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तार्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिबलाद् व्यापकनिवृत्तौ निवर्तमाना व्याप्यमर्थ-क्रियाकारित्वं निवर्तयति । अर्थक्रियाकारित्वं च निवर्तमानं स्वव्याप्यं सत्त्वं निवर्तयतीति नैकान्तनित्यपक्षो युक्तिक्षमः ।

एकान्तानित्यपक्षोऽपि न कक्षीकरणार्हः । अनित्यो हि प्रतिक्षणविनाशी, स च न क्रमेणार्थक्रियासमर्थो देशकृतस्य कालकृतस्य च क्रमस्यैवाभावात् । क्रमो हि पौर्वापर्यम्, तच्च क्षणिकस्यासम्भवि अवस्थितस्यैव हि नानादेशकालव्याप्ति-देशक्रमः कालक्रमश्चाभिधीयते । न चैकान्तविनाशिनि सास्ति । यदाहुः -

"यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः ।
न देशकालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह विद्यते ।।"

न च संतानापेक्षया पूर्वोत्तरक्षणानां क्रमः संभवति । संतानस्यावस्तुत्वात् । वस्तुत्वेऽपि तस्य यदि क्षणिकत्वम्; न तर्हि क्षणेभ्यः कश्चिद्विशेषः । अथाक्षणिकत्वम्; तर्हि समाप्तः क्षणभङ्गवादः । नाप्यक्रमेणार्थक्रिया क्षणिके संभवति; स ह्येको बीजपुरादिरूपादिक्षणो युगपदनेकान् रसादिक्षणान् जनयन्नेकेन स्वभावेन जनयेत्, नानास्वभावैर्वा । यद्येकेन; तदा तेषां रसादिक्षणा-नामेकत्वं स्यादेकस्वभावजन्यत्वात् । अथ नानास्वभावैर्जनयति किंचिद्रूपादिक-मुपादानभावेन किंचिद्रसादिकं सहकारित्वेनेति; ते तर्हि स्वभावास्तस्यात्मभूताः, अनात्मभूता वा । अनात्मभूताश्चेत्; स्वभावत्वहानिः । यद्यात्मभूताः, तर्हि तस्यानेकत्वमनेकस्वभावत्वात् तेषाम्, स्वभावानां वैकत्वं प्रसज्येत । तदव्यतिरिक्तत्वात्तेषां तस्य चैकत्वात् । अथ य एवेकत्रोपादानभावः स एवान्यत्र सहकारिभाव इति न स्वभावभेद इष्यते; तर्हि नित्यस्यैकरूपस्य क्रमेण नानाकार्यकारिणः स्वभावभेदः कार्यसांकर्यं च कथमिष्यते, क्षणिकवादिना । अथ नित्यमेकस्वरूपत्वादक्रमम्, अक्रमाच्च क्रमिणां नानाकार्याणां कथमुत्पत्तिरिति चेत्; अहो स्वपक्षपक्षपाती देवानांप्रियः । यः खलु स्वयमेकस्मान्नि-रंशाद्रूपादिक्षणलक्षणात्कारणात्, युगपदनेककारणसाध्यान्यनेककार्याण्यङ्गी-कुर्वाणोऽपि परपक्षे नित्येऽपि वस्तुनि क्रमेण नानाकार्यकरणेऽपि विरोधमुद्भावयति । तस्मात्क्षणिकस्यापि भावस्याक्रमेणार्थक्रिया दुर्घटा इत्यनित्यैकान्तादपि क्रमाक्रमयोर्निवृत्त्यैव व्याप्यार्थक्रिया व्यावर्तते । तद्व्यावृत्तौ च सत्त्वमपि व्यापकानुपलम्भबलेनैव निवर्तत इत्येकान्तानित्यवादोऽपि न रमणीयः । स्याद्वादे तु पूर्वोत्तराकारपरिहारस्वीकारस्थितिलक्षणपरिणामेन

भावानामर्थक्रियोपपत्तिरविरुद्धा । न चैकत्र वस्तुनि परस्परविरुद्धधर्माध्यासायोगादसन् स्याद्वाद इति वाच्यम् । नित्यपक्षानित्यपक्षविलक्षणस्य कथंचित्सदसदात्मकस्य पक्षान्तरस्याङ्गीक्रियमाणत्वात् तथैव च सर्वैरनुभवादिति । तथा च पठन्ति –

"भागे सिंहो नरो भागे योऽर्थो भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ।।" [ ] इति ।

तथा सामान्यैकान्तं, विशेषैकान्तं, भिन्नौ सामान्यविशेषौ चेत्थं निराचष्टे । तथा हि - विशेषाः सामान्याद्भिन्नाः अभिन्ना वा । भिन्नाश्चेत्; मण्डूकजटाभारानुकाराः । अभिन्नाश्चेत्; तदेव तत्स्वरूपवदिति सामान्यैकान्तः । सामान्यैकान्तवादिनस्तु द्रव्यास्तिकनयानुपातिनो मीमांसकभेदा अद्वैतवादिनः सांख्याश्च ।

पर्यायनयान्वयिनस्तु भाषन्ते विविक्ताः क्षणक्षयिणो विशेषा एव परमार्थास्ततो विष्वग्भूतस्य सामान्यस्याप्रतीयमानत्वात् । न हि गवादिव्यक्त्यनुभवकाले वर्ण(सं)स्थानात्मकं व्यक्तिरूपमपहायान्यत्किंचिदेकमनुयायि प्रत्यक्षे प्रतिभासते तादृशस्यानुभवाभावात् । तथा च पठन्ति -

"एतासु पञ्चस्ववभासिनीषु प्रत्यक्षबोधे स्फुटमङ्गुलीषु ।
साधारणं रूपमवेक्षते यः श्रृङ्गं शिरस्यात्मन ईक्षते सः ।।"

एकाकारपरामर्शप्रत्ययस्तु स्वहेतुदत्तशक्तिभ्यो व्यक्तिभ्य एवोत्पद्यत इति न तेन सामान्यसाधनं न्याय्यम्। किं च यदिदं सामान्यं परिकल्प्यते तदेकम्, अनेकं वा । एकमपि सर्वगतम्, असर्वगतं वा । सर्वगतं चेत्; किं न व्यक्त्यन्तरालेषूपलभ्यते । सर्वगतैकत्वाभ्युपगमे च तस्य यथा गोत्वसामान्यं गोव्यक्तीः क्रोडीकरोति, एवं किं न घटपटादिव्यक्तीरप्यविशेषात् । असर्वगतं चेत्; विशेषरूपापत्तिरभ्युपगमबाधश्च । अथानेकगोत्वाश्वत्वघटत्वपटत्वादिभेदभिन्नत्वात्, तर्हि विशेषा एव स्वीकृता अन्योन्यव्यावृत्तिहेतुत्वात् । न हि यद्गोत्वं तदश्वत्वात्मकमिति । अर्थक्रियाकारित्वं च वस्तुनो लक्षणं तच्च विशेषेष्वेव स्फुटं लक्ष्यते । न हि सामान्येन काचिदर्थक्रिया क्रियते; तस्य निष्क्रियत्वात् ।

वाहदोहादिकासु अर्थक्रियासु विशेषाणामेवोपयोगात् । तथेदं सामान्यं विशेषेभ्यो भिन्नमभिन्नं वा । भिन्नं चेत्; अवस्तु, विशेषविश्लेषेणार्थक्रियाकारित्वाभावात् । अभिन्नं चेत्; विशेषा एव तत्स्वरूपवदिति विशेषैकान्तवादः ।

नैगमनयानुगामिनस्त्वाहुः । स्वतन्त्रौ सामान्यविशेषौ, तथैव प्रमाणेन प्रतीतत्वात् । तथा हि - सामान्यविशेषावत्यन्तं भिन्नौ विरुद्धधर्माध्यासितत्वात्, यावेवं तावेवं यथा पाथः पावकौ, तथा चेतौ, तस्मात्तथा । सामान्यं हि गोत्वादि सर्वगतं तद्विपरीताश्च शबलशाबलेयादयो विशेषाः ततः कथमेषामैक्यं युक्तम् । न सामान्यात् पृथग् विशेषस्योपलम्भ इति चेत्; कथं तर्हि तस्योपलम्भ इति वाच्यम्। सामान्यव्याप्तस्येति चेत्; न तर्हि स विशेषोपलम्भः, सामान्यस्यापि तेन ग्रहणात् । ततश्च तेन बोधेन विविक्तविशेषग्रहणाभावात् तद्वाचकं ध्वनिं तत्साध्यं च व्यवहारं न प्रवर्तयेत् प्रमाता, न चैतदस्ति विशेषाभिधानव्यवहारयोः प्रवृत्तिदर्शनात्; तस्माद्विशेषमभिलषता तत्र व्यवहारं प्रवर्तयता तद्ग्राहको बोधो विविक्तोऽभ्युपगन्तव्यः । एवं सामान्यस्थाने विशेषशब्दं विशेषस्थाने च सामान्यशब्दं प्रयुञ्जानेन सामान्येऽपि तद्ग्राहको बोधो विविक्तोऽङ्गीकर्तव्यः । तस्मात्स्वस्वग्राहिणी ज्ञाने पृथक् प्रतिभासमानत्वात् द्वावपीतरेतरविशकलितौ, ततो न सामान्यविशेषात्मकत्वं वस्तुनो घटत इति स्वतन्त्रः सामान्यविशेषवादः । स्वतन्त्रसामान्यविशेषदेशका नैगमनयानुरोधिनः काणादा आक्षपादाश्च । तदेतत्पक्षत्रयमपि क्षोदं न क्षमते । प्रमाणबाधितत्वात् । सामान्यविशेषोभयात्मकस्यैव वस्तुनो निर्विगानमनुभूयमानत्वात् । वस्तुनो हि लक्षणमर्थक्रियाकारित्वम्, तच्चानेकान्तवाद एवाविकलं कलयन्ति परीक्षकाः । तथा हि - गौरित्युक्ते खुरककुद-लाङ्गूलसास्नाविषाणाद्यवयवसंपन्नं वस्तुरूपं सर्वव्यक्त्यनुयायि प्रतीयते, तथा महिष्यादि-व्यावृत्तिरपि प्रतीयते । यत्रापि च शबला गौरित्युच्यते, तत्रापि च यथा विशेषप्रतिभासस्तथा गोत्वप्रतिभासोऽपि स्फुट एव । शबलेति केवलविशेषोच्चारणेऽप्यर्थात्प्रकरणाद्वा गोत्वमनुवर्तते । अपि च शबलत्वमपि नानारूपम्; तथा दर्शनात् । ततो वक्त्रा शबलेत्युक्ते क्रोडीकृतसकल शबलसामान्यं विवक्षितगोव्यक्तिगतमेव शबलत्वं व्यवस्थाप्यते । तदेवमाबालगोपालं प्रतीतप्रसिद्धेऽपि वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकत्वे

तदुभयैकान्तवादः प्रलापमात्रम् । न हि क्वचित्कदाचित्केनचित् किंचित्सामान्यं विशेषविनाकृतमनुभूयते, विशेषा वा तद्विनाकृताः । यदाहुः -

"द्रव्यं पर्यायवियुतं पर्याया द्रव्यवर्जिताः ।

क्व कदा केन किंरूपा दृष्टा मानेन केन वा ।।" [ ] इति ।

केवलं दुर्नयबलप्रभावितप्रबलमतिव्यामोहादेकमपलप्यान्यतरद् व्यवस्थापयन्ति कुमतयः । सोऽयमन्धगजन्यायः । येऽपि च तदेकान्तपक्षोपनिपातिनः प्रागुक्तदोषास्तेऽप्यनेकान्तवादप्रचण्डमुद्गरप्रहारजर्जरितत्वान्नोच्छ्वसितुमपि क्षमाः।

स्वतन्त्रसामान्यविशेषवादिनस्त्वेवं प्रतिक्षेप्याः सामान्यं प्रतिव्यक्ति कथंचिद्विभिन्नम्; कथंचित्तदात्मकत्वाद्विसदृशपरिणामवत् । यथैव हि काचिद्व्यक्तिरुपलभ्यमाना व्यक्त्यन्तराद्विशिष्टा विसदृशपरिणामदर्शनादवतिष्ठते, तथा सदृशपरिणामात्मकसामान्यदर्शनात्समानेति, तेन समानो गौरयं, सोऽनेन समान इति प्रतीतेः । न चास्य व्यक्तिस्वरूपादभिन्नत्वात् सामान्यरूपताव्याघातः । यतो रूपादीनामपि व्यक्तिस्वरूपादभिन्नत्वमस्ति । न च तेषां गुणरूपताव्याघातः । कथंचिद्व्यतिरेकस्तु रूपादीनामिव सदृशपरिणामस्याप्यस्त्येव पृथग्व्यपदेशादिभाक्त्वात् । विशेषा अपि नैकान्तेन सामान्यात्पृथग् भवितुमर्हन्ति । यतो यदि सामान्यं सर्वगतं सिद्धं भवेत्; तदा तेषामसर्वगतत्वेन ततो विरुद्धधर्माध्यासः स्यात् । न च तस्य तत्सिद्धं, प्रागुक्तयुक्त्या निराकृतत्वात् । सामान्यस्य विशेषाणां च परस्परं कथंचिदव्यतिरेकेणैकानेकरूपतया व्यवस्थितत्वात् । विशेषेभ्योऽव्यतिरिक्तत्वाद्धि सामान्यमप्यनेकमिष्यते। सामान्यात्तु विशेषाणामव्यतिरेकात् तेऽप्येकरूपा इति । एकत्वं च सामान्यस्य संग्रहनयार्पणात्सर्वत्र विज्ञेयम् । अनेकत्वं च प्रमाणार्पणात्तस्य सदृशपरिणामरूपस्य विसदृशपरिणामवत् प्रतिव्यक्तिभेदात् । एवं चासिद्धं सामान्यविशेषयोः सर्वथा विरुद्धधर्माध्यासितत्वम्। कथंचिद्विरुद्धधर्माध्यासितत्वं चेद्विवक्षितम्; तदास्मत्पक्षप्रवेशः। कथंचिद्विरुद्धधर्माध्यासस्य कथंचिद्भेदाविनाभूतत्वात् । पाथःपावकदृष्टान्तोऽपि साध्यसाधनविकलः; तयोरपि कथंचिद्विरुद्धधर्माध्यासितत्वेन भिन्नत्वेन च स्वीकारात्, पयस्त्वपावकत्वादिना हि तयोर्विरुद्धधर्माध्यासो भेदश्च, द्रव्यत्वादिना पुनस्तद्वैपरीत्यमिति । तथा च कथं न सामान्यविशेषात्मकत्वं वस्तुनो घटत इति । उक्तं च -

"दोहिं वि णएहिं णीयं सत्थमुलूगेण तहवि मिच्छत्तं ।
जं सविसयप्पहाणत्तणेण अण्णोण्णणिरवेक्खं ।।"

(सम्मति प्र. का. ३.४९) तथा ।

"निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वेन विशेषास्तद्वदेव हि ।।"

(मीमांसाश्लोकवार्तिक सू. ५.१०)

तथैकान्तसत्त्वमेकान्तासत्त्वं च वार्त्तमेव । तथा हि सर्वभावानां हि सदसदात्मकत्वमेव स्वरूपम् । एकान्तसत्त्वे वस्तुनो वैश्वरूप्यं स्यात् । एकान्तासत्त्वे च निःस्वभावता भावानां स्यात् । तस्मात्स्वरूपेण सत्त्वात्, पररूपेण चासत्त्वात् सदसदात्मकं वस्तु सिद्धम् । यदाहुः -

"सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ।
अन्यथा सर्वसत्त्वं स्यात् स्वरूपस्याप्यसंभवः ।।" [ ] इति ।

ततश्चैकस्मिन् घटे सर्वेषां घटव्यतिरिक्तपदार्थानामभावरूपेण वृत्तेरनेकान्तात्मकत्वं घटस्य सूपपादम् । एवं चैकस्मिन्नर्थे ज्ञाते सर्वेषामर्थानां ज्ञानं सर्वपदार्थपरिच्छेदमन्तरेण तन्निषेधात्मन एकस्य वस्तुनो विविक्ततया परिच्छेदासंभवात् । आगमोऽप्येवमेव व्यवस्थितः ।

"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।"
(अचाराङ्ग श्रु-१, ३.४.१२२) तथा

"एको भावः सर्वथा येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टाः एको भावः सर्वथा तेन दृष्टः ।।"

[ ] इति ।

सुघटं सदसदनेकान्तात्मकं वस्तु । अनयैव भङ्ग्या स्यादस्तिस्यान्नास्तिस्यादवक्तव्यादिसप्तभङ्गीविस्तरस्य जगत्पदार्थसार्थव्यापकत्वाद् अभिलाप्यानभिलाप्यात्मकमप्यूह्यमिति सद्भूतार्थोपदेशक इति। **कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वेति** । कृत्स्नानि सर्वाणि घात्यघात्यादीनि यानि कर्माणि जीवभोग्यवेद्यपुद्गलास्तेषां क्षयं निर्जरणं विधाय । परमं पदं मोक्षपदं संप्राप्तः । अपरे हि सौगतादयो मोक्षमवाप्यापि तीर्थनिकारादिसंभवे भूयो भूयो भवमवतरन्ति । यदाहुः -

"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्तारः परमं पदम् ।
गत्वा गच्छन्ति भूयोऽपि भवं तीर्थनिकारतः ।।" [ ] इति ।

न ते परमार्थतो मोक्षगतिभाजः, कर्मक्षयाभावात् । न हि तत्त्वतः कर्मक्षये पुनर्भवावतारः । यदुक्तम् -

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः ।।
[तत्त्वार्थ. भा. १०-७] इति ।

उक्तं च श्रीसिद्धसेनदिवाकरपादैरपि भवाभिगामुकानां प्रबलमोहविजृम्भितम्। यथा

"दग्धेन्धनः पुनरुपैति भवं प्रमथ्य निर्वाणमप्यनवधारितभीरनिष्टम् ।
मुक्तः स्वयं कृतभवश्च परार्थशूरस्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यम् ।।"
[सिद्धि. द्वात्रिं.] इति ।

अर्हंश्च भगवान् कर्मक्षयपूर्वमेव शिवपदं प्राप्त इति ।

तत्त्वान्याह -

(मू. श्लो.) जीवाजीवौ तथा पुण्यं पापमाश्रवसंवरौ ।
बन्धश्च निर्जरामोक्षौ नव तत्त्वानि तन्मते ।।४७।।

तन्मते जैनमते नव तत्त्वानि सम्भवन्तीति ज्ञेयम् । नामानि निगदसिद्धान्येव।

जीवाजीवपुण्यतत्त्वमेवाह -

(मू. श्लो.) तत्र ज्ञानादिधर्मेभ्यो भिन्नाभिन्नो विवृत्तिमान् ।
कर्त्ता शुभाशुभं कर्म भोक्ता कर्मफलस्य च ।।४८।।
चैतन्यलक्षणो जीवो, यश्चैतद्वैपरीत्यवान् ।
अजीवः स समाख्यातः, पुण्यं सत्कर्मपुद्गलाः ।।४९।। युग्मम् ।

तत्र जैनमते, चैतन्यलक्षणो जीव इति संबन्धः । विशेषणान्याह - ज्ञानादिधर्मेभ्यो भिन्नाभिन्न इति । ज्ञानमादिर्येषां धर्माणामिति ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपा धर्मा गुणास्तेभ्योऽयं जीवश्चतुर्दशभेदोऽपि कथंचिद्भिन्नः कथंचिदभिन्न

इत्यर्थः । एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु जीवेषु स्वापेक्षया ज्ञानवत्त्वमस्त्येवेत्य-भिन्नत्वं ज्ञानादिभ्यः परापेक्षया पुनरज्ञानवत्त्वमिति भिन्नत्वम् । लेशतश्चेत्सर्वजीवेषु न ज्ञानवत्त्वं तदा जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात् । तथा च सिद्धान्तः -

"सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणन्तओ भागो निच्चुग्घाडिओ ।

जइ सो वि आवरेज्झा तो जीवो अजीवत्तं पाविज्झा ।

सुट्ठु वि मेहसमुदये होइ पहा चन्दसूराणम् ।।"

तथा विवृत्तिमानिति । विवृत्तिः परिणामः सास्यास्तीति मत्वर्थीये मतुप् । सुरनरनारकतिर्यङ्क्षु एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तजातिषु विविधोत्पत्तिरूपान् परिणामाननुभवति जीव इत्यर्थः । अन्यच्च शुभाशुभं कर्म कर्त्ता । शुभं सातवेद्यम्, अशुभमसातवेद्यम् । शुभं चाशुभं चेति द्वन्द्वः । एवंविधं कर्म भोक्तव्यफलकर्त्तृभूतं कर्त्ता, स्वात्मसाद्विधाता उपार्जयितेति यावत् । न च सांख्यवदकर्त्ता आत्मा शुभाशुभाबन्धकश्चेति । तथा कर्मफलस्य भोक्ता । न च केवलं कर्त्ता, किंतु भोक्तापि स्वोपार्जितपुण्य-पापकर्मफलस्य वेदयिता । न चान्यकृतस्यान्यो भोक्ता । तथा चागमः -

"जीवाणं भन्ते ! किं अत्तकडे दुक्खे, परकडे दुक्खे, तदुभयकडे दुक्खे ।

गोयम ! अत्तकडे दुक्खे, नो परकडे दुक्खे, नो तदुभयकडे दुक्खे ।।"

[भगवती सूत्र] इति ।

कर्त्तैव भोक्ता । तथा चैतन्यलक्षण इति । चैतन्यं चेतनास्वभावत्वं, तदेव लक्षणं मूलगुणो यस्येति । सूक्ष्मबादरभेदा एकेन्द्रियास्तथा विकलेन्द्रियास्त्रयः संज्ञ्यसंज्ञिभेदाश्च पञ्चेन्द्रियाः, सर्वेऽपि पर्याप्ता अपर्याप्ताश्चेति चतुर्दशापि जीवभेदाश्चैतन्यं न व्यभिचरन्तीति ।

अथाजीवमाह - **'यश्चैतद्वैपरीत्यवानजीवः स समाख्यातः'** इति । यः पुनस्तस्माज्जीवलक्षणाद्वैपरीत्यमन्यथात्वमस्यास्तीति तद्वैपरीत्यवान् विपरीत-स्वभावोऽचेतनः सोऽजीवः समाख्यातः कथितः पूर्वसूरिभिरिति । भेदाश्च धर्माधर्माकाशपुद्गलाः स्कन्धदेशप्रदेशगुणा अद्धाकेवलपरमाणुश्चेति चतुर्दश

अजीवभेदाः । पुण्यं सत्कर्मपुद्गला इति । पुण्यं नाम तत्त्वं कीदृगित्याह - सत्कर्मपुद्गला इति । सच्छोभनं सातवेद्यं कर्म, तस्य पुद्गला दलपाटकानि पुण्यप्रकृतय इत्यर्थः । ताश्च द्वाचत्वारिंशत्तद्यथा -

"नरतिरिसुराउउच्चं सायं परघायआयवुज्जोयं ।
तित्थुस्सासनिमाणं पणिंदिवइरुस्सभचउरंसं ।।
तसदसचउवन्नाई सुरमणुदुगपंचतणुउवंगतिअं ।
अगुरुलहुपढमखगई बायालीसंति सुहपयडी ।।"

भावार्थस्तु ग्रन्थविस्तरभयान्नोच्यत इति श्लोकार्थः ।

शेषतत्त्वमाह -

(मू. श्लो.) पापं तद्विपरीतं तु मिथ्यात्वाद्यास्तु हेतवः ।
यस्तैर्बन्धः स विज्ञेय आस्रवो जिनशासने ।।५०।।

तु पुनस्तद्विपरीतं पुण्यप्रकृतिविसदृशं पापं पापतत्त्वमित्यर्थः । मिथ्यात्वाद्याश्चेति । मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा हेतवः । पापस्य कारणानि तत्प्रकृतयश्च द्व्यशीतिस्तद्यथा -

"थावरदसचउजाई अपढमसंठाणखगइसंघयणा ।
तिरिनिरयदुगुवघाई वन्नचऊनामचउतीसा ।।"
"नरयाउनीयअस्सायघाइपणयालसहियबासीई"

पुण्यप्रकृतिव्यतिरिक्ताः पापप्रकृतयो द्व्यशीतिः ।। इति ।। वर्णचतुष्कस्य तु शुभाशुभरूपेणोभयत्रापि संबध्यमानत्वान्न दोषः । यस्तैर्बन्ध इति यस्तैर्मिथ्यादर्शनादिभिर्बन्धः स कर्मबन्धः स जिनशासन आस्रवो विज्ञेयः, आस्रवतत्त्वं ज्ञेयमित्यर्थः । तत्प्रकृतयश्च द्वाचत्वारिंशत् । तथा हि - पञ्चेन्द्रियाणि, चत्वारः कषायाः, पञ्च [अ] व्रतानि, मनोवचनकायाः, पञ्चविंशतिक्रियाश्च कायिक्यादय, इत्यास्रवः ।

(मू. श्लो.) संवरस्तन्निरोधस्तु बन्धो जीवस्य कर्मणः ।
अन्योन्यानुगमात्कर्मसंबन्धो यो द्वयोरपि ।।५१।।

तु पुनस्तन्निरोध आस्रवद्वारप्रतिरोधः संवरः तत्त्वम्। संवरप्रकृतयस्तु सप्तपञ्चाशत्तद्यथा -

"समिइगुत्तिपरीसहजइधम्मभावणाचरित्ताणि ।
पणतिगदुवीसदसबार पञ्चभेएहिं सगवण्णा ।।"

[नवतत्त्व प्रक. २५]

पञ्च समितयस्तिस्रो गुप्तयो, द्वाविंशतिः परीषहा, दशविधो यतिधर्मः, द्वादश भावनाः, पञ्च चारित्राणीति प्रकृतयः । बन्धो नाम जीवस्य प्राणिनः कर्मणो वेद्यस्यान्योन्यानुगमात् परस्परं क्षीरनीरन्यायेन लोलीभावाद् यो द्वयोरपि जीवकर्मणोः संबन्धः संयोगः स बन्धो नाम तत्त्वमित्यर्थः । स च चतुर्विधः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात् ।

"स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः स्थितिः कालावधारणम् ।
अनुभागो रसो ज्ञेयः प्रदेशो दलसंचयः ।।" [ ] इति ।

इत्यादिः स बन्धो ज्ञेयः ।

निर्जरामोक्षौ चाह -

(मू. श्लो.) बद्धस्य कर्मणः शाटो यस्तु सा निर्जरा मता ।
आत्यन्तिको वियोगस्तु देहादेर्मोक्ष उच्यते ।।५२।।

यः पुनर्बद्धस्य स्पृष्टबद्धनिधत्तनिकाचितादिरूपेणार्जितस्य कर्मणस्तपश्चरणध्यान-जपादिभिः शाटः कर्मक्षपणं सा निर्जरा मता पूर्वसूरिभिरिति । सा पुनर्द्विविधा, सकामाकामभेदेन । तु पुनर्देहादेरात्यन्तिको वियोगो मोक्ष उच्यते । स च नवविधो यथा -

"संतपयपरूवणया दव्वपमाणं च खित्तफुसणा य ।
कालो य अंतरं भागो भावो अप्पाबहुं चेव ।।"

[नवतत्त्व प्रक. ४३] इति ।

नवप्रकारो हि करणीयः । बाह्यप्राणानामात्यन्तिकापुनर्भावित्वेनाभावः शिव इत्यर्थः । ननु सर्वथा प्राणाभावादजीवत्वप्रसङ्गः, तथा च द्वितीयतत्त्वान्तर्भूतत्वात्

मोक्षतत्त्वाभाव इति चेत्; न; मोक्षे हि द्रव्यप्राणानामेवाभावः । भावप्राणास्तु नैष्कर्मिकावस्थायामपि सन्त्येव । यदुक्तम् -

"यस्मात्क्षायिकसम्यक्त्ववीर्यसिद्धत्वदर्शनज्ञानैः ।
आत्यन्तिकैः सयुक्तो निर्द्वन्द्वेनापि च सुखेन ।।
ज्ञानादयस्तु भावप्राणा मुक्तोऽपि जीवति स तैर्हि ।
तस्मात्तज्जीवत्वं हि नित्यं सर्वस्य जीवस्य ।।" [ ] इति

सङ्गतं देहवियोगान्मोक्षः, आदिशब्दाद्देहेन्द्रियधर्मविरहोऽपीति पद्यार्थः ।

एवं नामोद्देशेन तत्त्वानि सङ्कीर्त्य फलपूर्वकमुपसंहारमाह -

(मू. श्लो.) एतानि तत्र तत्त्वानि यः श्रद्धत्ते स्थिराशयः ।
सम्यक्त्वज्ञानयोगेन तस्य चारित्रयोग्यता ।।५३।।

एतानि पूर्वोक्तानि, तत्र जिनमते, तत्त्वानि यः कश्चित् स्थिराशयो दृढचित्तः सन् श्रद्धत्ते, अवैपरीत्येन मनुते । एतावता जानन्नपि अश्रद्दधानो मिथ्यादृगेव । यथोक्तं - श्रीगन्धहस्तिमहातर्के-**"द्वादशाङ्गमपि श्रुतं विदर्शनस्य मिथ्या"** [ ] इति । तस्य दृढमानसस्य सम्यक्त्वज्ञानयोगेन चारित्रयोग्यता चारित्रार्हता। सम्यक्त्वज्ञानयोगेनेति । सम्यक्त्वं च ज्ञानं च सम्यक्त्वज्ञाने तयोर्योगस्तेन । ज्ञानदर्शनविनाकृतस्य हि चारित्रस्य सम्यक्चारित्रव्यवच्छेदार्थं सम्यक्त्वज्ञान-ग्रहणमिति ।

फलमाह -

(मू. श्लो.) तथाभव्यत्वपाकेन यस्यैतत् त्रितयं भवेत् ।
सम्यग्ज्ञानक्रियायोगाज्जायते मोक्षभाजनम् ।।५४।।

तथेत्युपदर्शने । भव्यत्वपाकेन परिपक्वभव्यत्वेन तद्भव एवावश्यं मोक्षे गन्तव्यमिति । भव्यत्वस्य परिपाकेन यस्य पुंसः स्त्रियो एतत् त्रितयं दर्शनज्ञानचारित्ररूपं भवेत् । यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धात् सोऽनुक्तोऽपि संबध्यत इति । स पुमान्मोक्षभाजनं जायते निर्वाणश्रियं भुङ्क्ते इत्यर्थः । कस्मात्? सम्यग्ज्ञानक्रियायोगात् । सम्यगिति सम्यक्त्वं दर्शनं, ज्ञानमागमावबोधः, क्रिया च

चरणकरणात्मिकास्तासां योगः संबन्धस्तस्मात् । न च केवलं दर्शनं ज्ञानं चारित्रं वा मोक्षहेतुकम् । यदाहुर्भद्रबाहुस्वामिपादाः -

"सुबहुं पि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस्स ।
अन्धस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडी वि ।।

तथा - **"नाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहीणं ।**
संजमहीणं च तवं जो चरइ निरत्थयं तस्स ।।"

दर्शनज्ञानचारित्राणि हि समुदितान्येव मोक्षकारणानि । यदुवाच वाचकमुख्यः - **"दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (त० सू० १/१) इति ।।५४।।

प्रमाणे आह -

(मू. श्लो.) प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्वे प्रमाणे तथा मते ।
अनन्तधर्मकं वस्तु प्रमाणविषयस्त्विह ।।५५।।

तथेति प्रस्तुतमतानुसंधाने द्वे प्रमाणे मते अभिमते । के ते ? इत्याह - प्रत्यक्षं च परोक्षं चेति । अश्नुते अक्ष्णोति वा व्याप्नोति सकलद्रव्यक्षेत्रकालभावानित्यक्षो जीवः, अश्नुते विषयमित्यक्षमिन्द्रियं च अक्षमक्षं प्रतिगतं प्रत्यक्षम् । इन्द्रियाण्याश्रित्य व्यवहारसाधकं यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत् प्रत्यक्षमित्यर्थः । अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि, तद्भेदाश्च प्रत्यक्षमेव अत एव सांव्यवहारिक-पारमार्थिकैन्द्रियिका नैन्द्रियिकादयो भेदा अनुमानादधिकज्ञानविशेषप्रकाश-कत्वादत्रैवान्तर्भवति । परोक्षं चेति । अक्षाणां परं परोक्षम् । अक्षेभ्यः परतो वर्तत इति वा। परेणेन्द्रियादिना वोक्ष्यते परोक्षं स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानु-मानागमभेदम् । अमुयैव भङ्ग्या मतिश्रुतज्ञाने अपि परोक्षमेवेति द्वे प्रमाणे ।

प्रमाणमुक्त्वा तद्गोचरमाह - तु पुनः, इह जिनमते, प्रमाणविषयः प्रमाणयोः प्रत्यक्षपरोक्षयोर्विषयो गोचरो ज्ञेय इत्यध्याहारः । किं तदित्याशङ्कायामनन्तधर्मकं वस्त्विति । वस्तुतत्त्वं पदार्थस्वरूपम् । किंविशिष्टम् । अनन्तधर्मकम् - अनन्तास्त्रिकालविषयत्वादपरिमिता ये धर्माः सहभाविनः क्रमभाविनश्च पर्याया यत्रेति । अनेन साधनमपि दर्शितम् । तथा हि तत्त्वमिति धर्मि, अनन्तधर्मात्मकत्वं

साध्यो धर्मः, सत्त्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणत्वाद्धेतोरन्तर्व्याप्त्यैव साध्यस्य सिद्धत्वात् दृष्टान्तादिभिर्न प्रयोजनम्, यदनन्तधर्मात्मकं न भवति तत् सदपि न भवति यथा वियदिन्दीवरमिति केवलव्यतिरेकी हेतुः । साधर्म्यदृष्टान्तानां पक्षकुक्षिनिक्षिप्तत्वेनान्वयायोगात् । अनन्तधर्मात्मकत्वं चात्मनि तावत्साकारानाकारोपयोगिता कर्तृत्वं भोक्तृत्वं प्रदेशाष्टकनिश्चलता अमूर्तत्वमसंख्यातप्रदेशात्मकता जीवत्वमित्यादयः सहभाविनो धर्मा; हर्षविषादशोकसुखदुःखदेवनारकतिर्यङ्नरत्वादयस्तु क्रमभाविनः । धर्मास्तिकायादिष्वप्यसंख्येयप्रदेशात्मकत्वं गत्याद्युपग्रहकारित्वं मत्यादिज्ञानविषयत्वं तत्तदवच्छेदकावच्छेद्यत्वमवस्थितत्वमरूपित्वमेकद्रव्यत्वं निष्क्रियत्वमित्यादयः। घटे पुनरामत्वं पाकजरूपादिमत्त्वं पृथुबुध्नोदरकम्बुग्रीवत्वं जलादिधारणाहरणसामर्थ्यं मत्यादिज्ञानविषयत्वं नवत्वं पुराणत्वमित्यादयः । एवं सर्वपदार्थेषु नानानयमताभिज्ञेन शाब्दानार्थांश्च पर्यायान् प्रतीत्य वाच्यम् । शब्देष्वप्युदात्तानुदात्तस्वरितविवृतसंवृतघोषनादाघोषाल्पप्राणमहाप्राणतादयः, तत्तदर्थप्रत्यायनशक्त्यादयश्चावसेयाः । अस्य हेतोरनेकान्तप्रचण्डमुद्गराघातदलितशक्तित्वेनासिद्धविरुद्धानैकान्तिकत्वादीनां कण्टकानामनवकाश एवेत्येवंविधपर्यायानन्त्यसुभगं वस्तु जिनशासने प्रमाणविषय इत्यर्थः ।।५५।।

लक्ष्यनिर्देशं कृत्वा लक्षणमाह -

(मू. श्लो.) अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहकं ज्ञानमीदृशम् ।
प्रत्यक्षमितरज्ज्ञेयं परोक्षं ग्रहणेक्षया ।।५६।।

तत्र प्रत्यक्षमिति लक्ष्यनिर्देशः । अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहकं ज्ञानमीदृशमिति लक्षणनिर्देशः । परोक्षोऽक्षगोचरातीतः, ततोऽन्योऽपरोक्षस्तद्भावस्तत्ता तया साक्षात्कृततयेति यावत् । अर्य्यत इत्यर्थो गम्यत इति हृदयम्, अर्थ्यत इति वाऽर्थो दाहपाकाद्यर्थक्रियार्थिभिरभिलष्यत इति तस्य ग्राहकं, व्यवसायात्मकतया परिच्छेदकं यज् ज्ञानं तदीदृशमिति ईदृगेव प्रत्यक्षमिति संटङ्कः । अपरोक्षतयेत्यनेन परोक्षलक्षणसंकीर्णतामध्यक्षस्य परिहरति । तस्यासाक्षात्कारितयाऽर्थग्रहणरूपत्वादिति । ईदृशमिति । अमुना तु पूर्वोक्तन्यायात् सावधारणत्वेन

विशेषणकदम्बकसचिवज्ञानोपदर्शनात् परपरिकल्पितलक्षणयुक्तस्य प्रत्यक्षतां प्रतिक्षिपति । एवं च यदाहुः "**इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ।**" [न्या.सू. १.१.४] तथा "**सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षम् ।**" [मीमांसा. १.१.४] इत्यादि । तदयुक्तमित्युक्तं भवति । अपूर्वप्रादुर्भावस्य प्रमाणबाधितत्वादत्यन्तासतां शशविषाणादीनामप्युत्पत्तिप्रसङ्गात् । तस्मादिदमात्मरूपतया विद्यमानमेव विशेषकृद्धेतुकलापसंनिधानात् साक्षादर्थग्रहणपरिणामरूपतया विवर्तते, तथा चोत्पन्नजन्मरूपादिविशेषणं न संभवेत् । अथैवंविधार्थसूचकमेवैतदित्या-चक्षीथास्तथा सत्यविगानमेवेत्यास्तां तावत् ।

अधुना परोक्षलक्षणं दर्शयति - **इतरदित्यादि** । अपरोक्षतयार्थस्य ग्राहकं ज्ञानं प्रत्यक्षमुक्तम् । तस्मादितरदसाक्षादर्थग्राहकं ज्ञानं परोक्षमिति ज्ञेयमवगन्तव्यम् । तदपि स्वसंवेदनापेक्षतया प्रत्यक्षमेव, बहिरर्थापेक्षया तु परोक्षव्यपदेशमश्नुत इति दर्शयन्नाह-**ग्रहणेक्षयेति** । इह ग्रहणं प्रक्रमाद्बहिः प्रवर्त्तनमुच्यते, अन्यथा विशेषणवैयर्थ्यात्, तस्येक्षा अपेक्षा तथा बहिःप्रवृत्तिपर्यालोचनयेति यावत् । तदयमर्थो-यद्यपि स्वयं प्रत्यक्षं तथापि लिङ्गशब्दादिद्वारेण बहिर्विषयग्रहणे असाक्षात्कारितया व्याप्रियत इति परोक्षमित्युच्यत इत्यर्थः ।।५६।।

पूर्वोक्तमेव वस्तुतत्त्वमनन्तधर्मात्मकतया दृढयन्नाह -

(मू. श्लो.) येनोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं यत्सत्तदिष्यते ।
अनन्तधर्मकं वस्तु तेनोक्तं मानगोचरः ।।५७।।

येन कारणेन यदुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं तत्सत्सत्त्वरूपमिष्यते तेन कारणेनानन्तधर्मकं वस्तु मानगोचरः प्रत्यक्षपरोक्षप्रमाणविषय उक्तं कथितमिति संबन्धः । उत्पादश्च व्ययश्च ध्रौव्यं च, उत्पादव्ययध्रौव्याणि तेषां युक्तं मेलस्तदेव सत्त्वमिति प्रतिज्ञा । इष्यते केवलज्ञानिभिरभिलष्यत इति । वस्तुतत्त्वं चोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् । तथा हि - उर्वीपर्वततर्वादिकं सर्वं वस्तु द्रव्यात्मना नोत्पद्यते, विपद्यते, वा परिस्फुटमन्वयदर्शनात् । लूनपुनर्जातनखादिष्व-न्वयदर्शनेन व्यभिचार इति न वाच्यम्, प्रमाणेन बाध्यमानस्यान्वयस्या-परिस्फुटत्वात् । न च प्रस्तुतोऽन्वयः प्रमाणविरुद्धः, सत्यप्रत्यभिज्ञानसिद्धत्वात् -

"सर्वव्यक्तिषु नियतं क्षणे क्षणेऽन्यत्वमथ च न विशेषः ।
सत्योश्चित्यपचित्योराकृतिजातिव्यवस्थानात् ।।" [7]

इति वचनात् । ततो द्रव्यात्मना स्थितिरेव सर्वस्य वस्तुनः पर्यायात्मना तु सर्वं वस्तूत्पद्यते विपद्यते च, अस्खलितपर्यायानुभवसद्भावात् । न चैवं शुक्लशङ्खे पीतादिपर्यायानुभवेन व्यभिचारः, तस्य स्खलद्रूपत्वात् । न खलु सोऽस्खलद्रूपो येन पूर्वाकारविनाशोऽजहद्वृत्तोत्तराकारोत्पादाविनाभावी भवेत् । न च जीवादौ वस्तुनि हर्षामर्षौदासीन्यादिपर्यायपरम्परानुभवः स्खलद्रूपः, कस्यचिद्बाधकस्याभावात् । ननूत्पादादयः परस्परं भिद्यते न वा । यदि भिद्यन्ते; कथमेकं त्रयात्मकम् । न भिद्यन्ते चेत्; तथापि कथमेकं वस्तु त्रयात्मकम् । तथा च यद्युत्पादादयो भिन्नाः, कथमेकं त्रयात्मकम् । अथोत्पत्त्यादयोऽभिन्नाः, कथमेकं त्रयात्मकमिति चेत्; तदयुक्तम्; कथंचिद्भिन्नलक्षणत्वेन तेषां कथंचिद्भेदाभ्युपगमात् । तथा हि - उत्पादविनाशध्रौव्याणि स्याद्भिन्नानि, भिन्नलक्षणत्वात् रूपादिवत् । न च भिन्नलक्षणत्वमसिद्धम्, असत आत्मलाभः, सतः सत्त्वाविप्रयोगो द्रव्यरूपतयानुवर्त्तनं च खलूत्पादादीनां परस्परमसंकीर्णानि लक्षणानि सकललोकसाक्षिकाण्येव । न चामी भिन्नलक्षणा अपि परस्परानपेक्षाः खपुष्पवदसत्त्वापत्तेः । तथा ह्युत्पादः केवलो नास्ति स्थितिविगमरहितत्वात्, कूर्मरोमवत् । तथा विनाशः केवलो नास्ति स्थित्युत्पत्तिरहितत्वात्तद्वत् । एवं स्थितिः केवला नास्ति, विनाशोत्पादशून्यत्वात्, तद्वदेवेत्यन्योन्यापेक्षाणामुत्पादादीनां वस्तुनि सत्त्वं प्रतिपत्तव्यम् । तथा चोक्तं -

"घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वलम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ।।
पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ।।"

(आप्तमी० ५९-६०) इति ।

व्यतिरेकश्च यदुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं न भवति, तद्वस्त्वेव न, यथा खरविषाणं यथेवं तथेदमिति । अत एवानन्तधर्मकं वस्तु मानगोचरः प्रोक्तम् । अनन्ता धर्माः

पर्यायाः सामान्यविशेषलक्षणा यत्रेत्यनन्तधर्मकं वस्त्विति । उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मकस्यैवानेकधर्मकत्वं युक्तियुक्ततामनुभवतीति ज्ञापनायैव, भूयोऽनन्त-धर्मकपदप्रयोगो न पुनः पाश्चात्यपद्योक्तानन्तधर्मकपदेन पौनरुक्त्यमाशङ्कनीयमिति पद्यार्थः ।

ग्रन्थस्य बालावबोधार्थफलत्वादथोपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) जैनदर्शनसंक्षेप इत्येष कथितोऽनघः ।
पूर्वापरविघातस्तु यत्र क्वापि न विद्यते ।।५८।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण, एष प्रत्यक्षलक्ष्यो जैनदर्शनसंक्षेपः कथितः, विस्तरस्यागाधत्वेन वक्तुमगोचरत्वात् । उपयोगसारः संक्षेपो निवेदितः । किंभूतोऽनघो निर्दूषणः सर्ववक्तव्यस्य सर्वज्ञमूलत्वेन दोषकालुष्यानवकाशात्। तुः समुच्चयार्थे । यत्र पुनः पूर्वापरविघातः क्वापि न विद्यते, पूर्वस्मिन्नादौ परस्मिन् प्रान्ते च विघातो विरुद्धार्थता यत्र दर्शने क्वापि पर्यन्तग्रन्थेऽपि परस्परविसंवादो नास्ति, आस्तां तावत्केवलिभाषितेषु द्वादशाङ्गेषु पारम्पर्यग्रन्थेष्वपि सुसंबद्धार्थत्वाद् विरुद्धार्थदौर्गन्ध्याभावः । अयं भावोयत् परतैर्थिकानां मूलशास्त्रेष्वपि न युक्तियुक्ततां पश्यामः किं पुनः पाश्चात्यविप्रलम्भ-कग्रथितग्रन्थकथासु, यच्च क्वापि कारुण्यादिपुण्यकर्मपुण्यानि च वचांसि कानिचिदा-कर्णयामस्तान्यपि त्वदुक्तसूक्तसुधापयोधिमन्थोद्गतान्येव रत्नानीव संगृह्य स्वात्मानं रत्नपतय इव बहु मन्वाना मुधा प्रगल्भन्ते यदाहुः श्रीसिद्धसेनदिवाकरपादाः-

"सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तिसंपदः ।
तथैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ।।"

[ ] इति परमार्थः ।।५८।।

[वैशेषिकमत]

अथ वैशेषिकमतस्य देवतादिसाम्येन नैयायिकेभ्यो ये विशेषं न मन्यन्ते तान् बोधयन्नाह -

(मू. श्लो.) देवताविषये भेदो नास्ति नैयायिकैः समम् ।
वैशेषिकाणां तत्त्वेषु विद्यतेऽसौ निदर्श्यते ।।५९।।

शिवदेवतासाम्येऽपि, तत्त्वादिविशेषविशिष्टत्वाद् वैशेषिकास्तेषां वैशेषिकाणां काणादानां नैयायिकैराक्षपादैः समं सार्द्धं देवताविषये शिवदेवताभ्युपगमे भेदो विशेषो नास्ति, तत्त्वेषु शासनरहस्येषु भेदो विद्यते । तुशब्दोऽध्याहार्यः । असौ विशेषो नैयायिकेभ्यः पृथग्भावो निदर्श्यते प्रकाश्यत इत्यर्थः ।।५९।।

तान्येव तत्त्वान्याह -

(मू. श्लो.) द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं च चतुर्थकम् ।
विशेषसमवायौ च तत्त्वषट्कं हि तन्मते ।।६०।।

तन्मते वैशेषिकमते हि निश्चयेन तत्त्वषट्कं ज्ञेयमिति संबन्धः । कथमित्याह - द्रव्यं गुण इत्यादि । आदिमतत्त्वं द्रव्यं नाम, भेदबाहुल्येऽपि सामान्यादेकम् । द्वितीयतत्त्वं गुणो नाम तथेति भेदान्तरसूचने । तृतीयं तत्त्वं कर्मसंज्ञम् । चतुर्थकं च तत्त्वं सामान्यम् । चतुर्थमेव चतुर्थकं स्वार्थे कः प्रत्ययः । चः समुच्चये । अन्यच्च विशेषसमवायौ । विशेषश्च समवायश्चेति द्वन्द्वः । इति तद्दर्शने तत्त्वानि षड् ज्ञेयानि ।।६०।।

भेदानाह -

(मू. श्लो.) तत्र द्रव्यं नवधा भूजलतेजोऽनिलान्तरिक्षाणि ।
कालदिगात्ममनांसि च, गुणाः पुनश्चतुर्विंशतिधा ।।६१।।
स्पर्शरसरूपगन्धाः शब्दः संख्या विभागसंयोगौ ।
परिमाणं च पृथक्त्वं तथा परत्वापरत्वे च ।।६२।।
बुद्धिः सुखदुःखेच्छा धर्माधर्मौ प्रयत्नसंस्कारौ ।
द्वेषः स्नेहगुरत्वे द्रवत्ववेगौ गुणा एते ।।६३।।

नवद्रव्याणि चतुर्विंशतिगुणाश्च, निगदसिद्धान्येव । संस्कारस्य वेगभावना-स्थितिस्थापकभेदात् त्रिविधत्वेऽपि संस्कारत्वजात्यपेक्षयैकत्वम् । शौर्य्यौदार्यादीनां च गुणानामेष्वेव चतुर्विंशतिगुणेष्वन्तर्भावान्नाधिक्यम् ।।६१-६२।।

कर्मसामान्यभेदानाह -

(मू. श्लो.) उत्क्षेपावक्षेपावाकुञ्चनकं प्रसारणं गमनम् ।
पञ्चविधं कर्मैतत् परापरे द्वे तु सामान्ये ।।६४।।

पञ्चापि कर्मभेदाः स्पष्टा एव । गमनग्रहणाद् भ्रमणरेचनस्यन्दनाद्यविरोधः । तु पुनः, सामान्ये द्वे द्विसंख्ये । के ते इत्याह - परापरे । परं चापरं च परापरे, परसामान्यमपरसामान्यं चेत्यर्थः ।

एतद्व्यक्तिं विशेषव्यक्तिं चाह -

(मू. श्लो.) तत्र परं सत्ताख्यं द्रव्यत्वाद्यपरमथ विशेषस्तु ।
निश्चयतो नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यो विनिर्दिशेत् ।।६५।।

तत्र तयोर्मध्ये परं सत्ता भावो महासामान्यमिति चोच्यते, द्रव्यत्वाद्यवान्तरसामान्यापेक्षया महाविषयत्वात् । अपरसामान्यं द्रव्यत्वादि, एतच्च सामान्यविशेष इत्यपि व्यपदिश्यते । तथा हि - द्रव्यत्वं नवसु द्रव्येषु वर्तमानत्वात्सामान्यम् गुणकर्मभ्यो व्यावृत्तत्वाद्विशेषः, ततः कर्मधारये सामान्यविशेष इति । एवं द्रव्यत्वाद्यपेक्षया पृथिवीत्वादिकमपरं तदपेक्षया घटत्वादिकम् । एवं चतुर्विंशतौ गुणेषु वृत्तेर्गुणत्वं सामान्यं द्रव्यकर्मभ्यो व्यावृत्तेश्च विशेषः । एवं गुणत्वापेक्षया रूपत्वादिकं तदपेक्षया नीलत्वादिकम् । एवं पञ्चसु कर्मसु वर्तमानत्वात् कर्मत्वं सामान्यं, द्रव्यगुणेभ्यो व्यावृत्तत्वाद्विशेषः । एवं कर्मत्वापेक्षयोत्क्षेपणत्वादिकं ज्ञेयम् । तत्र सत्ता द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं कया युक्त्येति चेत्, उच्यते - न द्रव्यं सत्ता, द्रव्यादन्येत्यर्थः, एकद्रव्यत्वाद् एकैकस्मिन् द्रव्ये वर्तमानत्वादित्यर्थः । द्रव्यत्ववद्, यथा द्रव्यत्वं नवसु द्रव्येषु प्रत्येकं वर्तमानं द्रव्यं न भवति, किं तु सामान्यविशेषलक्षणं द्रव्यत्वमेव, एवं सत्तापि । वैशेषिकाणां हि, अद्रव्यं वा द्रव्यम्, अनेकद्रव्यं वा द्रव्यम् । तत्राद्रव्यं द्रव्यमाकाशं दिगात्मा कालो मनः परमाणवः, अनेकद्रव्यं तु द्व्यणुकादिस्कन्धाः, एकद्रव्यं तु द्रव्यमेव न भवति, एकद्रव्यवती च सत्ता इति द्रव्यलक्षणविलक्षणत्वान्न द्रव्यम् । एवं न गुणः सत्ता, गुणेषु भावाद्गुणत्ववत् । यदि हि सत्ता गुणः स्यात् न तर्हि गुणेषु वर्तेत, निर्गुणत्वाद् गुणानाम्, वर्तते च गुणेषु सत्ता, 'सन् गुण' इति प्रतीतेः । तथा न सत्ता कर्म, कर्मसु भावात्, कर्मत्ववत् । यदि च सत्ता कर्म स्यान्न तर्हि कर्मसु वर्तेत, निष्कर्मत्वात्कर्मणाम्, वर्तते च कर्मसु भावः, 'सत्कर्मे'ति प्रतीतेः । तस्मात् पदार्थान्तरं सत्ता । अथ विशेषपदार्थमार्याऽर्द्धेनविशेषस्त्विवति । निश्चयतो

नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यो विनिर्दिशेत् । विनिर्दिशेत् कथयेद् आचार्य इति ज्ञेयम् । कथमित्याह - **अन्त्यो विशेषो नित्यद्रव्यवृत्तिरिति** । तथाहि - नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तिहेतवस्ते द्रव्यादिवैलक्षण्यात् पदार्थान्तरम् । तथा च प्रशस्तकारः, **अन्तेषु भवा अन्त्याः, स्वाश्रयविशेषकत्वाद्विशेषाः विनाशारम्भरहितेषु नित्यद्रव्येष्वण्वाकाशकालदिगात्ममनःसु प्रतिद्रव्यमेकशो वर्तमाना अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः । यथा अस्मदादीनां गवादिष्वश्वादिभ्यस्तुल्याकृतिक्रियावयवोपचयापचयअवयवविशेषसंयोगनिमित्ताप्रत्ययव्यावृत्तिर्दृष्टा - 'गौः शुक्लः पीतः शीघ्रगतिः ककुद्मान् महाघण्ट' इति, तथास्मद्विशिष्टां योगिनां नित्येषु तुल्याकृतिगुणक्रियेषु परमाणुषु मुक्तात्ममनःसु चान्यनिमित्ताऽसम्भवाद् येभ्यो निमित्तेभ्यः प्रत्याधारं विलक्षणोऽयं विलक्षणोऽयमिति प्रत्ययव्यावृत्तिर्देशकालविप्रकर्षदृष्टे च परमाणौ स एवायमिति प्रत्यभिज्ञानं च भवति तेऽन्त्या विशेषा (प्रशस्तपाद-पृ-१६८) इति** । अमी च विशेषा एव, न तु द्रव्यत्वादिवत् सामान्यविशेषोभयरूपा व्यावृत्तेरेव हेतुत्वादित्यर्थः ।

समवायपदार्थव्यक्तिलक्षणमाह -

(मू. श्लो.) य इहायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानाम् ।
संबन्ध इह प्रत्ययहेतुः प्रोक्तः स समवायः ।।६६।।

इह प्रस्तुतमते, अयुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानामिह प्रत्ययहेतुर्यः संबन्धः स समवायः । यथेह तन्तुषु पट इत्यादि प्रत्ययस्यासाधारणं कारणं समवायः । यद्वशात् स्वकारणसामर्थ्यादुपजायमानं पटाद्याधार्यं तन्त्वाद्याधारे संबध्यते, यथा छिदिः क्रिया छेद्येनेति । अयुतसिद्धानामिति । परस्परपरिहारेण पृथगाश्रयानाश्रितानामाश्रयाश्रयिभाव इति । परस्परवैधर्म्यं तु विविक्तैरभ्यूह्यम् । षण्णामपि पदार्थानां स्वरूपकथनमात्राधिकृतत्वाद् ग्रन्थस्य नेह प्रतन्यत इति ।

प्रमाणव्यक्तिमाह -

(मू. श्लो.) प्रमाणं च द्विधामीषां प्रत्यक्षं लैङ्गिकं तथा ।
वैशेषिकमतस्यैवं संक्षेपः परिकीर्तितः ।।६७।।

यद्यप्यौलूक्यशासने व्योमशिवाचार्योक्तानि त्रीणि प्रमाणानि, तथापि

श्रीधरमतापेक्षयात्रोभे एव निगदिते । अमीषां वैशेषिकाणां प्रमाणं द्विधा द्विप्रकारम् । चः पुनरर्थे । कथमित्याह प्रत्यक्षमेकं प्रमाणं, तथेति द्वितीयभेदपरामर्शे, लैङ्गिकमनुमानम् । उपसंहरन्नाह - एवमिति । एवमिति प्रकारसूचनं, यद्यपि प्रमातृफलाद्यपेक्षया बहु वक्तव्यं, तथाप्येवममुना प्रकारेण वैशेषिकमतस्य संक्षेपः परिकीर्तितः कथित इति ।

[जैमिनिमत]

षष्ठं दर्शनमाह -

(मू. श्लो.) जैमिनीयाः पुनः प्राहुः सर्वज्ञादिविशेषणः ।
देवो न विद्यते कोऽपि यस्य मानं वचो भवेत् ।।६८।।

जैमिनिमुनेरमी इति जैमिनीयाः । पुत्रपौत्राद्यर्थे तद्धितईयप्रत्ययः । जैमिनिशिष्याश्चैके उत्तरमीमांसावादिनः, एके पूर्वमीमांसावादिनः । तत्रोत्तरमीमांसावादिनो वेदान्तिनस्ते हि केवलब्रह्माद्वैतवादसाधनव्यसनिनः शब्दार्थखण्डनाय युक्तीः खेटयन्तोऽनिर्वाच्यतत्त्वे व्यवतिष्ठन्ते । यदाहुः -

"अन्तर्भावितसत्त्वं चेत्कारणं सदसत्ततः ।
नान्तर्भावितसत्त्वं चेत्कारणं तदसत्ततः ।।
यथा यथा विचार्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथा ।
यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् ।।
एकं ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतः क्वचित् ।
आस्ते न वीरधीरस्य भङ्गः सङ्गरकेलिषु ।।

एवं वादिप्रतिवादिनोः

समस्तलोकशास्त्रैकमत्यमाश्रित्य नृत्यतोः ।
का तदस्तु गतिस्तद्वद्वस्तुधीव्यवहारयोः ।।
उपपादयितुं तैस्तैर्मतैरशङ्कनीययोः ।
अनिर्वक्तव्यतावादपादसेवा गतिस्तयोः ।।

इत्यादिप्रलयकालानिलक्षुभितचरमसलिलराशिकल्लोलमालानुकारिणः परब्रह्म-

द्वैतसाधकहेतूपन्यासाः प्रोच्छलन्तश्चतुर-चमत्कारं जनयन्तः क्व पर्यवस्यन्ति तास्तु युक्तयः सूत्रकृतानुल्लिङ्गितत्वाद् ग्रन्थविस्तरभयाच्च नेह प्रपञ्च्यन्ते, अभियुक्तैस्तु खण्डनमहातर्कादवसेयाः । पूर्वमीमांसावादिनश्च द्विधा प्राभाकरा भाटाश्च क्रमेण पञ्चषट्प्रमाणप्ररूपकाः । अत्र तु सामान्येन सूत्रकृत् पूर्वमीमांसावादिन एव जैमिनीयानुद्दिष्टवान् । ते पुनर्जैमिनीयाः, प्राहुः कथयन्ति, कथमित्याह - सर्वज्ञादिविशेषणः कोऽपि देवो न विद्यते यस्य वचो वचनं मानं प्रमाणं भवेत् । सर्वज्ञादिविशेषेण इति । सर्वज्ञादिना गुणेन विशेष्य इति । आदिशब्दाद्विभुत्व-नित्यत्वचिदात्मकत्वादिगुणविशिष्टः कोऽपि देवो नास्ति यद्वचनं प्रमाणता-मनुभवेत्, मानुषतनुत्वाविशेषेण विप्रलम्भकत्वाद् दुष्टपुरुषवत् । सर्वज्ञादि-गुणविशिष्टपुरुषाद्यभाव इत्यर्थः । अथ किङ्करायमाणसुरासुरसेव्यमानताद्युप-लक्षणेन त्रैलोक्यसाम्राज्यसूचकच्छत्रचामरादिविभूत्यन्यथानुपपत्तेश्चास्ति कश्चित् पुरुषविशेषः सर्वज्ञ इति चेत्; त्वद्यूथ्योक्तवचनप्रपञ्चोपन्यासैरेव निरस्तत्वात् । यथा -

"देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ।।" [आप्तमी. १]

अथ यथानादेरपि सुवर्णमलस्य क्षारमृत्पुटपाकादिप्रक्रियया शोध्यमानस्य निर्मलत्वमेवमात्मनोऽपि निरन्तरज्ञानाद्यभ्यासेन विगतमलत्वात्(त्वं) किं न संभवेदिति मतिः, तदपि न, न ह्यभ्यासमात्रसाम्ये शुद्धेरपि तदेव तादवस्थ्यम् । यदुक्तम् -

"गरुत्मच्छाखामृगयोर्लङ्घनाभ्याससंभवे ।
समानेऽपि समानत्वं लङ्घनस्य न विद्यते ।।" [ ]

न च सुतरां चरणशक्तिमानपि पङ्गुरखर्वपर्वतशिखरमधिरोढुं क्षमः । उक्तं च -

"दशहस्तान्तरं व्योम्नो यो नामोत्प्लुत्य गच्छति ।
न योजनशतं गन्तुं शक्तोऽभ्यासशतैरपि ।।"

अथ मा भवतु मानुषस्य सर्वज्ञत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादीनामस्तु । ते हि देवाः, संभवत्यपि तेष्वतिशायिसंपत् । यदाह कुमारिलः -

"अथापि वेददेहत्वाद् ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
कामं भवन्तु सर्वज्ञाः सार्वज्ञ्यं मानुषस्य किम् ।।"

एतदपि न; रागद्वेषमूलनिग्रहानुग्रहग्रस्तानामसंभाव्यमिदमेषामिति । न च प्रत्यक्षं तत्साधकम्, **'संबद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना'** [मी.प्रत्य. श्लो. ८४] इति वचनात् । न चानुमानम्, प्रत्यक्षदृष्ट एवार्थे तत्प्रवृत्तेः । न चागमः, सर्वज्ञस्यासिद्धत्वेन तस्यापि विवादास्पदत्वात् । न चोपमानम्, तदभावादेव । अर्थापत्तिरपि न; सर्वज्ञसाधकस्यान्यथानुपपन्नलिङ्गस्यादर्शनात् । यदि परमभाव-प्रमाणगोचरः सर्वज्ञ इति स्थितम् । प्रयोगश्चात्र-**नास्ति सर्वज्ञः, प्रत्यक्षादि-गोचरातिक्रान्तत्वात्, शशश्रृङ्गवदिति ।।६८।।**

अथ कथं यथावस्थिततत्त्वनिर्णय इत्याह -

(मू. श्लो.) तस्मादतीन्द्रियार्थानां साक्षाद् द्रष्टुरभावतः ।
नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो यथार्थत्वविनिश्चयः ।।६९।।

तस्मात्प्रामाणिकपुरुषाभावादतीन्द्रियार्थानां चक्षुरगोचरपदार्थानां साक्षाद् द्रष्टुर्ज्ञातुः सर्वज्ञादेः पुरुषस्याभावाद् नित्येभ्यः शाश्वतेभ्यो वेदवाक्येभ्योऽ-पौरुषेयवचनेभ्यो यथार्थत्वविनिर्णयो यथावस्थितपदार्थधर्मादिस्वरूपविवेचनं 'भवति' इत्याध्याहारः । अपौरुषेयत्वं च वेदानाम् -

"अपाणिपादो ह्यमनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।"
[श्वेताश्वतरो. ३.१.९]

इत्यादिभावनया रागद्वेषादिदोषतिरस्कारपूर्वकं भावनीयमिति ।।६९।।

अथ यथावस्थितार्थव्यवस्थापकं तत्त्वोपदेशमाह -

(मू. श्लो.) अत एव पुरा कार्यो वेदपाठः प्रयत्नतः ।
ततो धर्मस्य जिज्ञासा कर्त्तव्या धर्मसाधनी ।।७०।।

यतो हेतोर्वेदाभिहितानुष्ठानादेव तत्त्वनिर्णयः, अत एव पुरा पूर्वं प्रयत्नतो यत्नाद्वेदपाठः कार्यः 'ऋग्यजुःसामाथर्वाणो वेदास्तेषां पाठः कण्ठपीठ-लुठत्पाठप्रतिष्ठा, नानुश्रवणमात्रेण सम्यगवबोधस्थिरता, ततोऽनन्तरं साधनीय-

पुण्योपचयहेतुर्धर्मस्य हेयोपादेयस्वरूपस्य वेदाभिहितस्य जिज्ञासा ज्ञातुमिच्छा कर्तव्या विधेया वेदोक्ताभिधेयविधाने यतितव्यमित्यर्थः ।।७०।।

वेदोक्तधर्मोपदेशमेवाह -

(मू. श्लो.) नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियां प्रति ।
प्रवर्तकं वचः, प्राहुः स्वःकामोऽग्निं यजेद्यथा ।।७१।।

नोदनैव लक्षणं यस्य स नोदनालक्षणो धर्मः । तत्स्वरूपमेव सूत्रकृदाह । तु पुनर्नोदना क्रियां प्रति प्रवर्तकं वचः प्राहुः । वेदोक्तस्वर्गादिसाधकाम्नायस्य क्रियाप्रवर्तकं वचनं नोदनामाहुरित्यर्थः । शिष्यानुकम्पया तत्सूत्रेणैव दृष्टान्तयन्नाह - स्वःकामोऽग्निं यजेद्यथा । यथा येन प्रकारेण स्वःकामः स्वर्गाभिलाषी जनोऽग्निं यजेद् अग्निकार्यं कुर्यात् । यथाऽहुस्तत्सूत्रम् **"अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम"** इति ।।७१।।

प्रमाणान्याह -

(मू. श्लो.) प्रत्यक्षमनुमानं च शब्दश्चोपमया सह ।
अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः ।।७२।।

जैमिनेः पूर्ववेदान्तवादिनः, षट् प्रमाणानि ज्ञेयानीति संबन्धः । यद्यपि प्राभाकराणां मते पञ्च प्रमाणानि, भाट्टानामेव षट्, तथाप्यत्र ग्रन्थकृत्सामान्यतः षट्संख्यामाचष्टे । प्रमाणनामानि निगदसिद्धान्येव ।।७२।।

निरुक्तमाह -

(मू. श्लो.) तत्र प्रत्यक्षमक्षाणां संप्रयोगे सतां मतिः ।
आत्मनो बुद्धिजन्मेत्यनुमानं लैङ्गिकं पुनः ।।७३।।

तत्र प्रमाणषट्के, अक्षाणामिन्द्रियाणां, संप्रयोगे पदार्थैः सह संयोगे, सतामनुपहितेन्द्रियाणां या मतिर्बुद्धिरिदमित्यवबोधः, तत्प्रत्यक्षं प्रमाणं 'भवति' इत्यध्याहारः । यत्तदावनुक्ताप्यर्थसंबन्धात् ज्ञेयौ । सतामितिविदुषाम-दुष्टेन्द्रियाणामित्यर्थः । एतावता मरुमरीचिकायां जलभ्रमः, शुक्तौ रजतभ्रमश्चेन्द्रि-यार्थसंप्रयोगजोऽपि द्रष्टुरविकलेन्द्रियत्वाभावान्न प्रत्यक्षं तत्प्रमाणकोटिमधिशेते ।

अनुमानमाह-**आत्मनो बुद्धिजन्मेत्यनुमानं लैङ्गिकं पुनः** । आत्मा यदनुमिमीते स्वयं तदनुमानमित्यर्थः । अनुमानलैङ्गिकयोः शाब्दभेदेऽप्यनुमीयत इत्यनुमानं लिङ्गाज्ञातं लैङ्गिकमिति व्युत्पत्तिभेदाद्भेदो ज्ञेय उभयशब्दकथनं तु बालावबोधार्थमेवेति ।

(मू. श्लो.) शाब्दं शाश्वतवेदोत्थमुपमानं प्रकीर्तितम् ।
प्रसिद्धार्थस्य साधर्म्यादप्रसिद्धस्य साधनम् ।।७४।।

शाब्दमागमप्रमाणं शाश्वतवेदोत्थं शाश्वतान्नित्याद्वेदाज्ञातम् । आगमप्रमाणमित्यर्थः । शाश्वतत्वं च वेदानामपौरुषेयत्वादेव । उपमानमाह - यत्प्रसिद्धार्थस्य प्रतीतपदार्थस्य साधर्म्यात् साम्यादप्रसिद्धस्य वस्तुनः साधनं तदुपमानं प्रमाणं प्रकीर्तितं कथितम् । यथा प्रसिद्धगोगवयस्वरूपो वनेचरोऽप्रसिद्धगवयस्वरूपं नागरिकं प्राह - 'यथा गौस्तथा गवयः' इति । यथा भोः खुरककुदलाङ्गूलसास्नादिमन्तं पदार्थं गामिति जानासि, गवयोऽपि तथास्वरूपो ज्ञेय इत्युपमानम् । अत्र सूत्रानुक्तावपि यत्तदावर्थसंबन्धार्थमध्याहार्यौ ।।७४।।

अर्थापत्तिमाह -

(मू. श्लो.) दृष्टार्थानुपपत्त्या तु कस्याप्यर्थस्य कल्पना ।
क्रियते यद्बलेनासावर्थापत्तिरुदाहृता ।।७५।।

असौ पुनरर्थापत्तिरुदाहृता कथिता, अर्थापत्तिप्रमाणं प्रोक्तमित्यर्थः । यद्बलेन कस्याप्यदृष्टस्यार्थस्य कल्पना क्रियते संघटना विधीयते, कया दृष्टार्थानुपपत्त्या दृष्टः परिचितः प्रत्यक्षलक्ष्यो योऽर्थो देवदत्ते पीनत्वादिः तस्यानुपपत्त्या अघटमानतया अन्यथानुपपत्त्या इत्यर्थः । यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते, पीनत्वस्यान्यथानुपपत्त्या रात्राववश्यं भुङ्क्त इत्यत्र दृष्टं पीनत्वं विना भोजनं दुर्घटं, दिवा च न भुङ्क्ते, अतो रात्राववश्यमदृष्टं भोजनं ज्ञापयतीत्यर्थापत्तिः प्रमाणम् ।।७५।।

अथाभावप्रमाणमाह -

(मू. श्लो.) प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।
वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ।।७६।।

यत्र वस्तुरूपे, अभावादौ पदार्थे प्रमाणपञ्चकं पूर्वोक्तं न जायते,

तत्राभावप्रमाणता ज्ञेयेति संबन्धः । किमर्थमित्याह - वस्तुसत्तावबोधार्थम् । वस्तुनोऽभावरूपस्य मुण्डभूतलादेः सत्ता घटाद्यभावसद्भावः तस्यावबोधः प्रामाणिकपथावतारणं 'तदर्थं' तद्धेतोरित्यर्थः । ननु कथमभावस्य प्रामाण्यम् । प्रत्यक्षं तावद्भूतलमेवेदं घटादि न भवतीत्यन्वयव्यतिरेकद्वारेण वस्तुपरिच्छिन्दत् तदधिकं विषयमभावैकरूपं निराचष्ट इति किं विषयमाश्रित्याभावप्रामाण्यं स्यात् । मुण्डभूतले घटाभावमाश्रित्येति चेत्, मैवम्, घटाभावप्रतिबद्ध-भूतलग्रहणासिद्धेः ।

तदुक्तम् -

"न तावदिन्द्रियेणैषा नास्तीत्युत्पद्यते मतिः ।
भावांशेनैव संयोगो योग्यत्वादिन्द्रियस्य हि ।।

[मी.श्लो.वा. अभावपरि. १८]

गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनम् ।
मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया ।।"

[मी.श्लो.वा. अभावपरि. २७] इति ।

नास्तिताज्ञानग्रहणावसरे प्रामाण्यमेवाभावस्य, केवलं भावांश इन्द्रिय-संनिकर्षजत्वेन पञ्चप्रमाणगोचरसंचरिष्णुतामनुभवन्नाबालगोपालाङ्गनाप्रसिद्धं व्यवहारं प्रवर्तयति । अभावांशस्तु प्रमाणपञ्चकविषयबहिर्भूतत्वात् केवलभूतल-ग्रहणाद्युपयोगित्वादभावप्रमाणव्यपदेशमश्नुत इति सिद्धमभावस्यापि युक्तियुक्ततया प्रामाण्यमिति ।।७६।।

उपसंहरन्नाह -

(मू. श्लो.) जैमिनीयमतस्यापि संक्षेपोऽयं निवेदितः ।
एवमास्तिकवादानां कृतं संक्षेपकीर्तनम् ।।७७।।

अपिशब्दान्न केवलमपरदर्शनानां जैमिनीयमतस्याप्ययं संक्षेपो निवेदितः कथितः । वक्तव्यस्य बाहुल्याट्टीकामात्रे सामस्त्यकथनायोगात् संक्षेप एव प्रोक्तोऽस्ति । अथ सूत्रकृत्सम्मतसंक्षेपमुक्त्वा निगमनमाह - एवमिति । एवमित्थम्, आस्तिकवादिनामिह परलोकगतिपुण्यपापास्तिक्यवादिनां बौद्ध-

नैयायिकसांख्यजैनवैशेषिकजैमिनीयानां संक्षेपकीर्त्तनं कृतं, संक्षेपेण वक्तव्यमभिहितमित्यर्थः ।।७७।।

विशेषान्तरमाह -

(मू. श्लो.) नैयायिकमतादन्ये भेदं वैशेषिकैः सह ।
न मन्यन्ते मते तेषां पञ्चैवास्तिकवादिनः ।।७८।।

अन्ये आचार्या नैयायिकमताद्वैशेषिकैः सह भेदं न मन्यन्ते दर्शनाधिष्ठात्रेकदैवतत्वात् पृथग्दर्शनं नाभ्युपगच्छन्ति तेषां मतापेक्षया आस्तिकवादिनः पञ्चैव ।।७८।।

दर्शनानां षट्संख्या जगति प्रसिद्धा सा कथं फलवतीत्याह -

(मू. श्लो.) षष्ठदर्शनसंख्या तु पूर्यते तन्मते किल ।
लोकायतमतक्षेपात्कथ्यते तेन तन्मतम् ।।७९।।

ये नैयायिकवैशेषिकयोरेकरूपत्वेनाभेदं मन्यमाना दर्शनपञ्चकमेवाचक्षते, तन्मते षष्ठदर्शनसंख्या लोकायतमतक्षेपात्पूर्यते । तु पुनरर्थे, किलेति परमाप्ताम्नाये, तेन कारणेन तन्मतं चार्वाकमतं कथ्यते तत्स्वरूपमुच्यत इति ।।७९।।

[लोकायतमत]

तदेवाह -

(मू. श्लो.) लोकायता वदन्त्येवं नास्ति देवो न निर्वृतिः ।
धर्माधर्मौ न विद्येते न फलं पुण्यपापयोः ।।८०।।

लोकायता नास्तिका एवममुना प्रकारेण वदन्ति कथमित्याह - देवः - सर्वज्ञादिर्नास्ति, निर्वृतिर्मोक्षो नास्ति, अन्यच्च न विद्येते, कौ धर्माधर्मौ, धर्मश्चाधर्मश्चेति द्वन्द्वः । पुण्यपापे सर्वथा न स्त इत्यर्थः । पुण्यपापयोर्धर्माधर्मयोः फलं स्वर्गनरकादिरूपं नेति नास्ति, तदपि पुण्यपापयोरभावे कौतस्त्यं तत्फलमित्यादि ।।८०।।

तच्छास्त्रोक्तमेव सोल्लुण्ठं दर्शयन्नाह - तथा च तन्मतम् ।

(मू. श्लो.) एतावानेव लोकोऽयं यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे ! वृकपदं पश्य यद्वदन्ति बहुश्रुताः ।।८१।।

तथा चेत्युपदर्शने । तन्मतं प्रस्तावान्नास्तिकमतम् । कथमित्याह -

अयं लोकः संसार एतावानेव एतावन्मात्र एव यावान् यावन्मात्रमिन्द्रियगोचरः। इन्द्रियं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रभेदात् पञ्चविधं तस्य गोचरो विषयः । पञ्चेन्द्रिय-व्यक्तीकृतमेव वस्त्वस्ति नापरं किंचन । अत्र लोकग्रहणाल्लोकस्थपदार्थसार्थस्य संग्रहः । तथा परे पुण्यपापसाध्यं स्वर्गनरकाद्याहुः, तदप्रमाणं प्रत्यक्षाभावादेव । अप्रत्यक्षमप्यस्तीति चेच्छशशृङ्गवन्ध्यास्तनन्धयादीनामपि भावोऽस्तु । तथाहि - स्पर्शनेन्द्रियेण तावन्मृदुकठोरशीतोष्णस्निग्धरूक्षादिभावा उपलभ्यन्ते । रसनेन्द्रियेण तिक्तकटुकषायाम्लमधुरास्वादलेह्यचूष्यपेयादयो वेद्यन्ते । घ्राणेन्द्रियेण मृगमदमलयजघनसारागरुप्रभृतिसुरभिवस्तुपरिमलोद्गारपरम्पराः परिचीयन्ते । चक्षुरिन्द्रियेण भूभूधरपुरप्राकारघटपटस्तम्भकुम्भाम्भोरुहादि-मनुष्यपशुश्वापदादिस्थावरजङ्गमपदार्थसार्था अनुभूयन्ते । श्रोत्रेन्द्रियेण तु प्रथिष्ठगाथकपथपथिकप्रथ्यमानतालमानमूर्च्छनाप्रेङ्खोलनाखेलन्मधुरध्वनय आकर्ण्यन्ते । इति पञ्चप्रकारप्रत्यक्षदृष्टमेव वस्तुतत्त्वं प्रमाणपदवीमवगाहते । शेषप्रमाणानामनुभवाभावादेव निरस्तत्वाद् गगनकुसुमवत् । ये चास्पृष्टमना-स्वादितमनाघ्रातमदृष्टमश्रुतमप्याद्रियमाणाः स्वर्गमोक्षादिसुखपिपासानुबन्ध-चेतोवृत्तयो दुश्चरतरतपश्चरणादिकष्टपिष्टकया स्वजन्म क्षपयन्ति, तन्महासाहसं तेषामिति । किं चाप्रत्यक्षमप्यस्तितयाभ्युपगम्यते चेज्जगदनुपद्रुतमेव स्यात् । दरिद्रो हि स्वर्णराशिर्मेऽस्तीत्यनुध्याय हेलयैव दौःस्थ्यं दलयेत्, दासोऽपि स्वचेतसि स्वामितामवलम्ब्य स्वस्य किङ्करतां निराकुर्यादिति, न कोऽपि स्वानभिमत-मालिन्यमश्रुवीत । एवं न कश्चित्सेव्यसेवकभावो दरिद्रिधनिभावो वा स्यात् । तथा च जगद्व्यवस्था विलोपप्रसंग इति सुस्थितमिन्द्रियगोचर एव प्रमाणम् । ये चानुमानागमादिप्रामाण्यमनुमन्वानाः पुण्यपापव्यापारप्राप्यस्वर्गनरकादिसुखासुखं व्यवस्थापयन्तो वाचाटा न विरमन्ति, तान् प्रति दृष्टान्तमाह - भद्रे वृकपदं पश्येति। यथा हि कश्चित्पुरुषो वृकपददर्शनसमुद्भूतकुतूहलां दयितां मन्थरतर-प्रसृमरसमीरणसमीकृतपांशुप्रकरे स्वकराङ्गुलिन्यासेन वृकपदाकारतां विधाय प्राह-हे भद्रे ! वृकपदं पश्य । कोऽर्थः ? यथा तस्या अविदितपरमार्थाया मुग्धाया विदग्धो वल्लभो वृकचरणनिरीक्षणाग्रहं कराङ्गुलिन्यासमात्रेण प्रलोभ्य पूरितवान्, एवममी अपि धर्मच्छद्मधूर्त्ताः परवञ्चनप्रवणा यत् किंचिदनुमाना-

गमादिदार्ढ्यमादर्श्य व्यर्थं मुग्धजनान् स्वर्गादिप्राप्तिलभ्यभोगाभोगप्रलोभनया भक्ष्याभक्ष्यगम्यागम्यहेयोपादेयादिसंकटे पातयन्ति, मुग्धधार्मिकध्यान्ध्यं चोत्पादयन्ति । एवमेवार्थं प्रमाणकोटिमधिरोपयन्तश्च यद्बहुश्रुताः परमार्थवेदिनो वदन्ति, वक्ष्यमाणपद्येनेत्यर्थः ।।८१।।

(मू. श्लो.) पिब खाद च जातशोभने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।
न हि भीरु ! गतं निवर्तते समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।।८२।।

हे जातशोभने, भावप्रधानत्वान्निर्देशानां, जातं शोभनत्वं वदननयनादित्वं यस्याः सेति तत्संबोधनम् । पिब पेयापेयव्यवस्थावैसंष्ठुल्येन मदिरादेः पानं कुरु न केवलं पिब, खाद च भक्ष्याभक्ष्यनिरपेक्षतया मांसादिकं भक्षय । यद्वा पिबेति अधरादिपानं कुरु, खादेति भोगानुपभुङ्क्ष्वेति काम्युपदेशः, स्वयौवनं सफलीकुर्वित्यर्थः । अथ सुलभमेव पुण्यानुभावाद्भवान्तरेऽपि शोभनत्वमिति परोक्तमाशङ्क्याह - यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते । हे प्रधानाङ्गि ! यदतीतम् अतिक्रान्तं यौवनादि तत्ते तव भूयो न, किं तु जराजीर्णत्वमेव भविष्यतीत्यर्थः । जातशोभने! वरगात्रीतिसंबोधनयोः सामानार्थयोरप्यादरानुरागातिरेकान्न पौनरुक्त्यदोषः । यदुक्तम्-

"अनुवादादरवीप्साभृशार्थविनियोगहेत्वसूयासु ।
ईषत्संभ्रमविस्मयगणनास्मरणेष्वपुनरुक्तम् ।।"

ननु स्वेच्छयाविच्छिन्ने खादने पाने दुस्तरा परलोके कष्टपरम्परा, सुलभं च सति सुकृतसंचये भवान्तरेऽपि यौवनादिकमिति पराशङ्कां दूषयन्नाह-न हि भीरु ! गतं निवर्तते । हे भीरु ! परोक्तमात्रेण नरकादिप्राप्यदुःखभयाकुले ! गतम्, इह भवातिक्रान्तं सुखं यौवनादि न निवर्तते परलोके नाढौकते परलोकसुखाकाङ्क्षया तपश्चरणादिकष्टक्रियाभिरिहत्यसुखोपेक्षा व्यर्थेत्यर्थः । अथ जन्यजनकसंबन्ध-सद्भावादमुना कायेन परलोकेऽपि सहेतुकं सुखदुःखादिकं वेदितव्यमवश्यमेवेति चेत्; आह समुदयमात्रमिदं कलेवरं । इदं कलेवरं शरीरं समुदयमात्रं समुदयो मेलः वक्ष्यमाणचतुर्भूतानां संयोगस्तन्मात्रं मात्रशब्दोऽवधारणे भूतचतुष्टयसंबन्ध एव कायो न च पूर्वभवादिसंबद्धशुभाशुभकर्मविपाकवेद्यसुखदुःखादिसव्यपेक्ष इत्यर्थः।

संयोगाश्च तरुशिखरावलीलीनशकुनिगणवत्, क्षणतो विनश्वरास्तस्मात् परलोकानपेक्षया यथेच्छं पिब खाद चेति वृत्तार्थः ।।८२।।

चैतन्यमाह -

(मू. श्लो.) किंच पृथ्वी जलं तेजो वायुर्भूतचतुष्टयम् ।

चैतन्यभूमिरेतेषां मानं त्वक्षजमेव हि ।।८३।।

किंचेत्युपदर्शने, पृथ्वी भूमिः, जलमापः, तेजो वह्निः, वायुः पवनः, इति भूतचतुष्टयं तेषां चार्वाकाणां चैतन्यभूमि चैतन्योत्पत्तिकारणं चत्वार्यपि भूतानि संभूय सपिण्डं चैतन्यं जनयन्तीत्यर्थः । तु पुनर्मानं प्रमाणं हि निश्चितम् । अक्षजमेव प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यर्थः ।।८३।।

ननु भूतचतुष्टयसंयोगजा देहचैतन्योत्पत्तिः कथं प्रतीयतामित्याशङ्क्याह -

(मू. श्लो.) पृथ्व्यादिभूतसंहत्यां तथा देहादिसंभवः ।

मदशक्तिः सुराङ्गेभ्यो यद्वत्तद्वत्स्थितात्मता ।।८४।।

पृथिव्यादीनि पृथिव्यप्तेजोवायुरूपाणि यानि भूतानि तेषां संहत्यां मेले संयोगे सति, तथेत्युपदर्शने, देहादिसंभवः, आदिशब्दादितरे भूभूधरादिपदार्था अपि भूतचतुष्टयसंयोगजा एव ज्ञेयाः । दृष्टान्तमाह - यद्वद् येन प्रकारेण सुराङ्गेभ्यो गुडधातक्यादिभ्यो मद्याङ्गेभ्यो मदशक्तिरुन्मादकत्वं भवति, तद्वत्तथा भूतचतुष्टयसंबन्धात् शरीरे आत्मता स्थिता सचेतनत्वं जातमित्यर्थः ।।८४।।

इति स्थिते यदुपदेशपूर्वकमुपसंहारमाह -

(मू. श्लो.) तस्माद् दृष्टपरित्यागाददृष्टे यत् प्रवर्तनम् ।

लोकस्य तद्विमूढत्वं चार्वाकाः प्रतिपेदिरे ।।८५।।

तस्मादिति पूर्वोक्तानुस्मारणे पूर्वं तस्मात्ततः कारणाद् दृष्टपरित्यागाद् दृष्टं पेयापेयखाद्याखाद्य-गम्यागम्यानुरूपं प्रत्यक्षानुभाव्यं यत्सुखं तस्य परित्यागाददृष्टे तपश्चरणादिकष्टक्रियासाध्यपरलोकसुखादौ प्रवर्तनं प्रवृत्तिः । चः समुच्चये । यत्तदोर्नैयत्यात् पूर्वार्द्धे यत्संबन्धो ज्ञेयः । तल्लोकस्य विमूढत्वमज्ञानत्वं चार्वाकाः लौकायतिकाः प्रतिपेदिरे प्रतिपन्नाः । मूढलोका हि विप्रतारकवचनोपन्या-

सत्रासितज्ञानाः सांसारिकं सुखं परित्यज्य व्यर्थं स्वर्गं मोक्षपिपासया तपोजपध्यानहोमादिभिरिहत्यं सुखं हस्तगतमुपेक्षन्त इति ।।८५।।

(मू. श्लो.) साध्यवृत्तिनिवृत्तिभ्यां या प्रीतिर्जायते जने ।
निरर्था सा मते तेषां सा चाकाशात् परा न हि ।।८६।।

साध्यस्य मनीषितस्य कस्यचिद्वस्तुन आवृत्तिः प्राप्तिः, कस्यचिद्वस्तुनोऽनभीष्टस्य निवृत्तिरभावः, ताभ्यां जने लोके या प्रीतिर्जायते उत्पद्यते सा तेषां चार्वाकाणां निरर्थिका निरभिप्राया शून्या मताभीष्टा । परभवार्जितपुण्यपापसाध्यं सुखदुःखादिकं सर्वथा न विद्यत इत्यर्थः । सा च प्रीतिराकाशाद् गगनात् परा न हि यथा आकाशं शून्यं तथैषापि प्रीतिरभावरूपैवेत्यर्थः ।।८६।।

उपसंहारमाह -

(मू. श्लो.) लोकायतमतेऽप्येवं संक्षेपोऽयं निवेदितः ।
अभिधेयतात्पर्यार्थः पर्यालोच्यः सुबुद्धिभिः ।।८७।।

एवममुना प्रकारेण लोकायतमतेऽप्ययं संक्षेपो निवेदितः । अपिः समुच्चये । न केवलं परमते संक्षेप उक्तो लोकायतमतेऽपि । अथ सर्वदर्शनसंमतसंग्रहे परस्परकल्पितानल्पविकल्पजल्परूपे "निरूपिते किंकर्त्तव्यमूढानां प्राणिनां कर्त्तव्योपदेशमाह - अभिधेयेति । सुबुद्धिभिः पण्डितैरभिधेयतात्पर्यार्थः पर्यालोच्यः । अभिधेयं कथनीयं मुक्त्यङ्गतया प्रतिपाद्यं यद्दर्शनस्वरूपं तस्य तात्पर्यार्थः सारार्थो विचारणीयः । सुबुद्धिभिरिति । शुद्धा पक्षपातरहिता बुद्धिर्येषामिति । न तु कदाग्रहग्रहिलैः । यदुक्तम् -

"आग्रही बत निनीषति युक्तिं तत्र यत्र मतिरस्य निविष्टा ।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र तत्र मतिरेति निवेशम् ।।" [ ] इति ।

दर्शनानां पर्यन्तैकसारूप्येऽपि पृथक् -पृथगुपदेष्टव्याद्विमतिसंभवे विमूढस्य प्राणिनः सर्वस्पृक्तया दुर्लभं स्वर्गापवर्गसाधकत्वम् । अतो विमर्शनीयस्तात्त्विकोऽर्थः यथा च विचारितं चिरन्तनैः ।

"श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्त्तव्यः पुनरार्हतः ।
वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः ।।"

इत्यादि विमृश्य श्रेयस्करं रहस्यमभ्युपगन्तव्यं कुशलमतिभिरिति पर्यन्तश्लोकार्थः । तत्समाप्ता चेयं षड्दर्शनसमुच्चयसूत्रटीका ।

खेलतो मूलराजहंसौ यावद्विश्वसरस्तटे ।
तावद्बुधैर्वाच्यमानं पुस्तकं नन्दतादिति ।।
सप्ताशीतिः श्लोकसूत्रं टीकामानं विनिश्चितम् ।
सहस्रमेकं द्विशती द्वापञ्चाशदनुष्टुपाम् ।। ।।८७।।

इति श्रीहरिभद्रसूरिकृतषड्दर्शनसमुच्चये श्री सोमतिलकसूरिकृता
लघुवृत्तिः समाप्ता ।

❖ ❖ ❖

(२) षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णिः

श्रीमद्वीरजिनं नत्वा हरिभद्रगुरुं तथा ।
किंचिदर्थाप्यते युक्त्या षड्दर्शनसमुच्चयम् ।।

सत् शोभनं दर्शनं सामान्यावबोधलक्षणं ज्ञानं सक्तं [सम्यक्त्वं] लोचनं वा यस्य, जिनो रागादिजेतृत्वात्, वीरमिति साभिप्रायं प्रमाणवक्तव्यस्य पक्षेच्छेदादि [परपक्षोच्छेदादेः] सुभटवृत्तित्वात् भगवतश्च दुःखसंपादिविषमोपसर्ग-सहिष्णुस्तन [त्वेन] सुभटत्वात् । यदुक्तम् -

"विदारणात् कर्मततेर्विराजनात्तपःश्रिया विक्रमतस्तथाद्भुतात् । भवत्प्रमोदः किल नाकिनायकश्चकार ते वीर इति स्फुटाभिधानम् [धा तम्] ।।" स्याद्विकल्पितो वादः स्याद्वादः, सदसन्नित्यानित्यादिः तं दिशति यस्तम् । सर्वाणि च तानि दर्शनानि च बौद्धादीनि तद्वाच्यः अर्थाभिधेयः अर्थाभिधेय वस्तु [अर्थोऽभिधेयैर] वस्तु-प्रयोजननिवृत्तिस्त्वि [ष्वि] त्यनेकार्थः संक्षेपेणैव, विस्तरकरणं दुरवगाहम् ।।१।। प्रसिद्धानि दर्शनानि षडेव । एवावधारणे । यद्यपि भेदप्रभेदतया बहूनि दर्शनानि प्रसिद्धानि । यदुक्तम् -

"असियसयं किरियाणं अक्किरियवाईणमाह चुलसीए । अन्नाणी सत्तट्ठी वेणइआणञ्च बत्तीसं ।" इत्यादि। मूलभेदापेक्षया मूलभेदानाश्रित्य, वैभाषिकसू (सौ)त्रान्तिकबहूद(क)कुटीचरहंसपरमहंसभा [भ] ट्टप्रभाकरादिसंभव-श्चैतदन्तर्गत एव । देवता दर्शनाधिष्ठायकः । तत्त्वानि रहस्यानि मोक्ष-साधकानि ।।२।।

बुद्धो देवतास्येति **बौद्धम्** । न्यायादनपेतं **नैयायिकम्** । सांख्यं **कापिलदर्शनम्**। जिनो देवतास्येति **जैनम्**। वैशेषिकं **कणादि [द] दर्शनम्** । जैमिनित्रऋषिमतं **जैमिनीयं भाट्टं दर्शनम्** । चः समुच्चये ।।३।।

[बौद्धमत]

चतुर्णां दुःखसमुदयः(य)मार्गनिरोधलक्षणानाम् आर्यसत्यानां तत्त्वानां प्ररूपकः कथयिता सुगतो नाम । आदिशब्दोऽत्र अवयवार्थः, यदुक्तम् -

"सामीप्येऽथ व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा । चतुर्ष्वेषु मेधावी (धीमत) आदिशब्दं तुं लक्षयेत् (योजयेत्) ।।४।।

संसरन्तीति संसारिणो विस्तरणशीलाः । स्कन्धाः प्रचयविशेषाः । दुःखं ते पञ्च [च] पञ्च । विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं सर्वक्षणिकत्वज्ञानम् । यदुक्तम् **"यत्सत्तत् क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा इमे ।"** वेद्यत इति वेदना, पूर्वभवपुण्य-पापपरिणामबद्धाः सुखदुःखानुभवरूपा । तथोक्तम् - **"इत एकनवते कल्पे शक्त्या मे पुरुषो हतः । तत्कर्मणो विपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भ(भि)क्षवः ।।"** संज्ञेति सर्वं वा चेतनाचेतनं (सचेतनाचेतनं) संज्ञामात्रं नाममात्रम्, नात्र पुत्रकलत्रभ्रातृत्वादि घटपटादिर्वा पारमार्थिकः । पूर्वानुभूतरूपः संस्कारः, स एवायं देवदत्त इत्याद्याकारेण ज्ञानोत्पत्तिः संस्कारः सैवेयं दीपकलिकेति रूपम् इति रगरगायमाणपरमाणुप्रचयः, बौद्धमते हि स्थूलरूपपदार्थस्य निराक्रियमाणत्वाद् चेतन(त्वेन) परमाणव एव तात्त्विकाः ।।५।। रागद्वेषमोहानां समस्तो गणो यस्मात् समुदेति समुद्भवति । अयमात्मा अयमात्मीयः पदे पदसमुदायोपचारात्, अपरः (अयं परः) परकीयः इति भावो रागद्वेषनिबन्धनं स समुदयः ।।६।।

'सर्वेषां घटपटादीनां स एवायमिति ये संस्कारा ज्ञानसंतानास्ते क्षणिकाः, सर्वं सत् क्षणिकम् अक्षणिके क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात्, एवं या वासना स मार्गः । तुशब्दः पश्चा(पाश्चा)त्यार्थसंग्रहार्थं पूर्वं समुच्चयार्थे । निरोधो मोक्षः । सर्वक्षणिकत्वनैरात्म्यवासनारूपः [मार्गः] ।।७।।

पञ्चेन्द्रियाणि प्रसिद्धानि । शब्दरूपरसगन्धस्पर्शरूपाः विषयाः । मानसं चित्तम् । धर्मायतनं धर्मप्रधानमायतनं चेत्यादि । एतानि द्वादशायतनानि तत्त्वानन्तरं निरूप्यन्ते ।।८।।

तथा सौगतदर्शने द्वे प्रमाणे । चः पुनरर्थे । अक्षमक्षं प्रतिगतं प्रत्यक्षम् ऐन्द्रियकम् । अनुमीयतेऽनुमानं लैङ्गिकम् । सम्यग्ज्ञानं निश्चितावबोधो द्विविध एव [द्विधा यतः] ।।९।।

शब्दसंसर्गवती प्रतीतिः कल्पना तयापोढं रहितं निर्विकल्पकम्, अभ्रान्तं भ्रान्तिरहितम्, रगरगायमाणपरमाणुलक्षणस्वरूपं [स्व] लक्षणं हि प्रत्यक्षं

निर्विकल्पकम्, बाह्यं स्थूलपदार्थगतं ज्ञानं सविकल्पकं भ्रान्तं च । तु पुनः त्रिरूपात् पक्षधर्मत्वं-सपक्ष(क्षे)सत्त्व (त्त्वं) विपक्षव्यावृत्तिरूपात् लिङ्गतो धूमादेः [यत्] लिङ्गिनो वैश्वानरादेर्ज्ञानं तदनुमानन् । सूत्रे लक्षणं नेक्षणं [णीयं] तेन चरमपदस्य नवाक्षरत्वेऽपि न दोषः ।।१०।।

साध्यधर्मविशिष्टो धर्मी पक्षः, यथा 'अद्रिरयं वह्निमान् धूमवत्त्वात्' अत्र पर्वतः पक्षः धर्मत्वं वह्निमत्त्वं धूमवत्त्वेन व्याप्तम् । सपक्षे सत्त्वमिति, यो यो धूमवान् स स अग्निमान् यथा महानसे, धूमवत्त्वेन हेतुना सपक्षे महानसे सत्त्वं वह्निमत्त्वम् । विपक्षे नास्तिता यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा जलाशये वह्निमत्त्वं व्यावर्त्तमानं व्याप्यं धूमवत्त्वमादाय व्यावर्तते ।।११।।

अयं संक्षेपो निवेदितः कथितः, बौद्धानां राद्धान्तः सिद्धान्तः [तस्य] [तद्वाच्यः] यद्वाच्यम्, इतो नैयायिकस्य विशेषशैवशासनस्य ।।१२।।

अक्षपादा नैयायिकाः । सृष्टिःप्राणी(णि)नां समु[नामु]त्पत्तिः, संहारः तद्विनाशः तत्करोतीति । विश्वस्य हि कश्चित् स्रष्टा संहर्ता विज्ञेयः, केवलसृष्टौ च निरन्तरोत्पद्यमानापारप्राणिगणस्य भुवनत्रयेऽप्यमातृत्वमिति [प्राणिगण-स्यापारत्वात्] संहारकर्तापि कश्चिदभ्युपगन्तव्यः जगतः कार्यत्वाच्च । शिव ईश्वरः । विभुः [सर्व] व्यापकः । नित्यश्चासौ एकश्चेति, [अ] प्रच्युतानुत्पन्नस्थिर (रैक)स्वभावं हि नित्यम्, एकोऽद्वितीयः बहूनां घटना [घटनां] युक्तेः । सर्वज्ञः स सर्वविशेषज्ञानात् [तात्] शाश्वतबुद्धिस्थानम्, क्षणिकबुद्धित्वे हि पराधीनता ।।१३।।

अत्र नैयायिकमते प्रमाणादीनि षोडशतत्त्वानि यथाक्रमं व्याक्रियमाणानि । नामानि सुगमानि । एवम् अमुना प्रकारेण प्रकटनमार्यस्य [मर्थस्य] पदार्थस्योपलब्धिर्ज्ञानं तस्य हेतुः कारणं प्रमाणं चतुर्विधम् ।।१४-१६।।

चतुः प्रमाणि(ण) (णानां) नामानि । अथ प्रत्यक्षानुमानस्वरूपमाह - इन्द्रियं चार्थश्चेति तयोः संनिकर्षात् संयोगादुत्पन्नम्, इन्द्रियार्थयोर्हि नैकदा (ट्यात्) संयोगाज्ज्ञानम् । यदुक्तम् - **"आत्मा सहे(है)ति मनसा मन इन्द्रियेण, स्वार्थेन चे**

(इ)न्द्रियम [मि] तिक्रम एव शीघ्रः । योगोऽयमेव मनसा किमगम्यमस्ति यस्मिन् मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ।।"

अव्यभिचारि(र)कं ज्ञानान्तरेण नान्यथाभावि, शुक्तिशकले कलधौतबोधो व्यभिचारी । व्यवसायात्मकं व्यवहारसाधकं सजलधरणितले जलहारं(ज्ञानं) व्यवहारासाधकत्वादप्रमाणम् । व्यपदेशो विपर्ययस्तेन रहितम् । तु पुनरनुमानं तत्पूर्व (र्वं) प्रत्यक्षपूर्वं त्रिप्रकारम् ।।१७-१८।।

पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टम् । तत्र त्रिषु मध्ये कारणात् मेया(घात् कार्यं) तद्वृष्टिलक्षणं यतो ज्ञायते तत्कारणकार्यमनुमानं निदर्शनेन द्रढयति ।।१९।।

रोलम्बा भ्रमराः, गवलं माहिषं श्रृङ्गम्, व्यालाः गजाः सर्पा (वा), तमाला वृक्षाः, मलिना अर्थात् कृष्णा त्विट् येषाम् । एवंप्राया इत्युपलक्षणेन परेऽत्युन्नतत्व-गर्जितत्वा [ता] दयो विशेषा ज्ञेयाः ।।२०।।

यच्च कार्यात्फलात् कारणानुमानं फलोत्पत्तिहेतुपदार्थावगमनं तच्छेषवत् । यथाविधप्रवहत्सलिल्नदीपूरात् उपरिशिखरिशिखरोपरि जलाभिवर्षणज्ञानम् ।।२१।।

चः पुनरर्थे । सामान्यतोदृष्टं तदनुमानं यथा पुंसि देवदत्तादौ देशान्तरत्वा-प्तिर्गतिपूर्विका दृष्टा यथा उज्ञयिन्याः प्रस्थिता [तो] माहिष्मतीं प्राप [प्तः] । तथा सूर्योदया (सूर्यस्य उदया) [सूर्येपि उदया] चलात् सायमस्ताचलगमनं [गमनं] ज्ञापयति ।।२२।।

क्रमागतमपि शाब्दप्रमाणमुपेक्ष्य उपमानमाह-तदुपमानं यत्तदोर्नित्याभि-संबन्धात् । यत्, किंचिद् अप्रसिद्धस्य अज्ञायमानस्य अर्थस्य ज्ञापनं प्रसिद्धधर्मसाधर्म्यादाबालगोपालाङ्गनाविदितात् क्रियते । साधर्म्यं समानधर्मत्वम् । यथा अरण्यवासी चिरपरिचितगोगवयलक्षणो नागरिकेण गावा [गवोप] लक्षणवता पृष्टो दृष्टान्तमदात् ।।२३।।

तु पुनः । आप्तोऽवितथवादी हितश्च यो जनताथ्यो [जनस्तस्य तथ्यो] हितोपदेशो देशनावाक्यं तच्छाब्दमागमप्रमाणम् । अथ प्रमाण (प्रमेय) लक्षणमाह [प्रमेयलक्षणमाश्रित्याह-अथ] प्रमाणग्राह्योऽर्थः प्रमेयम् । तुः पुनरर्थे । आत्मा च देहश्चेति द्वन्द्वः । आदिशब्देन षण्णां प्रमेयार्थानां परिग्रहः । तत्र सचेतनत्व-

कर्तृत्वसर्वगतत्वादिना आत्मा अनुमीयते, एवं देहादयः, अत्र तु ग्रन्थविस्तरतया नात्र प्रपञ्चिताः ।।२४।।

संशयादिस्वरूपमाह । दूरावलोकनेन पदार्था(र्थ)परिच्छेदकधर्मेषु किमेतदिति सन्देहोऽयं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति संशयः । अर्थित्वात्प्राणी साध्यं कार्यं प्रति प्रवर्त्तते प्रतीत्यऽध्याहार्यम् । न हि निष्फलः कार्यारम्भः इति ।।२५।।

यस्मिन्नुपन्यस्ते वचने वादगोचरो न भवति उभयसम्मतत्वात् । उक्तं च - **"तावदेव चलत्यर्थो मन्तुर्विषयमागतः । तावन्नोत्तम्भतेनैव दृष्टान्तो नावलम्ब्यते।"** एष दृष्टान्तः । सिद्धान्तः पुनश्चतुर्धा-सर्वतन्त्रप्रतितन्त्र-अधिकरण-अभ्युपगमभेदात् । विशेषार्थो विस्तरग्रन्थादवसेयो नाममात्रकथनम् ।।२६।।

प्रतिज्ञा पक्षः, वह्निमानयं सानुमान् । हेतुर्लिङ्गवचनं, धूमवत्त्वात् । दृष्टान्त उदाहरणम्, यथा महानसमिति । उपनयो हेतोरुपसंहारकं वचनम्, धूमवांश्चायम् । निगमनं हेतूपदेशेन पुनः साधर्म्योपसंहरणम्, तस्माद् वह्निमान् पर्वत इत्यादि पञ्चावयवस्वरूपनिरूपणमवयवतत्त्वम्(ज्ञेयमिति) । दूराद् दृग्गोचरे स्पष्टप्रति-भासाभावात् 'किमयं स्थाणुर्वा पुरुषो वा' इति संशयः, तदुपरमे काकादिपतना-वलोकनेन आदिशब्दात् स्थाणुधर्मो ग्राह्यः, अत्र कीलकेन भाव्यम्, पुरुषस्य शिरःकम्पनहस्तचालनादिभावात् । स्थाणुरेवायं पुरुष एवायमिति यः प्रतीतिविषयः [स निर्णयः] ।।२७-२८।।

कथा प्रामाणिकी तस्या अभ्यासकारणं यः स वादः पक्षः प्रतिज्ञा प्रतिपक्षः प्रतिज्ञोपन्यासप्रतिपंथी तयोः संग्रहात्, निग्राहकजयपराजयानपेक्षगुरुविनेययोः ।।२९।।

विजयाभिलाषिणा वादिनः प्रतिवादिनश्च प्रारब्धप्रमाणोपन्यासगोष्ठी छलं त्रिधा-वाक्छलम्, सामान्यछलम्, उपचारछलम् । जातयः २४ भेदाः । आदे(दिशब्दात्) निग्रहस्थानानि। एतैः कृत्वा परपक्षनिराकरणं दूषणोत्पादेन स्वमतस्थापनेन स जल्पः । सा वितण्डा, या वादिप्रयुक्तपक्षप्रतिरोधकप्रतिवादिन्यस्तप्रतिपक्षरहिता ।।३०।।

हेतुरूपवदाभासन्ते हेत्वाभासाः पञ्च । पक्षे(क्ष) धर्मत्वं नास्ति सोऽसिद्धः । विपक्षे सन् प्रतिपक्षे [सपक्षे] चासन् विरुद्धः । पक्षत्रयवृत्तिरनैकान्तिकः ।

प्रत्यक्षागमविरोधः कालात्ययापदिष्टः । विशेषाग्रहणं हेतुत्वेन प्रयुज्यमानं प्रकरणसमः । परोपन्यस्तवादे स्वाभिमतकल्पनया वचनविघातः छलम् । नवोदकः प्रत्यग्रोदकः नवसंख्यामारोप्य दूषयति । मञ्चाः क्रोशन्तीति छलम् । अदूषणान्यपि दूषणवदाभासन्ते आभासमात्रत्वादेव पक्षं न दूषयन्ति जातयः [जाति] साधर्म्यादि । 'अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटवत्' वादिनेत्युक्ते प्रतिवाद्याह-नित्यः शब्दो निरवयवत्वादाकाशवत् । न चात्र हेतुः घटवदनित्यत्वे आकाशवन्नित्यत्वे नित्यत्वेऽप्याकाशवत् वास्ति ।।३१।।

येन केनचिद् द्रव्येण विपक्षो निगृह्यते तन्निग्रहस्थानम् । प्रतिज्ञाशब्दः संबध्यते - प्रतिज्ञाहानिः प्रतिज्ञासंन्यासः प्रतिज्ञाविरोध इत्यादि । हेतौ अनैकान्तिके कृते प्रतिदृष्टान्तधर्मं स्वदृष्टान्तधर्मेऽभ्युपगच्छतः प्रतिज्ञाहानिनिग्रहस्थानम्, यथा अनित्यः शब्द ऐन्द्रियकत्वात् घटवदिति प्रतिज्ञा साधनाभासवादी वदन् परेण 'सामान्यमैन्द्रियकमपि नित्यं दृष्टम्' इति हेतावनेकान्ते कृते यद्येवं ब्रूयात् 'सामान्यवद् घटोऽपि नित्यो भवति' इति ब्रुवाणः शब्दानित्यत्वप्रतिज्ञां त्यजेत् 'पक्षसाधन-दूषणोद्धाराशक्त्या प्रतिज्ञामेव निह्नुवानस्य प्रतिज्ञासंन्यासो निग्रहस्थानम् । यथानित्यः शब्द ऐन्द्रियकत्वेन तथैव सामान्येनानैकान्तिकताया-मुद्भावितायां यदि ब्रूयात् क एवमाह अनित्यः शब्द इति प्रतिज्ञासंन्यासः । प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः प्रतिज्ञाविरोधः निग्रहस्थानम् । यथा गुणव्यतिरिक्तं द्रव्यं रूपादिभ्योऽर्थान्तरस्यानुपलब्धेरिति प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधः । यदि गुणद्रव्यातिरिक्तं तदायं प्रतिज्ञा विरुद्धाभिधानात् पराजीयते ।।३२।।

पूर्वार्धं सुगमम् । सांख्याः क[का]पिलाः, अपि [आदि] पुरुषनिमित्तेयं संज्ञा । तदभीष्ट [भीष्टाश्च] पञ्चविंशतितत्त्वादिभावानां संक्षेपः कथ्यते ।।३३।।

ईश्वरं देवताये [तया] न मन्यन्ते केवलाध्यात्मवादिनः । केचित्पुनः ईश्वरदेवताः । तेषामुभयेषामपि तत्त्वानां पञ्चविंशतिर्भवति । तत्त्वं ह्यपवर्गसाधकम् । यदुक्तम् - **पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतिः । जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः ।।३४।।**

तावदिति प्रक्रमे । गुणत्रयम्, क्रमेण परिपाट्या विशेषयति । सत्त्वं प्रसाद [दः] कार्यलिङ्गम्, वदननयनादिप्रसन्नता जनिरजसि [त] तदा

आनन्दपर्यायः । तमोगुणे वा [च] दैन्यं वयो वियता [चो विच्छायता] नेत्रसंकोचादि । एतेनैव [न च] आधिभौतिक-आध्यात्मिक-आधिदैविकं [दैव] लक्षणं दुःखत्रयमाक्षिप्यते ।।३५।।

एतेषां सत्त्वरजस्तमसां [मोगुणानां] प्रीत्यप्रीतिरूपविषयरूपाणां [विषाद-रूपाणां] समतयावस्थितिः सा किल प्रकृतिरुच्यते । प्रधानाव्यक्तशब्दाभ्यां वाच्या [शब्दवाच्याः] प्रकृतिः प्रधानमव्यक्तं चेति नामान्तरम् । शाश्वतभावतया प्रसिद्धा नित्या, नानापुरुषाश्रया या च प्रकृतिः ।।३६।।

ततो गुणत्रयाभिघातान्महानिति बुद्धिरुत्पद्यते । एवमेतन्नान्यथा, गौरेवायं नाश्वः, स्थाणुरेवायं न पुरुष इति निश्चयेन पदार्थप्रतिपत्तिः । तस्याः ८ रूपाणि-धर्मज्ञान-वैराग्यैश्वर्यरूपाणि सत्त्वभूतानि अधर्मादीनि च असात्त्विकानि । ततो बुद्धेरहंकारोऽभिमानात्मकः तस्मादहंकारात् षोडशकगणमाह ।।३७।।

बुद्धिप्रधानानि बुद्धिसहचराण्येवेति कृत्वा बुद्धीन्द्रियाणि । स्पर्शनं त्वगिन्द्रियम्। कर्म-क्रियासाधनानि इन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि । पायुरपानम् । उपस्थः प्रजननम् । वचः पाणिपादाः प्रसिद्धाः । मन एकादशम्। पञ्चतन्मात्राणि शब्दरूपरसगन्धस्पर्शाख्यानि । एवं षोडशको गु(ग)णः ।।३८-३९।।

पञ्चभ्यस्तन्मात्रेभ्यो भूतपञ्चकम् । शब्दतन्मात्रादाकाशम्, शब्दो ह्यम्बरगुणः । स्पर्शतन्मात्राद्वायुः । रसतन्मात्रादापः । रूपतन्मात्रात्तेजः । गन्धतन्मात्राद्भूमिः । शब्दतन्मात्रासहितात् स्पर्शतन्मात्राद्वायुः शब्दस्पर्शगुणः । शब्दस्पर्शसहित-रूपतन्मात्रात्तेजः । शब्दस्पर्शरूपगुणम् । शब्दस्पर्शरूपगुणसहित [रस] तन्मात्रादापः शब्दस्पर्शरूप [रस] गुणाः । शब्दस्पर्शरूपरससहितगन्धतन्मात्रात् पृथिवी शब्दस्पर्शरस [रूपगन्ध] गुणा जायते ।।४०।।

प्रकृतेर्महानहंकारः पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि [पञ्चकर्मेन्द्रियाणि] मनश्च पञ्चतन्मात्राणि पञ्चभूतानि, २४ तत्त्वानि रूपं यस्य तत्प्रधानं प्रकृतिः कथिता । पञ्चविंशं तत्त्वम् । पुरुषः अन्यः अकर्त्ता । प्रकृतिरेव करोति बध्यते मुच्यते च । पुरुषस्तु **"अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः । अकर्ता निर्गुणः सोऽपि [सूक्ष्म] आत्मा कापिलदर्शने ।।"** अन्यः प्रकृतिरेव कर्ता तु पुनर्न

पुरुषः । विगुणः सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयविकलः । भोक्ता भोगी । नित्यं चासौ चिच्चैतन्यशक्तिः तथाभ्युपेतः सहितः । आत्मा हि स्वबुद्धेरव्यतिरिक्तं मन्यते । सुखदुःखादयो विषया इन्द्रियद्वारेण बुद्धौ संक्रामन्ति । बुद्धिश्चोभय-मुखदर्पणाकारा। ततस्तस्यां चैतन्यशक्तिः प्रतिबिम्बते । ततः सुख्यहं दुःख्यहमित्युपचर्यते ।।४१।।

तत्त्वोपसंहारमाह - पूर्वार्धं सुगमम् । अत्र सांख्यमते प्रकृतिपुरुषयोर्वर्तनं पङ्ग्वन्धयोरिव । यथा पङ्ग्वन्धौ संयुतावेव कार्यक्षमौ न पृथक्, तथा प्रकृतिनरौ । प्रकृत्युपात्तं पुरुषो भुङ्क्ते इत्यर्थः ।।४२।।

प्रकृत्या सह विरहे पुरुषस्य मोक्षः । एतस्याः प्रकृतेर्विषयमान्तरं ज्ञानं बन्धविच्छेदात् भवति । बन्धस्त्रिविधः प्राकृतिकवैकारिकदाक्षणिकभेदात् । प्रकृतावात्मज्ञानात् प्राकृतिकः । भूतेन्द्रियाहंकारबुद्धिविकारान् पुरुषबुद्ध्योपासते वैकारिकः । इष्टापूर्ते दाक्षिणः । पुरुषतत्त्वानभिज्ञो हीष्टापूर्तकारी त्रिविध-बन्धच्छेदात् परमब्रह्मज्ञानानुभवः । प्रमाणत्रयम्, प्रत्यक्षमिन्द्रियोपलभ्यम्, लैङ्गिकमनुमानम्, शाब्दं चागमस्वरूपम् ।।४३।।

चः समुच्चये । न केवलं बौद्धनैयायिकयोः सांख्यमतस्यापि संक्षेपः कथितः । सुष्ठु शोभनो विचारोऽर्थोऽस्यास्तीति साभिप्रायम् ।

अपराणि दर्शनानि - **"पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।।"** इत्याद्यविचारपदवीमाद्रियन्ते। जैनस्त्वाह - **"अस्ति वक्तव्यता काचित्तेनेदं न विचार्यते । निर्दोषं काञ्चनं चेत्स्यात् परीक्षाया बिभेति किम्"** जैनो युक्तिमवगाहते - **"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ।।४४।।**

देवतत्त्वमाह - जयन्ति रागादीन् जिनाः केवलिनः तेषामिन्द्रः स्वामी । रागः सांसारिकः स्नेहः । द्वेषो वैरानुबन्धः, तद्रहितः । धवखदिरपलाशादिविशेषावबोधो ज्ञानम्, वनमिति सामान्यावबोधो दर्शनम् । केवलशब्दोभ(शब्द उभ)यत्र संबध्यते। केवलम् इन्द्रियज्ञानानपेक्षम् । छद्मस्थ हि प्रथमं दर्शनं ततो ज्ञानम्, केवलिनस्त्वादौ ज्ञानं ततो दर्शनम् ।।४५।।

मोहनीयकर्मोदयाद् हिंसात्मकशास्त्रेभ्योऽपि मुक्तिकाङ्क्षादिमोहः, स एव मल्लः, स हि येन हतः। रागद्वेषमोहसद्भावादेवान्यतीर्थाधिष्ठातारो मुक्तितया प्रसिद्धाः । सुरासुरसेव्यमानत्वमानुषङ्गिकफलम् । सद्रूपान् द्रव्यपर्यायरूपान् नित्यानित्य-सामान्यविशेषाद्यनन्तधर्मात्मकान् पदार्थानुपदिशति यः सर्वाणि धनधान्यादीनि कर्माणि जीवयोग्यावद्यपुद्गलाः तेषां क्षयं विधाय मोक्षं संप्राप्तः । अपरे सौगतादयः मोक्षं प्राप्ता अपि स्वतीर्थतिरस्कारदर्शने पुनर्भवमवतरन्तः श्रूयन्ते, न तेषां कर्मक्षयः । कर्मक्षये हि भवावतारः कुतः ? ।।४६।।

तत्त्वान्याह । तन्मते जैनमते तत्त्वानि ज्ञेयानि निगदसिद्धनामानि ।।४७।।

जीवादिस्वरूपमाह । जैनमते चैतन्यलक्षणो जीव इति संबन्धः । ज्ञानदर्शन-चारित्रधर्माणां गुणाभिन्नो भिन्नश्च । स्वापेक्षया ज्ञानवत्त्वमभिन्नं ज्ञानादिभ्यः, परापेक्षया ज्ञानवत्त्वं भिन्नम्, लेशतोऽपि यदि सर्वजीवेषु न ज्ञानं तदा जीवोऽअजीवत्वं प्राप्नुयात् । विवृत्तिः परिणामः सुरनरनारकतिर्यक्षु एकेन्द्रियादि-जातिषु विविधोत्पत्तिरूपान् परिणामाननुभवति जीवः । शुभं सातवेद्यम् अशुभमसातवेद्यम्, एवंविधं कर्म करोतीति कर्तृभूतः । स्वोपार्जितपुण्यपाप-फलभोक्ता, न चान्यकृतस्यान्यो भोक्ता ।।४८।।

चेतनास्वभावत्वं लक्षणं यस्य सूक्ष्मबादरएकेन्द्रियास्तथा विकलेन्द्रियाः संज्ञ्यसंज्ञिनः पञ्चेन्द्रियाः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्दशजीवभेदाः । अस्माद्यो विपरीतोऽचेतनादिलक्षणः स अजीवः धर्माधर्माकाशपुद्गलाः स्कन्धदेशप्रदेशगुणाः, अद्धा केवलपरमाणवश्चेति चतुर्दश जीवभेदाः । सत् शोभनं सातवेद्यं कर्म तस्य पुद्गलाः दलपाटकानि ते च ।।४९।।

तु पुनः पुण्यप्रकृतिविसदृशं पापम्, ८२ भेदाः । मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमादकषाययोगा हेतवः । यस्तैर्मिथ्यात्वादिभिर्बन्धस्य हेतुः कर्मबन्धः स आस्रवः, ४२ भेदाः । पञ्चेन्द्रियाणि, चत्वारः कषायाः, पञ्च अव्रतानि, मनोवचनकायाः, पञ्चविंशतिक्रियाः कायिक्यादय इति ।।५०।।

आस्रवद्वारप्रतिरोधः संवरः, ५७ भेदाः । तु पुनरर्थः । यो जीवस्य कर्मणा बद्धस्य परस्परं क्षीरनीरन्यायेन लोलीभावात् संबन्धो योगः स बन्धो नाम, प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदाच्चतुर्धा । प्रकृतिः परिणामः स्यात् ।।५१।।

यः पुनर्बद्धस्य स्पृष्टबद्धनिधत्तनिकाचितादिरूपस्य कर्मणस्तपश्चरण-ध्यानादिभिः शाटः क्षपणं सा निर्जरा सकामाकामभेदेन द्विधा । तु पुनः । देहेन्द्रियधर्मादिविरहे आत्यन्तिको वियोगो मोक्षे नवविधः । ननु सर्वथा प्राणाभावादजीवत्वप्रसङ्गः, तथा मोक्षाभावः, न, द्रव्यप्राणानामेवाभावः, भाव-प्राणास्तु क्षायिकसम्यक्त्ववीर्यज्ञानादयो निष्कर्मावस्थायामपि सन्त्येव ।।५२।।

स्थिराशयो दृढचित्तः सन् श्रद्धत्ते अवैपरीत्येन मनुते, जानन्नपि अश्रद्दधानो मिथ्यादृगेव । सम्यक्त्वं च ज्ञानं च तयोर्योगः, ज्ञानदर्शनविनाकृतस्य हि चारित्रस्य निष्फलत्वात्, सम्यक्चारित्रव्यवच्छेदार्थं सम्यग्ज्ञानग्रहणम् ।।५३।।

तथेत्युपदर्शने । परिपक्वभव्यत्वेन तद्भवावश्यंमोक्षगन्तव्येन पुंसः स्त्रियो वा ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयं पुमान् मोक्षभाजनं मुक्तिश्रियं भुङ्क्ते । सम्यगिति ज्ञानामागमावबोधः, क्रिया चरणकरणात्मिका, तासां योगः संबन्धः, न केवलं ज्ञानं दर्शनं चारित्रं वा मोक्षहेतुः किन्तु समुदितं त्रयम् ।।५४।।

तथेति प्रस्तुतमतानुसंधाने । अश्नुते अक्ष्णोति वा व्याप्नोति सकलक्षेत्रकालभावान् इत्यक्षो जीवः । अश्नुते विषयमित्यक्षमिन्द्रियं च । अक्षमक्षं प्रतिगतं प्रत्यक्षम् इन्द्रिया [ण्याश्रित्य] श्रितव्यवहारसाधकम् । अवधिमनः-पर्ययकेवलानि तद्भेदाः अत एव सांव्यवहारिकपारमार्थिकेन्द्रियानिन्द्रियादयो भेदाः अनुमानाधिकविशेषप्रकाशक [श] त्वादत्रैवान्तर्भवन्ति । अक्षाणां परं परोक्षं स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदमिति । मतिश्रुतज्ञानेऽपि परोक्षे । तु पुनः । इह जिनमते प्रमाणयोः प्रत्यक्षपरोक्षयोः विषयो गोचरः वस्तुतत्त्वं पदार्थरूपम्, अनन्ताः त्रिकालविषयत्वादपरमितयो [ता ये] धर्मा सहभाविनः क्रमभाविनश्च पर्याया आत्मा स्वरूपं यस्य अनन्तधर्मकत्वं साध्यो धर्मः, सत्त्वा-न्यथानुपपत्तेरिति साधनम्, हेतो [रन्त] र्व्याप्त्यैव साध्यसिद्धत्वाद् दृष्टान्तादिभिः किं प्रयोजनम् ? यदनन्तधर्मात्मकं न भवति तत्सदपि न स्यात् यथा आकाशपुष्पम् । आत्मादीनां साकारानाकारोपयोगकर्तृत्वभोक्तृत्वादयो जगत्प्रसिद्धा धर्माः ।।५५।।

अक्षगोचरातीतः परोक्षः तदभावोऽपरोक्षः तया साक्षात्कारितया अर्थस्य वस्तुनो ग्राहकम् ईदृगेव ज्ञानं प्रत्यक्षम्, अन्यथोक्तप्रत्यक्षनिषेधः । इतर [द] साक्षात्कारितया स्वसंवेदनबहिःपर्यालोचनया परोक्षम् ।।५६।।

येन कारणेन यत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं तत् सत् सत्त्वरूपमुच्यते तेन कारणेन अनन्तधर्मकं वस्तु प्रमाणगोचरः । सर्ववस्तुषु उत्पत्तिविपत्ति-सत्तासद्भावात् उत्पत्त्यादित्रययुक्तस्यैवानन्तधर्मता तेनैव पुनरनन्तधर्मात्मकत्वमुक्तं न पौनरुक्त्यम् ।।५७।।

जिनदर्शनस्य संक्षेपः प्रोक्तः विस्तरस्य अगाधत्वेन वक्तुमगोचरत्वात् । अनयो निदूषणः सर्वज्ञमूलत्वात्। [तु पुनः] समुच्चये, आदौ प्रान्ते च परस्पर-विरुद्धार्थता यत्र न; आस्तां केवलिप्रणीते छद्मस्थप्रणीतेऽप्यङ्गादिके न दोषलवः परेषां शास्त्राणि परस्परविरोधाघ्रात [तत्वे] न व्याघ्रा [घ्र] इव दुःशक्या कर्णे धर्तुम् ।।५८।।

वैशेषिकाणां काणादानां नैयायिकैः समं शिवदेवविषयो भेदो नास्ति तत्त्वेषु शासनरहस्येषु तु भेदो निर्दिश्यते ।।५९।।

तन्मते वैशेषिकमते तु निश्चितं च तत्त्वषट्कम्, नामानि सुगमार्थानि ।।६०।।

नवविधं द्रव्यं पञ्चविंशतिगुणाश्च निगदसिद्धान्येव संस्कारस्य वेगभावना-स्थित [ति] स्थापकभेदात् त्रिविधोऽपि [त्रैविध्येऽपि] संस्कारत्वजात्यपेक्षया एकत्वम् । शौर्यौदार्यादीनां गुणानामेष्वेवान्तर्भावात् नाधिक्यम् ।।६१-६३।। पञ्चापि कर्मभेदाः स्पष्टा एव । गमनग्रहणाद् भ्रमणरेचनस्यन्दनाद्यविरोधः । तु पुनः सामान्ये द्वे परसामान्यमपरसामान्यं चेत्यर्थः ।।६४।।

एतद्व्यक्ति [क्तं] विशेषव्यक्ति चाह - तत्र परं सत्ता भावो महासामान्यम्, [अपरसामान्यं] च द्रव्यत्वादि, एतच्च सामान्यविशेष इत्यपि व्यपदिश्यते । तथाहि द्रव्यत्वं नवसु द्रव्येषु वर्तमानत्वात् सामान्यं गुणकर्मव्यावृत्तत्वाद् विशेषः। एवं द्रव्यत्वापेक्षया पृथिवीत्वादिकमपरं तदपेक्षया घटत्वादिकम् । चतुर्विंशतौ गुणेषु वृत्तेर्गुणत्वं सामान्यं द्रव्यकर्मभ्यो निवृत्तेश्च विशेषः । गुणत्वापेक्षया नील [रूप] त्वादिकम् । एवं कर्मादीन्यपि । नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तिहेतवः । ते द्रव्यादिवैलक्षण्यात् पदार्थान्तराः [रम्] अन्त्ये-[न्ते] षु भवा अन्त्याः, **स्वाश्रयविशेषकत्वाद् विशेषाः** । गवादिषु अश्वादिभ्यः तुल्याकृतिक्रियावयवोपचयसंयोगविलक्षणोऽयं प्रत्ययव्यावृत्ते [ति] विशेषः।।६५।।

इह प्रस्तुतमते अयुतसिद्धानां परस्परपरिहारेण पृथगाश्रया [ना] श्रितानाम् आधार्याधारभूतानामिह प्रत्ययहेतुः संबन्धो यः स समवायः । इह तन्तुषु पट इत्यादौ समवायः । स्वकारणसामर्थ्यादुपजायमानं पटाद्याधार्यं तन्वाद्याधारे संबध्यते यथा छिदिक्रिया छेद्येनेति । षण्णामपि पदार्थानां स्वरूपकथन-मात्राधिकृतत्वात् ग्रन्थस्य नेह प्रतन्यते विस्तरः ।।६६।।

यद्यप्यौलूक्यशासने व्योमशिवाचार्योक्तानि त्रीणि प्रमाणानि तथापि श्रीधरमतापेक्षयाऽत्रोभे एव निगदिते । चः पुनरर्थे । अमीषां वैशेषिकाणां प्रमाणं द्विधा - प्रत्यक्षमेकम् लैङ्गिकमनुमानं द्वितीयम् । एवमिति प्रकारवचनम् । यद्यपि प्रमातृफलाद्यपेक्षया बहु वक्तव्यं तथाप्येवममुना पूर्वोक्तप्रकारेण वैशेषिकमतस्य संक्षेपः परिकीर्तितः कथितः ।।६७।।

षष्ठं दर्शनमाह । जैमिनिमुनेरमी जैमिनीयाः, पुत्रपौत्राद्यर्थे तद्धित ईयप्रत्ययः । जैमिनिशिष्याश्चैके पूर्वमीमांसावादिनः, एके उत्तरमीमांसावादिनो ते हि पुरुषाद्वैतवादसाधनव्यसनिनः शब्दार्थखण्डकाः । पूर्वमीमांसावादिनो द्विधा प्राभाकर- [राः] भट्टाश्च क्रमेण पञ्चषट्प्रमाणप्ररूपकाः । अत्र तु सामान्येनैव सूत्रकृत् पूर्वमीमांसावादिन एव जैमिनीयानुद्दिष्टवान् । तन्मते प्राहुः - सर्वज्ञ-त्वादिविशेषणोपपन्नः कोऽपि नास्ति मानुषत्वावि(द्वि)शेषेण विप्रलम्भकत्वात् द्रव्यपुरुषाद्यभावः [सर्वज्ञत्वादिविशिष्टपुरुषाद्यभावः] यदुक्तं प्रमाणं भवेद् वाक्यम् । अथ कथं यथावस्थिततत्त्वनिर्णयः ।।६८।।

तस्मात् प्रामाणिकपुरुषाभावात् अतीन्द्रियार्थानां चक्षुराद्यगोचरपदार्थानां साक्षाद् दर्शकस्य सर्वज्ञादेः पुरुषस्याभावात् नित्येभ्यः शाश्वतेभ्यो वेदवाक्येभ्योऽ-पौरुषेयवचनेभ्यो यथावस्थितपदार्थधर्मादिस्वरूपविवेचनं भवतीत्यध्याहारः ।।६९।।

अथ यथावस्थितत्वार्थस्थापकं तत्त्वोपदेशमाह - अत एव [यतो] हेतोः वेदाभिहिततत्त्वानुष्ठानादेव तत्त्वनिर्णयः । अत एव पुरा पूर्वं प्रयत्नाद् वेदपाठः कार्यः, ऋग्यजु सामाथर्वणवेदानां पाठः कण्ठपीठालोचनं [पीठीलुण्ठन्तम्] न तु श्रवणमात्रेण, ततोऽनन्तरं धर्मसाधनापुण्योपचयहेतुः । धर्मस्य हेयोपादेय-स्वरूपस्य वेदाभिहितस्य ज्ञातुमिच्छा कर्त्तव्या वेदोक्ताभिधेयविधाने यतितव्यमित्यर्थः ।।७०।।

नोदनैव लक्षणं यस्य स नोदनालक्षणः । तु पुनः नोदना क्रियां प्रति प्रवर्तकं वचः, वेदोक्तं भवति, नोदना पुनः क्रियां हवनसर्वभूताहिंसनदानादिप्रतिक्रियां प्रतिप्रवर्तकं प्रेरकं वचो वेदवचनं प्राहुः मीमांसका भाषन्ते । हवनादिक्रियाविषये यदेव प्रेरकं वेदस्य वचनं सैव नोदनेति भावः । प्रवर्तकं तद्वचनमेव निदर्शनेन दर्शयति-स्वःकामोऽग्निं यजेदिति । अथेति उपदर्शनार्थः । स्वः स्वर्गे कामना यस्य स स्वःकामः पुमान् स्वःकामः सन् अग्निं वह्निं यजेत् तर्पयेत् । अत्रेदं श्लोक-बन्धानुलोम्येनेत्थमुपन्यस्तम्, अन्यथा त्वेवं भवति-अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इति । प्रवर्तकवचनस्योपलक्षणत्वात् निवर्तकमपि वेदवचनं नोदना ज्ञेया, यथा न हिंस्यात् सर्वभूतानि । (अथ प्रमाणस्य विशेषलक्षणं विवक्षुः प्रथमं तन्नामानि तत्संख्यां चाह, प्रत्यक्षानुमानशब्दोपमानार्थापत्त्यभावलक्षणानि षट् प्रमाणानि जैमिनिमुनेः संमतानीत्यध्याहारः । चकारः समुच्चयार्थः । तत्राद्यानि पञ्चैव प्रमाणानीति प्राभाकरोऽभावस्य प्रत्यक्षेणैव ग्राह्यतान्नन्यमानोऽभिमन्यते षडपि तानि ते भट्टो भाषते । (तत्र प्रमाणषट्कम् अक्षाणामिन्द्रियाणां वेदोक्तस्वर्ग-साधकाम्नायस्य क्रियाप्रवर्त्तकं वचनं नोदना तामाहुः दृष्टान्ते न स्पष्टयति) ।।७१।।

प्रमाणान्याह । जैमिनेः षट्प्रमाणानि ज्ञेयानि, यद्यपि प्रभाकाराणां मते पञ्च; भाट्टानां षट्ः, तथापि ग्रन्थकृत् सामान्यतः षट्संख्यामाचष्टे । प्रमाणानामानि निगदप्रसिद्धान्येव ।।७२।।

तत्र प्रमाणषट्के अक्षाणामिन्द्रियाणां प्रयोगे पदार्थैः सह संयोगे या बुद्धिरिदमिदमित्यवबोधः तत्प्रत्यक्षम् । सत्तामदुष्टेन्द्रियाणामिति । एतावता मरुमरीचिकायां जलभ्रमः शुक्तौ रजतभ्रमश्च इन्द्रियार्थसंप्रयोगेऽपि द्रष्टुर-विकलेन्द्रियत्वाभावान्न प्रत्यक्षं प्रमाणम् । आत्मा यदनुमीयते [यदनुमिमीते] स्वयं तदनुमानमित्यर्थः । लिङ्गाज्ज्ञातं लैङ्गिकम् । व्युत्पत्तिभेदाद्भेदः । उभयशब्दकथनं बालावबोधार्थम् ।।७३।।

शब्दमागमप्रमाणं शाश्वताद्वेदाज्ज्ञातम्, वेदानां च शाश्वतत्वम्, अपौरुषेयत्वादेव । यत्प्रसिद्धार्थस्य प्रतीतपदार्थस्य साधर्म्यात् [साम्यात्] अप्रसिद्धस्य वस्तुनः साधनं तदुपमानं यथा प्रसिद्धगोगवयस्वरूपो वनेचरः

अप्रसिद्धगवयस्वरूपं नागरकं प्राह यथा गौर्गवयस्तथा । अत्र सूत्रानुक्तावपि यत्तदावर्थसंबन्धादध्याहार्यौ ।।७४।।

यद्बलेन कस्याप्यदृष्टस्य कल्पना संघटना विधीयते । दृष्टः परिचितः प्रत्यक्षलक्ष्योऽर्थः देवदत्ते पीनत्वादिः तस्यानुपपत्त्याघटमानतया अन्यथानुपपन्नेत्यर्थः, यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते रात्राववश्यं भुङ्क्त इत्यर्थापत्तिः प्रमाणम् ।।७५।।

यत्र वस्तुरूपेऽभावादौ पदार्थे पूर्वोक्तप्रमाणपञ्चकं न वर्तते तत्राभावप्रमाणता ज्ञेया । किमर्थम् । वस्त्वसत्ताव [स्तुसत्यव] बोधार्थम्, वस्तुनोऽभावस्वरूपस्य मुण्डभूतलादेः सत्ता घटाद्यभावसद्भावः तस्यावबोधः प्रामाणिकतयात [प] थावतरणं(तावतरणं) तदर्थं तद्धेतोः । ननु अभावस्य कथं प्रामाण्यम् ? प्रत्यक्षं तावद् भूतलमेवेदं घटादि न भवतीति अन्वयद्वारेण [अन्वयव्यतिरेकेण द्वारेण] वस्तुपरिच्छेदः, तदधिकमभावैकरूपं निराचष्टे । नैवं घटाभावप्रतिबद्धभूतलग्रहणासिद्धेः नास्तिताग्रहणावसरे प्रामाण्यमेव भावस्य मानसोत्पन्नम् ।।७६।।

उपसंहरन्नाह - अपिशब्दात् केवलमपरदर्शनानां जैमिनीयमतस्यापि कथितः । वक्तव्यस्य बाहुल्या- [बहुत्वा] ट्टीकामात्रे सामस्त्यकथनायोगात् । एवमास्तिकवादिनाम् इहपरलोकगतिपुण्यपापास्तिक्यवादिनां बौद्धनैयायिकसांख्यजैनवैशेषिकजैमिनीयानां संक्षेपकीर्त्तनं कृतम् ।।७७।।

विशेषान्तरमाह । अन्ये आचार्याः नैयायिकमताद् वैशेषिकैः सह भेदं न मन्यन्ते । दर्शनाधिष्ठात्रैकदैवतत्वात् । पृथग्दर्शनं नाभ्युपगच्छन्ति तेषां मतापेक्षया आस्तिकवादिनः पञ्चैव । दर्शनानां षट्संख्या।।७८।।

दर्शनानां षट्संख्या कथं फलवतीत्याह तन्मते नैयायिकवैशेषिकाभेदमन्यमानकाचार्यमते षट्दर्शनसंख्या लोकायितमतक्षेपात् पूर्यते । तुः पुनरर्थे । किलेत्याम्नाये । तेन कारणेन तन्मतं चार्वाकमतं कथ्यते ।।७९।।

लोकायिता नास्तिका एवममुना प्रकारेण वदन्ति - देवः सर्वज्ञादिः निर्वृतिर्मोक्षः, धर्मश्च अधर्मश्च द्वन्द्वः, पुण्यपापयोः फलं स्वर्गनरकादिकं च नास्ति, धर्माधर्माभावे कौतस्कुतं तत्फलम् ।।८०।।

तन्मते लौकायि[य]तमते अयं लोकः संसारः एतावन्मात्र एव यावन्मात्र इन्द्रियगोचरः । इन्द्रियं पञ्चविधम्, तस्य गोचरो विषयः, पंचेन्द्रियव्यक्तीकृतमेव वस्त्वस्ति नापरम् । लोकग्रहणात् लोकस्थपदार्थग्रहः । अपरे पुण्यपापसाध्यं स्वर्गनरकाद्याहुः । तदप्रमाणं प्रत्यक्षाभावादेव । अप्रत्यक्षमपि चेन्मतम्; तदा शशश्रृङ्गवन्ध्यास्तनन्धयादीनामपि भावोऽस्तु । दृष्टान्तमाह - यथा कश्चित्पुरुषो वृकपददर्शनकुतूहलां दयितां समीरणसमीकृतपांशुप्रकरे कराङ्गुल्या वृकपदाकारं विधाय मुग्धामवादीत् - भद्रे वृकपदं पश्य । तथा परवञ्चनप्रवणा मायाधार्मिका स्वर्गादिप्राप्तये तपश्चरणाद्युपदेशेन मुग्धजनं प्रतारयन्ति ।।८१।।

परमार्थवेदिन इदं वाक्यम्-यदतीतं यौवनादि तन्न ते किन्तु जराजीर्णत्वादि भावि । हे भीरु, गतम् इह भवातिक्रान्तं सुखयौवनादि परलोके न ढौकते भूतानां समुदयो मेलः तन्मात्रम्, केवलं [कलेवरं] भूतचतुष्टयाधिकस्याभावान्न च पूर्वभवादिसंबन्धः शुभाशुभकर्मजन्यः ।।८२।।

पृथ्वीजलमिति, पृथ्वी भूमिः, जलमापः, तेजो वह्निः, वायुः पवनः एतानि चत्वारि भूतानि एतेषामाधारोऽधिकरणभूमिः भूतानि संभूय एकं चैतन्यं जनयन्ति । एतन्मते प्रमाणम्, प्रत्यक्षमेव एकं प्रमाणं न पुनरनुमानादिकम् । हि शब्दोऽत्र विशेषार्थो वर्तते । विशेषः पुनश्चार्वाकैः लोकयात्रानिर्वाहणप्रवणं धूमाद्यनुमानमिष्यते । क्वचन, न पुनः स्वर्गादृष्टादिप्रसाधकमलौकिकमनुमानमिति । (चैतन्यमाह । पूर्वार्धं सुगमम् । एतेषां चार्वाकाणां चेतनोत्पत्तिकारणं भूतचतुष्टयम् । चत्वार्यपि संभूय चैतन्यमुत्पादयन्ति । तु पुनः । मतिं प्रमाणम् अक्षमेव) ।।८३।।

ननु भूतचतुष्टयसंयोगेऽपि[गे] कथं चैतन्योत्पत्तिरित्याह-पृथिव्यादि-चतुर्भूतानां संहतौ मेले सति । तथेत्युपदर्शने । देहादिसंभवः । आदिशब्दाद् भूधरादिपदार्था अपि । यथा येन प्रकारेण सुराङ्गेभ्यो गुडधातक्यादिभ्यो मद्य[द]शक्तिः उन्मादकत्वं भवति तथा भूतचतुष्टयसंबन्धाच्छरीरं आत्मनः स्थिता सचेतनता ।।८४।।

तस्मादिति पूर्वोक्तानुस्मरणपूर्वकं दृष्टपरित्यागात् प्रत्यक्षसुखत्यागात् अदृष्टे [तपश्चरणादिकष्टे] प्रवृत्तिः । चः समुच्चये । तल्लोकस्य विमूढत्वं चार्वाकाः प्रतिपेदिरे । प्रतिज्ञातवन्तः ।।८५।।

साध्यस्य मनीषितस्य कस्यचिद्वस्तुनो वृत्तिः प्राप्तिः अनभीष्टस्य निवृत्तिरभावः ताभ्यां जने या प्रीतिरुत्पद्यते सा तेषां चार्वाकाणां निरर्था शून्या। पूर्वभवार्जितपुण्यपापाभावात् सा च प्रीतिराकाशरूपा शून्येत्यर्थः । धर्मस्य कामादन्यस्याभावात् ।।८६।।

एवं लोकायितमतसंक्षेपः कथितः । एतं षड्दर्शनविकल्पे सति अभिधेयतात्पर्यार्थः मुक्त्यङ्गतत्त्वसारार्थः चिन्तनीयः बुद्धिमद्भिः ।।८७।।

।। इति षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णिः समाप्ता ।।

❖ ❖ ❖

(३) प्राचीनोऽज्ञातकर्तृको लघुषड्दर्शनसमुच्चयः ।

जैनं नैयायिकं बौद्धं, काणादं जैमनीयकम् ।
साङ्ख्यं षड्दर्शनीयं, [च] नास्तिकीयं तु सप्तमम् ।।१।।
जैनदर्शने अर्हन् देवता,
जीवाजीवौ तथा पुण्यं, पापमाश्रवसंवरौ ।
बन्धो विनिर्जरा मोक्षो, नव तत्त्वानि तन्मते ।।

प्रत्यक्षं परोक्षं चेति प्रमाणद्वयम्, नित्यानित्याद्यनेकान्तवादः, सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः, सकलकर्मक्षये नित्यज्ञानानन्दमयश्च मोक्षः ।

नैयायिकाः पाशुपता जटाधरविशेषाः । तेषां दर्शने ईश्वरो देवता, प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा-हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानि षोडश तत्त्वानि, प्रत्यक्षमनुमानमुपमान-मागमश्चेति चत्वारि प्रमाणानि, नित्यानित्यैकान्तवादः, आत्मादिप्रमेयतत्त्वं, ज्ञानं मोक्षमार्गः, षडिन्द्रियाणि, षड् विषयाः, षड् बुद्धयः, सुखं, दुःखं, शरीरं चेत्येकविंशतिः(ति) प्रतिभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यन्तोच्छेदश्च मोक्षः ।

बौद्धा रक्तपटा भिक्षुकाः । तेषां दर्शने बुद्धो देवता, दुःखसमुदय-मार्गनिरोधरुपाणि आर्यसत्यसंज्ञानि चत्वारि तत्त्वानि, प्रत्यक्षमनुमानं चेति द्वे प्रमाणे, क्षणिकैकान्तवादः, सर्वक्षणिकत्वसर्वनैरात्म(त्म्य)वासना मोक्षमार्गः [स] वासन(ना) क्लेश(स)मुच्छेदे प्रदीपस्येव ज्ञानसन्तानस्योच्छेदश्च मोक्षः ।

कणादस्य चाचार्यस्येदं काणादं जटाधरविशेषवैशेषिकदर्शनम् । तत्र ईश्वरो देवता, द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्यानि षट् तत्त्वानि, प्रत्यक्षमनुमान-मागमश्चेति प्रमाणत्रयम्, नित्यानित्यैकान्तवादः, आत्मनः श्रवणमनननिद(दि)-ध्यासनसाक्षात्कारो मोक्षमार्गः, बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काररूपाणां नवानां विशेषगुणानामत्यन्तोच्छेदः मोक्षः ।

जैमनीयं भट्टदर्शनम् । तत्र सर्वज्ञो देवता नास्ति किन्तु नित्यवेदवाक्येभ्य एव तत्त्वनिश्चयः, प्रत्यक्षमनुमानमुपमानमागमोऽर्थापत्तिरभावश्चेति षट् प्रमाणानि, नित्याद्य(द्यै)नेकान्तवादः, वेदविहितानुष्ठानं मोक्षमार्गः, नित्यनिरतिशय-सुखाविर्भावश्च मोक्षः ।

साङ्ख्यदर्शनं मरीचिदर्शनम् । तत्र केषाञ्चित् कपिल एव (देवता), पञ्चविंशतिस्तत्त्वानि, तथाहि - आत्मा प्रकृतिर्महानहङ्कारः, गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाख्यानि पञ्च तन्मात्राणि ९, पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाख्यानि पञ्चभूतानि १४, एकादश चेन्द्रियाणि, तत्र घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्रमनांसि षड् बुद्धीन्द्रियाणि २०, पायूपस्थवचःपाणिपादाख्यानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि २५, प्रत्यक्षमनुमानमागमश्चेति प्रमाणत्रयम्, नित्यैकान्तवादः, पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानं मोक्षमार्गः, प्रकृतिपुरुषविवेकदर्शनाद् निवृत्तायां प्रकृतौ पुरुषस्य स्वरूपावस्थानं मोक्षः ।

नास्तिकाः कापील(पालि) काः । तेषां दर्शने नास्ति सर्वज्ञः, न जीवः, न धर्माधर्मौ, न च तत्फलम्, न परलोकः, न मोक्षः, तथा च तन्मतम् -

एतावानेव लोकोऽयं यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद्वदन्ति बहुश्रुताः ।।

पृथिव्यप्तेजोवायवश्चत्वार्येव भूतानि, प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणम्, पृथिव्यादिभूतसङ्घात एव शरीरम्, मद्याङ्गेषु मदशक्तिरिव चैतन्यं तत्र जायते ।

एते च नैयायिकादिप्रवादा अनन्तधर्मात्मके वस्तुनि स्वाभिप्रेतनित्यत्वादि धर्मावधारणात् शेषधर्मतिरस्कारेण प्रवर्तमाना दुर्नया उच्यन्ते, यथा - 'नित्य एव शब्दः' इत्यादि । दुर्नयबलप्रभावितसत्ताका हि खल्वेते प्रवादाः, तथाहि - नैगमनयदर्शनानुसारिणौ नैयायिकवैशेषिकौ, सङ्ग्रहनयानुसारिणः सर्वेऽपि मीमांसि(स)कविशेषा अद्वैतवादाः साङ्ख्यदर्शनं च, व्यवहारनयानुसारिणः प्रायश्चार्वाका नास्तिकाः, ऋजुसूत्रनयानुसारिणो बौद्धाः, शब्दादिनयावलम्बिनो वैयाकरणादयः । त एव च प्रवादा अनन्तधर्मात्मके[षु] वस्तुनि स्वाभिप्रेतनित्यत्वादिधर्मसमर्थनाप्रवणाः शेषधर्मस्वीकारतिरस्कारपरिहारेण प्रवर्तमाना नया उच्यन्ते, यथा 'अनित्यः शब्दः' इत्यादि । परस्परसापेक्षं सर्वनयमयं तु जिनमतम्, यथा 'स्यादनित्यः शब्द' इत्यादि । अत एवोच्यते -

परस्परापेक्षसर्वनयनिर्मितमार्हतम् ।
मतं प्रमाणं स्याद्वादि श्रेयं श्रेयार्थिभिर्बुधैः ।।१।।

श्री लघुषड्दर्शनसमुच्चयः समाप्तः ।।

(४) मलधारिश्रीराजशेखरसूरिविरचितः षड्दर्शनसमुच्चयः ।।

।। ऐँ नमः ।।

नत्वा निजगुरून् भक्त्या, स्मृत्वा वाङ्मयदेवताम् ।
सर्वदर्शनवक्तव्यं, वक्ति श्री राजशेखरः ।।१।।

धर्मः प्रियः सर्वलोके, तं ब्रूयुर्दर्शनानि षट् ।
तेषां लिङ्गे च वेषे च, आचारे दैवते गुरौ ।।२।।

प्रमाणतत्त्वयोर्मुक्तौ, तर्के भेदो निरीक्ष्यते ।
मुक्तिरष्टाङ्गयोगेनेत्येतत् साधारणं वचः ।।३।।

जैनं साङ्ख्यं जैमिनीयं, यौगं वैशेषिकं तथा ।
सौगतं दर्शनान्येवं, नास्तिकं तु न दर्शनम् ।।४।।

[जैनमत]

तत्र जैनमते लिङ्गं, रजोहरणमादिमम् ।
मुखवस्त्रं च वेषश्च, चोलपट्टादिकः स्मृतः ।।५।।

विस्तारस्त्वोघनिर्युक्तेर्ज्ञेयो वेषादिगोचरः ।
आचारः पञ्चसमितिगुप्तित्रितयलक्षणः ।।६।।

ईर्याभाषैणाऽऽदाननिक्षेपोत्सर्गसंज्ञकाः ।
पञ्चाहुः समितीस्तिस्रो, गुप्तीस्त्रियोगनिग्रहात् ।।७।।

तीर्थङ्कराश्चतुर्युक्ता, विंशतिर्वृषभादयः ।
क्लिष्टाष्टकर्मनिर्मुक्ताः, केवलज्ञानभास्कराः ।।८।।

महाव्रतधरो धीरः, सर्वागमरहस्यवित् ।
क्रोधमानादिविजयी, निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते ।।९।।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च, द्वे प्रमाणे इह स्मृते ।
तत्र प्रमेयं स्याद्वादाधिष्ठितं द्रव्यषण्मयम् ।।१०।।

धर्माधर्मौ नभः कालः, पुद्गलश्चेतनस्तथा ।
द्रव्यषट्कमिदं ख्यातं, तद्भेदास्त्वागमे स्मृताः ।।११।।

जीवाजीवौ तथा पुण्यं, पापमाश्रवसंवरौ ।
बन्धो विनिर्जरामोक्षौ, नवतत्त्वी मताऽर्हताम् ।।१२।।

चैतन्यलक्षणो जीवः, स्यादजीवस्ततोऽन्यथा ।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं, पापं दुष्कर्मपुद्गलाः ।।१३।।

कषाया विषया योगा, इत्याद्या आश्रवा मताः ।
आश्रवाद्विरमणं यत्, तत् संवर इति स्मृतः ।।१४।।

शुभाशुभानां ग्रहणं, कर्मणां बन्ध इष्यते ।
पूर्वोपार्जितकर्मौघजरणं निर्जरा स्मृता ।।१५।।

कर्मक्षयेण जीवस्य, स्वस्वरूपस्थितिः शिवम् ।
एषां नवानां श्रद्धाने, चारित्रात् तत्तु लभ्यते ।।१६।।

श्वेताम्बरा वन्द्यमाना, धर्मलाभं प्रचक्षते ।
शुद्धां माधुकरीं वृत्तिं, सेवन्ते भोजनादिषु ।।१७।।

ख्याताः प्रमाणमीमांसा, प्रमाणोक्तिसमुच्चयः ।
नयचक्रवालतर्कः स्याद्वादकलिका तथा ।।१८।।

प्रमेयपद्ममार्तण्डस्तत्त्वार्थः सर्वसाधनः ।
धर्मसंग्रहणीत्यादि, तर्कौघा जिनशासने ।।१९।।

जैने मते उभौ पक्षौ, श्वेताम्बरो दिगम्बरः ।
श्वेताम्बरः पुरा प्रोक्तः, कथ्यतेऽथ दिगम्बरः ।।२०।।

दिगम्बराणां चत्वारो, भेदा नाग्न्यव्रतस्पृशः ।
काष्ठासङ्घो मूलसङ्घः, सङ्घौ माथुरगोप्यकौ ।।२१।।

पिच्छिका चमरीवालैः काष्ठासङ्घे प्रतिष्ठिता ।
मूलसङ्घे मयुराणां, पिच्छैर्भवति पिच्छिका ।।२२।।

पिच्छिका माथुरे सङ्घे, मूलादपि हि नादृता ।
मयूरपिच्छिका गोप्याः, धर्मलाभं भणन्ति ते ।।२३।।

धर्मवृद्धिगिरः शेषाः, गोप्याः स्त्रीमुक्तिभाषिणः ।
गोप्यादन्ये त्रयः सङ्घाः, प्राहुर्नो निर्वृतिं स्त्रियाः ।।२४।।

शेषास्त्रयश्च गोप्याश्च, केवलिभुक्तिं न मन्वते ।
नास्ति चीवरयुक्तस्य, निर्वाणं सद्व्रतेऽपि हि ।।२५।।

द्वात्रिंशदन्तरायाः स्युर्मलाश्चैव चतुर्दश ।
भिक्षाऽटने भवन्त्येषां, वर्जनीयास्तदागमे ।।२६।।

शेषं श्वेताम्बरैस्तुल्यमाचारे दैवते गुरौ ।
श्वेताम्बरप्रणीतानि, तर्कशास्त्राणि मन्वते ।।२७।।

स्याद्वादविद्याविद्योतात्, प्रायः साधर्मिका अमी ।
परमष्टसहस्त्री या, न्यायकैरवचन्द्रमाः ।।२८।।

सिद्धान्तसार इत्याद्यास्तर्काः परमकर्कशाः ।
तेषां जयश्रीदानाय, प्रगल्भन्ते पदे पदे ।।२९।।

जिनकल्पादयो भेदा, व्युच्छिन्नाः साम्प्रतं कलौ ।
वर्त्तमानं ततः प्रोक्तं, सर्वं ज्ञेयं जिनागमात् ।।३०।।

सम्यग् जैनं मतं ज्ञात्वा, योगेऽष्टाङ्गे रमेत यः ।
स कर्मलाघवं कृत्वा, लब्धा सौख्यपरम्पराम् ।।३१।। इति जैनमतम् ।।

[साङ्ख्यमत]

अथ साङ्ख्यमतं ब्रूमस्ते त्रिदण्डैकदण्डकाः ।
कौपीनं वसनं तेषां, धातुरक्ताम्बराश्च ते ।।३२।।

क्षुरमुण्डा एणचर्मासना द्विजगृहाशनाः ।
पञ्चग्रासीपराश्चैव, द्वादशाक्षरजापिनः ।।३३।।

ॐ नमो नारायणाय, तद्भक्ताः प्रवदन्त्यदः ।
प्रणामकाले तेऽप्याहुः, पदं तत्तु नमोऽन्तकम् ।।३४।।

बीटेति भारते ख्याता, दारवी मुखवस्त्रिका ।
दयानिमित्तं भूतानां, मुखनिःश्वासरोधिका ।।३५।।

यदाहुस्ते-घ्राणादनुप्रयातेन, श्वासेनैकेन जन्तवः ।
हन्यन्ते शतशो ब्रह्मन्नणुमात्राक्षरवादिना ।।३६।।

दयार्थं जलजीवानां, गलनं धारयन्ति ते ।
शास्त्रेषूपदिशन्त्येवं, भक्तानां पुरतः सदा ।।३७।।

षट्त्रिंशदङ्गुलायामं, विंशत्यङ्गुलविस्तृतम् ।
दृढं गलनकं कुर्याद्, भूयो जीवान् विशोधयेत् ।।३८।।

म्रियन्ते मिष्टतोयेन, पूतराः क्षारसम्भवाः ।
क्षारतोयेन तु परे, न कुर्यात् सङ्करं ततः ।।३९।।

लूताऽऽस्यतन्तुगलितैकबिन्दौ सन्ति जन्तवः ।
सूक्ष्मा भ्रमरमानास्ते, नैव मान्ति त्रिविष्टपे ।।४०।।

कुसुम्भकुङ्कुमाम्भोवन्निचितं सूक्ष्मजन्तुभिः ।
न दृढेनापि वस्त्रेण, शक्यं शोधयितुं जलम् ।।४१।।

(उत्तरमीमांसायां गलनकविचारोऽयम्) ।

साङ्ख्या निरीश्वराः केचित्, केचिदीश्वरदेवताः ।
ये ते निरीश्वरास्तेऽमी, नारायणपरायणाः ।।४२।।

विष्णोः प्रतिष्ठां कुर्वन्ति, साङ्ख्यशासनसूरयः ।
चैतन्यप्रमुखैः शब्दैस्तेषामाचार्य उच्यते ।।४३।।

प्रत्यक्षमनुमानं च, शाब्दं चेति प्रमात्रयम् ।
अन्तर्भावोऽत्र शेषाणां, प्रमाणानां सयुक्तिकः ।।४४।।

अमीषां साङ्ख्यसूरीणां, तत्त्वानां पञ्चविंशतिः ।
सत्त्वं रजस्तमश्चेति, ज्ञेयं तावद् गुणत्रयम् ।।४५।।

एतेषां या समाऽवस्था, सा प्रकृतिः किलोच्यते ।
प्रधानाव्यक्तशब्दाभ्यां, वाच्या नित्यस्वरूपिका ।।४६।।

ततः संजायते बुद्धिर्महानिति यकोच्यते ।
अहङ्कारस्ततोऽपि स्यात्, ततः षोडशको गणः ।।४७।।

स्पर्शनं रसनं घ्राणं, चक्षुः श्रोत्रं च पञ्चमम् ।
पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुस्तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।।४८।।

पायूपस्थवचःपाणिपादाख्यानि मनस्तथा ।
अन्यानि पञ्चरूपाणि तन्मात्राणीति षोडशः ।।४९।।

रूपात्तेजो रसादापो, गन्धाद् भूमिः स्वरान्नभः ।
स्पर्शाद्वायुस्तथा चैवं, पञ्चभ्यः पञ्चभूतकम् ।।५०।।

एवं चतुर्विंशतितत्त्वरूपं, निवेदितं साङ्ख्यमते प्रधानम् ।
अन्यस्त्वकर्ता विगुणश्च भोक्ता, तत्त्वं पुमान् नित्यचिदभ्युपेतः ।।५१।।

अमूर्त्तश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ।
अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म, आत्मा कापिलदर्शने ।।५२।।

प्रकृतेर्विरहो मोक्षस्तन्नाशे स स्वरूपगः ।
बध्यते मुच्यते चैव, प्रकृतिः पुरुषो न तु ।।५३।।

साङ्ख्यानां मतवक्तारः, कपिलासुरिभार्गवाः ।
उलूकः पञ्चशिखश्चेश्वरकृष्णस्तु शास्त्रकृत् ।।५४।।

तर्कग्रन्था एतदीया, माठरस्तत्त्वकौमुदी ।
गौडपादाऽऽत्रेयतन्त्रे, साङ्ख्यसप्ततिसूत्रयुक् ।।५५।।

काश्यां प्राचुर्यमेतेषां, बहवो मासोपवासिकाः ।
धूम्रमार्गानुगा विप्रा, अर्चिर्मागानुगास्त्वमी ।।५६।।

वेदप्रियास्ततो विप्रा, यज्ञमार्गानुगामिनः ।
हिंसादिवेदविरताः साङ्ख्या अध्यात्मवादिनः ।।५७।।

स्वकीयस्य मतस्यैते, महिमानं प्रचक्षते ।
यदि साङ्ख्यमते भक्तिस्तदा मुक्तिर्विना क्रियाम् ।।५८।।

उक्तं च मठारप्रान्ते -

हस पिब लल खाद मोद नित्यं, भुङ्क्ष्व च भोगान् यथाऽभिलाषम् ।
यदि विदितं ते कपिलमतं तत्, प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ।।५९।।

इति साङ्ख्यमतम् ।।

[मीमांसकमत-जैमिनीयमत]

अथ मीमांसकं ब्रूमो, जैमिनीयापराभिधम् ।
जैमिनीया एकदण्डास्त्रिदण्डा अपि साङ्ख्यवत् ।।६०।।

मीमांसको द्विधा कर्मब्रह्ममीमांसकस्तथा ।
वेदान्ती मन्यते ब्रह्म, कर्म भट्टप्रभाकरौ ।।६१।।

ते धातुरक्तवसना, मृगचर्मोपवेशिकाः ।
कमण्डलुधरा मुण्डा, भाट्टाः प्राभाकराश्च ते ।।६२।।

वेदान्तध्यानमेवैकमाचारस्तैरुरीकृतः ।
तेषां मते नास्ति देवः सर्वज्ञादिविशेषणः ।।६३।।

तस्मादतीन्द्रियार्थानां, साक्षाद्द्रष्टुरभावतः ।
नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिर्णयः ।।६४।।

अत एव पुरा कार्यो, वेदपाठः प्रयत्नतः ।
ततो धर्मस्य जिज्ञासा, कर्तव्या धर्मसाधनी ।।६५।।

नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियां प्रति ।
प्रवर्त्तकं वचः प्राहुः, स्वःकामोऽग्निं यथा यजेत् ।।६६।।

वेद एव गुरुस्तेषां, वक्ता कश्चित्परो न हि ।
ततः स्वयं ते संन्यस्तं, संन्यस्तमिति भाषिणः ।।६७।।

यज्ञोपवीतं प्रक्षाल्य, पिबन्ति तज्जलं शुचि ।
एते साङ्ख्यानुगा वेषात्, तत्त्वेऽतिमहती भिदा ।।६८।।

षट्प्रमाणस्पृशो भाट्टास्तन्नामानि प्रचक्ष्महे ।
प्रत्यक्षमनुमानं च, शाब्दं चोपमया सह ।।६९।।

अर्थापत्तिरभावश्च, भाट्टानां षट् प्रमाः स्मृताः ।
प्रभाकरमते पञ्च, ते ह्यभावं न मन्वते ।।७०।।

एकमेवाद्वितीयं स्याद्, ब्रह्म तत्त्वं महाफलम् ।
प्रपञ्चः स्तम्भकुम्भादिस्तेषां शास्त्रे निरर्थकः ।।७१।।

मीमांसको द्विजन्मैवेत्यतः शूद्रान्नवर्जकः ।
न पौरुषकृता वेदाः, पारम्पर्येण तद्ग्रहात् ।।७२।।

मीमांसकानां चत्वारो, भेदास्तेषु कुटीचरः ।
बहूदकश्च हंसश्च, तथा परमहंसकः ।।७३।।

कुटीचरो मठावासी, यजमानपरिग्रही ।
बहूदको नदीतीरे, स्नातो नैरस्यभैक्ष्यभुक् ।।७४।।

हंसो भ्रमति देशेषु, तपःशोषितविग्रहः ।
यः स्यात्परमहंसस्तु, तस्याचारं वदाम्यहम् ।।७५।।

स ईशानीं दिशं गच्छन्, यत्र निष्ठितशक्तिकः ।
तत्रानशनमादत्ते, वेदान्तध्यानतत्परः ।।७६।।

परः पर इहोत्कृष्टो, याज्यास्तेषां तु वाडवाः ।
साङ्ख्यवत्प्रकृतेर्भेदाद्, मोक्षो जीवस्य तन्मते ।।७७।।

(गार्गीयस्मृति-मध्यगाः श्लोकाः)

"त्रिदण्डी सशिखो यस्तु, ब्रह्मसूत्री गृहच्युतः ।
सकृत् पुत्रगृहेऽश्नाति, यो याति स कुटीचरः ।।७८।।

कुटीचरस्य रूपेण, ब्रह्मभिक्षो जिताशनः ।
बहूदकः स विज्ञेयो, विष्णुजापपरायणः ।।७९।।

ब्रह्मसूत्रशिखाहीनः, कषायाम्बरदण्डभृत् ।
एकरात्रिं वसेद्ग्रामे, नगरे च त्रिरात्रिकम् ।।८०।।

विप्राणामावसथेषु, विधूमेषु गताग्निषु ।
ब्रह्मभिक्षां चरेद्धंसः, कुटिकावासमाचरेत् ।।८१।।

हंसस्य जायते ज्ञानं, तदा स्यात्परमो हि सः ।
चातुर्वर्ण्यप्रभोक्ता च, स्वेच्छया दण्डभृत्तदा ।।८२।।

प्रपञ्चमिथ्या कठवल्लिका च, ख्यातं जने भागवतं पुराणम् ।
इत्यादिशास्त्राणि बहूनि तेषां, तत्सम्प्रदायस्तु कृशोऽत्रलोके ।।८३।।

[नैयायिकमत]

अथ योगमतं ब्रूमः, शैवमित्यपराभिधम् ।
ते दण्डधारिणः प्रौढकौपीनपरिधायिनः ।।८४।।

ते कम्बलिप्रावरणा, जटापटलशालिनः ।
भस्मोद्धूलनकर्त्तारो, नीरसाहारसेविनः ।।८५।।

दोर्मूले तुम्बकभृतः, प्रायेण वनवासिनः ।
आतिथ्यकर्मनिरताः, कन्दमूलफलाशनाः ।।८६।।

सस्त्रीका अथ निःस्त्रीका, निःस्त्रीकास्तेषु चोत्तमाः ।
पञ्चाग्निसाधनपराः, प्राणलिङ्गधराः करे ।।८७।।

विधाय दन्तपवनं, प्रक्षाल्यांह्रिकराननम् ।
स्पृशन्ति भस्मनाऽङ्गं त्रिस्त्रिः शिवध्यानतत्पराः ।।८८।।

यजमानो वन्दमानो, वक्ति तेषां कृताञ्जलिः ।
ॐ नमः शिवायेत्येवं, शिवाय नम इत्यसौ ।।८९।।

तेषां च शङ्करो देवः, सृष्टिसंहारकारकः ।
तस्यावताराः सारा ये, तेऽष्टादश तदर्चिताः ।।९०।।

तेषां नामान्यथ ब्रूमो, नकुलीशोऽथ कौशिकः ।
गार्ग्यो मैत्र्यः कौरुषश्च, ईशानः षष्ठ उच्यते ।।९१।।

सप्तमः पारगार्ग्यस्तु, कपिलाण्डमनुष्यकौ ।
अपरकुशीकोऽत्रिश्च, पिङ्गलाक्षोऽथ पुष्पकः ।।९२।।

बृहदाचार्योऽगस्तिश्च, सन्तानः षोडशः स्मृतः ।
राशीकरः सप्तदशो, विद्यागुरुरथापरः ।।९३।।

एतेऽष्टादश तीर्थेशास्तैः सेव्यन्ते पदे पदे ।
पूजनं प्रणिधानं च, तेषां ज्ञेयं तदागमात् ।।९४।।

अक्षपादो गुरुस्तेषां, तेन ते ह्याक्षपादकाः ।
उत्तमां संयमावस्थां, प्राप्ता नग्ना भ्रमन्ति ते ।।९५।।

प्रमाणानि च चत्वारि, प्रत्यक्षं लैङ्गिकं तथा ।
उपमानं च शाब्दं च, तत्फलानि पृथक् पृथक् ।।९६।।

तत्त्वानि षोडशामुत्र, प्रमाणादीनि तद्यथा ।
प्रमाणं च प्रमेयं च, संशयश्च प्रयोजनम् ।।९७।।

दृष्टान्तोऽप्यथ सिद्धान्तोऽवयवास्तर्कनिर्णयौ ।
वादो जल्पो वितण्डा च, हेत्वाभासाश्छलानि च ।।९८।।

जातयो निग्रहस्थानान्येषां व्ययस्तु दुस्तरः ।
आत्यन्तिकस्तु दुःखानां, वियोगो मोक्ष उच्यते ।।९९।।

जयन्ताचार्यरचितो, न्यायतर्कोऽतिदुस्तरः ।
अन्यस्तूदयनाचार्यो, ग्रन्थप्रासादसूत्रभृत् ।।१००।।

भासर्वज्ञो न्यायसारतर्कसूत्रविधायकः ।
न्यायसाराभिधे तर्के, टीका अष्टादश स्फुटाः ।।१०१।।

न्यायभूषणनाम्नी तु, टीका तासु प्रसिद्धिभाक् ।
अयमेषां विशेषस्तु, यत्प्रजल्पन्ति पर्षदि ।।१०२।।

शैवीं दीक्षां द्वादशाब्दीं, सेवित्वा योऽपि मुञ्चति ।
दासीदासोऽपि भवति, सोऽपि निर्वाणमृच्छति ।।१०३।।

एतेषु निर्विकारा ये, मीमांसा दर्शयन्ति ते ।
तत्र पद्यमिदं चास्ति, मोक्षमार्गप्ररूपकम् ।।१०४।।

न स्वर्धुनी न फणिनो न कपालदाम,
नेन्दोः कला न गिरिजा न जटा न भस्म।
यत्रास्ति नान्यदपि किञ्चिदुपास्महे तद्,
रूपं पुराणमुनिशीलितमीश्वरस्य ।।१०५।।

स एव योगिनां सेव्यो, योऽर्वाचीनस्तु योगभाक् ।
स ध्यायमानो राज्यादिसुखलुब्धैर्निषेव्यते ।।१०६।।

उक्तं च तैः स्वयोगशास्त्रे -

वीतरागं स्मरन् योगी, वीतरागत्वमश्नुते ।
सरागं ध्यायतः पुंसः, सरागत्वं तु निश्चितम् ।।१०७।।

येन येन हि भावेन, युज्यते यन्त्रवाहकः ।
तेन तन्मयतां याति, विश्वरूपो मणिर्यथा ।।१०८।।

श्रुतानुसारतः प्रोक्तं, नैयायिकमतं मया ।
एतेषामेव शास्त्रेभ्यस्तांस्तान् भावान् विदुर्बुधाः ।।१०९।।

एतेषां यजमानस्तु, सुताराहृदयेश्वरः ।
सत्यवादी हरिश्चन्द्रो, रामलक्ष्मणपूर्वजः ।।११०।।

भरटानां व्रतादाने, वर्णव्यक्तिर्न काचन ।
यस्य पुनः शिवे भक्तिर्व्रती स भरटो भवेत् ।।१११।।

अमीषां सर्वतीर्थेषु, भरटा एव पूजकाः ।
शेषा नमस्कारकराः, सोऽपि कार्यो न सन्मुखः ।।११२।।

[वैशेषिकमत]

अथ वैशेषिकं ब्रूमः, पाशुपतान्यनामकम् ।
लिङ्गादि यौगवत्तेषां, ते ते तीर्थकरा अपि ।।११३।।

वैशेषिकाणां योगेभ्यो, मानतत्त्वगता भिदा ।
प्रत्यक्षमनुमानं च, मते तेषां प्रमाद्वयम् ।।११४।।

अवशेषप्रमाणानामन्तर्भावोऽत्र तैर्मतः ।
तत्त्वानि तु षडेवात्र, द्रव्यप्रभृतिकान्यहो ! ।।११५।।

द्रव्यं गुणास्तथा कर्म, सामान्यं च चतुर्थकम् ।
विशेषसमवायौ च, तत्त्वषट्कं हि तन्मते ।।११६।।

तत्र द्रव्यं नवधा भूजलतेजोऽनिलान्तरिक्षाणि ।
कालदिगात्ममनांसि च गुणः पुनः पञ्चविंशतिधा ।।११७।।

स्पर्शरसरूपगन्धाः शब्दः सङ्ख्या विभाग-संयोगौ ।
परिमाणं च पृथक्त्वं तथा परत्वापरत्वे च ।।११८।।

बुद्धिः सुखदुःखमिच्छाधर्माधर्मप्रयत्नसंस्काराः ।
द्वेषः स्नेहगुरुत्वे द्रवत्ववेगौ गुणा एते ।।११९।।

उत्क्षेपावक्षेपावाकुञ्चनकं प्रसारणं गमनम् ।
पञ्चविधं कर्मैतत् परापरे द्वे तु सामान्ये ।।१२०।।

तत्र परं सत्ताख्यं द्रव्यत्वाद्यपरमथ विशेषस्तु ।
निश्चयतो नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यो विनिर्दिष्टः ।।१२१।।

य इहायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानाम् ।
संबन्ध इहप्रत्ययहेतुः स च भवति समवायः ।।१२२।।

यौगे वैशेषिके तन्त्रे, प्रायः साधारणी क्रिया ।
आचार्यः शङ्कर इति, नाम प्रागभिधापरम् ।।१२३।।

अमीषां तर्कशास्त्राणि, षट् सहस्राणि कन्दली ।
श्रीधराचार्यरचिता, प्रशस्तकरभाष्यकम् ।।१२४।।

तत्र सप्तशतीमानं, सूत्रं तु त्रिशतीमितम् ।
व्योमशिवाचार्यकृता, टीका व्योममतिर्मता ।।१२५।।

सा स्यान्नव सहस्राणि, परा तु किरणावली ।
सा तूदयनसंदृब्धा, उद्देशात् षट्सहस्त्रिका ।।१२६।।

श्रीवत्साचार्यरचिता, टीका लीलावती मता ।
साऽपि स्यात् षट् सहस्राणि, एकं त्वात्रेयतन्त्रकम् ।।१२७।।

तत्तु संप्रति व्युच्छिन्नं, शिष्या मन्दोद्यमा यतः ।
आचारव्यवहारौ च, प्रायश्चित्तं ते विदुः ।।१२८।।

जीवस्यात्यन्तिको दुःखवियोगो मोक्ष इष्यते ।
यौगानां च तथैवोक्तः, प्रायः साधर्मिका यतः ।।१२९।।

शिवेनोलूकरूपेण, कणादस्य मुनेः पुरः ।
मतमेतत् प्रकथितं, तत औलूक्यमुच्यते ।।१३०।।

अक्षपादेन ऋषिणा, रचितत्वात्तु यौगिकम् ।
आक्षपादमिति ख्यातं, प्रायस्तुल्यं मतद्वयम् ।।१३१।।

[बौद्धमत]

अथ बौद्धमतं वक्ष्ये, मौण्ड्यं कृत्तिः कमण्डलुः ।
लिङ्गं तेषां रक्तवस्त्रं, वेषः शौचक्रिया बहुः ।।१३२।।

धर्मबुद्धसङ्घरूपं, तेषां रत्नत्रयं मतम् ।
तारादेवी पुनस्तेषां, सर्वविघ्नोपघातिनी ।।१३३।।

सप्त तीर्थङ्करास्तेषां, कण्ठे रेखात्रयाङ्किताः ।
विपश्यी १ शिखी २ विश्वभूः ३, क्रकुच्छन्दश्च ४ काञ्चनः ५ ।।१३४।।

काश्यपश्च ६ सप्तमस्तु शाक्यसिंहोऽर्कबान्धवः ७ ।
तथा राहलसूः सर्वार्थसिद्धो गौतमान्वयः ।।१३५।।

मायाशुद्धोदनसुतो, देवदत्ताग्रजश्च सः ।
शौद्धोदनिधर्मकीर्तिप्रमुखा गुरवो मताः ।।१३६।।

प्रत्यक्षमनुमानं च, द्वे प्रमाणे तु तन्मते ।
चतुर्णामार्यसत्यानां, दुःखादीनां प्ररूपकः ।।१३७।।

सर्वज्ञस्तन्मते बुद्धः, स प्रमेयचतुष्कवाक् ।
दुःखं समुदयो मार्गो, निरोधश्चेति तात्त्विकम् ।।१३८।।

दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः ।
विज्ञानं वेदना संज्ञा, संस्कारो रूपमेव च ।।१३९।।

समुदेति यतो लोके, रागादीनां गणोऽखिलः ।
आत्माऽऽत्मीयस्वभावाख्यः, समुदयः स उदाहृतः ।।१४०।।

क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, इत्येवं वासना तु या ।
स मार्ग इह विज्ञेयो, निरोधो मोक्ष उच्यते ।।१४१।।

सुगताचारलग्नस्य, ज्ञाननिर्मलता हि या ।
ञ्सा मुक्तिर्मन्यते बौद्धैः, कैश्चित् कैश्चिच्चितेः क्षयः ।।१४२।।

आत्मानं मन्वते नैते, ज्ञानमेव तु मन्वते ।
भवान्तरे सहचरं, संतानस्थं क्षणक्षयि ।।१४३।।

चत्वारो बौद्धभेदाः स्युर्भक्तिस्तेषां पृथक् पृथक् ।
काव्यादमुष्माद् ज्ञातव्यास्तन्मतप्रतिपादकात् ।।१४४।।

अर्थो ज्ञानसमन्वितो मतिमता वैभाषिकेणेष्यते,
प्रत्यक्षेण(क्षो न) हि बाह्यवस्तुविसरः सौत्रान्तिकैराहृतः ।

योगाचारमतानुगैरभिमता साकारबुद्धिः परा,
मन्यन्ते बत मध्यमाः कृतधियः स्वच्छां परां संविदम् ।।१४५।।

तर्कभाषा हेतुबिन्दुर्न्यायबिन्दुस्तथाऽर्चटः ।
तर्कः कमलशैलश्च, तथा न्यायप्रवेशकः ।।१४६।।

ज्ञानपारमिताद्यास्तु, ग्रन्थाः स्युर्दश तन्मते ।
प्रासादा वर्तुलास्तेषां, बुद्धाण्डक इति स्मृताः ।।१४७।।

मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया, मध्ये भक्तं पानकं चापराह्णे ।
द्राक्षाखण्डं शर्करा चार्द्धरात्रे, मोक्षश्चान्ते शाक्यसिंहेन दृष्टः ।।१४८।।

उक्ता लिङ्गादयो भेदा, दर्शनानां शिवैषिणाम् ।
तद्विस्तरस्तु न प्रोक्तो, यथाज्ञानमुदीरितः ।।१४९।।

[अष्टाङ्गयोगस्वरुप]

अष्टाङ्गयोगसिद्ध्यर्थं, दध्युर्लिङ्गानि लिङ्गिनः ।
सर्वे प्राहुस्तमष्टाङ्गं, तत्स्वरूपं वदाम्यथ ।।१५०।।

अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्माकिञ्चनता यमाः ।
नियमाः शौचसन्तोषौ, स्वाध्यायतपसी अपि ।।१५१।।

देवताप्रणिधानं च, करणं पुनरासनम् ।
प्राणायामः प्राणयमः, श्वासप्रश्वासरोधनम् ।।१५२।।

प्रत्याहारस्त्विन्द्रियाणां, विषयेभ्यः समाहृतिः ।
धारणा तु क्वचिद् ध्येये, चित्तस्य स्थिरबन्धनम् ।।१५३।।

ध्यानं तु विषये तस्मिन्नेकप्रत्ययसंततिः ।
समाधिस्तु तदेवार्थमात्राभासनरूपकम् ।।१५४।।

एवं योगो यमाद्यङ्गैरष्टभिः संमतोऽष्टधा ।
मोक्षोपायो योगो ज्ञानश्रद्धानचरणात्मकः ।।१५५।।

निवर्त्तको भवेद् धर्मो, दर्शनानां शिवैषिणाम् ।
राज्यादिभोगमिच्छूनां, गृहिणां तु प्रवर्तकः ।।१५६।।

सर्वसावद्यविरतिर्धर्मः सिद्ध्यै निवर्त्तकः ।
इष्टापूर्त्तादिको धर्मो, भवेद् भूत्यै प्रवर्त्तकः ।।१५७।।

[नास्तिकमत]

धर्माधर्मविधातारं, जीवं दर्शनिनो विदुः ।
नास्तिकास्तं न मन्यन्ते, पुण्यापुण्यबहिर्मुखाः ।।१५८।।

तेऽधिपर्षद् वदन्त्येवं, नास्ति जीवो न कर्म च ।
धर्माधर्मौ न विद्येते, ततः किं नु तयोः फलम् ? ।।१५९।।

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः ।
भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ।।१६०।।

पिब खाद च चारुलोचने ! यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।
न हि भीरु ! गतं निवर्त्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ।।१६१।।

पृथ्वी जलं तथा तेजो, वायुर्भूतचतुष्टयम् ।
प्रमाणभूतिरेतेषां, मानं त्वक्षजमेव हि ।।१६२।।

पृथ्व्यादिभूतसंहत्यां, तथा देहादिसङ्गतिः ।
मदशक्तिः सुराङ्गेभ्यो, यद्वत् तद्वच्चिदात्मता ।।१६३।।

तस्माद् दृष्टपरित्यागाद्, यददृष्टे प्रवर्त्तनम् ।
तद्धि लोकस्य मूढत्वं, चार्वाकाः प्रतिपेदिरे ।।१६४।।

क्रमेण खण्डनं तेषां, जीवस्तावत्प्रपद्यताम् ।
अहं दुःखी सुखी चाहमिति प्रत्यययोगतः ।।१६५।।

घटं वेद्म्यहमित्यत्र, त्रितयं प्रतिभासते ।
कर्म क्रिया च कर्त्ता च, तत्कर्त्ता किं निषिध्यते ? ।।१६६।।

शरीरमेव चेत्कर्तृ, न कर्तृ तदचेतनम् ।
भूतचैतन्ययोगाच्च, चेतनं तदसङ्गतम् ।।१६७।।

मया दृष्टं श्रुतं स्पृष्टं, घ्रातमास्वादितं स्मृतम् ।
इत्येककर्तृका भावा, भूतचिद्वादिनः कथम् ? ।।१६८।।

स्वसंवेदनतः सिद्धे, स्वदेहे चेतनात्मनि ।
परदेहेऽपि तत्सिद्धिरनुमानेन साध्यते ।।१६९।।

बुद्धिपूर्वा क्रिया दृष्टा, स्वदेहेऽन्यत्र तद्गतिः ।
प्रमाणबलतः सिद्धा, चेतना नातिवार्यते ।।१७०।।

तत्परलोकिनः सिद्धौ, कर्मबन्धो न दुर्घटः ।
विचित्राध्यवसायस्थः, स हि बध्नात्यनादितः ।।१७१।।

पुण्यपापमयं कर्म, चीयते वाऽपचीयते ।
तद्वशात् सुखदुःखानि, न तु यादृच्छिकान्यहो ! ।।१७२।।

नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात् ।
अपेक्षातो हि भावानां, कादाचित्कत्वसम्भवः ।।१७३।।

स्तन्यपानाभिलाषो यत्, प्रथमं बालके भवेत् ।
पूर्वजन्माभ्यासतोऽसौ, तस्मिन् जन्मन्यशिक्षणात् ।।१७४।।

तस्मान्नास्तिकवाक्येषु, रतिः कर्तुं न युज्यते ।
आत्मा ज्ञानी कर्ममुक्तः, परलोकी च बुध्यताम् ।।१७५।।

स चाष्टाङ्गेन योगेन कर्मोन्मूल्य समन्ततः ।
आप्नोति मुक्तिं तत्रोच्चैरानन्दं स्वादयत्यहो ! ।।१७६।।

सादिकमनन्तमनुपममव्याबाधं स्वभावजं सौख्यम् ।
प्राप्तः स केवलज्ञानदर्शनो मोदते मुक्तः ।।१७७।।

सर्वथाऽप्यजिघांसूनां, गुरुदेवहितैषिणाम् ।
अदीर्घमत्सराणां च, मुक्तिरासन्नवर्त्तिनी ।।१७८।।

कालस्वभावनियतिचेतनेतरकर्मणाम् ।
भवितव्यतया पाके, मुक्तिर्भवति नान्यथा ।।१७९।।

बालावबोधनकृते मलधारिसूरिः, श्रीराजशेखर इति प्रथमानबुद्धिः ।
सम्यग्गुरोरधिगतोत्तमतर्कशास्त्रः, षड्दर्शनीमिति मनाक् कथयाम्बभूव ।।१८०।।

।। इति श्रीराजशेखरसूरिकृतः षड्दर्शनसमुच्चयः ।।

श्री मेरुतुंगसूरीसंदृब्धः

(५) ।। श्री षड्दर्शननिर्णयः ।।

।। ॐ नमः परमात्मने ।।

चिदानन्दैक[१] रूपाय सर्वापाय[२] तिरस्कृते । ध्यानगम्यस्वरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ।।१।।

...तथाहि-इह किल रूढितश्चत्वारो वर्णाश्चत्वार आश्रमाः षड्दर्शनानि इत्यादि-विचित्र विश्वव्यवस्थितिः । परं सर्वेषामप्येषामहमेवेति अहंभावः स स्वभावादाविर्भवन् दुर्निवारः, परमार्थदृशा वीक्ष्यमाणः सर्वथाऽनुचितश्च[३] । कथमिति चेदुच्यते-किल ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रश्चत्वारो वर्णाः । तेषां मध्ये ब्राह्मणो वर्णः ज्येष्ठः श्रेष्ठश्चेति यद्यपि लोकव्यवहारः, परं तद् ब्राह्मण्यं सत्यतपोदयेन्द्रियदमादिरूपब्रह्मात्मकं मुख्यलक्षणम्, परैर्जात्यादिभिर्यज्ञोपवीतादिभिश्च सर्वथा न भवतीति प्राक्बौद्धाचार्येण निर्णीतम् । अत एवोक्तं श्रुतौ-

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया ब्रह्म एतद् ब्राह्मणलक्षणम् ।।१।।
तथा-ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः ।
अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ।।

सत्यादिरूपं च ब्रह्म निर्मलस्वभावतया जायमानं सर्वेष्वपि वर्णेषु घटत एव।

सर्वजातिषु चाण्डालाः सर्वजातिषु ब्राह्मणाः ।
ब्राह्मणेष्वपि चाण्डालाश्चाण्डालेष्वपि ब्राह्मणाः ।।

इति श्रुतप्रामाण्यात् ।

तथा ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्चैति चत्वार आश्रमाः । तत्राद्यमाश्रमद्वयं गृहस्थानामुचितम्, अन्त्याश्रमद्वयं च यतीनाम् । ततो यद्यपि व्यवहारतो गृहस्थानां यतयः पूज्या एव, परं तद् यतित्वं भावरहितं, न वनवास-वल्कलपरिधान-पुष्प-फल-पत्राहारादिभिः स्यात् । वनेचराणामपि वनवासादि सर्वमस्ति, न च ते यतयः । तथा न भूशयनोञ्छवृत्तिशीतातपसहनादिभिः,

१. अद्वितीयस्य २. कष्ट ३. अयोग्यः ।

मृगादीनामपि तद्भावात् । नाङ्गसंस्कारत्यागादिभिः वृषलाणामपि तद्दर्शनात् । न भिक्षाटननिरशनतादिभिः दुर्भिक्षादौ बहूनामपि तत्संभवात् । न [1]आकिञ्चन्यादिभिः दुर्गतानामपि तद्घटनात् । तस्माद् रागद्वेषपरिहाररूपसमतास्वीकार एव यतित्वम् । उक्तं च-

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।

[हितोपदेश, संधि ९०]

तथा- रागद्वैषौ यदि स्यातां तपसा किं प्रयोजनम् ? । तावेव यदि न स्यातां तपसां किं प्रयोजनम् ? ।।

तथा बौद्ध-मीमांसक-साङ्ख्य-नैयायिक-वैशेषिक-जैनभेदेन षड्दर्शनानि । तत्र यद्यप्येतान्यात्म-पुण्यपापापवर्गादिसत्तावादितया सद्दर्शनानीति व्यवहारस्तथापि स्वस्वपक्षोत्कर्ष[2] परपक्षापकर्ष[3] कदाग्रहनिग्रहाय किमप्युच्यते ।

इह बौद्धानां बुद्धो देवता, चत्वारि दुःखादीन्यार्यसत्यानि । तत्र विज्ञानादयः पञ्चस्कंधाः, द्वादशायतनानि च दुःखम् । रागादीनामुदयहेतुरात्मीयभावाख्यः समुदयः । सर्वं क्षणिकमिति वासना मार्गः। ज्ञानसन्तानोच्छेदो मोक्षः । निरोधो मोक्ष इत्यर्थः । प्रत्यक्षानुमाने द्वे प्रमाणे ।

एवं सति यदि बुद्धो देवताऽस्येति बौद्धत्वव्यपदेशस्तर्हि स बुद्धः संसारी वाऽसंसारी वा ? यदि संसारी तर्हि अस्मदादिवद् रागादिकलुषिततया न देवः । अथासंसारी तर्हि क्षणिकोऽक्षणिको वा ? क्षणिकश्चेन् नासंसारी । क्षणिकत्वादेव संतानोच्छेदाभावेन मोक्षाभावात् । अक्षणिकश्चेत् सन् वा असन् वा ? । संश्चेन् न, यत् सत् तत् क्षणिकमिति प्रतिज्ञाव्याघातात् । असंश्चेन्न प्रमाणम्, खरविषाणस्याप्यसतः प्रमाणत्वप्रसंगात् । तत एकान्तक्षणिकत्ववादिनां तेषां कथं बुद्धो देवतेति । किञ्च सर्वस्य क्षणिकत्वेऽभ्युपगम्यमाने मोक्षोपायप्रवृत्तिरपि न स्यात् । सर्वेषामपि ज्ञानक्षणानां निरन्वयनाशेन मोक्षफलोपभोगाभावात् । अथ ज्ञानसंतानोच्छेदस्यैव मोक्षत्वाभ्युपगमे मा भूत् कस्यापि

१. अपरिग्रह २. महत्त्वारापोण ३ अवर्णवाद ।

मोक्षफलोपभोगाभाव इति चेत्, तर्हि सर्वजन्तूनामवसानकालस्वभावेनैव ज्ञानसंतानोच्छेदसम्भवात् स्वयं मोक्षे सति विशिष्टक्रियावैफल्यं भविष्यति । अथ स एव ज्ञानसंतानोऽन्यत्र देहान्तरं सङ्क्रामतीति नावसानकाले मोक्षप्रसङ्ग इति चेन्न, देहान्तरसङ्क्रमणस्यैवाघटनात् । तथाहि-दीपशिखासन्तानोऽपि स्वाधारपात्रं मुक्त्वा न पात्रान्तरे सङ्क्रामति । एवं ज्ञानसन्तानोऽपि स्वाधारदेहं मुक्त्वा नान्यं देहं सङ्क्रामति । कर्मवशात् संक्रामतीति चेन्न, येन ज्ञानक्षणेन पूर्वदेहे कृतं कर्म स स्वकर्म [अ] भुक्त्वा विनष्टः। अन्यत्रोत्पित्सुर्ज्ञानक्षणस्तु केन कर्मणा देहान्तरमाप्नोति ? पूर्वज्ञानक्षणकृतकर्मणेति चेन्न, अन्यस्य कर्मणा अन्यस्य फलोपभोगे सर्वविश्ववैसंस्थुल्यापत्तेः ।

केचिन्निखिलवासनोच्छेदे विगतविविधविषयाकारोपप्लवविशुद्धज्ञानोत्पादो मोक्ष इति मन्यंते तदप्ययुक्तम् । समलचित्तक्षणानां स्वाभाविक्याः सदृशारम्भण-शक्तेरसदृशामलज्ञानक्षणारम्भं प्रत्यशक्तेश्चाकस्मादनुच्छेदात् । तस्मात् सर्वं न क्षणिकम् । किन्तु, अनाद्यनन्तो ज्ञानादिगुणाधारो नित्यो जीवः । उक्तं च-

जीर्णानि वासांसि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

[भगवद् गीता २.२२]

स च जीवः सर्वकर्मक्षयेऽवाप्तानन्तज्ञानो मुक्तस्वरूपो विजयते । उक्तं च-

शीवः शिवो शिवो जीवः शिवाज्जीवो न भिद्यते । कर्मबद्धो भवेज्जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ।।[१] [ ]

तथा मीमांसकानां सर्वज्ञः कोऽपि नास्तीति, तदुक्ता आगमा अपि न सन्ति। ततोऽपौरुषेयत्वेन नित्या वेदा एव प्रमाणम् । तत्र यागादिक्रियां प्रति प्रवर्तकवचोरूपो नोदनालक्षणो धर्मः । प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्था-पत्त्यभावरूपाणि षट् प्रमाणानि । ब्रह्माद्वैतवादिनां चैषामात्मन्यात्मलयो मोक्षः ।

---

१. तुलना- जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः । पाशबद्धः पशुर्देवि पाशमुक्तः सदाशिवः ।।

तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावे तु तण्डुलम् । कर्मबद्धः सदा जीवः कर्ममुक्तः सदाशिवः ।। —तन्त्र

इत्थं चैवेते नोद्याः । नन्वेष सर्वज्ञो भवता ज्ञातो निषिध्यते अज्ञातो वा । ज्ञातश्चेत् तर्हि तज्ज्ञापकप्रमाणसद्भावात् कथं निषेधः ?। अज्ञातश्चेन्न, अज्ञातस्य घटादेरपि निषेद्धुमशक्यत्वात् । किञ्च, सर्वज्ञो नास्तीति यदुच्यते तत् किमत्र देशेऽत्र काले, सर्वदेशेषु सर्वकालेषु वा ? आद्यः पक्षोऽस्माकमप्यभिमतः, द्वितीयपक्षे तु यः कोऽपि सर्वदेशसर्वकालगतं सर्वज्ञो नास्तीत्यादिकं स्वरूपं जानाति स एव सर्वज्ञः । ततः कथं सर्वज्ञाभावः । एवं सर्वज्ञसिद्धौ तदुक्ता आगमाः प्रामाण्येन सिद्धा एव, आप्तवचनत्वात् ।।

तथा वेदा अपौरुषेया इत्यप्ययुक्तम् । यतः शास्त्रं वचनात्मकम्, वचनं च पुरुषताल्वोष्ठादिव्यापारं विना न क्वाप्युपलभ्यते । अतोऽपौरुषेयत्वाभावान्न नित्या वेदाः । किञ्च, नित्या वेदाश्चेत्तर्हि किमुपलभ्यभावा अनुपलभ्यभावा वा ? । अत्र पक्षद्वयेऽपि दोषः । नित्यत्वेन सर्वदोपलम्भस्यानुपलम्भस्य वा प्रसंगात् । अन्यथा स्वभावहान्या अनित्यत्वापत्तेः । ततोऽपौरुषेया नित्यास्तु वेदा न भवन्तीति न ते प्रमाणम् । "वेदा अवेदा यज्ञा अयज्ञा" इति श्रुतिप्रामाण्यात् । गीतायामप्युक्तम्–

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्ति विपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ[२] नान्यदस्तीति वादिनः ।।

कामात्मानः स (स्व)र्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यफलं[३] प्रति ।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ।।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ! ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।

(भगवद्गीता २.४२-४५) इति ।

किञ्च, सुधाभुजो देवा अतः कथं गोमेधादिषु हूयमाना गवादिपलं भुञ्जते । एवमेषामपि पलादत्वप्रसंगात् । न च यागादिक्रियाः स्वर्गं साधयन्ति ।

२. हे अर्जुन ! ३. गति इति मुद्रितभगवद्गीतायाम् ।

यूपं छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ।। इति

(भट्टारकशुकवचनात्)

तस्माद् अहिंसा-संयम-तपोरूप आत्मयज्ञ एव स्वर्गादिसाधनम् । **उक्तं च-**

इंद्रियाणि पशून् कृत्वा वेदिं कृत्वा तपोमयीम् ।
अहिंसामाहुतिं दद्यादेष यज्ञः सनातनः[४] ।।

सांख्यमते अकर्ता निर्गुणो भोक्ता पुरुषः । गुणत्रयाणां साम्यावस्था प्रकृतिः। सा च प्रधानाव्यक्तसंज्ञाभ्यां वाच्या । प्रकृतेश्च महदुत्पद्यते बुद्धिरित्यर्थः । महतोऽहंकारः । अहङ्काराद् द्विधा-एकादशक-दशकगणरूपा । तत्र एकादशकः - पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि मनश्च । दशकगणश्च शब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शस्तेभ्यो नभस्तेजः पृथिव्यम्भोवायवः पञ्चभूतानीति पञ्चविंशति तत्त्वानि । तेषां ज्ञानान्मोक्षः । उक्तं च–

पञ्चविंशति तत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतः ।
जटी मुण्डी शिखी वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ।। इति ।।

मोक्षश्च प्रकृतिपुरुषयोर्विभागः । प्रत्यक्षानुमानशब्दानि त्रीणि प्रमाणानि ।

अत्र चायं विचारः । यद्यचेतना प्रकृतिस्तर्हि ततो बोधरूपा बुद्धिः कथमुत्पद्यते । अथ पुरुषाधिष्ठितेति प्रकृतिर्बुद्धिं जनयति तर्हि सा चेतनरूपा बुद्धिः पुरुषधर्म; प्रकृतिधर्मो वा ? पुरुषधर्मश्चेत् कथं प्रकृतित उत्पत्तिः । प्रकृतिधर्मश्चेत् कथं जडरूपप्रकृतेर्ज्ञानरूपबुद्धिधर्मः, विरोधात् । न हि सूर्याज्जायमानः प्रकाशस्तमसो धर्म इति वक्तुं शक्यम् । किञ्च, यद्यकर्ता पुरुषस्तर्हि धर्ममधर्मं करिष्यामीति अध्यवसायं को विधत्ते । प्रकृतिश्चेन्न, तस्या अचेतनत्वात् । पुरुषश्चेन्न, तस्याकर्तृकत्वेन संमतत्वात् । ततोऽनादिः संसारोऽनादिः कर्मबद्धो जीव इति तत्त्वम् । "न कदाचिदनीदृशं जगत्" इति वचनप्रामाण्यात् । किञ्च, क्रियां विना तत्त्वज्ञानमात्रेण न हि कस्यापि मोक्षः । भुक्तिक्रियां विना तज्ज्ञानेन तृप्तेरयोगात् । उक्तं च-

क्रिया फलप्रदा पुंसां न ज्ञानं केवलं क्वचित् ।
न हि स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो ज्ञानादेव सुखी भवेत् ।।

नैयायिकमते सृष्टिसंहारकारी नित्यः सर्वज्ञाता व्यापकः शिवो देवः । प्रत्यक्षानुमानोपमानागमाश्चत्वारि प्रमाणानि । प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानीति षोडश तत्त्वानि । एतेषां च परिज्ञानान्मोक्षावाप्तिः । नित्यसंवेद्यमानेन सुखेन विशिष्टात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः पुरुषस्य मोक्ष इति । एवं चैते पृच्छयाः । ननु नित्यः सन् शिवः सृष्टिसंहारावेकेन स्वभावेन विधत्ते स्वभावभेदेन वा ? । तत्र न तावदेकस्वभावेनैवेति वक्तुं शक्यम् । सृष्टिसंहार-स्वभावयोः प्रद्योतान्धकारयोरिवातीवविरुद्धत्वात् । स्वभावान्तरेण तदा न नित्यः । स्वभावभेदेनाप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावस्य नित्यलक्षणस्य व्याघातात्। अथ नित्य एव भगवान् इच्छावशात् सृजति संहरति चेति । न, काम-क्रोध-लोभ-दम्भ-गर्व-हर्षरूपोर्मिषट्करहितस्येच्छाया अप्यसंभवात् । किञ्च, सर्वज्ञोऽसौ स्वद्वेषिणः किं सृजति ? न हि शुद्धमार्गोच्छेदाय प्रेक्षावान् प्रवर्तते । अथ पूर्वमद्वेषिणः सृष्टाः पश्चाद् द्वेषिणो जायन्ते, तर्हि नासौ सर्वज्ञोऽनागततद्-द्वेषभावाज्ञानात् । तथा यदि ईश्वरकर्तृकं जगत्[1] तदा किंकर्तृक[2] ईश्वर इत्यपि चिन्त्यम् । अनादिनिधनो भगवान् स्वभावसिद्ध इति नान्यकर्तृकस्तर्हि विश्वमपि तथैव स्वभावसिद्धमिति वदतां किं वक्त्रं वक्रीस्यात् । किञ्च नित्यस्य शिवस्य एका मूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा इत्यपि न घटते । राजसादि-पृथग्गुणस्य भागत्रयस्य एकत्वनित्यत्वानुपपत्तेः । तथा यद्यसौ सर्वज्ञो व्यापकश्च तदा यत्र जीवस्तत्र शिवः, "सर्वं विष्णुमयं जगद्वा" इति वचनाद्यथा सर्वजन्तूनां व्याप्यत्वं तथा सर्वज्ञत्वमपि किं न स्यात् । अन्यच्च, शिवमयत्वे विष्णुमयत्वे वा जगत आराध्याराधकादिमुक्तामुक्तादिव्यवस्थाऽपि विशीर्येत । तस्माद् एतानि वाक्यानि-

एक एव हि भूतात्मा देहे देहे व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ।।

[ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् १२]

'यादृक् पिण्डे तादृग् ब्रह्माण्डे' इत्यादीनि च शिवादिष्विव सर्वभूतेष्वदुष्टधी-प्रतिपादकानि मन्तव्यानि । न चायं शिवः पारदवत् खण्डतामवाप्य नानाभूतेषु

१. ईश्वरः कर्ता अस्य जगतः । तत् ईश्वरकर्तृकम् । २. कः कर्ता अस्य ईश्वरस्य स किंकर्तृक ईश्वरः ।

चेष्टते । 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इति [भगवद्गीता २.२३] वचनाज्जीवस्य खंडत्वायोगात् । नापि निजांशान्नानारूपतया व्यापार्य विचित्रं चेष्टते इति वाच्यम् । यतस्तेंशास्ततो भिन्ना वाऽभिन्ना वा स्युः । भिन्नाश्चेत् खण्डतादोषः । अभिन्नाश्चेदेकस्मिन् सुखिनि दुःखिनि वा सर्वेऽपि सुखिनो दुःखिनो वा स्युः । तस्मान्निरञ्जनः सृष्टिसंहारानधिकारी सर्वज्ञः परमपदस्थः शिव इति । उक्तं च–

स्वरूपैकप्रतिष्ठानः परित्यक्तोऽखिलैर्गुणैः ।।

ऊर्मिषट्काऽतिगं[1] रूपं तदाहुर्मनीषिणः ।

संसारबन्धानाधीनक्लेशदुःखाद्यदूषितम् ।। इत्यादि

[न्यायमञ्जरीनवमाह्निके]

अन्यत्राप्युक्तम्–

न स्वर्धुनी न फणिनो न कपालदाम नेन्दोः

कला न गिरिजा न जटा न भस्म ।

यत्रास्ति किञ्चिदपि नान्यदुपास्महे तद्-रूपं

पुराण[2]-मुनि-शीलित[3]-मीश्वरस्य ।।

वैशेषिकाणामपि देवः शिव एव । द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाः षट् पदार्थाः । प्रत्यक्षानुमाने द्वे प्रमाणे । नवानां बुद्धि-सुख-दुखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्माधर्म-संस्काररूपविशेषगुणा-नामत्यन्तोच्छेदे मोक्ष इति । ते चैवं पर्यनुयोज्याः[4] । ननु आगमाः प्रमाणमप्रमाणं वा । यद्यप्रमाणं कथं तर्हि आगमबलेन षट्पदार्थादिप्ररूपणा प्रमाणीक्रियते । अथ प्रमाणं तथा कथं द्वे एव प्रमाणे?। तस्मादागमार्थापत्त्यादीन्यपि प्रमाणानि मन्तव्यानि । अन्यथा सर्वव्यवहारलोपात् । किञ्च विशेषगुणोच्छेदे मोक्षस्तदा मुक्तजीवस्य सर्वज्ञानसुखयोरभावादाकाशाद्यजीवैः सह मनागपि नो भेदः । अतस्तत्त्व-दानादिना मोक्षमवाप्य भवन्मते जीवैरजीवैर्भाव्यं [इति] लाभमिच्छतो मूलक्षतिः । अन्यच्च । यथाऽभ्रच्छि(च्छ)न्नादित्यस्य शनैः शनैरभ्रापगमे प्रकाशः स्पष्टस्पष्टतरो भवन् सर्वाभ्रापगमे सर्वथा स्पष्ट एव स्यादेवं कर्माच्छादितस्य जीवस्य शनैः

१. अतिक्रान्तं । २. जीर्ण । ३. सेवित । ४. पृच्छयाः ।

शनैः कर्मक्षये स्फुटस्फुटतरीभवज्ज्ञानं मोक्षक्षणे सर्वकर्मक्षये सम्पूर्णं केवलज्ञानमेव जायते, न पुनः सर्वथा ज्ञानोच्छेद इति । किञ्च, परमात्मस्वरूपं पश्यतो योगिनो यथा यथा विषयोपरम⁵स्तथा तथा परमानन्दसुखं बहुबहुतरमेव दृश्यते ततो यदा मोक्षक्षणे सर्वविषयोपरमस्तदा सर्वोत्तमं परमानन्दसुखं जायमानं केन निवार्यते ?। उक्तं च न्यायसारसूत्रे

सुखमात्यन्तिकं यत्र बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
तं वै मोक्षं विजानीयाद् दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।।११।।

श्रीजैनदर्शने रागद्वेषविनिर्मुक्तः सर्वज्ञो महोदयी भगवान् जिनो देवः । जीवाजीवादीनि नवतत्त्वानि । प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणं प्रमाणद्वयम् । अनन्तधर्मात्मकं स्याद्वादक्रोडीकृतं सर्वं वस्तु प्रमाणविषयः । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । अत्र चैवं विचारः । ननु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि व्यस्तानि वा समस्तानि वा व्यस्तसमस्तानि वा मोक्षमार्ग इति त्रयी गतिः । तत्र न व्यस्तानि यतो यथावस्थितजीवादि नवतत्त्वानां विस्तराद्वा संक्षेपाद्वाऽवबोधो ज्ञानम्, श्रद्धानं च दर्शनम् बहूनामपि भूतं भवति भविष्यति च । न च ते चारित्रं विना मोक्षं याता यान्ति यास्यन्ति च। चारित्रमपि सर्वसावद्यत्यागलक्षणमागमोक्तत्वादभव्यानामपि भवति । न च ते सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति च । तस्मान्न व्यस्तानि तानि मोक्षमार्गः । नापि समस्तानि, श्रीभरतचक्रवर्त्यादीनां राज्यं कुर्वतामेव मोक्षप्राप्तेः । नापि व्यस्तसमस्तानि, धर्मतीर्थस्या-प्रवृत्ततया स्वतः परतो वा ज्ञानादीनामसम्भवेऽपि भगवन्मातृमरुदेवादीनां मोक्षस्य लाभात् । तस्मात् सर्वशुद्धशुभपरिणामपरिणत आत्मैव सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयरूपो ज्ञातव्यः । स एव मोक्षश्चेति । उक्तं च-

आत्मैव दर्शनज्ञानचारित्राण्यथवा यतेः ।
यत् तदात्मक एवैष शरीरमधितिष्ठति ।।
अयमात्मैव संसारः कषायेन्द्रियनिर्जितः ।
तमेव तद्विजेतारं मोक्षमाहुर्मनीषिणः ।।

५. निवृत्तिः ।

अत एव नामादिकदाग्रहं मुक्त्वा गुणोत्कीर्तनद्वारेणैव देवगुरुधर्मतत्त्वानि सर्वैरपि तत्त्वज्ञैः प्रमाणीकृतानि । तद्यथा—वीतरागः परमात्मस्वरूपो भगवान् अर्हन् श्रीसर्वज्ञो देवः । [१]ज्ञानतपोभ्यां पात्रतामापन्नः संयमी गुरुः । सर्वज्ञभाषितो दयादिमूलो धर्मः । इत्येतत्-त्रयस्येव ज्ञानश्रद्धाने सम्यक्त्वम् । तदुक्तं श्रीविष्णुपुराणे [६.६.१]

स्वाध्यायसंयमाभ्यां स दृश्यते पुरुषोत्तमः ।
तत्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतदिति पठ्यते ।।

तत्र [६.५.६६] देवविषये–

यत् तदव्यक्तमजरमचिन्त्यमजमव्ययम् ।
अनिर्देश्यस्वरूपं च पाणिपादाद्यसाम्प्रतम् ।।

तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः ।
वाचको भगवच्छब्दस्तस्याद्यस्याक्षयात्मनः ।। [६.५.६८]

परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति पराऽपरेशे ।
सर्वेश्वरः सर्वगः सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ।।
स ज्ञायते येन सदस्तदोषः सिद्धः परो निर्मलरूप एकः ।
तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तं स दृश्यते वाऽप्यथ गम्यते वा ।।

विश्वकर्मणाप्युक्तम्–

इन्द्रियै र्न जितो नित्यं केवलज्ञाननिर्मलः ।
पारं गतो भवाम्भोधेर्यो लोकान्ते वसत्यलम् ।।
ज्योतिरूपेण यस्तत्र पुंरूपेणात्र वर्तते ।
रागद्वेषव्यतिक्रान्तः स एष परमेश्वरः ।।२।।

बौद्धैरप्युक्तम्–

भग्नं मारबलं येन चूर्णितं भवपञ्जरम् ।
निर्वाणपदमारूढं तं बुद्धं प्रणमाम्यहम् ।।

१. ज्ञानमध्ये दर्शनं ज्ञातव्यम् ।

योगशास्त्रेप्युक्तम्-

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ।।

योगसारेऽपि-

निर्मलो निर्ममः शान्तः सर्वज्ञः शुभदः प्रभुः ।
स एव भगवानेको देवो ज्ञेयो निरञ्जनः ।।
व्योमरूपो जगन्नाथः क्रियाकालगुणोत्तरः
संसारसृष्टिनिर्मुक्तः सर्वतेजो विलक्षणः ।।
केवलज्ञानसम्पूर्णः केवलानन्दसंश्रितः ।
केवलध्यानगम्यश्च देवेशः सर्वदर्शने ।।

अतस्तत्त्वमिदम्-

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णु र्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ।।

[महादेवस्तोत्र ४४]

ज्ञानतपः पात्रं सयंमी गुरुः । उक्तं च-

न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते ।।

[याज्ञवल्क्यस्मृति, १.२००]

तथा- ये क्षान्तदान्ताः श्रुतपूर्णकर्मा जितेन्द्रियाः प्राणिवधान्निवृत्ताः ।
परिग्रहे सङ्कुचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ।।१।।

[व्यासस्मृति, ४.५८]

तथा-विमुक्तं सर्वसंगेभ्यो मुनिमाकाशवत् स्थितम् ।
स्वस्थमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।
अहेरिव गणाद्भीतः सन्मानान्नरकादिव ।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।।

जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मा(र्मो) ज्ञानार्थमेव च ।

अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ।

शान्तिपर्वणि ।।

तथा-**अनग्निमनिकेतं तमेकाहावसथाश्रयम्**[१] **।**

विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम् ।।१।।

-मार्कण्डेयपुराणे [८७.२] रुचिस्तोत्रे ।।

तथा- **अहिंसकः सत्यवक्ता सर्वसङ्गपराङ्मुखः ।**

ब्रह्मचारी सवैराग्यो भिक्षुर्बौद्धमते गुरुः ।।

अतः सारमिति-**महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः ।**

सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ।।१।।

[त्रिषष्टि. श. पु. २. ३. ८९६]

तथा क्षमा-मार्दवार्जव-मुक्तितपःसंयम-सत्त्व-शौचाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्यरूपः सर्वज्ञप्रणीतो दशविधो धर्मः । तथाहि-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम् ।।१।।

[-याज्ञवल्क्यस्मृतौ १. १२२]

तथा- **अहिंसा ह्येव सर्वेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता ।**

यदि यज्ञांश्च वृक्षांश्च यूपांश्चोद्दिश्य मानवाः ।

वृथा खादन्ति मांसानि नैष धर्मः प्रदश्यते ।।

सुरा मत्स्या मधुमांसासवाः कृशरोदनं ।

धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् देवेषु कल्पितम् ।।

कामान्मोहाच्च लोभाच्च लोक्यमेत(लोकेऽप्येत) त्

प्रवर्तितम् । विष्णुमेव हि जानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः ।

पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम् ।

याज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः ।।

१. मुद्रिते तु 'एकाहारमनाश्रमम्' इति पाठः ।

यच्चापि किञ्चित् कर्तव्यमन्यच्चोक्षैः सुसंस्कृतम् ।
महासत्त्वैः शुद्धभावैः सर्वं देवार्हमेव तत् ।। इति

श्री महाभारते शान्तिपर्वणि तुलाधारजाजलिसंवादे ।

तथा- **सत्यां वाचमहिंस्रां च वदेदनपवादिनीम् ।**
[1]क्ल्काऽपेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ।।१।।

तथा- **ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।**
वाङ्मनोनियमः साम्यं मानसं तप उच्यते ।।

तथा- **आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम् ।**
अद्रोहो नातिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा दमस्तथा ।
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम् ।।

- शान्तिपर्वणि ।

इत्येवं सर्वदर्शनसंमतदेवगुरुधर्मरूपस्य तत्त्वत्रयस्य सम्यक्स्वरूपं परिज्ञाय शेषमशेषकदाग्रहं मुक्त्वा प्रेक्षावता सर्वज्ञेयसारमेतत्त्रयमेव ज्ञेयं श्रद्धेयं समनुष्ठेयं चेति तथा सम्पद्यते सकलकल्याणाऽभ्युद-यसमृद्धयः । कृतिरियं श्रीमद्अञ्चल-गच्छेशश्रीमेरुतुङ्गसूरीन्द्राणाम् ।। छा ।। श्री ।। ।। छा ।। श्री ।। शुभं भत (भवतु) ।। छा ।। छा ।। ।। श्री ।। इति षड्दर्शननिर्णयः । सर्व सङ्ख्या ।१८१।४।

❖ ❖ ❖

१. माया ।

पू.मु. श्री यशस्वत्सागरविरचिता

(६) ॥ जैनस्याद्वादमुक्तावली ॥

प्रथमः स्तबकः

प्रणम्य शंखेश्वरपार्श्वनाथं प्रकाशितानन्तपदार्थसार्थम् ।
स्वान्यप्रकाशाय तमस्तमार्कः प्रकाश्यते जैनविशेषतर्कः ॥१॥

स्याच्छब्दार्थलसद्रसोद्भवभवा द्रव्यादिभिर्भास्वती
स्वान्यद्रव्यचतुष्टयैक्यकलिता सार्वोक्तिभिः शाश्वती ।
सत्सामान्यविशेषभावललिता स्यात्सप्तभङ्गावली
धार्या सद्भिरियं सुखैककृमिला स्याद्वादमुक्तावली ॥२॥

सत्तर्ककर्कशविचारपदप्रचारैर्दुर्वादिवादरसनाशनशासनाय ।
अज्ञानसंतमसराशिविनाशनाय स्याद्वादसत्खतिलकाय नमो नमोस्तु ॥३॥

सम्यक्प्रमाणनयतत्त्वसतत्त्वसिद्धिः, स्यात्सर्वदर्शि समयाध्ययनाभियोगात् ।
तत्रैव वस्तु सकलं समरूपतत्त्वमाभासते तदपि मानयुगप्रतीतम् ॥४॥

सन्त्येव प्राक्तनग्रन्थास्तदुद्बोधप्रबोधकाः ।
गंभीरा विस्तृतास्तेषु नाधिकारोऽल्पमेधसाम् ॥५॥

सुखोपायेन तेषां सन्न्यायशास्त्रार्थकाङ्क्षिणाम् ।
अज्ञानतिमिरोद्भेदद्योतरूपा प्रतन्यते ॥६॥

चिरन्तनानां विशदोक्तियुक्तेः संक्षेपतो वाप्युपजीव्य तस्याः ।
तल्लक्षणानीह तदीयशब्दैः पर्यायशब्दैः परिकल्पयामि ॥७॥

जीवाद्यधिगमोपायौ सत्प्रमाणनयाविमौ ।
विवेक्तव्यौ तथैवान्यप्रकारासंभवादतः ॥८॥

जीवादिवस्तुनश्चैवाऽनैकान्तात्मकलक्षणं ।
स्वद्रव्यगुणपर्यायैः स्थित्युत्पादव्ययात्मकैः ॥९॥

जीवाजीवौ द्वौ पदार्थौ प्रसिद्धौ तत्राऽप्याद्यो द्विप्रभेदप्रभिन्नः ।
अन्त्यस्त्विष्टः पञ्चधा पुद्गलाख्यो धर्माधर्माकाशकालप्रभेदात् ॥१०॥

द्रवत्यदुद्रवदद्रोष्यत्येव त्रैकालिकञ्च यत् ।
तांस्तांस्तथैव पर्यायांस्तद्द्रव्यं जिनशासने ॥११॥

गुणो द्रव्यगतो धर्मः सहभावित्वलक्षणः ।
पर्येत्युत्पादनाशौ च पर्यायः स उदाहृतः ॥१२॥

द्रव्यं हि सामान्यविशेषरूपं स्वतस्तथाप्रत्ययवेदनेन ।
आद्यं द्विधा स्यादनुवृत्तिहेतुः द्विधा द्वितीयो व्यतिवृत्तिहेतुः ॥१३॥

सामान्यमेतत् किल तिर्यगूर्ध्वता भेदप्रभिन्नं द्विविधं वदन्ति ते ।
व्यक्तौ समानं प्रथमं गवां व्रजे गोत्वं यथाद्रव्यमिदं ततोऽन्यथा ॥१४॥

तुल्या सदा परिणतिः प्रथमस्य लक्षणं,
व्यक्तिं प्रतीह गदितं निजजातिवाचकं ।

पूर्वापरात्मनिजपर्यववर्त्तनत्वतः,
द्रव्यं तदेवमपरं मतमूर्ध्वताभिधं ॥१५॥

व्यक्तिर्विशेषः स्वत एव सद्योवच्छेदकत्वाद् व्यतिवृत्तिरूपः ।
सोऽपि द्विधा स्याद् गुणपर्यवाभ्यां स्वरूपभेदप्रथितात्मताभ्याम् ॥१६॥

द्रव्ये गुणाः सन्ति सदा सहोत्थास्तत्पर्यवास्ते क्रमभाविनःस्युः ।
स्याद् भेदभिन्ना न च धर्म्यपेक्षाकृतोप्यमीषां कथितः प्रभेदः ॥१७॥

सर्वं तथान्वयिद्रव्यं नित्यमन्वयदर्शनात् ।
अनित्यमेतत्पर्यायैरूत्पादव्ययसंगतैः ॥१८॥

प्रध्वस्ते कलशे शुशोचतनया मौलौ समुत्पादिते,
पुत्रः प्रीतिमवाप कामपि नृपः शिश्राय मध्यस्थताम् ।

पूर्वाकारपरिक्षयस्तदपराकारोदयस्तद्द्वया-,
धारश्चैक इति स्थितं त्रयमतं तथ्यं तथा प्रत्ययात् ॥१९॥

घटमौलिसुवर्णार्थी-नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकं ॥२०॥

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रतः ।
अगौरसव्रतो नेभे तस्माद्वस्तुत्रयात्मकम् ॥२१॥

उत्पादो न विना व्ययेन न विना ताभ्यां प्रसाध्या स्थितिः,
सन्त्येते हि परस्परं खलु निजैः पर्यायभावाश्रितैः ।
भिन्नास्त्वेकपदार्थगा अपि मिथो भिन्नस्वभावादितः,
सैवेयं त्रिपदी जिनेशगदिता तस्यास्तु वश्यं जगत् ॥२२॥

द्रव्यं पर्यायसंयुक्तं पर्याया द्रव्यसंगताः ।
गुणो द्रव्यगतो धर्मः स्वरूपात्त्रितयं विदुः ॥२३॥

द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्यार्या द्रव्यवर्जिताः ।
क्व कदा केन किंरूपा, दृष्टा मानेन केन वा ॥२४॥

स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन परतस्तेनैव तद्धेतुना,
ह्यभावाभावयुगात्मकस्तु कलशो जातस्तथा प्रत्ययात् ।
इत्थं नैव यदा तदैव कलशः स्तम्भादिरेव स्फुटम्,
तस्मान्नात्र विचारणापि सुधिया कार्याविचार्यागमे ॥२५॥

परस्परं यत्र विरुद्धधर्माश्रितस्वभावा गुणिपर्ययेषु ।
न दोषपोषाय विरुद्धधर्माध्यासस्त्वनेकान्तमतानुगानाम् ॥२६॥

सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ।
अन्यथा सर्व सत्त्वं स्यात् स्वरूपस्याप्यसंभवः ॥२७॥

पुत्रत्वमपि पितृत्वं मातुलत्वं च पौत्रता ।
भ्रातृव्यत्वं तथा भागिनेयत्वं च पितृव्यता ॥२८॥

एकस्मिन्नेव पुरुषे धर्मा एते विरुद्धकाः ।
संगच्छन्ते कथं विद्वन्नास्त्यपेक्षाकृता अमी ॥२९॥

पुत्रत्वं च पितृत्वं चापेक्षयापि कृतं भवेत् ।
पितुः पुत्रस्य भेदस्यैकस्मिन्नरे हि संगतम् ॥३०॥

भागे सिंहो नरः सिंहो योऽसौ भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥३१॥

संशयः संकरो वैयधिकरण्यानवस्थिती ।
अप्रतिपत्तिर्विषयव्यवस्थाहानिरित्यमी ॥३२॥

यत्कार्यकारणतयाऽपि मतान्तरीया नित्यत्वमन्यदपि वस्तुनि मन्यमानाः ।
तत्किं विरुद्धघटना न भवेत्तदानीं, स्वीयाश्रितेपि न मते गुणदोषचिन्ता ॥३३॥

एते दोषा न चैवात्र स्याद्वादे संभवन्त्यमी ।
जात्यन्तरत्वान्निरवकाशा एव प्रतिष्ठिताः ॥३४॥

स्वभावभेदः किलवस्तुनस्तु स्वीयस्वभावव्यतिवृत्तितोपि ।
अतत्स्वभावात् परकल्पनायां तदानवस्थास्वयमेति वृद्धिम् ॥३५॥

एकान्तनित्ये न गमागमौ स्तः न पुण्यपापे न च बन्धमोक्षौ ।
तथाप्यनित्येपि स एव दोषस्तस्मादनेकान्तमते न दोषः ॥३६॥

स्यादित्यव्ययमेवेदमनेकान्तप्रदीपकम् ।
अष्टास्वपि पदेष्वेवमियं तत्त्वचतुष्टयी ॥३७॥

नित्याऽनित्यत्वमेवैकान्या सामान्यविशेषभिद् ।
अभिलाप्यान्यभेदैका भावाऽभावात्मिकापरा ॥३८॥

एकान्तनित्ये सुखदुःखयोस्तु भोगो न जीवे न तथाप्यनित्ये ।
क्रमाक्रमाभ्यां च तथाहि नित्यानित्ये क्रियावस्तुनि नो घटेत ॥३९॥

चित्रं यदेकं तदनेकमत्र प्रामाणिकै रूपमुरीकृतं यैः ।
एकत्र मान्याः सततं त्वदन्यैरुपाधिभेदेन विरुद्धधर्माः ॥४०॥

स्वतन्त्रनित्यानित्याभ्यामपरे वादिनः पुनः ।
मिश्राभ्यामपि ताभ्यां तु प्रोचुः स्याद्वादवादिनः ॥४१॥

कुण्डली कुण्डलीकाराऽर्जवावस्थाश्रितोपि वा ।
व्यतिरिक्ताऽव्यतिरिक्ता नैकान्ते संगतास्तदा ॥४२॥

एकान्तवादो न च कान्तवादोप्यसंभवो यत्र चतुष्टयस्य ।
उपक्रमो वानुगमो नयश्च निक्षेप एते प्रभवन्ति तद्वत् ॥४३॥

महाग्रन्थेषु यत्प्रोक्तं तत्त्वं चतुश्चतुष्टयं ।
विज्ञेयं वृत्तितो विद्भिः सविशेषं विशेषतः ॥४४॥

जीवः पदार्थो गुणिता गुणास्तु विज्ञानशक्तिप्रमुखास्त्वनन्ताः ।
नृदेवतिर्यग्निरयैकरूप पर्यायरूपं प्रवदन्ति तत्त्वं ॥४५॥

अजीवंश्चापि जीवन्ति जीविष्यन्ति च ये सदा ।
जीवा इति जिनास्तत्त्वं जगुर्हि जगदुत्तमाः ॥४६॥

संसारिणाश्च ये जीवाः संसरन्ति पुनः पुनः ।
समसार्षुश्च संसारे संसरिष्यन्ति ते सदा ॥४७॥

संसार्यसंसारितयोपयोगी, द्विधा प्रमाता व्यवहारतोपि ।
कर्ता च भोक्ता तनुमानमेयः, शुद्धात्स्वभावोद्ध्र्वगतिस्त्वमूर्तः ॥४८॥

चेतना लक्षणोप्यात्मा प्रतिक्षेत्रं पृथग् स्थितः ।
ज्ञातश्चोभयमानेनादृष्टवान् परिणाम्यसौ ॥४९॥

उद्देशसल्लक्षणतत्परीक्षा द्वारेण तेषां सदुपायमाहुः ।
उद्देशमेवात्र हि नाम मात्र, वस्तु प्रकाशोद्यतमामनन्ति ॥५०॥

तल्लक्षणं यद्व्यतिकीर्णवस्तु, व्यावृत्तिहेतुर्द्विविधं तदेव ।
आत्मानुभूतं तदनात्मभूतमौष्ण्यं यदग्नेः पुरुषस्तु दण्डी ॥५१॥

तेषां तथा स्यात् सदसद्विचारो युक्तेर्बलात्सैव मता परीक्षा ।
एभिस्त्रिभिर्वस्तु सदैव लक्ष्यं सत्तार्किकाणां किल वृत्तिरेषा ॥५२॥

अव्यापकत्वं हि तदेकदेश्यतिव्यापकत्वं त्वितरानुवृत्ति ।
कृत्राप्यवर्तित्वमसंभवस्यैते लक्षणाभासतयात्रयोमी ॥५३॥

स्वपरव्यवसायिलक्षणं गदितं ज्ञानमिदं प्रमाणकृत् ।
सदसत्सकलार्थसंग्रहग्रहणाभिज्ञमतो विशेषकृत् ॥५४॥

यत्सन्निकर्षादिसंविदात्मा प्रामाण्यशाली न भवेत् कदाचित् ।
नार्थान्तरस्यैवमचेतनत्वात् स्वार्थोपपत्तौ करणत्वमस्य ॥५५॥

किं स्यात्प्रमायाः करणत्वमस्य प्रत्यक्षता वापि कथं घटेत ।
प्रमाणता वापिकुतस्तमांस्यात् नो सन्निकर्षे त्रितयं कदाचित् ॥५६॥

असन्निकृष्टं प्रमितेर्हि चक्षुरप्राप्यकारित्वत एव हेतोः ।
तदुद्भवः स्यात्खलु सन्निकर्षाभावेपि तस्यां न घटेत तत्ता ॥५७॥

चक्षुर्मनोवद्विषयोद्भवानुग्रहोपघातानुपलम्भतोपि ।
अप्राप्यकारीन्द्रियमण्डलेषु स्याद् व्यञ्जनावग्रहकश्चतुर्षु ॥५८॥

न विद्यते चक्षुषि तैजसत्वं न रश्मिवत्ता न च तद्गतिस्तु ।
अप्राप्तवस्तु प्रवरप्रकाशे तद्योग्यतैवं शरणं वदन्ति ॥५९॥

व्यवसायस्वभावं हि प्रमाणत्वादुदीरितम् ।
परोदितं तथा निर्विकल्पकं व्यवसायहृत् ॥६०॥

समारोपविरुद्धत्वाद् यन्नैवं न तदीदृशम् ।
तस्मिंस्तदध्यवसायो व्यवसायः शितेशितम् ॥६१॥

अतत्प्रकारे सति तत्प्रकारतान्तः समारोप इति प्रसिद्धः ।
विपर्ययः संशय एव तत्रोपचारतोऽनध्यवसायसंज्ञः ॥६२॥

विपरीतैककोटेस्तु निष्टंकनं विपर्ययः ।
शुक्तिकायां हि रजतं समारोपोयमादिमः ॥६३॥

अनिश्चितानेककोटि-स्पर्शिज्ञानं च संशयः ।
स्थाणुर्वा पुरुषोवेति समारोपो द्वितीयकः ॥६४॥

किमित्यालोचनप्रायं ज्ञेयोऽनध्यवसायकः ।
गच्छतश्च तृणस्पर्शविषयं ज्ञानमुच्यते ॥६५॥

पूर्वाकारपरिक्षयोत्तरधृताकारः स्मृतं कारणं,
पूर्वाकारपरिक्षयोत्तरपरीणामस्तु कार्यं भवेत् ।
निर्दिष्टं कारणं च साधकतमं तत्कारणं
स्यात्त्रिधोपादानं सहकारिकारणमतोऽपेक्षाकृतं कारणम् ॥६६॥

एकं त्वसाधारणकारणं स्यादन्यच्च साधारणमाहुरत्र ।
एकं ह्युपादानमतो मतं च तथान्यदन्येन कृतं कृतं तत् ॥६७॥

उत्पत्तौ परतः स्वतश्च परतो ज्ञप्तौ प्रमाणं भवेत्,
प्रत्यक्षं च परोक्षमेतदुभयं मानं जिनेन्द्रागमे ।
अक्षाधीनतयाऽस्मदादिविदितं स्पष्टं द्विधा
लौकिकं मन्यत्तत्किल पारमार्थिकमतो नित्यं सतां संमतम् ॥६८॥

आद्यं सांव्यवहारिकं पुनरपि द्वेधेन्द्रियाऽनिन्द्रियोत्पन्नत्वाद्विदितं
तथापि हि चतुर्भेदं तथाऽवग्रहः ।
ईहापायसुधारणाभिरुदितं ज्ञानं हि मत्यात्मकं,
तत्राद्यं विकलं तथा च सकलं तद्वान् स्मृतस्तीर्थकृत् ॥६९॥

ज्ञानावरणनाशाच्च क्षयोपशमतोपि वा ।
शब्दाद्यसंभविज्ञानं स्पष्टं स्वानुभवोदयात् ॥७०॥

ज्ञानं सांव्यावहारिकं निगदितं प्रत्यक्षमेवेन्द्रियैर्जन्यन्तत्किल
पारमार्थिकमिदं तस्माच्च तद्धेतुकम् ।
अन्यान्यव्यतिरिक्तलक्षणवतोः प्रत्यक्षता किं
तयोराद्ये स्यादुपचारतः कविवरैर्ज्ञाने परोक्षेऽग्रिमे ॥७१॥

स्पष्टं विशेषविशदप्रतिभासमानं प्रत्यक्षमेकमुदितं व्यवसायरूपम् ।
तद्देशतो हि विशदप्रतिभासनत्वात् ज्ञानं विशिष्टमिह सांव्यवहारिकं स्यात् ॥७२॥

ज्ञानं भवेदिन्द्रियजन्यमेकम् पुनस्तथानिन्द्रियजन्यमन्यत् ।
स्पर्शादिकानां पुनरिन्द्रियत्वमनिन्द्रियत्वं मनसो वदन्ति ॥७३॥

मनःपुनस्तदद्वयसाधनोत्कमप्राप्यकारिस्वमते च चक्षुः ।
ज्ञानं तथैवाहुरपीतराणि यत्प्राप्यकारीणी तदिन्द्रियाणि ॥७४॥

योग्येन्द्रियार्थसमयोद्भवमुख्यसत्ता, तन्मात्रगोचरसमुद्भवसद्विशिष्टम् ।
संगृह्यतेऽत्र विशदं खलु येन वस्तु, सोऽवग्रहः पुनरयं पुरुषः समस्ति ॥७५॥

तद्गोचरीकृतपदार्थविशेषसंविदीहास्ति संशयनिराकरणोद्भवाऽत्र ।
यद्येष एषः पुरुषः किल दाक्षिणात्यस्तत्प्रत्ययात्मकतया ग्रहणाभिमुख्यम् ॥७६॥

जातस्तथेहितविशेषविनिश्चितात्मा, भाषाद्यशेषविषयाचरणादपायः ।
निश्चित्य वैषः पुरुषः खलु दाक्षिणात्यो, याथात्म्यबोधविधिना विधिवत्प्रयुक्तः ॥७७॥

कालान्तरेण तद् विस्मरणाय योग्यं, तज्ज्ञानमेव गदिता किल धारणैषा ।
स्याच्चागृहीतविषयग्रहणादमीषां, कोप्यत्र पूर्वमुनिभिः कथितः क्रमोऽयम् ॥७८॥

तत्राद्यं विकलं निजावरणकच्छेदोद्भवोत्पत्तिमत्,
किञ्चित्स्यादसमस्तवस्तु विषयावच्छेदकत्वात् पुनः ।
प्रत्येवं प्रथमं हि यद्भवगुणौ सत्प्रत्ययौ यस्य तौ,
रूपिद्रव्यसुगोचरं तदवधिज्ञानं ह्यदः षड्विधम् ॥७९॥

चारित्रशुद्धिसंजातविशिष्टावरणक्षयात् ।
यन्मनोद्रव्यपर्यायालम्बनं विनिवेदितम् ॥८०॥

तद् द्वेधा संज्ञिजीवानां, मानुषक्षेत्रवर्तिनाम् ।
मनःपर्यायविज्ञानं मनःपर्यवसंज्ञिकम् ॥८१॥

स्वसामग्रीविशेषोद्यत्समस्तावरणक्षयात् ।
सकलं घातिसंघातविघातापेक्षमीरितम् ॥८२॥

समस्तवस्तु विस्तारं, साक्षात्कारि त्रिकालतः ।
सर्वथा सर्वदा नित्यं, केवलज्ञानमेव तत् ॥८३॥

सर्वज्ञोऽसौ वीतरागः प्रसिद्धो निर्दोषत्वात्सद्भिरेवोदितश्च ।
निर्दोषोऽयं सत्प्रमाणाऽविरोधिवाक्त्त्वादत्र स्पष्टदृष्टान्त एषः ॥८४॥

स्युः सूक्ष्मान्तरितातिदूरगुणिनस्त्वणवादयः कस्यचित्,
प्रत्यक्षाः सततं यथाहुतवहः साध्योनुमेयत्वतः ।
सर्वज्ञः किल सोस्त्यनिन्द्रियकतो ज्ञानाच्छुतः सुश्रुतात्,
यस्मादिन्द्रियजं न सर्वविषयं ज्ञानं भवेत्कर्हिचित् ॥८५॥

त्वमेव निर्दोष इतीह शास्त्राऽविरोधिवाक्देवयतो विरोधः ।
यथा प्रसिद्धेन न बाध्यतेऽत्र, तस्मादनेकान्तमताद्यदिष्टम् ॥८६॥

त्वद्वाक्सुधापानपराङ्मुखानां सदैवमेकान्तमतानुगानाम् ।
निजाप्तहेवाकविडम्बितानां स्वेष्टं च दृष्टेन हि बाध्यतेऽत्र ॥८७॥

चारित्रांशः कलौ भूरिभाग्यभाजां सुदुर्लभः ।
अस्मद् भाग्योदयादाप्तो गुरुश्चारित्रसागरः ॥८८॥

सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतेशःश्रिये,
कल्याणादिमसागराह्वगुरवो विद्वद्यशः सागराः ।

तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली,
प्रत्यक्षस्तबकः प्रमाणरसिकस्तत्राद्य एवाजनि ॥८९॥

-: द्वितीयः स्तबकः :-

अथ द्वितीयं प्रतिपाद्यमानाऽस्पष्टभावाभिमतं परोक्षम् ।
आद्ये परोक्षे हि मति श्रुते द्वे सैद्धान्तिकास्तावदिदं वदन्ति ॥९०॥

स्मरणं १ प्रत्यभिज्ञानं २ तर्कोऽ ३ थानुमितिः ४ श्रुतम् ५ ।
परोक्षं पञ्चधा प्राहुर्भूरयः पूर्व सूरयः ॥९१॥

मानार्पिता या प्रसभं प्रतीता प्रतीतिरेवानुभवः प्रतीतः ।
क्रमोत्तरं कारणमाहुरेषाम् क्रमोप्यमीषामयमेव सिद्धः ॥९२॥

संस्कारबोधोदितकारणेन तथानुभूतार्थकगोचरं यत् ।
तच्छब्दमात्रोल्लिखनस्वरूपं विज्ञानमेतत्स्मरणं परोक्षम् ॥९३॥

स्मृतं तथैवोपमितं वितर्कितं, पुनस्तथैवानुमितं श्रुतश्रुतम् ।
प्रत्यक्षतो वापि धृतं पुरा यत् सर्वज्ञबिम्बं स्मरणे निदर्शनम् ॥९४॥

हेतू तु यस्यानुभवस्मृती ते सामान्ययुग्मं विषयोपदेशः
तथा पुनः संकलनस्वरूपं तत् प्रत्यभिज्ञानमतो वदन्ति ॥९५॥

एकं हि पूर्वोत्तरकालवर्ति दशानुषक्तं सदृशत्वतोऽन्यत् ।
ततोऽन्यथाऽन्यत् किल योगक्लृप्तमन्तःप्रविष्टं ह्युपमानमत्र ॥९६॥

स एष दृष्टो जिनदत्त एष स गोसदृशो गवयस्तथाऽन्यः ।
गोर्वैसदृशो महिषस्त्वयन्तन्निदर्शनं संकलनात्मके स्यात् ॥९७॥

मानोपलम्भानुपलम्भहेतुर्व्याप्तिर्हि यस्मिन् विषयोपदेशः ।
अस्मिन्सतीदं भवति स्वरूपं तर्कोस्ति धूमो दहनस्तु यत्र ॥९८॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां निदर्शनं निदर्शनम् ।
अन्वयः सति सद्भावे व्यतिरेकस्ततोन्यथा ॥९९॥

तर्कः प्रमाणमात्रेणोपलम्भानुपलम्भतः ।
संभवः कारणं यत्र कालत्रितयवर्तिनोः ॥१००॥

साध्यसाधनयोर्व्याप्त्याद्यालम्बनमिदं हि यत् ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां संवेदनमुदीरितम् ॥१०१॥

साध्यसाधनयोर्नित्यं कालत्रितयवर्तिनोः ।
संबंधो व्याप्तिरित्येवाविनाभावितयोच्यते ॥१०२॥

अप्रत्यक्षपदार्थस्य कथं प्रामाण्यनिर्णयः ।
अर्थक्रियाभिसंवादादनुमानेन निर्णयः ॥१०३॥

अथानुमानं द्विविधं वदन्ति स्वार्थं परार्थं ह्युपचारतोपि ।
स्वस्मै हितं स्वार्थमिदं सुधीभिरन्यत्परस्मै प्रतिपाद्यमानम् ॥१०४॥

स्वार्थं स्वहेतुग्रहणव्याप्तिस्मरणपूर्वकम् ।
यदेव साध्यविज्ञानमनुमानं तदेव हि ॥१०५॥

अप्रतीतमनिराकृतमेतत् साध्यमेव यदभीप्सितमत्र ।
व्याप्तिपक्षसमयोदितसाध्यं तद्विकल्पवशतो पि च मानात् ॥१०६॥

साध्यं यदविनाभावसाधनं यत्र लक्षणम् ।
अन्यथानुपपत्त्यैकलक्षणं यत्र साधनम् ॥१०७॥

यावान्कश्चिदयं सधूमनिकरः सत्येव वह्नौ भवेत्,
यत्सत्त्वे प्रथमोन्वयो निगदितो यत्सत्त्वमेवोभयम् ।
धूमोऽत्राऽसति पावके भवति नो तत्तु द्वितीयोऽधुना,
ज्ञातव्यो व्यतिरेक एष सततं चैवाऽन्यथा लक्षणं ॥१०८॥

व्याप्तिः सदा द्रव्यगुणक्रियाभिरत्यन्तसंयोगविशेष एव ।
तथाविनाभाव इतीह नित्यसंबन्धिसंबद्धविशिष्टरूपा ॥१०९॥

प्रतिबन्धोऽविनाभावः संबन्धो व्याप्तिरिष्यते ।
हेतुव्याप्तिसमायोगः परामर्शः स उच्यते ॥११०॥

सहभावक्रमभावावनयोर्नियमः स्मृतोऽविनाभावः ।
व्याप्तेर्निश्चयतः स्याद् व्याप्तिः सैव प्रकाश्यते विबुधैः ॥१११॥

येन धर्मेण धर्मस्य, सहभावविनिश्चयः ।
वृक्षत्वं गमयत्येव शिंशपात्वेन हेतुना ॥११२॥

धूमस्यापि बृहद्भान्वंतरभावविनिश्चयः ।
धूमोग्निं गमयत्याशु क्रमभावः स्मृतोऽपि सः ॥११३॥

साधनं त्रिविधं कार्यस्वभावानुपलम्भभित् ।
पक्षोपि हेतुवत्साध्यः, साध्यसंबन्धसिद्धये ॥११४॥

पक्षस्य वचनं यत्स्यात् सा प्रतिज्ञा प्रकाश्यते ।
साध्यधर्मविशिष्टेऽपि पक्षत्वं धर्मिणि श्रुतम् ॥११५॥

अनुमानस्वरूपाप्तौ संबन्धस्मरणान्वितः ।
प्राहुर्लिङ्गपरामर्शः कारणं तत्र सूरयः ॥११६॥

धर्मिणोऽपि प्रसिद्धत्वं विकल्पाच्च प्रमाणतः ।
उभाभ्यां वापि विज्ञेयं स्वसंवेदनवेदकम् ॥११७॥

स्वार्थानुमानं स्यात् त्र्यङ्गं धर्मी साध्यं च साधनम् ।
साधनात्साध्यसंसिद्धिरनुमानप्रयोजनम् ॥११८॥

साध्यधर्मविशिष्टेऽपि पक्षत्वं धर्मिणि श्रुतम् ।
अन्यथानुपपत्त्यैकलक्षणो हेतुरिष्यते ॥११९॥

सद्धेतोर्ग्रहणं तथा स्मरणकं व्याप्तेस्तयोः संभवं,
साध्यज्ञानमतोऽनुमानकमिदं स्वार्थं सुधीभिर्धृतम् ।
साध्यत्वं च तथाप्रतीतमिति तत्त्रेधा श्रुते विश्रुतं,
किंत्वस्मादनिराकृताद् द्वयमिदं चाभीप्सितात्तत्त्रयम् ॥१२०॥

कृशानुमानयं देशः प्रोच्यते पक्षधर्मता ।
हेतूदितं धूमवत्वादनुमानं सुधीहितम् ॥१२१॥

हेतु प्रयोगतो द्वेधा तथोपपत्तिरन्वयः ।
अन्यथानुपपत्तिस्तु व्यतिरेकः पुरोदितः ॥१२२॥

परस्मै प्रतिपाद्यत्वात्प्रत्यक्षादेः परार्थता ।
तथैवमनुमानस्य सर्वत्रैवं विभावना ॥१२३॥

हेतोर्वचनतः स्वार्थं पक्षहेत्वोः परार्थकम् ।
बालव्युत्पत्तिसिद्ध्यर्थं पञ्चावयवमीरितम् ॥१२४॥

प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरास्पदं यस्य लक्षणम् ।
द्वेधा साधर्म्यवैधर्म्यभेदाद् दृष्टान्त एव सः ॥१२५॥

साध्यधर्मिणि सद्धेतोरुपसंहरणं तथा ।
धूमश्चात्र प्रदेशेऽयं तस्मादुपनयः स्मृतः ॥१२६॥

तत्पुनः साध्यधर्मस्य पूर्वयोगेन भाषितम् ।
तत्तस्मादग्निरत्रायमेतन्निगमनं स्मृतम् ॥१२७॥

यथाग्निमानयं देशः प्रोच्यते पक्षधर्मता ।
धूमवत्त्वाद्धेतुवाक्यमनुमानं परार्थकम् ॥१२८॥

य एवं च स एवं तौ दृष्टान्तोपनयावुभौ ।
पाकस्थानं निगमनं मन्दधीसिद्धये त्रयं ॥१२९॥

प्रकाश्यते साधनधर्मसत्ता तस्यां कृता साध्यसुधर्मसत्ता ।
साधर्म्यदृष्टान्त इति प्रदिष्टो यत्रास्ति भूमौ दहनस्तु तत्र ॥१३०॥

साध्याभावे साधनस्याप्यभावो वैधर्म्योक्तौ वै स दृष्टान्त एषः ।
शौचिः केशाभावतोस्याप्यभावो धूमस्यास्मिन् ज्ञेय एव ह्रदे सः ॥१३१॥

प्रयोगतोपि द्विविधः सहेतुस्तथोपपत्तिस्तु यदन्वयः स्यात् ।
ततोऽतिरिक्तस्तु तथान्यथानुपपत्तिसंज्ञो व्यतिरेक एव ॥१३२॥

द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभिदा हि हेतुः, साध्यन्तयोर्विधिनिषेधविशेषसिद्धिः ।
एते द्विधा तदविरुद्ध विरुद्धभेदात्, साध्येन सार्धमिह तच्च न वाऽपि हेतोः ॥१३३॥

कार्यात्पुनः कारणकार्यताभ्याम्, पूर्वोत्तराभ्यां च चरात्सहाय्यात् ।
स्मृतोपलब्धिस्तु तथैव वाऽन्या स्वभावतोऽपि प्रथितात्प्रयोगात् ॥१३४॥

सिद्धौ विधेस्तदविरुद्धयुतोपलब्धि,
र्व्याप्तादितश्च नियुताः किल षट्प्रकाराः ।
अन्या स्वभावनियुताप्रतिषेधसिद्धौ,
स्यात्सप्तधा किल विरुद्धयुतोपलब्धिः ॥१३५॥

सप्तप्रकाराः प्रतिषेधसिद्धौ यथाविरुद्धानुपलब्धिरेषा ।
विधिप्रतीतौ किल पञ्चधेति स्मृता विरुद्धाऽनुपलब्धिरेवम् ॥१३६॥

एताश्च सोदाहरणा ज्ञेयाः सद्भिस्तु विस्तरात् ।
ग्रन्थस्य भूयस्त्वभयान्नाऽत्रालेखि प्रमादतः ॥१३७॥

सद्भावरूपः किल वस्तुनोपि विधिः सदंशो गदितः सुधीभिः ।
अभावरूपः खलु वस्तुनस्तु, तस्यासदंशःप्रतिषेध एवम् ॥१३८॥

चतुर्धायं प्रागभावः प्रध्वंसाभाव एव वा ।
तथेतरेतराभावोऽत्यन्ताभावश्चतुर्थकः ॥१३९॥

यन्निवृत्तौ हि कार्यस्य समुत्पत्तिः प्रजायते ।
प्रागभावः स मृत्पिण्डो यथाकुम्भस्य कथ्यते ॥१४०॥

यदुत्पत्तौ हि कार्यस्य व्ययोऽवश्यं द्वितीयकः ।
कलशस्य यथाजातं यत्कपालकदम्बकम् ॥१४१॥

स्वरूपान्तरतः स्वीयरूपव्यावृत्तिरिष्यते ।
स्वस्वरूपव्यवच्छेदः, स चाऽन्यापोहनामतः ॥१४२॥

कुम्भस्वभावव्यावृत्तिर्यथास्तम्भस्वभावतः ।
इतरेतरनामा तु तार्त्तीयीकतयोदितः ॥१४३॥

तादात्म्यपरिणामस्य निवृत्तिस्तु त्रिकालतः ।
सोऽत्यन्ताभाव एवायं चेतनाचेतने यथा ॥१४४॥

आप्तस्य वचनादाविर्भूतमर्थस्य वेदनम् ।
आगमस्तूपचाराच्च स आप्तवचनात्मकः ॥१४५॥

अभिधेयं यथावस्तु यो जानाति यथास्थितम् ।
यथा ज्ञानं चाभिधत्ते स आप्त इति विश्रुतः ॥१४६॥

स द्वेधा लौकिको वक्तादिमो लोकोत्तरो जिनः ।
अविसंवादि वचनं, तस्य तस्माद् ध्वनिः स्मृतः ॥१४७॥

तद्वचनं वर्णपदवाक्यात्मकमुदीरितम् ।
अकारादिः पौद्गलिको वर्णः शब्दः पुनः स्मृतः ॥१४८॥

रूपादिवद् व्योमगुणो भवेन्नो शब्दोऽस्मदादीन्द्रियवेदनत्वात् ।
रूपादिवत्पौद्गलिकस्तदिन्द्रियार्थत्वतः पौद्गलिकत्वसिद्धिः ॥१४९॥

अन्योन्यापेक्षवर्णानां निरपेक्षा च संहतिः ।
पदं पदैरेव कृतं वाक्यस्येदं हि लक्षणम् ॥१५०॥

स्वस्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यां निवेदितम् ।
सदर्थस्य प्रतिपत्तिकारणं शब्द उच्यते ॥१५१॥

हेतुर्वाक्यार्थविज्ञाने आकांक्षा योग्यता तथा ।
सन्निधिश्चेति विज्ञेयं त्रयं साधारणं मतं ॥१५२॥

अभिव्यक्तेन संकेताज्जातिव्यक्त्युभयाश्रितात् ।
वाच्यवाचकभावेन सोर्थस्य प्रतिपादकः ॥१५३॥

शब्दार्थयोः प्रतिपत्ति, र्लक्षणा व्यञ्जनादिका ।
ध्वनेस्तात्पर्यविज्ञानं बहुधा च बहुश्रुतैः ॥१५४॥

स्यादस्तिभेद एवैकः स्यान्नास्तीति द्वितीयकः ।
स्यादस्तिनास्ति भेदोन्यस्तूर्योऽवक्तव्यसंगतः ॥१५५॥

स्यादस्तितोप्यवक्तव्यं स्यान्नास्तिपदतोपि वा ।
स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यं सप्तमो भेद एव च ॥१५६॥

स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यैरेकद्वाभ्यां विमिश्रितैः ।
भङ्गा विधिनिषेधाभ्यां स्यात्पदात्सप्त विश्रुताः ॥१५७॥

या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा,
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचनानेकात्मके वस्तुनि ।
निर्दोषानिरदेशि देव भवता सा सप्तभङ्गी यया,
जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् ॥१५८॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावैः, स्वैरन्यैस्तु घटोस्त्ययम् ।
स्वभावात्परभावाच्च द्रव्याद्यैर्नास्त्ययं यथा ॥१५९॥

कालादिभिरभेदेनोपचारात्प्रतिपाद्यते ।
प्रमाणवाक्यात्सैवायं, सकलादेश उच्यते ॥१६०॥

कालात्मरूपसंबन्धाः संसर्गोपक्रिये तथा ।
गुणिदेशार्थशब्दश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥१६१॥

तद्भावाव्यय एवैकं नित्यं लक्षणमिष्यते ।
पर्यायापेक्षयादन्यदनित्यत्वमथोच्यते ॥१६२॥

चार्वाकोध्यक्षमेकं सुगतकणभूजौ सानुमानं सशब्दं,
तद्द्वैतंपारमार्थः सहितमुपमया तत्त्रयं चाक्षपादः ।
अर्थापत्त्या प्रभाकृत् वदति च निखिलं मन्यते भट्ट एतत्
साभावं द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतश्च ॥१६३॥

आद्योऽनेकान्तवादश्च तथा सदसदात्मकः ।
नित्यानित्यात्मको वादोऽन्यः सामान्यविशेषकः ॥१६४॥

चत्वार एते वादाः स्युः स्याद्वादे न विरोधिनः ।
सप्तभङ्ग्यामभिलाप्या नाभिलाप्या द्वितीयके ॥१६५॥

चारित्रचारुमूर्तिर्यश्चारित्ररससागरः ।
चारित्रसिद्धये मे स्ताद् गुरुश्चारित्रसागरः ॥१६६॥

सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतेशः श्रिये,
कल्याणादिमसागराह्वगुरवो विद्वद्यशः सागराः ।
तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली
द्वैतीयीकतया परोक्षजनको गुच्छोऽभवत्तत्र सन् ॥१६७॥

-: तृतीयः स्तबकः :-

संक्षेपतः समाख्याय प्रमाणस्योभयस्य च ।
इत्थं स्वरूपसंख्ये च गोचरो गृह्यतेऽधुना ॥१६८॥

गुणपर्यायवद् द्रव्यं स्थित्युत्पादव्ययात्मकम् ।
अनेकान्तस्वरूपं चानुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाक् ॥१६९॥

ज्ञानस्यैतस्य विषयो लोकालोकद्वयात्मकः ।
प्रमेयं वस्त्विति ज्ञातं सकलं सकलीरितम् ॥१७०॥

षड्द्रव्यैः पूरितं सर्वं नवतत्त्वान्वितं स्मृतम् ।
निर्णीतं ज्ञानिभिः सम्यक् तथेत्थं ज्ञानगोचरः ॥१७१॥

गंतूण न परिच्छिन्दइ नाणं नेयंतयम्मि देसम्मि ।
आयत्थंचिय णवरं, अचिंतसत्ती उ विणेयं ॥१७२॥

लोहोवलस्स सत्ती, आयत्था चेव भिन्नदेसम्मि ।
लोहं आगरिसंती, दीसई इह कज्जपच्चक्खा ॥१७३॥

एवमिहनाणसत्ती, आयत्था चेव हंदि लोगंतं ।
जइ परिच्छिन्दइ सम्मं, को णु विरोहो भवे तत्थ ॥१७४॥

फलमस्य द्विधा तच्च प्रमाणेन प्रसाध्यते ।
आनंतर्येण वा पारंपर्येणेति प्रशस्यते ॥१७५॥

प्रमाणानां यदज्ञाननिवृत्तिः फलमुच्यते ।
औदासीन्यं फलं पारंपर्यात्सकलिवां सदा ॥१७६॥

विपरीतास्तदाभासा: प्रमाणादिस्वरूपत: ।
स्वरूपसंख्या विषयफलेभ्य: प्रतिपादिता: ॥१७७॥

स्वरूपाभास इत्येवं प्रमाणाभास उच्यते ।
अनुपपत्ते: स्वपरव्यवसायस्य तत्त्वत: ॥१७८॥

अज्ञानात्मकमित्येवं संन्निकर्षादिदर्शनम् ।
अस्य संविदितं ज्ञेयं तदनात्मप्रबोधकम् ॥१७९॥

परावभासकत्वं नैषां स्वमात्रावभासकम् ।
विपर्यया: समारोपा दर्शनं निर्विकल्पकम् ॥१८०॥

स्वपरव्यवसायस्तु न चैतेभ्य: प्रसिध्यति ।
आभासकास्तु त इमे प्रमाणस्य प्रकीर्तिता: ॥१८१॥

आद्याभास इतीहभेदसहितो गन्धर्वपूर्वारिदे,
दु:खेशं च तथाह्यवग्रह मुखाभासानिवेद्या: पुन: ।
आभासोप्यवधे: शिवस्य विदितो द्वीपाश्च सप्ताब्धय:
आभास: सकलस्य नैव विदित: प्रत्यक्षबोधेप्यमी ॥१८२॥

तदित्यननुभूतेपि स्मरणाभासे उच्यते ।
तुल्येर्थे प्रत्यभिज्ञानाभासमाहु: स एव च ॥१८३॥

तर्काभास इतीह मैत्रतनय: स श्याम एवोदित:,
पक्षाभाससमुद्गतं ह्यनुमितेराभासमेवं जगु: ।
तस्मात्तत्त्रितयं च तस्य विदितं पूर्वोक्तमेतत्त्रयं,
पक्षस्य व्यतिरेकत: समुदितं तस्मात्ततो लक्षणम् ॥१८४॥

प्रतीताद्यास्त्रयो ज्ञेया: साध्यधर्मविशेषणात् ।
आद्य: समस्ति जीवोयं यत्परेणार्हतान् प्रति ॥१८५॥

प्रमाणश्रुतलोकस्वभाषादिभिरनेकधा ।
आद्योनुष्णोग्निरैवायं द्वितीयोस्ति न सर्ववित् ॥१८६॥

तृतीयोपि हि जैनेन कर्तव्यं रात्रिभोजनम् ।
परदाराभिलाषोपि कर्तव्य: सर्वदा सदा ॥१८७॥

अथ्थं गइम्मि आइच्चे पुरत्थायअणुग्गए ।
आहारमइयं सव्वं मणसावि न पच्छए ॥१८८॥

पक्षाभासप्रभेदाश्च बहुशो बहुधोदिताः ।
सोदाहरणतस्ते तु द्रष्टव्या वृत्तितस्तथा ॥१८९॥

हेतुस्थाननिवेशात्तु हेत्वाभासा अहेतवः ।
असिद्धश्च विरुद्धश्चानैकान्तिक इमे त्रयः ॥१९०॥

अन्यथानुपपत्तिस्तु यस्य मानेन नो भवेत् ।
सोऽसिद्धो विदितो द्वेधोभयान्यतरभेदतः ॥१९१॥

असिद्धभेदा बहवः पञ्चविशंति भेदिनः ।
सविस्तरं विशेषस्तु विज्ञेयो वृत्तितः खलु ॥१९२॥

परिणामी पुनः शब्दश्चाक्षुषत्वात्तथादिमः ।
अचेतना हि तरवो द्वितीयः सुगतेरितः ॥१९३॥

विकल्पाद्धर्मिणः सिद्धिः क्रियते कारणादतः ।
द्वेधाविधर्मिणः सिद्धि र्विकल्पात्ते समागताः ॥१९४॥

विरुद्धस्तु भवेद्यस्य सैव साध्यविपर्ययात् ।
अनित्यो प्रत्यभिज्ञानादिमत्वात् पुरुषोप्ययम् ॥१९५॥

अवान्तरप्रभेदा ये ज्ञेयास्ते वृत्तितो भृशं ।
यथा पक्षविपक्षैकदेशवृत्तिविभेदतः ॥१९६॥

यस्य संदिह्यते सैव सोऽनैकान्तिक उच्यते ।
द्वेधा निर्णीतं संदिग्ध तद्युग्विपक्षवृत्तिकः ॥१९७॥

नित्यः शब्दः प्रमेयत्वादाद्यभेदो भवेदयम् ।
नैयायिकैस्तथोपाधिरुक्तोऽन्यः प्रतिपाद्यते ॥१९८॥

दृष्टान्ताभास एवायं, नवधापि द्विधा पुनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां, नवभेदा भवन्ति ते ॥१९९॥

अपौरुषेयः शब्दोत्राऽमूर्तत्वाद् दुःखवत्स्मृतः ।
निदर्शनानि दृष्टान्ताभासे ज्ञेयानि शास्त्रतः ॥२००॥

शब्दोयं परिणामवानुपनयाभासस्तु कार्यत्वतस्तस्मिन्नेव
फले तथा निगमनाभासस्तु शब्दस्तथा ।
तत्रानाप्तभवाहिचित्प्रवचनाभासश्च संख्यादितिः,
प्रत्यक्षं प्रवदन्ति मानमपरे जातो द्वितीयस्तथा ॥२०१॥

विषयाभास एवात्र सामान्योभयसंज्ञितम् ।
फलाभासस्तथाभिन्नं भिन्नं मानादुदीरितम् ॥२०२॥

ददाति सेवया सम्यक्सागरः सागरोद्भवम् ।
मया रत्नत्रयं प्राप्तं गुरुश्चारित्रसागरात् ॥२०३॥

सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतेशः श्रिये
कल्याणादिमसागराह्वगुरवो विद्वद्यशः सागराः ।
तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली
विज्ञातस्तबकःप्रमेयविषयस्तस्यां तृतीयोप्यभूत् ॥२०४॥

-: चतुर्थः स्तबकः :-

श्रुतप्रमाणाद्विषयीकृतस्य चार्थस्य योंऽशः प्रकटोऽपि येन ।
अंशस्य तस्मादितरस्य चौदासीन्यादभिप्रायविशेष एषः ॥२०५॥

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ।
जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥२०६॥

नयः प्रसिद्धः प्रतिपत्तुरेव स्वार्थैकदेशव्यवसायकत्वात् ।
सव्यासतोऽनेकविकल्पकल्पः समासतोयं द्विविधः प्रदिष्टः ॥२०७॥

द्रव्यार्थिकनयस्त्वेकोऽन्यः पर्यायार्थिकस्तथा ।
निश्चयो व्यवहारस्तु शुद्धाशुद्धभिदा द्विधा ॥२०८॥

नैगमः संग्रहोन्यश्च व्यवहारस्तृतीयकः ।
द्रव्यार्थिकनयस्यैते भेदाः प्रोक्ता अमी त्रयः ॥२०९॥

द्वितीयस्तु चतुर्भेदः ऋजुसूत्रश्च शब्दभाक् ।
समभिरूढ एव स्यादेवंभूतश्चतुर्थकः ॥२१०॥

अमी सप्त नयाः प्रोक्ताः श्रीमत्स्याद्वादवादिभिः ।
प्रमाणनयसंसिद्धं श्रीमत् स्याद्वादशासनम् ॥२११॥

अहो चित्रं चित्रं तव चरितमेतन्मुनिपतेः,
स्वकीयानामेषां विविध विषयव्याप्तिवशिनाम् ।
विपक्षाक्षेपाणां कथयसि नयानां सुनयतां,
झविपक्षक्षेमृणां पुनरिह विभो दृष्टनयताम् ॥२१२॥

निःशेषांशजुषां प्रमाणविषयीभूतं समासेदुषां,
वस्तूनां नियतांशकल्पनपराः सप्तश्रुताः संगिनः ।

औदासीन्यपरायणास्तदपरे चांशा भवेयुर्नया,
श्चेदेकान्तकलङ्कपङ्ककलुषास्ते स्युस्तदा दुर्नयाः ॥२१३॥

स्वाभिप्रेतादथांशाच्च सद्यस्तद्व्यतिरेकतः ।
इतरांशापलापी यो नयाभासः स उच्यते ॥२१४॥

अन्यदेव हि सामान्यमभिन्नज्ञानकारणं ।
विशेषोप्यन्य एवेति मन्यते नैगमो नयः ॥२१५॥

सद्रूपतानतिक्रान्तस्वस्वभावमिदं जगत् ।
सत्तारूपतया सर्वं निगृह्णन् संग्रहो मतः ॥२१६॥

व्यवहारस्तु तमिव प्रतिवस्तु व्यवस्थितिं
तथैव दृश्यमानत्वाद् व्यापारयति देहिनः ।

तत्रर्जुसूत्रनीतिः स्याच्छुद्धपर्यायसंश्रिता
नश्वरस्यैवभावस्य भावात् स्थितिवियोगतः ॥२१७॥

विरोधिलिंगसंख्यादि-भेदाद्भिन्नस्वभावताम् ।
तस्यैव मन्यमानोऽयं शब्दः प्रत्यवतिष्ठते ॥२१८॥

तथाविधस्य तस्यापि वस्तुनः क्षणवर्तिनः ।
ब्रूते समधिरुढस्तु संज्ञाभेदेन भिन्नताम् ॥२१९॥

एकस्यापि ध्वनेर्वाच्यं सदा तन्नोपपद्यते ।
क्रियाभेदेन भिन्नत्वादेवंभूतोभिमन्यते ॥२२०॥

तत एव परामर्शाभिप्रेतधर्मावधारणात्मकतयाऽशेषधर्मतिरस्कारेण प्रवर्तमानो दुर्नयसंज्ञामश्नुते नैगमनयदर्शनानुसारिणौ नैयायिकवैशेषिकौ संग्रहाभिप्रायप्रवृत्ताः सर्वेप्यद्वैतवादाः सांख्यदर्शनं च व्यवहाररूपानुपपत्तिप्रायश्चार्वाकदर्शनं ऋजुसूत्रोक्तप्रवृत्तबुद्धयस्तथागताः शब्दादिनयावलम्बिनो वैयाकरणादयः ॥

द्रव्यं पुरोक्तं हि तदेव सोर्थो द्रव्यार्थिकोयं त्रिविधः प्रदिष्टः ।
स्वार्थैकदेशस्य तथाविधस्य वस्त्वंशतायाश्च तथैव तत्त्वात् ॥२२१॥

मुख्यामुख्यस्वरूपेण धर्मयोर्धर्मिणोस्तयोः ।
विचक्षणं च तेनैकगमो नैगम उच्यते ॥२२२॥

नायं वस्तु न वा वस्तु वस्त्वंशः कथ्यते बुधैः ।
नासमुद्रः समुद्रो वा समुद्रांशो यथैव हि ॥२२३॥

तन्मात्रस्य समुद्रत्वे शेषांशस्याऽसमुद्रता ।
समुद्रबहुता वा स्यात् तत्त्वेकास्तु समुद्रवित् ॥२२४॥

तयोश्च चैतन्यकमात्मनीतिः पर्यायवद् वस्तु च धर्मिणोः स्यात् ।
जीवः सुखीयो विषयाश्रितः क्षणं तृतीयभेदः खलु धर्मधर्मिणोः ॥२२५॥

उभे च सत्त्वचैतन्ये पृथक्भूते तथात्मनि ।
नैगमाभास एवात्र पार्थक्याद्धर्मधर्मिणोः ॥२२६॥

वैशेषिकमतं चात्र नैयायिकस्य दर्शनम् ।
एतद्द्वयं तथा नैगमाभासे च प्ररूपितम् ॥२२७॥

सामान्यमात्रग्रहणप्रवीणः परोपरः स्यादविशेषतोपि ।
तथापरामर्श इतीह विश्वमेकं प्रदिष्टः परसंग्रहोयम् ॥२२८॥

सत्तैव तत्त्वं न पुनर्विशेषा अद्वैतवादिप्रकाराश्च सांख्याः ।
एते तदाभासतया हि विज्ञा एकान्तवादात्परसंग्रहस्य ॥२२९॥

द्रव्यत्वमाश्रित्य तदन्तरालव्यक्त्याश्रितं तेषु तदीयभेदाः ।
तथा परःसंग्रह एषु नागनिमीलिकान्द्रागवलम्ब्यमानः ॥२३०॥

द्रव्यत्वमेकं सकलं हि जानन् तेषां विशेषान्खलु निह्नुवानः ।
तथातदाभास इतीरितः स्यात् सपर्ययत्वस्य तथाऽविशेषात् ॥२३१॥

अर्थास्तथासंग्रहसंगृहीतात्तथापरामर्शविशेष एषः ।
तानेवयोयं प्रकटीकरोति नयो नयज्ञैर्व्यवहारनामा ॥२३२॥

द्रव्यं हि यत्सत् किल पर्ययो वा, भासः पुनस्तस्य सुधीभिरुक्तः ।
निदर्शनं नास्तिकदर्शनं तै, र्मान्यं जगद्भूतचतुष्टयैक्यं ॥२३३॥

पर्यायार्थिक एवाय-मृजुसूत्रस्तथादिमः ।
शब्दः समभिरूढश्चेत्येवंभूतश्चतुर्थकः ॥२३४॥

अतीतानागतवर्तमानसमये कौटिल्यवैकल्पतो,
द्रव्यं प्राञ्जलमर्पयत्यविरतं पर्यायमात्रं नवा ।
संप्रत्यस्ति सुखादिरेवहितादाभासोप्यसौ सौगतः,
तत्सर्वं क्षणिकं तथागतगुणं द्रव्यापलापीश्रुतः ॥२३५॥

शब्दाख्यश्च नयोध्वनेरपि भवेत्कालादितोर्थस्यभित्
स्वर्णाद्रिस्त्वभवद्भविष्यतिभवत्पर्यायतीर्थाभिदा ।

भिन्नार्थं लभते निरुक्तिभिर्दयापर्यायशब्देषु
सः इन्द्रस्त्विन्दनतस्तथैवशकनाच्छक्रश्च तद्दर्शनम् ॥२३६॥

यथेन्द्रशक्र इत्याद्या: शब्दाभिन्नाभिधेयका: ।
भिन्नशब्दत्वत: कुम्भस्तदाभासस्तुरंगवत् ॥२३७॥

पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदादर्थं च भिन्नं प्रवदन्ति विज्ञा: ।
गुणक्रियाशब्दविशेषतोऽपि तथा तदाभास इतीह वृद्धा: ॥२३८॥

एवंभूतनय: क्रियाश्रितविधे: शब्दस्य वाच्यक्रियाविष्टार्थं
प्रकटीकरोति किल गौरश्वश्च तद्दर्शनम् ।

चेष्टाशून्यमिदं घटाख्यमिति तत्तस्माद् घटादे:
क्रिया शून्यत्वात्पटवत्त्वनेन वचसाभासस्त्वदीयो भवेत् ॥२३९॥

चत्वार एते प्रथमेर्थनिरूपणस्य प्रवणत्त्वतो ये ।
भवन्ति चार्थोपपदे नयास्ते शेषास्त्रय: शब्दनया वदन्ति ॥२४०॥

को वा स्याद् बहुविषय : को वाऽल्पविषयो नय: ।
विवेचयन्ति विधिवन्नयज्ञा नयशासने ॥२४१॥

पूर्व: पूर्वो नयो यस्तु स स्यात्प्रचुरगोचर: ।
पर: पर: परिमितविषय: प्रतिपाद्यते ॥२४२॥

उदधाविव सर्वसिन्धव: समुदीर्णास्त्वयि नाथ दृष्टय: ।
नच तासु भवान् प्रदृश्यते प्रविरक्तासु सरित्स्विव नोदधि: ॥२४३॥

नयास्तव स्यात्पदलाञ्छना इमे रसोपविद्धा इव लोहधातव: ।
भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो भवन्तमार्या: प्रणता हितैषिण: ॥२४४॥

नित्यसामान्यसदभिलाप्येतरचतुष्टयी ।
जात्यन्तरत्वाद् स्याद्वादे दोषपोषाय नो भवेत् ॥२४५॥

रसादयो धातव ईशवाञ्छा फला नया: स्यात्पदलाञ्छनास्ते ।
प्रमाणवत्ते फलदायका: स्युश्चारित्रसत्सागरसंप्रदिष्टा: ॥२४६॥

सूरि: श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतेश: श्रिये,
कल्याणादिमसागराह्वगुरवो विद्वद्यश: सागरा: ।
तच्छिष्यस्य यशस्वत: कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली,
तत्रायं स्तवको नयाद्भुतरसप्रेष्ठश्चतुर्थोभवत् ॥२४७॥

स्याद्वादसुखबोधाय प्रक्रियेयं प्रतिष्ठिता ।
विचाराम्बुधिबोधाय देवसूरिवचोनुगा ॥२४८॥

पू.मु. श्री यशस्वत्सागरविरचिता

(७) ॥ स्याद्वादमुक्तावली ॥

॥ जैनविशेषतर्कः ॥

प्रणम्य शङ्खेश्वरपार्श्वनाथं प्रकाशितानन्तपदार्थसार्थम् ।
शिशुप्रबोधाय तमस्तमोऽर्कः प्रकाश्यते जैनविशेषतर्कः ॥१॥

जीवाजीवौ नभः कालौ धर्माधर्मौ विशेषतः ।
समस्वभावाः स्याद्वादे पदार्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥२॥

तत्रास्ति सामान्यविशेषकाद्यनेकात्मकश्चैव पदार्थसार्थः ।
एकोऽनुवृत्तिव्यतिवृत्तितोऽन्यश्चार्थक्रियाया घटनात् त्रिपद्या ॥३॥

सामान्यं द्विविधं तिर्यगूर्ध्वतादिविभेदतः ।
आद्यं साधारणं व्यक्तौ द्वितीयं द्रव्यमेव च ॥४॥

तिर्यग् (क्) सामान्यमेवैतद् यथा गोत्वं गवां व्रजे ।
तल्लक्षणं प्रतिव्यक्ति तुल्या परिणतिस्तथा ॥५॥

द्रवत्यदुद्रवत्द्रोष्यत्येवं त्रैकालिकं च यत् ।
तांस्तांस्तथैव पर्यायान् तद्द्रव्यं जिनशासने ॥६॥

अवच्छेदक एवायं व्यतिवृत्तिर्हि लक्षणम् ।
विशेषोऽपि द्विप्रकारो गुणपर्यायभेदतः ॥७॥

सहोत्पन्ना गुणा द्रव्ये पर्यायाः क्रमभाविनः ।
पर्येत्युत्पादनाशौ च पर्यायः समुदाहृतः ॥८॥

पर्यायाणां गुणानां च भेदो नो धर्म्यपेक्षया ।
स्वरूपापेक्षया भेदः प्रोक्तोऽयं पूर्वपण्डितैः ॥९॥

स्यादव्ययमनेकान्तद्योतकं सर्वथैव यत् ।
तदीयवादः स्याद्वादः सदैकान्तनिरास (स) कृत् ॥१०॥

सर्वं तथान्वयि द्रव्यं नित्यमन्वयदर्शनात् ।
अनित्यमेतत् पर्यायैः पर्यायानुभवादिदम् ॥११॥

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥१२॥

एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः ।
धर्मादीनां षोडशः स्युः, काले पञ्चदशस्मृताः ॥१३॥

उत्पादध्रौव्यनाशास्ते स्युर्भिन्नाभिन्नलक्षणात् ।
परस्परं हि सापेक्षा(:) सैवेयं त्रिपदी मता ॥१४॥

रहितः स्थितिनाशाभ्यां न चोत्पादस्तु केवलः ।
उत्पादध्रौव्यरहितो न नाशः केवलो मतः ॥१५॥

रहितोत्पादनाशाभ्यां नैकका केवला स्थितिः ।
अन्यथानुपपत्तेश्च दृष्टान्ताः कूर्मरोमवत् ॥१६॥

सर्वं जीवादिषट् (ड्) द्रव्यं गुणपर्यायसंयुतम् ।
अनेकान्तकलाक्रान्तं सिद्धं वस्तु त्रयात्मकम् ॥१७॥

प्रध्वस्ते कलशे शुशोच तनया मौलौ समुत्पादिते,
पुत्रः प्रीतिमवाप कामपि नृपः शिश्राय मध्यस्थताम् ।
पूर्वाकारपरिक्षयस्तदपराकारोदयस्तद्द्वयाधारश्चैक
इति स्थितं त्रयमतं (तः) तत्त्वं तथा प्रत्ययात् ॥१८॥

तथानेकान्ततो वस्तु भावाभावोभयात्मकम् ।
यथा सत्त्वं स्वरूपेण पररूपेण चान्यथा ॥१९॥

पटाद्यभावरूपश्चेद् घटोऽयं न भवेत्तदा ।
घटः पटादिरेव स्यात् तस्मादेष द्वयात्मकः ॥२०॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयापि घटो यथा ।
स्वभावेन परभावाद्भिन्नस्तदुभयात्मकः ॥२१॥

अर्थक्रियाकारि तदेव वस्तु स्वद्रव्यशक्त्या हि भवेत् समर्थम् ।
पर्यायशक्त्या तदिहासमर्थम् सापेक्षमेतद् सहकारिराशेः ॥२२॥

विरुद्धधर्माध्यासस्तु नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ।
गुडनागरभैषज्यान्न दोषोऽयं द्वयात्मनि ॥२३॥

चारित्रादिमसागराः समभवन् विद्यापगासागराः,
येषां ध्यानवशा प्रसादमकरोत् पद्मावतीदेवता ।
उर्वीशा बहुशो यदीयवचनादाखेटकं तत्यजुः,
ध्याता(:)श्रीगुरवो भवन्तु मम ते सद्यः सहायप्रदाः ॥२४॥

इत्थं श्रीसमयः सरानुसुकृतं स्याद्वादवादे सदा,
सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतोर्वीश्वरः ।
कल्याणादिमसागराह्वगुरवः प्राज्ञा यशःसागराः
तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली ॥२५॥

-: द्वितीयः स्तवकः :-

जीवो द्रव्यं प्रमातात्मा ज्ञातश्चोभयमानतः ।
सच्चैतन्यस्वरूपोऽयं पर(रि)णामी स विश्रुतः ॥२६॥
कर्ता भोक्ता तनूमानः प्रतिक्षेत्रं पृथग् (क्) स्थितः ।
विशिष्टोऽपि पौद्गलिको दृष्टवान् दिग्विशेषणैः ॥२७॥
ज्ञानं प्रमाणं स्वपरव्यवसायीति लक्षणम् ।
सदसद्वस्तूपादेयहेयक्षममुदीरितम् ॥२८॥
प्रामाण्यं सन्निकर्षादेरज्ञानस्येह नोच्यते ।
अचेतनत्वाद्वा स्वीयनिश्चयाकरणत्वतः ॥२९॥
व्यवसायस्वभावं हि प्रमाणत्वादुदीरितम् ।
समारोपविरुद्धत्वात् यन्नैवं न तदीदृशम् ॥३०॥
तस्मिंस्तदध्वसायव्यवसायः शि(सि)ते शि(सि)तम् ।
यथावस्थितसज्ज्ञानं याथार्थ्यमपरे विदुः ॥३१॥
यद्विपरीतैककोटिनिष्टङ्कनं विपर्ययः ।
शुक्तिकायां हि रजतं समारोपोऽयमादिमः ॥३२॥
अनिश्चितानेककोटिस्पर्शि ज्ञानं च संशयः ।
स्थाणुर्वा पुरुषो वेति समारोपो द्वितीयकः ॥३३॥
किमित्यालोचनं ज्ञानं ज्ञेयोऽनध्यवसायकः ।
गच्छतश्च तृणस्पर्शि ह्युपचारात् तृतीयकः ॥३४॥
द्विविधं कारणं ज्ञेयमसाधारणमादिमम् ।
साधारणं ततस्तावत्तत् साधकतमं स्मृतम् ॥३५॥
पूर्वाकारपरित्यागाज्जहद्वृत्तोत्तराकृतिः ।
उपादानकारणं तद् मृत्पिण्डाः (ण्डः) कलशस्य च ॥३६॥

पूर्वाकारपरित्यागोत्तराकारस्य निर्मितौ ।
परिणामश्च कार्यत्वं मृत्स्नायां कलशो यथा ॥३७॥

उपादानादित्रितयं कारणं सद्भिरिष्यते ।
कार्यकारणताभावो नोक्तो ग्रन्थस्य गौरवात् ॥३८॥

उत्पत्तौ परतः स्वतश्च परतो ज्ञप्तौ प्रमाणं भवेत्,
प्रत्यक्षं च परोक्षमेतदुभयं मानं जिनेन्द्रागमे ।

अक्षाधीनतयास्मदादिविदितं स्पष्टं तथा लौकिकम्,
द्वेधा तत् प्रियपारमार्थिकमिदं द्वेधा पुनः संमतम् ॥३९॥

आद्यं सांव्यवहारिकं पुनरपि द्वेधेन्द्रियातीन्द्रियोत्पन्नत्वाद्
द्वितयं तथापि (च) चतुर्भेदं यथाऽवग्रहः ।

ईहावायसुधारणादिभिरिदं जातं पुनस्तद्धितं,
तत्राद्यं विकलं तथा च सकलं तद्वान् स्मृतस्तीर्थकृत् ॥४०॥

अवध्यावरणोच्छेदादवधिज्ञानमिष्यते ।
गुणप्रत्ययमेवाद्यं तद्रूपिद्रव्यगोचरम् ॥४१॥

चारित्रशुद्धिसंजाताद् विशिष्टावरणक्षयात् ।
यन्मनोद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारि निवेदितम् ॥४२॥

तथा हि संज्ञिजीवानां मानुषक्षेत्रवर्त्ति (र्ति) नाम् ।
मनः पर्यायविज्ञानं मनःपर्यायसंज्ञिकम् ॥४३॥

सामग्रीतः समुद्भूतात् समस्तावरणक्षयात् ।
सकलं घातिसंघातविघातापेक्षमीहितम् ॥४४॥

समस्तवस्तुपर्यायसाक्षात्कारि त्रिकालतः ।
सर्वथा सर्वद्रव्याद्यैः केवलज्ञानमेव तत् ॥४५॥

अर्हन्नेवास्ति सर्वज्ञो निर्दोषत्वादुदीरितः ।
यस्तु नैवं स नैवं स्यात् यथा रथ्यापुमानसौ ॥४६॥

मानाविरोधिवाक्त्वा(क्यत्वा)त् निर्दोषोऽर्हन्निगद्यते ।
यस्तु नैवं स नैवं स्यात् यथा रथ्यापुमानसौ ॥४७॥

तस्येष्टस्य तथा प्रमाणविषयेनाबाध्यमानत्वतः,
तद्वाचः प्रतिपाद्यमानसुविधेस्तेनाविरोधोदयः ।
मानेनापि न बाध्यते निजमतं मानाविरुद्धोदितः,
ज्ञेयोऽर्हन्नयमेव विश्वविदितः श्रीवर्धमानप्रभुः ॥४८॥

चारित्रचारुमूर्तिय(र्य)श्चारित्ररससागरः ।
चारित्रसिद्धये मे स्ताद् गुरुश्चारित्रसागरः ॥४९॥

सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतोर्व्वीश्वरः,
कल्याणादिमसागराह्वगुरवः प्रज्ञा यशः सागराः ।
तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली,
प्रत्यक्षस्तबकस्तदा समभवत् तस्यां द्वितीयोऽधुना ॥५०॥

तृतीयः स्तबकः

अथ द्वितीयं प्रतिपाद्यमानास्पष्टत्वभावाभिमतं परोक्षम् ।
आद्ये परोक्षे हि मतिश्रुते द्वे सैद्धान्तिकास्तावदिदं वदन्ति ॥५१॥

स्मरणं प्रत्यभिज्ञानं तर्कोऽथानुमितिः श्रुतम् ।
परोक्षं पञ्चधा प्राहुर्भूरयः पूर्वसूरयः ॥५२॥

संस्कारबोधसंभूतमनुभूतार्थवेदनम् ।
तत् तीर्थकृत्प्रतिच्छन्दः स्मरणं प्रथमोदितम् ॥५३॥

मानार्पिता प्रतोतिर्या स एवानुभवः स्मृतः ।
संकलनं विवक्षातो वस्तुप्रत्यवमर्शनम् ॥५४॥

प्रत्यभिज्ञानमेवात्रानुभवस्मृतिहेतुकम् ।
सामान्यद्वयविषयं तथा संकलनात्मकम् ॥५५॥

स एवायं जिनदत्तस्तथा गोपिण्ड एष सः ।
तत्तज्जातीय एवायं गोसदृग्गवयस्तथा ॥५६॥

तर्कः प्रमाणमात्रेणोपलम्भानुपलम्भतः ।
संभवः कारणं यत्र कालत्रितयवर्तिनोः ॥५७॥

साध्यसाधनयोर्व्याप्त्याद्यालम्बनमिदं हि यत् ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां संवेदनमिदं हि सः ॥५८॥

यावान् कश्चिदयं स धूमनिकरः सत्येव वह्नौ भवेत्,
यत्सत्वे(त्त्वे) प्रथमोऽन्वयो निगदितो यत्सत्त्वमेवोभयम् ।
धूमोऽत्रासति पावके भवति नो सद्यो द्वितीयोऽधुना,
ज्ञातव्यो व्यतिरेक एष हि ततश्चैवान्यथा लक्षणम् ॥५९॥

प्रतिबन्धोऽविनाभावसंबन्धो व्याप्तिरिष्यते ।
हेतुव्याप्तिसमायोगः परामर्शः स उच्यते ॥६०॥

द्वेधानुमानं स्वार्थं च परार्थमुपचारतः ।
व्युत्पन्नानां तदेवेकं सहेतुवचनात्मकम् ॥६१॥

सद्धेतोर्ग्रहणं तथा स्मरणकं व्याप्तेस्तयोः संभवम्,
साध्यज्ञानमतोऽनुमानमिदकं स्वार्थं सुधीभिर्धृतम् ।
साध्यत्वं(च) तथाप्रतीतमिति तत् त्रेधा श्रुते विश्रुतम्,
किं त्वस्मादनिराकृतं द्वयमिदं चाभीप्सितं तत् त्रयम् ॥६२॥

साध्यधर्मविशिष्टेऽपि पक्षत्वं धर्मिणि श्रुतम् ।
अन्यथानुपपत्त्यैकलक्षणो हेतुरिष्यते ॥६३॥

कृशानुमानयं देशः प्रोच्यते पक्षधर्मता ।
हेतूदितं धूमवत्त्वादनुमानं सुधीहितम् ॥६४॥

हेतुप्रयोगतो द्वेधा तथोपपत्तिरन्वयः ।
अन्यथानुपपत्तिस्तु व्यतिरेकः पुरोदितः ॥६५॥

परस्मै प्रतिपाद्यत्वात् प्रत्यक्षादेः परार्थता ।
तथैवमनुमानस्य सर्वत्रेयं पर(रा)र्थता ॥६६॥

विशेषाद् व्युत्पादयितुमधुना मन्दमेधसः ।
पञ्चावयवविख्यातमनुमानमुदीरितम् ॥६७॥

प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरास्पदं यस्य लक्षणम् ।
द्वेधा साधर्म्यवैधर्म्यभेदात् दृष्टान्त एव सः ॥६८॥

प्रकाश्यते साधनधर्मसत्ता तस्यां कृता साध्यसुधर्मसत्ता ।
साधर्म्यदृष्टान्त इति प्रदिष्टौ यत्रास्ति धूमो दहनस्तु तत्र ॥६९॥

साध्याभावे साधनस्याप्यभावो वैधर्म्योक्तेर्वै स दृष्टान्त एषः ।
शौचिःकेशाभावतोऽस्याप्यभावो धूमस्यास्मिन् ज्ञेय एव द्रहे सः ॥७०॥

साध्यधर्मिणि सद्धेतोरुपसंहरणं यथा ।
धूमश्चात्र प्रदेशेऽयं तस्मादुपनयः स्मृतः ॥७१॥

तत्पुनः साध्यधर्मस्य पूर्वयोगेन भाषितम् ।
तत्तस्मादग्निरत्रायमेतद् निगमनं स्मृतम् ॥७२॥

य एवं च स एवं तौ दृष्टान्तोपनयौ स्मृतौ ।
पाकस्थानं निगमनं मन्दधीसिद्धये त्रयम् ॥७३॥

चारित्रनिम्नगानाथसमुल्लासनचन्द्रमाः ।
भूयो भद्रं स मे दद्यात् गुरुश्चारित्रसागरः ॥७४॥

सूरिः श्रीविजयप्रभस्तपगणाधीशो नतोर्व्वीश्वरः,
कल्याणादिमसागराह्वगुरवः प्राज्ञा यशःसागराः ।
तच्छिष्यस्य यशस्वतः कृतिरियं स्याद्वादमुक्तावली,
तार्तीयीकतयानुमानविलसद्गुच्छोऽ(यमत्रा)प्यभूत् ॥७५॥

❖ ❖ ❖

चिरन्तनजैनमुनिप्रवरप्रणीतः

(८) सर्वसिद्धान्तप्रवेशकः

॥ नमः सर्वज्ञाय ॥

सर्वभावप्रणेतारं प्रणिपत्य जिनेश्वरम् ।
वक्ष्ये [१]सर्ववि(नि)गमेषु यदिष्टं तत्त्वलक्षणम्[२] ॥१॥

सर्वदर्शनेषु प्रमाण-प्रमेयसमुच्चयप्रदर्शनायेद[३]मुपदिश्यते ।

[नैययिकदर्शनम्]

तत्र नैयायिकदर्शने तावत् ''प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्ता-ऽवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभासच्छल-जाति-निग्रहस्थानानां [४]तत्त्वज्ञानाद् निःश्रेयसाधिगमः'' [न्यायसूत्र १।१।१] ।

अस्य व्याख्या-प्रणीयतेऽनेनेति प्रमाण[५]म् । तस्य [६]च सामान्यलक्षणम्-

---

टिप्पणानि

श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वं सद्गुरुदेवांश्च **भुवनविजयाख्यान्** ।
प्रणिपत्य परमभक्त्या टिप्पणमिह तन्यते किञ्चित् ।

सर्वदर्शनसिद्धान्तेषु सम्यक् प्रवेशकतया यथार्थाभिधस्य चिरन्तनेन केनचिज्जैनमुनिप्रवरेण रचितस्यास्य सर्वसिद्धान्तप्रवेशकग्रन्थस्य तालपत्रेषु लिखितं यत् प्रतिद्वयं जेसलमेरनगरे जैनज्ञानभाण्डागारे विद्यते तदवलम्ब्य सम्पादितोऽयं ग्रन्थः । तत्रैका प्रतिर्विक्रमसंवत् १२०१ वर्षे लिखिता ''९ $\frac{१}{२}$ X १ $\frac{१}{२}$'' इंच प्रमिता B इति संज्ञयात्र व्यवहृता । अस्यां प्रतौ दिङ्नागरचितो न्यायप्रवेशकः (पत्र १-१७), सर्वसिद्धान्तप्रवेशकः (पत्र १७-४१), हरिभद्रसूरिविरचिता न्यायप्रवेशकटीका (पत्र ४२-१३४) इति ग्रन्थत्रयं विद्यते । अपरा त्वितोऽपि प्राचीना जीर्णप्राया १७ पत्रात्मिका ''१२$\frac{३}{४}$ X १$\frac{१}{२}$'' इंच प्रमिता प्रतिः A संज्ञयात्र व्यवहृता । एवं च A-B प्रत्योर्मध्ये ये उपयोगिनः पाठभेदास्तेऽत्र A संकेतेन B संकेतेन वोपन्यस्ताः । स्पष्टीकरणाद्यर्थमुपयोगीनि टिप्पणानि च निवेश्य सम्पादितोऽयं ग्रन्थो देव-गुरुकृपाबलात् ॥

१. सर्वनिगमेषु सर्वसिद्धान्तेष्विति भावः । ''गमनं गमः परिच्छेद इत्यर्थः । निश्चितो गमो निगमः ।'' न्यायावतारवृत्ति पृ० ७५ । ''निगमाः पूर्वणिग्वेदनिश्चयाध्ववणिक्पथाः ।'' हैमकोशः ॥ २. इदं मङ्गलपद्यं B प्रतौ नास्ति ॥ ३. मपदि A ॥ ४. **तत्त्वपरिज्ञानाद्** A ॥ ५. ''प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्''-**न्यायकलिका०** पृ० १ । ६. च B मध्ये नास्ति ॥

[७]अर्थोपलब्धिहेतुः प्रमाणम् । उपलब्धिश्च[८] [९]हानादिबुद्धिः । तच्चतुर्धा, तद्यथा- "प्रत्यक्षा-ऽनुमानो-पमान-शब्दाः प्रमाणानि" [न्या० सू० १।१।३] । तत्र प्रत्यक्षम् - इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्" [न्या० सू० १।१।४] । अस्य गमनिका - इन्द्रियाणि घ्राणादीनि, [१०]अर्था घटादयो गन्धादयश्च, तेषां सन्निकर्षः सम्बन्धः, तस्मात् सन्निकर्षादुत्पन्नम्, [११]नाऽभिव्यक्तम्, ततश्च साङ्ख्यमतव्यवच्छेदः । ज्ञानग्रहणात् सुखादिव्यवच्छेदः । [१२]तच्च शब्देन व्यपदिश्यमानं शाब्दं [१३]प्रसज्यते, तेनोच्यते-अव्यपदेश्यमिति । तथा तदेव ज्ञानं व्यभिचार्यपि भवति, तेनेह अव्यभिचारि इति । व्यवसायात्मकम् निश्चयस्वभावम्, ततश्च संशयज्ञानव्यवच्छेदः । प्रत्यक्षम् इति लक्ष्यनिर्देशः ॥

अनुमानम् - "**तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम् - पूर्ववत्, शेषवत्, सामन्यतोदृष्टं च**" [न्या० सू० १।१।५] इति । **तत्पूर्वक**मिति प्रत्यक्षपूर्वकम् । त्रिविधमिति लिङ्गविभागः । पूर्ववदिति कारणात् कार्यानुमानम्, यथा मेघोन्नतिदर्शनाद् भविष्यति वृष्टिरिति । शेषवदिति कार्यात् कारणानुमानम्, यथा विशिष्टाद् नदीपूरदर्शनात् उपरि वृष्टो देवः इति गम्यते । **सामान्यतो दृष्टं** नाम यथा देवदत्तादौ गतिपूर्विकां देशान्तरप्राप्तिमुपलभ्य आदित्येऽपि समधिगम्यते ॥

"प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्" [न्या० सू० १।१।६] । प्रसिद्धो गौः, तेन सह [१४]यत् **साधर्म्यं** सामान्यं ककुद-खुर-विषाणादिमत्त्वम्, तस्मात् [१५]साधर्म्यात् **साध्यस्य** गवयस्य **साधनमुपमानम्**, यथा गौः तथा गवय इति । [१६]किं पुनरत्रोपमानेन क्रियते ? संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रतिपत्तिरुपमानार्थः ॥

---

७. "उपलब्धिहेतुश्च प्रमाणम् ।"-**न्यायभाष्य** २।१।१ । **न्यायवार्तिक०** पृ० १५ । "अर्थोपलब्धिहेतुः स्यात् प्रमाणं तच्चतुर्विधम् ।" **षड्दर्शनसमुच्चय** ॥१६॥ "अर्थोपलब्धिहेतुः प्रमाणं इति नैयायिकादयः"-**न्यायावतारवृत्ति०** पृ० ९ । **प्रमाणमीमांसा** १।१।८ ॥ ८. **श्चेह बुद्धि तच्चतुर्धा तद्यथा** B । **श्च हानादिबुद्धिः तद्यथा** A ॥ ९. प्रमाणेन खल्वयं ज्ञाताऽर्थमुपलभ्य तमर्थमभीप्सति जिहासति वा ।"-**न्यायभाष्य०** ॥ **१०.** "गन्ध-रस-रूप-स्पर्श-शब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः"-**न्यायसूत्र०** १।१।१४ । "पृथिव्यादीनि गुणाश्चेति द्वन्द्वसमासः ।"-**न्यायवार्तिक** पृ० २०५ ॥ **११. अभिव्यक्तम्** A ॥ **१२. अतश्छब्देन** B ॥ **१३. प्रयुज्यते** A ॥ **१४. यत्** नास्ति B ॥ **१५. साधर्म्यतः** B । १६. किं पुनरत्रोपमानेन क्रियते ? समाख्यासम्बन्धप्रतिपत्तिरुपमानार्थः - **न्यायभाष्य** १।१।६॥

अथ कः शब्दः ? "**आप्तोपदेशः शब्दः**" [न्या० सू० १।१।७]। [१७]आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा, तेन य उपदेशः क्रियते स आप्तोपदेश आगमः शब्दाख्यं प्रमाणमित्युच्यते।

किं पुनरत्रानेन प्रमाणेनार्थजातं मुमुक्षुणा प्रमेयम् ? तदुच्यते-आत्म-शरीरेन्द्रिया-ऽर्थ-बुद्धि-मनः-प्रवृत्ति-दोष-प्रेत्यभाव-फल-[१८]दुःखा-ऽपवर्गास्तु प्रमेयम् [न्या० सू० १।१।९]॥

अथ संशयः-[१९]किंचि(स्वि)दित्यनवधारणात्मकः प्रत्ययः संशयः। तद्यथा-मन्दमन्दप्रकाशे [२०]स्थाणु-पुरुषोचिति(त)भूभागे 'स्थाणुः स्यात् पुरुषः स्यात्' इति॥

अथ प्रयोजनम्-येन प्रयुक्तः प्रवर्तते तत् प्रयोजनम्॥

अथ दृष्टान्तः-अविप्रतिपत्तिविषयापन्नोऽर्थो दृष्टान्तः, यथा [२१]अनित्याद्यर्थविचारे घटाद्याकाशादिरिति।

अथ सिद्धान्तः। स च चतुर्विधः, तद्यथा-सर्वतन्त्रसिद्धान्तः १, प्रतितन्त्रसिद्धान्तः २, अधिकरणसिद्धान्तः ३, अभ्युपगमसिद्धान्तश्चेति ४॥

अथावयवाः-"प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि अवयवाः" [न्या० सू० १।१।३२]। तत्र अनित्यः शब्दः इति प्रतिज्ञा। उत्पत्तिधर्मकत्वात् इति हेतुः। घटवत् इत्युदाहरणम्। ★ [२२]इह यद् यदुत्पत्तिधर्मकं तत् तदनित्यं दृष्टम्, यथा घटः, व्यासिदृ(दृ)ष्टान्तानुपातिनी★। तथा चोत्पत्तिधर्मकः शब्द इत्युपनयः।

---

१७. आप्तश्च B॥ "आप्तःखलु साक्षात्कृतधर्मा"-**न्यायभाष्य** १।१।७॥ **१८. दुःखसुखा A। १९. किमित्य B॥** "स्थाणु-पुरुषयोः समानं धर्ममारोहपरिणाहौ पश्यन् पूर्वदृष्टं च तयोर्विशेषं बुभुत्समानः 'किंस्वित्' इत्यन्यतरं नावधारयति तदनवधारणं ज्ञानं संशयः"-**न्यायभाष्य १।१।२३**। 'किंस्वित्' इति विमर्शः संशयः। **न्यायकलिका, पृ० ८**। "'किंस्वित्' इति वस्तुविमर्शमात्रमनवधारणं ज्ञानं संशयः।"-**न्यायभाष्य १।१।१**। "किंस्वित् इति दोलायमानस्य उभयकोटिस्पृशः प्रत्ययस्याऽर्थेऽनवधारणात्मकस्य"-**न्यायवार्तिक-तात्पर्यटीका० पृ० ३६॥ २०. स्थाणुः पुरुषो वेति भूभागे B॥ २१.** अनित्य साधने साधर्म्योदाहरणत्वेन घटादेः वैधर्म्योदाहरणत्वेन आकाशादेश्च सर्वथौचित्यात् अनित्याद्यर्थविचारे इति पाठः रमणीय एव। दृश्यताम् **न्यायभाष्य १।१।३६, ३७। २२. ★★** एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः B प्रतौ नास्ति॥

तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति निगमनम् । वैधर्म्योदाहरणेऽपि★ इह यदनित्यं न भवति तदुत्पत्तिधर्मकमपि न भवति, यथा आकाशम्, ★न च तथाऽनुत्पत्तिधर्मकः शब्द इति, तस्मादुत्पत्तिधर्मकत्वादनित्यः शब्द इति [२३]निगमनम् ।

[२४]संशयादूर्ध्वं भवितव्यताप्रत्ययस्तर्कः, यथा भवितव्यमत्र स्थाणुना पुरुषेण वेति ।

संशय-तर्काभ्यामूर्ध्वं निश्चितः प्रत्ययो निर्णयः ॥

तिस्रः कथाः-वादो जल्पो वितण्डा । तत्र शिष्या-ऽऽचार्ययोः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहेण अभ्यासख्यापनाय वादकथा ॥

विजिगीषुणा सार्द्धं "छल-जाति-निग्रहस्थानसाधनोपालम्भो[२५] जल्पः" [न्या० सू० १।२।२] ॥

स्वपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा । [२६]अनैकान्तिकादयो हेत्वाभासाः ॥

नवकम्बलो देवदत्त[२७] इत्यादिच्छलम् ॥ दूषणाभासास्तु जातयः ॥

निग्रहस्थानानि पराजयवस्तूनि । तद्यथा-"प्रतिज्ञाहानिः, प्रतिज्ञान्तरम्, प्रतिज्ञाविरोधः, प्रतिज्ञासंन्यासः, हेत्वन्तरम्, अर्थान्तरम्, निरर्थकम्, अविज्ञातार्थम्[२८], अपार्थकम्, अप्राप्तकालम्, न्यूनम्, अधिकम्, पुनरुक्तम्, अननुभाषणम्, अप्रतिज्ञानम्, अप्रतिभा, [२९]विक्षेपः, मतानुज्ञा, [३०]पर्यनुयोज्योपेक्षणम्, [३१]निरनुयोज्यानुयोगः, अपसिद्धान्तः, हेत्वाभासाश्चेति[३२] निग्रहस्थानानि" [न्या० सू० ५।२।१]

[३३]इति नैयायिकदर्शनं[३४] समाप्तम् ॥

---

२३. निगमनम् A प्रतौ नास्ति ॥ २४. तुलना-"भवितव्यमिति य ऊहः स तर्कः-न्यायवार्तिक पृ० ३२६ ॥ "अनवधारणात्मक प्रत्ययः संशयः किंस्वित् इति । अवधारणात्मकः प्रत्ययः 'एवमिदम्' इति निर्णयः । अयं तु संशयात् प्रच्युतः कारणोपपत्तिसामर्थ्यात्...निर्णयं चाप्राप्तो विशेषादर्शनात् ।-न्यायवार्तिक पृ० ३२७ ॥ २५. पलम्भो A ॥ २६. अनेकान्तादयो B ॥ २७. दत्तादिच्छ B ॥ २८. र्थकम् A ॥ २९. कथाविक्षेपः A ॥ ३०. योगोपे A ॥ ३१. योगानु A ॥ ३२. सश्चेति B ॥ ३३. इति A नास्ति ॥ ३४. कमतं स A ॥

[वैशेषिकदर्शनम्]

अथ वैशेषिकतन्त्रसमासप्रतिपादनायाह-द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य विशेष-समवायानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः । तत्र नव द्रव्याणि- "पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि" (वै० सू० १।१।४) ।

तत्र पृथिवीत्वयोगात् पृथिवी । सा च द्विधा-[३५]नित्या चानित्या च । तत्र परमाणुलक्षणा नित्या, कार्यलक्षणा त्वनित्या । सा च चतुर्दशगुणोपेता, तद्यथा-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व[३६]-वेगैश्चतुर्दशभिर्गुणैर्गुणवती ॥

"अप्त्वाभिसम्बन्धादापः" [प्र० भा० पृ० १४] । ताश्च रूप-रस-स्पर्श-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-गुरुत्व स्वाभाविकद्रवत्व-स्नेह-वेगवत्यः तासु च रूपं शुक्लमेव, रसो मधुर एव, स्पर्शः शीत एव ।

"तेजस्त्वाभिसम्बन्धात् तेजः" [प्र० भा० पृ० १५] । तच्च रूप-स्पर्श-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-नैमित्तिकद्रवत्व-वेगैरेकादशभिर्गुणैर्गुणवत् । तत्र रूपं शुक्लं भास्वरं च, स्पर्श उष्ण एवेति ।

---

३५. नित्याऽनित्या च क्व । तुलना-"सा तु द्विविधा-नित्या चानित्या च । परमाणुलक्षणा नित्या, कार्यलक्षणा त्वनित्या ।' प्र० भा० पृ० ४ ॥ **३६.** यद्यपि 'पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवी रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-संख्या-परिणाम-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वाऽपरत्व-गुरुत्व-द्रवत्व-संस्कारवती' [प्र० भा० पृ० ४-५] इति सर्वेषु वैशेषिकग्रन्थेषु 'वेग' शब्दस्थाने 'संस्कार' शब्दं पठित्वा चतुर्दशत्वं पृथिवीगुणानां वर्णितम्, तथापि संस्कारभेदेषु वेगस्यैव पृथिव्यां सम्भवाद् वेग एवात्र उपात्तो ग्रन्थकृता इति बोध्यम् । यद्यपि "संस्कारस्त्रिविधो वेगो भावना स्थितिस्थापकश्च" [प्र० भा० पृ० १३६] इति प्रशस्तपादभाष्ये तदनुसारिषु च सर्वेष्वपि ग्रन्थेषु संस्कारभेदतया स्थितिस्थापकः परिगणितोऽस्ति, सोऽपि च पृथिव्यां वर्तते, किन्तु वैशेषिकसूत्रेषु कुत्रचिदपि 'स्थितिस्थापक' सूचनानुपलब्धेरस्मिन्नपि च सर्वसिद्धान्त-प्रवेशकग्रन्थे कुत्रचिदपि तस्यानुल्लेखात् स्थितिस्थापको नाभिमतोऽस्य ग्रन्थकृत इत्यपि भवेत् । वेगो भावना चेति भेदद्वयमेव स्वीकुरुतेऽयं ग्रन्थकार इति प्रतीयते । तथा च भावनाया आत्मन्येव वृत्तेः अवशिष्टस्य वेगाख्यसंस्कारस्यैव पृथिव्यां वृत्तेर्वेगवत्त्वमेवात्र पृथिव्यां वर्णितमिति प्रतिभाति ॥

'वायुत्वाभिसम्बन्धाद् वायुः' [प्र० भा० पृ० १६] इति । स च अनुष्णाशीतस्पर्श-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-वेगैर्नवभिर्गुणैर्गुणवान् [३७]धृति-कम्पादिलिङ्गः शब्दलिङ्गो [३८]गन्धादिवियुक्तोऽनुष्णाशीतस्पर्शलिङ्गश्चेति[३९] ॥

"आकाशम्" इति पारिभाषिकी संज्ञा, एकत्वात् [४०]तस्य । सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-शब्दैः षड्भिर्गुणैर्गुणवत् शब्दलिङ्गं चेति ॥

"कालः परापरव्यतिकर-[४१]यौगपद्या-ऽयौगपद्य-चिर-क्षिप्र-[४२]प्रत्यय-लिङ्गः" [प्र० भा० पृ० २६] । स सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागैः पञ्चभिर्गुणैर्गुणवान् ॥

"इत इदम्" इति यतस्तद् दिशो लिङ्गम्" [वै० सू० २।२।१२] । तद्यथा-इदमस्तात् पूर्वेण इदमुत्तरेणेति । सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागैः पञ्चभिर्गुणैर्गुणवती, संज्ञा च [४३]पारिभाषिकी चेति ॥

"आत्मत्वाभिसम्बन्धादात्मा" [प्र० भा० पृ० ३०] । स च चतुर्दशभिर्गुणैर्गुणवान् । बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्नलिङ्ग-धर्मा-ऽधर्म-संस्कार-सङ्ख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभागश्चतुर्दश गुणाः ॥

मनस्त्वाभिसम्बन्धाद् मनः । तच्च क्रमज्ञानोत्पत्तिलिङ्गं[४४]

---

३७. अधृति A B । तुलना-"विषयस्तूपलभ्यमानस्पर्शाधिष्ठानभूतः स्पर्श-शब्द-धृति-कम्पलिङ्गः तिर्यग्गमनस्वभावो मेघादिप्रेरणाधारणादिसमर्थः ।" - प्र० भा० पृ० १८ । **३८. गन्धादियुक्तः** B । "क्षितावेव गन्धः" **प्र० भा०** पृ० ११ ॥ **३९. स्पर्शश्चेति** B ॥ ४०. "आकाश-काल-दिशामेकैकत्वादपरजात्यभावे पारिभाषिक्यस्तिस्रः संज्ञा भवन्ति-आकाशः कालो दिगिति ।" **प्र० भा०** पृ० २३ ॥ **४१. यौगद्यचिर** B ॥ **४२. प्रत्ययः सङ्ख्या** A । तुलना-"कालः परापरव्यतिकर-यौगपद्या-ऽयौगपद्य-चिर-क्षिप्रप्रत्यय-लिङ्गः ।"-प्र० भा० पृ० २६ ॥ **४३. परि** B ॥ **४४. त्पत्तिलिङ्गं मनः संख्या** B । "प्राणा-ऽपान-निमेषोन्मेष-जीवन-मनोगतिरिन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चेत्या-त्मलिङ्गानि"-वै० सू० ३।२।४ । "आत्मलिङ्गाधिकारे बुद्ध्यादयः प्रयत्नान्ताः सिद्धाः" -प्र० भा० पृ० ३४ । "आत्मलिङ्गेति । प्राणादिसूत्रे बुद्धिः कण्ठरवेण नोक्ता इति चेत्, सूत्रेण विनास्याः प्रत्येयत्वात्, देवदत्तबुद्ध्या विष्णुमित्रस्येच्छाद्यदर्शनिनाऽऽत्मनीच्छादिकथनेन जनकतया तत्समानाधिकरणबुद्धेः सूचितत्वात् ।"-प्र० भा० सेतु० पृ० ३८९ ॥

सङ्ख्यापरिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-[४५]परत्वाऽ-परत्व-वेगैरष्टभि-र्गुणैर्गुणवत् । **इति द्रव्यपदार्थः ।**

अथ गुणाः-रूप-रस-गन्ध-स्पर्शा [४६]विशेषगुणाः, सङ्ख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोग-विभागौ परत्वा-ऽपरत्वे इत्येते सामान्यगुणाः, बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्मा-ऽधर्म-संस्कारा आत्मगुणाः, गुरुत्वं पृथिव्युदकयोः, द्रवत्वं पृथिव्युदकाग्निषु, स्नेहोऽम्भस्येव, वेगाख्यः संस्कारो मूर्तद्रव्येष्वेव, आकाशगुणः शब्द इति । गुणत्वयोगाच्च [४७]गुणा इति । [४८]तथा चापान्तरालासामान्यानि-रूपत्वयोगाद् रूपम्, रसत्वादियोगाद् रसादयः । **इति गुणपदार्थः ।**

अथ कर्मपदार्थः-"उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि" [वै० सू० २।१।७] कर्मत्वयोगात् कर्म । गमनग्रहणाच्च भ्रमण-स्यन्दन-नमनोन्नमनाद्यवरोधः[४९] । **इति कर्मपदार्थः ।**

"सामान्यं द्विविधम्-परमपरं च[५०]" [प्र० भा० पृ० १६४] । तत्र परं सत्ता द्रव्य-गुण-कर्मसु 'सत् सत्' [५१]इत्यनुवृत्तिप्रत्ययकारणत्वात् सामान्यमेव ।

४५. **परत्वा-ऽपरत्वैः सप्तभिर्गुणैः** A । तुलना-"तस्य गुणाः संख्या-परिमाण-पृथक्त्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-संस्काराः ।" प्र० भा० पृ० ३६ । संस्कारश्च मूर्तत्वादेव वेगाख्यः ॥ प्र० भा० व्योमवती पृ० ४२७ । संख्या-परिणाम-पृथकत्व-संयोग-विभाग-परत्वा-ऽपरत्व-संस्काराः मनः समवेताः ॥१५४॥ **सप्तपदार्थी** [शिवादित्यरचिता] ॥ ४६. रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-स्नेह-सांसिद्धिकद्रवत्व-बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्मा-ऽधर्म-भावना-शब्दा वैशेषिकगुणाः" प्र० भा० पृ० ३९ । "रूप-स्पर्श-गन्ध-रस-स्नेहाः सांसिद्धिको द्रवः । बुद्ध्यादिनवशब्दाश्च वैशेषिकगुणाः स्मृताः ॥ इति प्राच्यैः परिभाषितत्वात्"-प्र० भा० सूक्ति पृ० १६३ । इत्यादयः प्रशस्तपादभाष्यानुसारिवैशेषिकग्रन्थेषु बहव उल्लेखा दृश्यन्ते । वैशेषिकदर्शनसूत्रेषु तु नैतद्विषयकः कश्चनापि उल्लेखः । अतोऽत्र ग्रन्थकृता रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानां चतुर्णामेव यद् विशेषगुणत्वं वर्णितं तत् प्रशस्तपादभाष्यपरम्परातो विभिन्नामन्यामेव काञ्चिदपि परम्परामाश्रित्य कृतं भवेदिति सम्भाव्यते । **४७. गुण** A । **४८. तथा अन्तराल** B ॥ **४९. द्यवरोधनम्** A । **द्यवि रोधः** B ॥ तुलना-"अथ विशेषसंज्ञया किमर्थं गमनग्रहणं कृतमिति, न, भ्रमणाद्यवरोधार्थत्वात् । उत्क्षेपणादिशब्दैनवरुद्धानां भ्रमण-पतन-स्यन्दनादीनामवरोधार्थं गमनग्रहणं कृतमिति ।" प्र० भा० पृ० १५३ । "अनवरुद्धानाम्-असंगृहीतानाम्" प्र० भा० व्योमवती पृ० ६६१ । **५०. च** B नास्ति ॥ **५१. द्यनुगतप्र** B । "सा चाऽनुवृत्तेर्हेतुत्वात् सामान्यमेव"-प्र० भा० पृ० ४ ॥

यत उक्तम्-"सदिति यतो द्रव्य-गुण-कर्मसु सा सत्ता" [वै० सू० १।१।७]। [५२]तथाऽपरं द्रव्यत्व-गुणत्व-कर्मत्वादि। तत्र द्रव्यत्वं द्रव्येष्वेव। गुणत्वं गुणेष्वेव। कर्मत्वं कर्मस्वेव। **इति सामान्यपदार्थः।**

"नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः" [प्र० भा० पृ० ४]। नित्यद्रव्याणि च [५३]चतुर्विधाः परमाणवो मुक्तात्मानो मुक्तमनांसि [५४]च। ते [५५]चात्यन्त-व्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वाद्[५६] विशेषा एव। **इति विशेषपदार्थः॥**

"अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानां यः सम्बन्ध [५७]इहेति प्रत्ययहेतुः स समवायः" [प्र० भा० पृ० ५, १७१]। **इति समवायपदार्थः।**

वैशेषिकसिद्धान्ते प्रमाणं वक्तव्यमिति चेत्, तदुच्यते-लैङ्गिक-प्रत्यक्षे द्वे [५८]एव प्रमाणे, शेषप्रमाणानामत्रैवान्तर्भावात्॥ तत्र लैङ्गिकं प्रमाणं दर्शयन्नाह - [५९]अस्येदं कार्यम्, अस्येदं कारणं सम्बन्धि एकार्थसमवायि विरोधि चेति लैङ्गिकम्। अस्यैदं कार्यम्, यथा विशिष्टो नदीपूरो वृष्टेः। अस्येदं कारणम्, यथा मेघोन्नतिर्वृष्टेरेव। सम्बन्धि द्विविधम्-[६०]संयोगि समवायि चेति। तत्र संयोगि यथा-धूमोऽग्नेः। समवायि यथा - विषाणं गोः। एकार्थसमवायि द्विविधम्-कार्यं कार्यान्तरस्य, कारणं कारणान्तरस्य चेति। तत्र कार्यं कार्यान्तरस्य यथा-रूपं स्पर्शस्य। कारणं कारणान्तरस्य यथा-पाणिः पादस्य। विरोधि चतुर्विधम् - अभूतं

---

५२. अथा B॥ **५३. चतुर्धा** A॥ **५४. च** B नास्ति॥ **५५. चांत्यत्वव्या** B॥ **५६. त्तिप्रत्ययहे** A। "ते च खलु अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वाद् विशेषा एव"-प्र० भा० (व्योमवतीसमेत) पृ० ५५। **५७. इहेदंप्रत्यय** A। "इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः" वै० सू० ७।२।२६। यद्यपि मुद्रिते प्रशस्तपादभाष्ये "इहप्रत्ययहेतुः" इत्येव पाठ उपलभ्यते, किन्तु वैशेषिकसूत्रोपस्कारे "तदुक्तं पदार्थप्रवेशाख्ये प्रकरणे अयुतसिद्धानामाधार्या-ऽऽधारभूतानां यः सम्बन्ध इहेति प्रत्ययहेतुः स समवायः [प्र० भा०] इति" (पृ० १९३) इति प्रशस्तपादभाष्यपाठ उद्धृतोऽस्तीति ध्येयम्॥ **५८.** यद्यपि "प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि" इति प्रमाणमीमांसायां (पृ० ७) न्यायावतारवृत्तौ (पृ० ९) स्याद्वादरत्नाकरादिषु (पृ० ३१३, १०४१) च वैशेषिकसम्मतत्वेनोक्तं तथापि तद् व्योमशिवादेरेव व्याख्यापरम्परानुसारेण ज्ञेयम् (दृश्यतां प्रशस्तपादभाष्यस्य व्योमवती व्याख्या० पृ० ५५४, ५८४, ५८७)। अन्येषां तु वैशेषिकाणां प्रमाणद्वित्वमेवाभिमतमिति ध्येयम्॥ **५९.** अस्येदं कार्यं कारणं सम्बन्ध्येकार्थसमवायि विरोधि चेति लैङ्गिकम्। वै० सू० ९।१८॥ **६०.** संयोगि समवाय्येकार्थसमवायि विरोधि च। कार्यं कार्यान्तरस्य कारणं कारणान्तरस्य विरोध्यभूतं भूतस्य भूतमभूतस्य अभूतमभूतस्य भूतं भूतस्य। वै० सू० ३।१।८॥

भूतस्य, भूतमभूतस्य, अभूतमभूतस्य, भूतं भूतस्येति। तत्र अभूतं वर्षकर्म भूतस्य वाय्वभ्रसंयोगस्य लिङ्गम्। तथा भूतं वर्षकर्म अभूतस्य वाय्वभ्रसंयोगस्य लिङ्गम्। अभूतमभूतस्य यथा-अभूता श्यामता अभूतस्य [६१]घटाग्निसंयोगस्य लिङ्गम्। भूतं भूतस्य यथा-स्यन्दनकर्म [६२]सेतुभङ्गस्य। तथाऽपरमपि लिङ्गमुत्प्रेक्ष्यमनया दिशा यथा, जलप्रसादोऽगस्त्युदयस्य, [६३]तथा चन्द्रोदयः समुद्रवृद्धेः कुमुदविकाशस्य [६४]चेत्यादि। तच्च 'अस्येदम्' इत्यादिना सूचितम्, यतो लिङ्गोपलक्षणायेदं सूत्रम्, न नियमप्रतिपादनायेति।

आह-प्रत्यक्षलक्षणं किम्? इति चेत्, तदाह-"आत्मे-न्द्रिय-मनोऽर्थ-सन्निकर्षाद् यन्निष्पद्यते [६५]तदन्यत्" [वै० सू० ३।१।१३]। अस्य व्याख्या-आत्मा मनसा युज्यते, मन इन्द्रियेण, [६६]इन्द्रियमर्थेनेति। ततश्चतुष्टयसन्निकर्षाद्[६७] घट-रुपादिज्ञानम्, [६८]त्रयसन्निकर्षाच्छब्दे, [६९]द्वयसन्निकर्षात् सुखादिषु। एवं प्रत्यक्षमपि निर्दिष्टम्॥

[७०]इति वैशेषिकमतं समाप्तम्॥

[जैनदर्शनम्]

अथ जैनसिद्धान्तनुसारेण प्रमाण-प्रमेयस्वरूपावधारणायेदमुपदिश्यते। आह-यद्येवम्, ब्रूहि [७१]किं तत् प्रमाणं प्रमेयं च? इति। तत्र प्रमेयं "जीवा-ऽजीवा-ऽऽस्रव[७२]-बन्ध-संवरनिर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्" [तत्त्वार्थसूत्र० १।४]। तत्र सुख-

---

६१. घटादि B॥ **६२. सेतुबंधस्य** AB। "स्रोतोभूतानामपां स्थलान्निम्नाभिसर्पणं यत् तद् द्रवत्वात् स्यन्दनम्। कथम्? समन्ताद् रोधः-संयोगेनाऽवयविद्रवत्वं प्रतिबद्धम्....। यदा तु मात्रया सेतुभेदः कृतो भवति तदा.. सेतुसमीपस्थस्यावयवद्रवत्वस्य उत्तरोत्तरेषामवयवद्रवत्वानां प्रतिबन्धकाभावाद् वृत्तिलाभः। तत्र च कारणानां संयुक्तानां प्रतिबन्धेन गमने यदवयविनि कर्म उत्पद्यते तत् स्यन्दनाख्यमिति" प्र० भा० पृ० १६०-१६१॥ **६३. यथा** A॥ **६४. चेति** B। "शास्त्रे कार्यादिग्रहणं निदर्शनार्थं कृतं नावधारणार्थम्। लिङ्गं चन्द्रोदयः समुद्रवृद्धेः कुमुदविकाशस्य च शरदि जलप्रसादोऽगस्त्योदयस्येत्येवमादि। तत् सर्वम् 'अस्येदम्' इति सम्बन्धमात्रवचनात् सिद्धम्। प्र० भा० पृ० १०४। इत्येवमादि इति आदि पदेन उदयादिरस्तादेर्लिङ्गमित्यूह्यम्। प्र० भा० व्योमवती पृ० ५७३॥ **६५. तत्प्रत्यक्षम्** B॥ **६६. मर्थेन** A॥ **६७.** आत्म-मन-इन्द्रिया-ऽर्थानां चतुर्णां संयोगात्। **६८.** आत्म-मनः-श्रोत्राणां त्रयाणां संयोगात्॥ **६९.** आत्म-मनसोर्द्वयोः संयोगात्। **७०. वैशेषिकतन्त्रः समाप्तः** A॥ **७१. किमेतत्** A॥ **७२. ऽऽश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा** B॥

दुःख-ज्ञानादिपरिणामलक्षणो जीवः । विपरीतस्त्वजीवः । मिथ्यादर्शना-ऽविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः, काय-वाङ्मनः कर्म योगः, स आश्रवः, शुभः पुण्यस्य [तत्त्वार्थसूत्र ८।१, ६।१, ६।२, ६।३] [७३]विपरीतः पापस्य। आश्रवकार्यं बन्धः । आश्रवविपरीतः संवरः । संवरफलं निर्जरा ।

[७४]अथ प्रमाणं प्रत्यक्षमनुमानमागमश्चेति[७५] । तत्र प्रत्यक्षम्-इन्द्रियमनोनिमित्तं विज्ञानं निश्चितमव्यभिचारीति[७६] लौकिकं व्यवहारतः प्रत्यक्षम्, अवध्यादि निश्चयतः । [७७]अन्यथाऽनुपपन्नाल्लिङ्गालिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्, यथा धूमादग्निज्ञानम् । "तपसः स्वर्गो भवति" इत्यागमः[७८] प्रमाणम्, निश्चिता-ऽविपरीतप्रत्ययोत्पादकत्वात्, चक्षुरादिवत् ।

इति जैनसिद्धान्तप्रवेशकः समाप्तः[७९] ।

[साङ्ख्यदर्शनम्]

अथ साङ्ख्यमतप्रदर्शनायेदमुपदिश्यते[८०] । तत्र हि[८१] ● प्रकृतिः पुरुषः तत्संयोगश्च ● । सत्त्वरजस्तमसां[८२] साम्यावस्था प्रकृतिः । ● [८३]तस्या एव वैषम्यावस्था परिणामः । यथा ● ★[८४]तस्याः प्रकृतेर्महानुत्पद्यते, महतोऽहङ्कारः★

७३. "अशुभः पापस्य"-**तत्त्वार्थसूत्र** ६ ।४।। ७४. **तत्र प्रमाणं** B ।। ७५. यद्यपि "प्रमाणं द्विधाप्रत्यक्षं परोक्षं च" [प्र० मी० १।१।९, १०] "विशदः प्रत्यक्षम्" [प्र० मी० १।१।१३] "अविशदः परोक्षम्, स्मृतिप्रत्यभिज्ञानोहानुमानागमास्तद्विधयः" [प्र० मी० १।२।१,२] इति प्रमाणमीमांसादिश्वेताम्बरीय-ग्रन्थेषु प्रमाणविभाग उपलभ्यते, किन्तु स अकलङ्कोपज्ञ इति प्रतीयते। श्वेताम्बराणां प्राचीनतमेषु ग्रन्थेषु तु त्रिविधत्वं प्रमाणानां बहुत्र वर्णितं दृश्यते। दृश्यतां **न्यायावतारः (सिद्धसेनदिवाकरप्रणीतः)** कारिका ४,५,६,७ । दृश्यतां **न्यायावतार-वार्तिकवृत्तिः** पृ० ७७, ९९ । **अनेकान्तजयपताकाटीका** पृ० १४२, २१५ । **७६. चारि लौकिकं** A ।। ७७. "साध्याविनाभुवो लिङ्गात् साध्यनिश्चायकं स्मृतम् । अनुमानं तदभ्रान्तं प्रमाणत्वात् समक्षवत् ।।४।।" -**न्यायावतारः** ।। ७८. **इत्यागमं** B ।। ७९. **समाप्तम्** B नास्ति। ८०. **मप** A ।। ८१. ●● **एतदन्तर्गतः पाठः** B नास्ति। "ततश्च यदृच्छामात्रत्वादङ्गी-कृतपुरुषार्थयत्नार्थहानिः ।... तस्य च हानौ प्रधान-पुरुष संयोगत्रित्वपरिज्ञानार्थशास्त्रयत्न(र्थ) हानिरपि"-**नयचक्रवृत्तिः** पृ० १४ ।। ८२. **तमः साम्या** B । "एतेषां या समावस्था सा प्रकृतिः किलोच्यते ।"-**षड्दर्शनसमुच्चय** ३६ A ।। ८३. ● ● एतदन्तर्गतः पाठः B नास्ति ।। ८४. ★ ★ एतत्स्थाने A प्रतावित्थं पाठः-**महान् अहङ्कारः** । तुलना-प्रकृतेर्महां-स्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ।।२२।।-**सांख्यकारिका** ।।

ततश्चाहङ्कारादेकादशेन्द्रियाणि-पञ्च[८५] बुद्धीन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, [८६]अपरं मनः । [८७]तथा तत एवाहङ्कारात् तमोबहुलात् पञ्च तन्मात्राणि, तद्यथा- [८८]शब्दतन्मात्रम्, स्पर्शतन्मात्रम्, रूपतन्मात्रम्, रसतन्मात्रम्, गन्धतन्मात्रमिति । एतेभ्यश्च यथाक्रमेण भूतानि आकाशवाय्वग्न्युदकभूमयः भूतसमुदायश्च शरीर-वृक्षादयः ।

सत्त्वादिलक्षणं वक्तव्यमिति चेत्; तदुच्यते-[८९]प्रसाद-लाघव-प्रसवाऽभिष्वङ्ग-[९०]प्रीतयः कार्यं सत्त्वस्य, शोष-ताप-भेद-स्तम्भोद्वेगा[९१]-ऽपद्वेषाः कार्यं रजसः, आवरण-सादन-बीभत्स-दैन्य-गौरवाणि तमसः कार्यम्[९२] ।

"[९३]सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः ।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः ॥" [साङ्ख्यका०-१३]

एवं तावत् प्रकृतिः स्थूल-सूक्ष्मरूपेण व्याख्याता ॥

---

८५. पञ्च B नास्ति ॥ ८६. **च एकादशं मनः** A ॥ ८७. **तथैकादशाद् गणात् तमो** B । तुलना-"अभिमानोऽहंकारस्तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः । ऐन्द्रिय एकादशकस्तन्मात्रकपञ्चकश्चैव ॥२४॥ सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् । भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैज-सादुभयम् ॥२५॥.-**सांख्यका** । ८८. **शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श । एतेभ्यश्च तथा क्रमेण भूतानि तथा पृथिव्याप्तेजोवाय्वाकाशादीनि भूतसमु** B । तुलना-तन्मात्राणि शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाख्यानि - **सांख्यका माठरवृत्ति पृ० १०** ॥ ८९. **प्रकाश(प्रसा)द** B । प्रीत्यप्रीति-विषादात्मकाः प्रकाश-प्रवृत्ति-नियमार्थाः ॥१२॥-**सांख्याका** । ९०. **धर्मप्रीत्यादयः** A । एतद्विषयकेषु तत्तद्ग्रन्थान्तर्गतभागेषु प्रायः सर्वत्र 'धर्म' शब्दस्थाने 'उद्धर्ष' पाठ एवोपलभ्यते । यदि तु यथाश्रुत धर्म शब्दपाठे एव निर्बन्धः तर्हि अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम् । सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद् विपर्यस्तम् ॥२३॥. इति सांख्यकारिकाप्रतिपादितं धर्मं गृहीत्वा संगमनीयम् । ९१. **गप्रद्वेषाः** B । ९२. तुलना-"सुखानां शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धानां प्रसादलाघवप्रसवाऽभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः कार्यम् । दुःखानां शोष-ताप-भेदा(दो)परस्तम्भोद्वेगाऽपद्वेषाः । मूढानां वरण-सदना-ऽपध्वंसन-बैभत्स्य-दैन्य-गौरवाणीति"-**नयचक्रवृत्ति** पृ० १२ । "प्रसाद-लाघवा ऽभिष्वङ्गोद्धर्षप्रीतयः सत्त्वस्य कार्यम् । ताप-शोष-भेद-स्तम्भोद्वेगापद्वेगा(षा) रजसः कार्यम् । दैन्याऽऽवरण-सादना-ऽ(प)ध्वंस-बीभत्स-गौरवाणि तमसः कार्यम्"-**तत्त्वसं० पं०** पृ० २१ । **न्यायकुमुदचन्द्र** पृ० ३५० । ९३. नेयमार्या B प्रतौ ॥

अथ पुरुषः किंस्वरूपः[९४] ? चैतन्यं पुरुषस्य [९५]स्वरूपम्। प्रकृतिपुरुषयोश्च उपभोगार्थः [९६]सम्बन्धः संयोगः [९७]पङ्ग्वन्धयोरिव। उपभोगश्च[९८] शब्दाद्युपलम्भो गुणपुरुषान्तरोपलम्भश्च। आह-किमेकः पुरुषोऽनेको वा ? अनेक इत्याह। का पुनरत्र युक्तिः ? जन्म-मरण-करणानां [९९]नियमदर्शनाद् धर्मादिषु [१००]प्रवृत्तिनानात्वाच्चानेकः [१०१]पुरुषः, स आत्मोच्यते इति॥

अथ प्रमाणं वक्तव्यम्। तदुच्यते-प्रत्यक्षमनुमानमागमश्चेति। तत्र प्रत्यक्षम्- "श्रोत्रादिवृत्तिः[१०२] प्रत्यक्षम्" [ ] श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-र्जिह्वा-घ्राणानां

९४. किंरूपः A॥ **९५. स्वं रूपम्** A॥ "वस्तुशून्यत्वेऽपि शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते। तद्यथा-चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति। यदा चितिरेव पुरुषस्तदा किमत्र केन व्यपदिश्यते ?-**पातञ्जलदर्शनयोगभाष्य** १।९। **९६. सम्बन्धः** A नास्ति॥ **९७.** "पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥२१॥-**सांख्यका०**॥ **९८.** "सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम् ॥३७॥-**साङ्ख्यका०**। "तथा चाहुः उपभोगस्य शब्दाद्युपलब्धिरादिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तः।"-**सांख्याका० युक्तिदीपिका** पृ० १३९। "प्रधानस्य पुरुषार्थौ प्रवृत्तिः। स च पुरुषार्थो द्विविधः - शब्दाद्युपलब्धिरादिर्गुणपुरुषान्तरोपलब्धिरन्तश्च"-**माठरवृ०** पृ० ७९॥ **९९. नियमादर्श** A। **नियतदर्श** B। "जन्म-मरण-करणानां प्रतिनियमादयुगपत् प्रवृत्तेश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव ॥१८॥ जन्मनियमात् पश्यामो बहवः पुरुषाः, यथैकस्मिन्नधिष्ठाने बहवः स्त्रियो गर्भिण्यः तत्र काश्चित् प्रसूताः काश्चित् प्रसविष्यन्ति। यद्येकः पुरुषः स्यात् एकस्यां प्रसूतायां सर्वाः प्रसवेरन्। अतः पश्यामो बहवःपुरुषाः।....। यद्येकः पुरुषः स्यात् एकस्मिन् जीवति सर्वे जीवेरन्, एकस्मिन् मृते सर्वे म्रियेरन्, तस्मान्मरणनियमात् पश्यामो बहवः पुरुषाः। किञ्च, बधिराः, केचिन्मूकाः, केचिदमूकाः।....। अतः कारणान्नियमात् पश्यामो बहवः पुरुषाः इति। अयुगपत्प्रवृत्ति(त्ते)श्च, इह लोके नानाविधा प्रवृत्तिर्दृष्टा, तद्यथा एको धर्मे, एकः कामे, एकोऽर्थे, अन्यः मोक्षे। अतः पश्यामो बहवः पुरुषा इति। इतश्च बहवः पुरुषाः त्रैगुण्यविपर्ययार्थम्, एकस्य कस्यचित् ब्राह्मणस्य त्रयः पुत्रा एकेनोत्पन्नाः तुल्यगोत्रस्वाध्यायाः। तत्र एकः सात्त्विकः, एकः राजसः, एकस्तामसः। यद्येकः पुरुषः स्यादेकस्मिन् सात्त्विके सर्वे सात्त्विकाः स्युः।....। न चैकं भवति। अतः पश्यामो बहवः पुरुषा इति। त्रैगुण्यविपर्ययाद् "वासुदेवदर्शनात् मणिसूत्रदर्शनाच्च एकः पुरुषः इति तेन (तन्त्र)। एवं तावत् पञ्चभिर्हेतुभिः पुरुषबहुत्वं सिद्धमित्याह॥ -[जेसलमेरस्थपुस्तकसङ्ग्रहान्तर्गता] **सांख्यकारिकावृत्तिः** A। पृ० ३२॥ **१००. नानात्वादनेकः** B॥ **१०१. पुरुष इति** A॥ **१०२.** वार्षगण्यस्यापि लक्षणमयुक्तमित्याह- श्रोत्रादिवृत्तिरिति।-**न्या० वा० ता०** पृ० १३२। "श्रोत्रादिवृत्तिरिति वार्षगणाः"-**सांख्यका० युक्तिदी०** पृ० ३९। "श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षमनुमानमनुस्मृतिः।"-**सिद्ध० द्वा०** १३।५॥

मनसाधिष्ठितानां शब्दादिविषयग्रहणे [१०३]वर्तमाना वृत्तिः विषयाकारपरिणामः [१०४]प्रत्यक्षं प्रमाणमिति [१०५]उच्यते ॥

[१०६]अथानुमानम्-

"[१०७]सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम् ।" [ ]

सम्बन्धादविनाभावलक्षणेन सम्बन्धेन लिङ्गात्, यथा धूमादग्निरत्रेति ॥

"आप्तोपदेशः शब्दः" [न्या० सू० १।७] [१०८]यो यत्राभियुक्तः कर्मणि चादुष्टः स तत्राप्तः । तेन य उपदेशः क्रियते तद्यथा 'स्वर्गेऽप्सरसः, उत्तराः कुरवः' स आप्तोपदेशः । एवमेतानि त्रीण्येव प्रमाणानि [१०९]शेषप्रमाणानामत्रैवान्तर्भावात् ।

इति [११०]साङ्ख्यसिद्धान्तः समाप्तः ।

१०३. वर्तनाद् वृत्तिः B । तुलना-"तथा श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम्, श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-र्जिह्वा-घ्राणानां मनसाधिष्ठिता वृत्तिः शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धेषु यथाक्रमं ग्रहणे वर्तमाना प्रमाणं प्रत्यक्षमिति ।"-**नयचक्रवृत्ति** पृ० १०७ ॥ **१०४. त्यक्षप्र** B । **१०५. उच्यते** A नास्ति ॥ **१०६. तथा** A ॥ **१०७.** नेदमार्यार्धं B प्रतौ । "एतेन सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्, इति लक्षणं प्रत्युक्तम् ।" -**न्यायवा०** १।१।५, पृ० १६७ । "सम्प्रति साङ्ख्यीयमनुमानलक्षणं दूषयति-एतेनेति । सम्बन्धोऽविनाभावः साधनस्य साध्येन, तस्मात् प्रत्यक्षाद्.. एकस्माद्... शेषस्य अनुमेयस्य सिद्धिः ।.... सम्बन्ध्यत इति व्युत्पत्त्या सम्बन्धो लिङ्गम्, तेनाविनाभूताद्धेतोः प्रत्यक्षादनुमेयसिद्धिरिति"-**न्यायवा० ता०** पृ० १६७ । **नयचक्रवृत्तौ तु** 'सम्बन्धाद्' 'सम्बद्धाद्' इत्युभयविधोऽपि पाठो दृश्यते-"सम्बद्धैकदेश इति वा पाठः । यथोक्तम् "सम्बद्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम् ।' सम्बद्धानां भावानां स्वस्वाभिभावेन वा इत्यादिना सप्तविधेन कश्चिदर्थः कस्यचिदिन्द्रियस्य प्रत्यक्षो भवति तस्मादिदानीमिन्द्रियप्रत्यक्षाच्छेषस्याप्रत्यक्षस्यार्थस्य या सिद्धिरनुमानं तत्, यथा धूमदर्शनादग्निरिति ज्ञानम् ।" **नयचक्रवृत्ति पृ० २४० ।**

"सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम् ।... यथायोगं स्व-स्वामि-निमित्त-नैमित्तिकादिषु तेन तेन सम्बन्धेन सम्बन्धात् प्रत्यक्षादिति प्रत्यक्षस्य धर्मादुपलब्धात् प्रसिद्धा-दिति यावत् । तत्रैको यः प्रत्यक्षः स पक्षधर्मः शेषोऽनुमेयः,.... प्रत्यक्षवत् प्रत्यक्षः प्रसिद्धः, तस्मात् प्रसिद्धत्वात् सम्बन्धी पक्षधर्मोऽश्वः स्वम्, तस्य पक्षधर्मस्य सम्बन्धात् प्रागुपलब्धा-दनुस्मर्यमाणाच्छेषेण शेषस्य चैत्रस्य सिद्धिरिति ।"-**नयचक्रवृत्ति** पृ० ६८८ ॥ **१०८.** "प्रत्यक्षा-दीन्यपि च तन्त्रान्तरेषूपदिश्यंते-'श्रोत्रादिवृत्तिः प्रत्यक्षम् । सम्बन्धादेकस्माच्छेषसिद्धिरनुमानम् । यो यत्राभियुक्तः कर्मणि चादुष्टः स तत्राप्तः, तस्योपदेश आप्तवचनम्' इति"-**सांख्यका० युक्तिदी०** पृ० ४ । **१०९. शेषाणाम** A ॥ **११०. सांख्यमतं समाप्तम्** B ॥

[बौद्धदर्शनम्]

अथ [१११]बौद्धमतप्रदर्शनायेदमुपदिश्यते[११२] । तत्र हि पदार्था द्वादशाऽऽयतनानि । तद्यथा-चक्षुरिन्द्रियायतनं रसेन्द्रियायतनं घ्राण-स्पर्श-[११३]श्रवण-मनआयतनं रूपायतनं रसायतनं गन्धायतनं स्पर्शायतनं शब्दायतनं धर्मायतनम् । [११४]धर्माश्च सुखादयः ।

आह-कः पुनरेषां परिच्छेदहेतुः ? प्रमाणम् । ★तद् द्विधा-"प्रत्यक्षमनुमानं च । तत्र प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम्" [न्यायबिन्दु १।३, ४] कल्पना नाम-[११५]जात्यादियोजना । तत्र नामकल्पना डित्थ इति । जातिकल्पना गौरिति । गुणकल्पना शुक्ल इति । क्रियाकल्पना पाचकः पाठक इति । द्रव्यकल्पना दण्डी विषाणीति । अनया कल्पनया रहितं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्युच्यते ।

अथानुमानम्-त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम् । रूपत्रयं च पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे [११६]चासत्त्वमेवेति । अस्मात् त्रिरूपाल्लिङ्गा[११७]न्निश्चिताल्लिङ्गिनि [११८]साध्यधर्मविशिष्टे धर्मिणि ज्ञानमनुमानम् । इत्येवं द्वे एव प्रमाणे, शेषप्रमाणानामत्रैवान्तर्भावात् ।

इति [११९]**सुगतसिद्धान्तः समाप्तः ॥**

[मीमांसकदर्शनम्]

मीमांसकसिद्धान्ते[१२०] वेदपाठान्तरं धर्मजिज्ञासा कर्तव्या । यतश्चैवं [१२१]ततस्तस्य निमित्तपरीक्षा । निमित्तं [१२२]च चोदना । [१२३]यत उक्तम्-

१११. बुद्ध A ॥ **११२. नायैवमाह तत्र** B ॥ **११३.** "पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् । धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि च ॥८॥"-**षड्द० स०** । एतान्येव द्वादशायतनानि **अभिधर्मकोशेऽपि** ॥ **११४.** "धर्माः सुख-दुःखादयः, तेषामायतनं गृहं शरीरमित्यर्थः"-**षड्द० स० बृहद्वृत्ति** पृ० १३ A ॥ ★ तच्च B ॥ **११५. जात्यादिकल्पना** B । "अपरे तु मन्यन्ते-प्रत्यक्षं कल्पनापोढमिति । अथ केयं कल्पना ? नामजात्यादियोजनेति ।"-**न्यायवा०** १।१।४ । पृ० १३० । विस्तारार्थं दृश्यताम् - **प्र० समु०** १।३ **तत्त्वसं० पं**- पृ० ३६९ । **न्यायवा० ता०** पृ० १३० । **नयचक्रवृत्ति** पृ० ५९-६० ॥ **११६. सत्त्वमेवेत्येतस्मात्** B ॥ **११७. ङ्गाज्ञानन्निश्चितालिङ्गिनि** A ॥ **ङ्गान्निश्चितं लिङ्गिनि** B ॥ **११८. साध्य** B नास्ति ॥ **११९. सुगतमतं समाप्तम्** B ॥ **१२०. राद्धान्ते** B ॥ **१२१.** "तस्य निमित्तपरीष्टिः" **जै० सू०** १।१।३ ॥ **१२२. च** B नास्ति ॥ **१२३. यतश्चोक्तम्** B ॥

"चोदनालक्षणोऽर्थो[१२४] धर्मः" [जै० सू० १।१।२] चोदना च क्रियायाः प्रवर्तकं वचनमाहुः[१२५], यथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' इत्यादि। तेन धर्मो लक्ष्यते, न पुनः प्रत्यक्षादीना।

आह-कथं प्रत्यक्षमनिमित्तम् ? यतस्तदेवंविधम्-"सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षमनिमित्तं[१२६] विद्यमानोप[१२७]लम्भकत्वात्" [जै० सू० १।१।४] तथा अनुमानमप्यनिमित्तम्, प्रत्यक्षपूर्वकत्वात् तस्येति। तथा उपमानमप्यनिमित्तमेव।

यतस्तस्य गो-गवयसादृश्यग्रहणे सति [१२८]गौरेव प्रमेयः। तथा अर्थापत्तिरपि, सा च द्विधा-श्रवणाद् दर्शनाच्च। श्रवणाद् यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते, अर्थादापन्नम्-रात्रौ भुङ्क्ते। [१२९]अस्याश्च रात्रिभोजन[१३०] -वाक्यमेव

१२४. क्षणो धर्मः A ॥ १२५. "चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनमाहुः"-शाबरभाष्य १।१।२ ॥ १२६. मित्तं च विद्य A ॥ १२७. लम्भत्वात् A। "लम्भनत्वात्" इति मुद्रिते जैमिनिसूत्रे ॥ १२८. गौरिव गवयः प्रमेयः B। अत्रेदं ध्येयम्। 'गौरिवः गवयः' इत्युपमानं नैयायिकानां शोभते। मीमांसकग्रन्थेषु 'एतेन (गवयेन) सदृशो गौः' इत्येव उपमानस्वरूपं वर्णितं सर्वत्र शाबरभाष्य-मीमांसाश्लोकवार्तिकादिषु। एवमेव चानूदितमन्यैरपि जैमिनीयास्तु अन्यथोपमानस्वरूपं वर्णयन्ति। यदा श्रुतातिदेशवाक्यस्य वने गवयपिण्डदर्शनान्तरं नगरं गतं गोपिण्डमनुस्मरतः 'एतेन सदृशो गौः' इति ज्ञानं तदुपमानम्। तस्य विषयः सम्प्रत्यवगम्यमानगवयसादृश्यविशिष्टः परोक्षो गौः तद्वृत्ति वा गवयसादृश्यम्।"-न्यायमं० पृ० १३२। यद्यपि न्यायावतारवृत्तौ (पृ० १९) 'अयं तेन सदृशोऽनयोर्वा सादृश्यम्' इति वर्णितमुपमानस्वरूपम्, तत्र साम्मत्याय च संवादितः "तस्माद् यद् दृश्यते तत् स्यात् सादृश्येन समन्वितम्। प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितम् ॥" इति श्लोकः किन्तु मीमांसकानामेवेदं मतमिति आहत्य वक्तुं न पार्यते, यतोऽयं श्लोकः मीमांसश्लोकवार्तिके "तस्माद् यत् स्मर्यते तत् स्यात्" ॥ [मी० श्लो० वा० उपमान० ३७ A] इति पाठभेदेनैवोपलभ्यते तथैव च व्याख्यातोऽपि व्याख्यातृभिः, यत्तु "प्रसिद्धार्थस्य साधर्म्यादप्रसिद्धस्य साधनम् ॥७४॥" इत्यभिहितं **षड्दर्शनसमुच्चये** हरिभद्रसूरिपादैः तत्तु केनचिदप्यभिप्रायविशेषेण संगमनीयम्। यतस्त एव हरिभद्रसूरिपादाः शास्त्रवार्तासमुच्चयस्वोपज्ञवृत्तावित्थमभिदधिरे-"नैवोपमानेनापि गम्यते सर्वज्ञः, तस्य सादृश्यविषयत्वात् 'अनेन दृश्यमानेन पदार्थेन सदृशस्तदीयो गौः' इति प्रवृत्तेः।" पृ० ८० A ॥ १२९. अत्र रात्रि A ॥ १३०. जनमेव B ॥ "पीनो दिवा न भुङ्क्ते चेत्येवमादिवचःश्रुतौ। रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥५१॥ तामर्थविषयां केचिदपरे शब्दगोचराम्। कल्पयन्ति... ॥५२॥" इत्युक्त्वा अन्ते वाक्यविषयत्वं प्रसाधितं मीमांसाश्लोकवार्तिके कुमारिलेन। "पीनत्वे सति दिवा भोजनप्रतिषेधस्य आत्मलाभो रात्रिवाक्यं नोपपद्यते इति श्रुतार्थापत्तेः प्रमाणविषयत्वेन दृष्टार्थापत्तेर्वैलक्षण्यम्"। -मी० श्लो० वा० भट्टोम्बेकवृत्ति पृ० ४०४ ॥

[१३१]प्रमेयमिति। दर्शनाद् यथा भस्मादिविकारमुपलभ्य [१३२]दाहशक्तिर्वह्नेः प्रमीयते। तथा अपराण्यपि उदाहरणानि शास्त्रादुत्प्रेक्ष्य वक्तव्यानि। अभावोऽप्यनिमित्तम्, अभावविषयत्वात्। तस्माच्चोदनालक्षण एव धर्मो नान्यलक्षण इति स्थितम्। तथा वर्णानामेव वाचकत्वम्-अर्थप्रतिपत्तिहेतुत्वम्। तच्च बाह्य एवार्थे, नान्यत्र। यत उक्तम्-"गकारौकारविसर्जनीया [१३३]इति भगवानुपवर्षः" [शाबरभाष्य, १।१।५, पृ० ४५] वायोश्च वक्त्रा प्रेरितस्य श्रोतुः श्रोत्रदेशं प्राप्तस्य ये संयोग-विभागास्तेऽभिव्यञ्जका गकारादिवर्णानाम्। ते [१३४]चाभिव्यक्ता एव वाचकाः, नान्यथा। नित्यश्च[१३५] शब्दार्थयोः सम्बन्धः। न च मीमांसकानां वर्णव्यतिरिक्ते पदवाक्ये स्तः, तेष्वेव पदवाक्योपचारात्।

इति [१३६]मीमांसकसिद्धान्तः समाप्तः ॥

[लोकायतिकमतम्]

बृहस्पतिमतानुसारिविहितप्रमाणप्रमेयस्वरूपनिरूपणाय[१३७] समासेनेदमाह। [१३८]तत्र च प्रमेयनिरूपणायाह- "[१३९]**पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि**" **[बृह० सू०]** आह-तत्त्वान्तरमप्यस्ति शरीरेन्द्रियादि[१४०]। न तत्त्वान्तरम्, यतः "**तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा**" **[बृह० सू०]**। शरीरं भूतसमुदायः तथेन्द्रियाणि विषयाश्चेति। तस्माच्चत्वार्येव तत्त्वानि। ज्ञानं तत्त्वान्तरमिति चेत्,

१३१. **प्रमेयम्** B ॥ १३२. **वह्नौ** A ॥ "तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञाताद्दाहाद्दहनशक्तता। वह्नेः... ॥३०॥"-**मी० श्लो० वा० अर्था०** ॥ १३३. **इति गवानुवेशः** A। **इति ताल्वाद्यनुकर्ष** B। "अथ गौः इत्यत्र कः शब्दः? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्षः।"-**शाबरभाष्य** ॥ १३४. **चाभिव्यञ्जका एव न वाचका** B। "अभिघातेन हि प्रेरिता वायवः स्तिमितानि वाय्वन्तराणि प्रतिबाधमानः सर्वतोदिक्कान् संयोगविभागानुत्पादयन्ति यावद्वेगमभिप्रतिष्ठन्ते।"-**शाबरभाष्य** १।१।१३ ॥ १३५. **नित्यः शब्दा** A ॥ १३६. **कमतस्य दिक्प्रदर्शनमिति** B ॥ १३७. **रूपप्रदर्शनाय** B ॥ १३८. **तत्र प्रमेयनिरूपणार्थमाह** B ॥ १३९. "ननु यद्युपप्लवस्तत्त्वानां किमापा... अथातस्तत्त्वं व्याख्यास्यामः। पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि। तत्समुदायेषु शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा"-**तत्त्वोप० सिंह** पृ० १। "पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि। तत्समुदायेषु शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा"-**धर्मसं० वृ०** पृ० २५ A ७२ B। "यदुवाच **वाचस्पतिः**-'पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदाये शरीरन्द्रियविषयसंज्ञाः, तेभ्यश्चैतन्यम्' इति"-**षड्द० बृ०** पृ० १२४। **स्या० र०** पृ० १०८५ ॥ १४०. **दिकं तत्त्वान्तरं यतस्तन्न तत्समु** B ॥

तदपि न, यत आह-"[१४१]तेभ्यश्चैतन्यम्" [बृह० सू०] तद्धर्म एवेत्यर्थः, मद्याङ्गानां मदशक्तिवत् । ननु चात्मा तत्त्वान्तरम्, तदप्यसम्बद्धमेव, यत आह **सूत्रकारः**- "[१४२]**जलबुद्बुदवज्जीवाः**" [बृह० सू०], तथा "[१४३]**चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः**" [बृह० सू०] । ननु च पुरुषार्थः कश्चित् तत्त्वान्तरं भविष्यति । तन्निवृत्त्यर्थमाह-"**प्रवृत्तिनिवृत्तिसाध्या**[१४४] **प्रीतिः पुरुषार्थः**" [बृह० सू०] स च "**काम एव**" [बृह० सू०], नान्यो मोक्षादिः । ननु चान्य एव कश्चिद् बुद्ध्याधारः पुरुषो भविष्यति। दृष्टहान्यदृष्टकल्पनासम्भवान्नान्यः । तस्मात् स्थितमेतत्-'चत्वार्येव तत्त्वानि[१४५]' ।

अथ प्रमाणम् । तस्य सामान्यलक्षणम्-अनधिगतार्थपरिच्छित्तिः प्रमाणम् । उपायो वा सन्निकर्षेन्द्रियार्थादि[१४६] । "सन्निहिततदर्थे यथार्थविज्ञानं [१४७]प्रत्यक्षम्" [बृह० सू०] । प्रत्यक्षस्येदं लक्षणम् । तन्मते "[१४८]प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणम्" [बृह० सू०] । ननु [१४९]चोक्तम्-"असन्निहितार्थमनुमानम्" [बृह० सू०] । तच्च परमतानुसारेण न स्वमतापेक्षयेति स्थितमिति लोकायतानां संक्षेपतः प्रमाणप्रमेयस्वरूपम्[१५०] ।

★[१५१]**इति लोकायतराद्धान्तः समाप्तः ।**

सर्वसिद्धान्तप्रवेशकः समाप्तः ।

नैयायिक-वैशेषिक-जैन-साङ्ख्य-बौद्ध-मीमांसक-लोकायतिकमतानि सङ्क्षेपतः समाप्तानि ।

---

१४१. "अत्र... लोकायतिकाः.... तेभ्यश्चैतन्यम्, मदशक्तिवद् विज्ञानम्, चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुषः' इति चाहुः ।"-**ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य** ३।३।५३ ॥ **१४२. धर्मसं० वृ०** पृ० २७ A। **षड्द० बृ०** ॥ **१४३. शास्त्रवा० स्वो०** पृ० ५ B। **षड्द० बृ०** ॥ **१४४.** "साध्या वृत्तिनिवृत्तिभ्यां या प्रीतिर्जायते जने। निरर्था सा मता तेषां धर्मः कामात् परो न हि॥८६॥"-**षड्द०** ॥ **१४५.** "तत्त्वसंख्या न युज्यते चत्वार्येव तत्वानि इति।"-**शास्त्रवा० स्वो०** पृ० ८ A। "चत्वार्येव पृथिव्यादीनि तत्त्वानि' इति तत्त्वनियमसंख्याव्याघातप्रसङ्गः ।"-**धर्मसं० वृ०** पृ० ३७ B। **१४६. यदिसन्निहितोर्थः यथा विज्ञानं** A ॥ **१४७. प्रत्यक्षम्** B मध्ये नास्ति ॥ **१४८.** "प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणम्' इति वचनात्"-**धर्मसं० वृ०** पृ० ६५ B। "प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं नान्यत्' इति वचनात्"-**धर्मसं० वृ०** पृ० ३७ B -६३ A॥ **१४९. चोक्तं परार्थमनुमानम्** A ॥ **१५०. स्वरूपं समाप्तमिति** B ॥ **१५१.** ★★ एतच्चिह्नान्तर्गतः पाठः B मध्ये नास्ति ॥

पू. श्री पद्मसागरगणी विरचित

(९) श्रीयुक्तिप्रकाशविवरणं प्रारभ्यते ॥

प्रणत्यव्यक्तभक्त्या श्री-वर्द्धमानक्रमांबुजं ।
आत्मार्थं तन्यते युक्ति - प्रकाशो जैनमंडनं ॥१॥

॥ टीका ॥ - प्रणम्य श्री महावीरं, नम्राखंडलमंडलं ॥ कुर्वे युक्तिप्रकाशस्य, स्वोपज्ञां वृत्तिमादरात् ॥१॥ प्रणत्येति - ॥ श्रीवर्द्धमानः श्री महावीरनामाऽस्यामवसर्प्पिण्यामंतिमजिनस्तस्य क्रमांबुजं पादपद्मं प्रणत्य नत्वा युक्तिप्रकाशनामा ग्रंथो मया तन्यत इति तावदन्वयः, तत्र व्यक्तभक्त्येति करणपदं वीरप्रणामविशेषणं तथा च व्यक्तभक्त्यान्वितप्रणामस्य बलवन्मंगलभूतत्वेन प्रत्यूहव्यूहोपशमनार्थमादावुपन्यासः; **ननु** बहूनां युक्तिप्रकाशकशास्त्राणां विद्यमानत्वेन किं युक्तिप्रकाशविस्तरकरणादरेणेत्यत आह - आत्मार्थं स्वार्थं, पूर्वाभ्यस्तान्येव शास्त्राण्येतत्करणादरेण विशेषात् स्मारितानि संति, स्वसंस्कारोद्बोधलक्षणं स्वार्थं साधयेयुरित्यर्थः, नन्वेतच्छास्त्रेऽध्ययनांऽगीकाराभ्यां केऽधिकारिण **इत्याह** - किंभूतो युक्तिप्रकाशः, जैनमंडनं, जिनशासनानुयायियुक्तीनामेवात्र प्रतिपादितत्वेन जैनानामेवाऽध्ययनांगीकाराभ्यामधिकारित्वान्मंडनमिव मंडनं, यद्यप्येतदध्ययनमात्रे शाक्यादयोऽधिकारिणो भवंत्येव, तथाप्यत्र तदुच्छेदयुक्तीनां विद्यमानत्वेनाऽनधिकारिण एव शाक्यादय इत्यर्थादापन्नं, ननु श्रीमद्भिर्यो युक्तिप्रकाशविस्तरः क्रियते, स किं पूर्वं विद्यते न वेति चेत्पूर्वं विद्यते, तदा सतः पुनःकरणेन पिष्टपेषणं संपन्नं, चेन्न विद्यते तदाऽसतः करणायोग इत्युभयथाप्यत्र निरर्थकैव श्रीमतां प्रवृत्तिरितिचेन्न, अस्त्येव स्याद्वादरत्नाकरादिशास्त्रेषु युक्तिप्रकाशविस्तारस्तथाप्यनया गत्या तत्र नास्तीति सार्थकैव प्रवृत्तिरत्रेति, तथाविधशास्त्रस्था अतीवगहनगंभीरा युक्तयो लालित्येन सुकरतया चात्र विस्तार्यन्त इत्यर्थः, **इति प्रथमवृत्तार्थः ॥१॥**

चेद् बौद्ध ! वस्तु क्षणिकं मते ते, तत्साधकं मानमदस्तथैव ।
तथा च तेन ह्यसता कथं तत्, प्रमेव धूमेन हुताशनस्य ॥२॥

॥ टीका ॥ - अथ प्रथमं बौद्धं निराकरोति, चेद् बौद्ध० तत् सं० हे बौद्ध ! तव मते चेद् यदि वस्तु घटपटलकुटशकटादिकं क्षणिकं क्षणेन एकेन समयेन विनश्वरमस्तीत्यध्याहार्यान्वयः, तर्हि तत्साधकं वस्तुक्षणिकत्वसाधकं अद इदं

मानमपि तथैव क्षणिकमेव स्यात्, अयं भावः - यदि सकलमपि वस्तुक्षणिकमित्येवांगीकृतं त्वया, तदा क्षणिकत्वसाधकं प्रमाणमिदमेव वाच्यं । अर्थक्रियाकारित्वात् क्षणिकं वस्त्विति, इदमपि सकलवस्त्वंतःपातित्वेन क्षणिकमेवेत्यर्थः । ननु क्षणिकत्वसाधकं प्रमाणं चेत् क्षणिकं तदा कः प्रकृते दोष इत्यत आह - तथा चेति, तथा च एवं सति क्षणिकत्वादेकसमयानंतरं असता विनष्टेन तेन क्षणिकत्वसाधकप्रमाणेन कथं तत्प्रमा क्षणिकत्वप्रमा जन्यत इत्यर्थाद् बोध्यं, प्रमा त्वत्राऽनुमितिरूपैव गृह्यते, तथा चायमर्थः - क्षणिकत्वं तावत् साध्यं, अर्थक्रियाकारित्वादिति हेतुः, हेतुस्तु यदि सन् स्यात्तदा पक्षधर्मत्वसामानाधिकरण्येन साध्यानुमिति जनयति, एतस्य हेतोर्विनष्टत्वेन पक्षधर्मत्वाभावात्कथं साध्यानुमितिजनकत्वं, न कथमपीत्यर्थः । अत्र द्रष्टांतमुखेन दार्ढ्यं दर्शयति । इव यथा धूमेन हेतुभूतेन हुताशनस्य वह्नेरनुमितिर्जन्यतेऽविनष्टत्वेन पक्षधर्मत्वसामानाधिकरण्यात्, न तथानेन हेतुना क्षणिकत्वात् स्वसाध्यानुमितिर्जनयितुं शक्येत्यर्थ इति वृत्तार्थः ॥२॥

तत्संततिर्नैव पदार्थसंततेः, संग्राहिकाद्यक्षण एव नष्टा ।
नाशग्रहौ नो युगपद् भवेतां, विरुद्धभावादिव बालवृद्धते ॥३॥

॥ **टीका** ॥ अथ क्षणानंतरं विनश्यता प्रमाणेन स्वसंततिर्जन्यते, तया विनश्यदवस्थार्थजनितसंततेः क्षणिकत्वं साध्यत इति चेन्नैतदपि सुंदरमित्याह - तदिति, तत्संततिः प्रमाणसंततिः पदार्थसंततेः क्षणिकत्वरूपसाध्यग्रहपुरस्कारेण न संग्राहिका सम्यग् ग्राहिका भवति, कुत इतिविशेषणद्वारेण हेतुमाह - सा प्रमाणसंततिः किंविशिष्टा क्व आद्यक्षण एव, प्रथमक्षण एव, उत्पत्त्यनंतरं यः प्रथमः क्षणस्तस्मिन्नेव क्षणिकत्वात् क्षयंगतेत्यर्थः । भावार्थस्त्वयं - विनश्यता प्रमाणेन स्वसंततिर्जन्यते, साऽपि विनश्यती संतत्यंतरमियं किल बौद्धानां परिपाटीः । तथा च स्वनाशव्यग्रत्वात्प्रमाणसंततिरपि तथाऽवस्थापन्नार्थसंततेः कथं ग्राहिका स्यात्, नैवेत्यर्थः ॥ **ननु** युगपत्प्रमाणसंततेर्नाशोऽप्यस्तु, पदार्थसंततिग्रहोऽप्यस्तु, को दोष इत्यत आह - नाशश्च ग्रहश्च नाशग्रहौ, स्वस्य नाशः परस्य ग्रहः, एतौ द्वौ युगपत् समकालं नो भवेतां । **तथाहि** - प्रमाणसंततिर्हि विनश्यती वा पदार्थसंततिग्राहिका विनष्टा वा, नाद्यो विनश्यत्यास्तस्याः स्वनाशव्यग्रत्वेन परकृत्यकरणाऽसमर्थत्वात्, विनाशकालादधिककालाऽलाभाच्च । न द्वितीयस्तस्या नाशस्याऽभावरूपत्वात् अभावस्य प्रतियोगिकृत्याऽकरणात् । यद्यभावोऽपि प्रतियोगिकृत्यं

करोति । तदा घटाभावस्यापि जलाहरणक्रियाकरणप्रसक्त्या, घटव्यतिरिक्ता अप्यर्था जलाहरणं कुर्युरिति व्यवहारोच्छेदस्तस्माद्विनष्टा प्रमाणसंततिर्न पदार्थसंततिग्राहिकेति । कुत इत्यत आह - विरुद्धभावाद्विरुद्धत्वादित्यर्थः ॥ अथात्र द्रष्टांतः ॥ इव यथा वृद्धबालते नो युगपद् भवेतां । **द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं उभयत्रापि संबध्यत इति** न्यायाद् वृद्धताबालते सामानाधिकरण्येनायमर्थः, एकस्मिन्नेव पुरुषे युगपद् वृद्धताबालते न संभवत इत्यर्थः, इति वृत्तार्थः ॥३॥

प्रामाण्यामुच्चैर्वदताऽपरोक्षा - नुमानयोरेव निषिद्धमेतत् ।
शब्देषु बौद्ध ! त्वयका तथा चाऽप्रामाण्यमाप्तं तकयोर्न द्रष्टं ॥४॥

॥ **टीका** ॥ प्रामाण्यमिति ॥ **हे बौद्ध !** अपरोक्षानुमानयोरेव प्रत्यक्षानुमानयोरेव प्रामाण्यं वदता प्रमाणे स्त इत्युक्तं । तथा च शब्देषु त्वया एतदिति प्रामाण्यं निषिद्धं । ततः किमित्यत आह - तथा चेति, एवं सति तकयोस्तयोस्तव प्रामाण्येनाऽभिमतयोः प्रत्यक्षानुमानयोरप्रामाण्यमाप्तं प्राप्तं सदपि भवता न द्रष्टं, न ददृशे, इति शब्दार्थः, **भावार्थस्तु** त्वया हि धावत भो डिंभाः नदीतीरे गुडशकटं विपर्यस्तमित्यादिवचनवत् संवादकत्वाऽभावात् सर्वेषां शब्दानामप्रामाण्यमित्येवं वक्तव्यं तच्च प्रत्यक्षानुमानयोरपि समानं, क्वचिद् भ्रमरूपे प्रत्यक्षादौ संवादकत्वाऽदर्शनात्, क्वचिद्धेत्वाभासा-दावनुमानेऽपि संवादकत्वाऽदर्शनात्तयोः समग्रयोरपि अप्रामाण्यप्रसक्ते-स्तस्मात्तयोरिव शब्दानामपि प्रामाण्यांगीकारं कुर्वित्यर्थः, **इति वृत्तार्थः** ॥४॥

नांतर्भवत्येव किलानुमाने, शाब्दं प्रमाणं विपरीतरूपं ।
प्रत्यक्षवत्तस्य यतो विभिन्ना, समग्रसामग्र्यपि सुप्रतीता ॥५॥

॥ **टीका** ॥ - **ननु** शाब्दं प्रमाणं पृथग् नोच्यते, किंत्वनुमानांतः-पातीत्युच्यत इति चेन्नैतदपि सुंदरमित्यत आह - नांतर्भ०, शाब्दं प्रमाणमनुमाने न अंतर्भवति, यथा प्रत्यक्षमनुमाने नांतर्भवति तथेदमपि, कुतोऽस्याऽ-नुमानाऽन्तर्भावे प्रत्यक्षसाम्यमित्यतो विशेषणद्वारा हेतुमाह - किंविधं शाब्दं प्रमाणं, विपरीतरूपं अनुमानाद्विपरीतं रूपं स्वरूपं यस्य तदिति प्रत्यक्षसाम्यं । कुतोऽस्य प्रत्यक्षस्येव नानुमानरूपत्वमित्यत आह - **यतः** कारणात्तस्य शाब्दप्रमाणस्य समग्रसामग्र्यपि अनुमानाद्विभिन्नास्तीति शब्दार्थो **भावार्थस्त्वयं** - त्वया हि शाब्दं प्रमाणं किं संबद्धमर्थं गमयेदसंबद्धं वा, न तावदसंबद्धं, गवादेरप्यश्वादिप्रतीतिप्रसंगात् । संबद्धं चेत्तदा तल्लिंगमेव तज्जनितं च

ज्ञानमनुमानमेवेति वक्तव्यं, **तच्चाऽयुक्तं**, प्रत्यक्षस्याप्येवमनुमानत्वप्रसंगात् । तदपि हि स्वविषये संबद्धं सत्तस्य गमकं, अन्यथा सर्वस्य प्रमातुः सर्वार्थप्रत्यक्षत्वप्रसंगात् । अथ विषयसंबद्धत्वाविशेषेऽपि प्रत्यक्षानुमानयोः सामग्रीभेदात्प्रमाणांतरत्वं, तर्हि शब्दस्यापि किमेवं प्रमाणांतरत्वं न स्यात्, शाब्दं हि शब्दसामग्रीतः प्रभवतीति **तदुक्तं प्रमेयकमलमार्तंडे - शब्दादुदेति यद्ज्ञानमप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि । शाब्दं तदिति मन्यते प्रमाणांतरवादिनः ॥१॥** तस्मात्प्रत्यक्षानुमानयोरिव शब्दस्यापि प्रमाणांतरत्वमंगीकर्त्तव्यमेव । अथ शब्दसामग्र्या बहुसंमतत्वं दर्शयति । किंविधा सामग्री सुप्रतीता अतिशयेन प्रतीतेत्यर्थः ॥५॥

न संनिकर्षोऽपि भवेत्प्रमाणं, प्रमाकृतौ तद्व्यभिचारदर्शनात् ।
अप्राप्यकार्यंबकसंनिकर्षो, घटादिनाऽर्थेन कथं भवेत् पुनः ॥६॥

॥ टीका ॥ - अथ सुगतमतमपाकृत्य नैयायिकमतमपाकरोति, न संनि० चेत्प्राप्य० द्विधाप्य० न तैज० अग्रगकाव्यगतं यौगपदमध्याहृत्यात्र व्याख्येयं । **हे यौग !** त्वया प्रमाणत्वेन कल्पितोऽपि संनिकर्षः प्रमाणं न भवेत्, कुत इति हेतुमाह ॥ प्रमाकृतौ प्रमाजनने तदिति तस्य संनिकर्षस्य व्यभिचारदर्शनात्, भावार्थस्त्वयं - प्रमासाधकतमं प्रमाणमिति प्रमाणलक्षणं त्वया अभ्युपगतं, यद्यस्मिन् सति भवत्येवाऽसति च न तत्तस्य साधकतमं, क्वचित्सत्यपि संनिकर्षे प्रमाया अनुत्पादात् । क्वचिदित्यपि प्रमोत्पत्तेरित्यत्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां व्यभिचारदर्शनात् । **तथाहि** - गगनस्य विभुत्वेन सकलमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वमिति वचनाद् गगनचक्षुषोर्घटचक्षुषोरिव संनिकर्षेण घटविषयकप्रमाया अजननात्, न च तत्र योग्यताया अभावान्न संनिकर्षस्तत्प्रमां जनयतीति वाच्यं । योग्यतांगीकारे किमंतर्गडुना संनिकर्षेण योग्यता हि प्रतिबंधकाऽभावः, स च स्वावरणक्षयोपशमरूपं भावेंद्रियमेव, तथा चास्मत्कक्षापंजरप्रवेशः, विशेषणज्ञानाद्विशेष्यप्रमायां जायमानायां क्वचिदसत्यपि संनिकर्षे प्रमोत्पत्तेरिति स्थितमेतन्न संनिकर्षः प्रमाणमिति । अथ ग्रामो नास्ति कुतः सीमेति न्यायात् । घटाद्यर्थैः संनिकर्ष एव न संभवति, तस्य प्रमाणाऽप्रमाणत्वविचारस्तु दूरेऽस्त्विति दर्शयति - अप्राप्येति अप्राप्यकारि यदंबकं चक्षुस्तस्य घटादिनार्थेन संनिकर्षः कथं भवेन्न कथमपीत्यर्थः । यदि चक्षुः प्राप्यकारि स्यात् तदाऽस्यार्थप्राप्त्या संनिकर्षः संभवतीति भावार्थ, **इति वृत्तार्थः ॥६॥**

चेत्प्राप्यकार्यंबकमस्ति यौगा ! ऽत्यासन्नामर्थं कथं न पश्यति ।
तथाविधं सत्किमु तेषु गत्वा, गृह्णाति वा यांत्यथ तेऽत्र देशे ॥७॥

॥ टीका ॥ - अथ चक्षुः प्राप्यकारित्वं निरस्यति । चेत्प्राप्य० चेदंबकं चक्षुः प्राप्यकारि हे यौग ! अस्ति, तदाऽत्यासन्नमंजनादिकमर्थं कथं न गृह्णातीत्यर्थः, यद्यत्प्राप्यकारि दृष्टं तदत्यासन्नार्थग्राहकमपि । यथा शब्दादेः श्रोत्रादि, तथा च तर्कोल्लेखः यदि चक्षुः प्राप्यकारि स्यात्तदात्यासन्नार्थग्राहकमपि स्यादिति तर्कोपजीवितप्रयोगोऽपि, यथा चक्षुर्न प्राप्यकारि अत्यासन्नार्थाऽग्राहकत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं तथा स्पर्शनं, अथ तुष्यतु दुर्जन इति न्यायात्तावत्तवांगीकृतं चक्षुः प्राप्यकारितत्वमप्यंगीक्रियते, यदि विकल्पसहं स्यात् । तथाहि - तथाविधं प्राप्यकारित्वं किमु कथं तेषु अर्थेषु गत्वा गृह्णाति, अथवा तेऽर्था अत्र देशे चक्षुः प्रदेशे आयांतीति विकल्पद्वयमिति **वृत्तार्थः ॥७॥**

द्विधाप्ययुक्तं हि गतस्य तस्य, वह्न्यादिकार्थेषु कथं न दाहः ।
भूभूधराद्यर्थसमागमेऽपि, नाच्छादनं स्यात्किमु तस्य चक्षुषः ॥८॥

॥ टीका ॥ - अथ विकल्पद्वयमध्यान्यतरविकल्पांगीकारेणाऽदक्षतां यौगस्य दर्शयति, द्विधाप्य० द्विधापि उभयथापि अयुक्तं स्यान्नतु युक्तिमत्वं स्यात्तत्कथमिति तावत् प्रथमपक्षे दोषं दर्शयति यदि हि चक्षुस्तेषु गत्वा गृह्णाति तदा तस्य चक्षुषो वह्न्यादिकार्थेषु गतस्य दाहो दहनं कथं न स्यात्, अथार्थाश्चक्षुः प्रदेशे समायांतीति द्वितीयविकल्पं दूषयति, भूः पृथ्वी, भूधराः पर्वतास्तेषां चक्षुः प्रदेशे समागमे भूभूधराद्यर्था यदि चक्षुःप्रदेशे समायांति तदा किं स्यादित्यत आह - तस्य चक्षुष आच्छादनं आवरणं किमु न स्यात्, ते ह्यागताश्चक्षुराच्छादयंति, तथा च लाभमिच्छतो मूलक्षतिस्तवायातीति **वृत्तार्थः ॥८॥**

न तैजसत्वादथ तस्य दाहो, वह्न्यादिना चेदिति नैवमेतत् ।
न तैजसं स्यात्तमसो ग्रहाद्यत - स्तेजो न गृह्णाति च तत्क्षणोति ॥९॥

॥ टीका ॥ - अथेत्यादि वचश्चपेटाताडितो यौगवावदूकः किंचित्प्रतिवदति । न तैज० अथेति नन्वर्थे । ननु अस्य चक्षुषस्तैजसत्वाद्वह्न्यादिना न दाहः स्यात् । तेजो हि तेजसि गतं सद्वर्धते न तु हीयते, इति चेन्नैवमिति प्रतिवदंतं वावदूकं

पुनर्वचश्चपेटाभिस्ताडयित्वा मौनं कारयति । एतच्चक्षुस्तैजसं न स्यात् कुत इति हेतुमाह - तमसोंऽधकारस्य ग्रहाद् ग्राहकत्वादित्यर्थः, तथा च तर्कोल्लेखः - यदि चक्षुस्तैजसं स्यात्तदा तमोग्राहकं न स्यात्, यद्धि तैजसं न तत्तमोग्राहकं आलोकवत्, प्रयोगोऽपि यथा चक्षुर्न तैजसं तमो ग्राहकत्वात्, यन्नैवं तन्नैव, यथालोक इति । अत्रार्थे हेतुमाह - यतः कारणात्तेजस्तमो न गृह्णाति, प्रत्युत तमः क्षणोति विनाशयति, अत्रापि तर्कोल्लेखः - यदि चक्षुस्तैजसं स्यात्तदा तमोध्वंसकं स्यात्, व्यतिरेकदृष्टान्तेन प्रयोगोऽपि तथैवेति स्थितमेतन्न तैजसं चक्षुरति, पूर्वोक्तविकल्पाऽसहत्वेन चक्षुर्न प्राप्यकारीति वृत्तार्थः ॥९॥

बोधस्य बोधांतरवेद्यतायां, यौग ! त्वया नो ददृशेऽनवस्था ।
सौवग्रहव्यग्रतया पदार्था - ग्रहश्च शंभोरसमग्रवित्त्वं ॥१०॥

॥ टीका ॥ - बोधस्य० हे यौग ! त्वया बोधस्य ज्ञानस्य बोधांतरवेद्यतायां ज्ञानांतरवेद्यतायां स्वीकृतायामित्यध्याहार्यं, ज्ञानं ज्ञानांतरवेद्यमित्यंगीकृते त्वयाऽनवस्था न ददृशे, घटादिज्ञानं ज्ञानांतरग्राह्यं चेत्तदा ज्ञानांतरेण ग्राह्यं तदंतरेणेति, च पुनर्दूषणाभ्युच्चये, ज्ञानस्य ज्ञानांतरवेद्यतायां घटादिविषयक-ज्ञानस्य सौवग्रहव्यग्रतया, स्वसंबंधा ग्रहः सौवग्रहस्तस्मिन् व्यग्रतया पदार्थानां ज्ञेयानामग्रहस्तथा च लाभमिच्छतो मूलक्षतिरायाता, **तथाहि** - पदार्थग्रहाय ज्ञानं त्वया कल्पितं तच्चेत् स्वग्रहेऽप्यसमर्थं, तदा परग्राहकं कथं स्यात् । स्वग्रहे व्यग्रत्वं च शब्दबुद्धिकर्मणां त्रिक्षणावस्थायित्वेन प्रथमक्षणे स्वयमुत्पद्यते द्वितीयक्षणे ज्ञानांतरमुत्पन्नं सत् तद् गृह्णाति, तृतीयक्षणे तु गृहीतं सत्तद्विनश्यति, तथा च कुतस्तेन पदार्थग्रहः, पुनर्दूषणांतरमाह - शंभोरीश्वरस्याऽसमग-वित्त्वमसर्ववेदित्वं स्यात्तथाहि - इश्वरज्ञानस्यापि ज्ञानत्वेन ज्ञानांतरग्राह्यत्वमेव वाच्यं त्वया । तथा च तद् ज्ञानं परोक्षं स्यात्, तथा च तेन स्वयं स्वज्ञानमपि न गृहीतं, तदा तेन कथं घटादयोऽर्था गृह्यंते, अथेश्वरज्ञानं तथा नास्तीति चेत्तदाऽस्मदादीनामपि ज्ञानत्वे विशेषाऽभावात्तथा नास्तीत्यर्थस्तथा च प्रयोगः - ज्ञानं न ज्ञानांतरवेद्यं ज्ञानत्वादीश्वरज्ञानवदिति वृत्तार्थः ।

सकर्तृकत्वेऽवनिभूधरादिषु, साध्येऽत्र हेतुर्बत कार्यभावः ।
न्यस्तस्त्वया तत्र कथं न दृष्टः, शरीरिजन्यत्वमुपाधिरेषः ॥११॥

॥ टीका ॥ - सकर्तृ० चेदेक० चेत्स० बतेत्यामंत्रणे हे यौग ! त्वयाऽवनिः पृथ्वी, भूधराः पर्वतास्तदादिषु अर्थेषु सकर्तृकत्वे साध्ये कार्यभावः कार्यत्वं

हेतुर्न्यस्तः, तथाहि प्रयोगः - भूभूधरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटवत्, यश्चात्र कर्ता स शंभुरेवेति । तत्र तस्मिन्ननुमाने शरीरिजन्यत्वं साध्यव्यापकसाधना-व्यापकत्वात् व्यभिचारोन्नायकत्वाच्च कथं न त्वया एष उपाधिर्दृष्टः, अत्र एष इत्यनेन एवं ध्वन्यते । यदि व्यभिचारोन्नायकेतरः स्यादुपाधिस्तदाऽकिंचि-त्करत्वाददर्शनपि स्यात् अयमुपाधिस्तु व्यभिचारोन्नायकत्वेन व्याप्तिविघट-कोऽपि कथं न दृष्टः, **यदुक्तं तत्वचिंतामणौ - व्यभिचारोन्नयनं कुर्वन्नुपाधिर्याति दोषतामिति** । तथा चायमर्थः - यत्कार्यं तच्छरीरिजन्यं कार्यत्वाद् घटवत्, ननु यथा घटादिकार्यस्य कर्ता कुलाल उपलभ्यते, तथा भूधरादिकार्याणां कः शरीरी कर्तास्तीति चेच्छृणु, स्वस्वकर्मसहकृताः पार्थिवादिजीवास्तत्कर्तारस्ते च संसारित्वेन शरीरिण एव, ननु पृथिव्यां जीवा संतीत्यत्र किं प्रमाणमिति चेदनुमानादेव तदास्थां कुरु, सकलापि पृथ्वी जीवच्छरीरं छेद्यत्वात्तरुवत् । मनुष्यशरीरवच्चेतीश्वरस्य जगत्कर्तृतानिरासः ॥११॥

चेदेक एवास्ति हरस्तदाऽसौ, न जीवभावं भजतेंऽतरिक्षवत् ।
अथेश्वरश्चेत् स्ववशः कथं न, करोति लोकं सुखिनं समग्रं ॥१२॥

॥ टीका ॥ - अथ हर एक एवास्तीति यद्यौगा वदंति तन्निषेधायाह - चेद्यदि हर एक एवास्ति तदासौ शंभुजीवभावं न भजते, न प्राप्नोति, अंतरिक्षवद् गगनवत्, यथाहि गगनं एकत्वादजीवः तथायमपि, कथमिति चेच्छृणु, एकत्वं सजीवत्वं च तावन्न क्वचिद् दृष्टं एकत्वं चात्र सजातीयाऽभावः स च गगनादौ विद्यते, तस्माद्यथाजीवत्वे सति एकत्वं गगने विद्यते, तथात्रापि, तथा च प्रयोगः - ईश्वरोऽनात्मा एकत्वाद् गगनवत् । अथेश्वरस्य स्ववशत्वं निराकरोति । अथेत्यानंतर्यार्थे चेदीश्वरः स्ववशोऽस्ति परनिरपेक्षोऽस्तीत्यर्थः, तदा तत्तत्प्राणिगणोपार्जिततत्कर्मजन्यसुखदुःखप्रदाताऽसौ कथमंगीक्रियते, येन हि प्राक्तनं यादृशमदृष्टमर्जितं तादृशादृष्टानुसारी परमेश्वरस्तस्य तज्जनितं सुखं दुःखं वा ददातीति भवन्मतरहस्यवेदिनः । तथा च प्राणिगणोपार्जितकर्म-वशत्वेनास्य स्ववशत्वं कुत इति, अथेशस्य स्ववशत्वं यदि स्यात् तदा समग्रं लोकं कथं नासौ सुखिनं करोति, कथमिति चेच्छृणु, लोकं किल सृजन्नसौ कारुणिको अकारुणिको वा, चेदकारुणिकस्तदास्य देवत्वमेव व्याहतं, म्लेच्छवन्निष्ठुरहृदयत्वात्तस्येति, कारुणिकश्चेत्तदा स्ववशत्वे सति कारुणिकः सन् कथं न समग्रं लोकं सुखिनं करोति, कारुणिकत्वविशिष्टस्ववशत्व-वतस्तथास्वभावत्वादिति वृत्तार्थः ॥१२॥

चेत्सर्वगत्वं हि हरस्य मन्यसे - ऽविज्ञानविज्ञानविभक्त आत्मा ।
मान्यस्तदीयोऽथ समग्रगत्वे, ज्ञानस्य तत्त्वं विजहाति तत्पुनः ॥१३॥

॥ **टीका** ॥ - अथ हरस्य विभुत्वं निषिध्यते, चेत्० हरस्य शंभोश्चेत्त्वं सर्वगत्वं विभुत्वं मन्यसे तदा तदीय आत्मा ईश्वरात्मा अविज्ञानविज्ञानविभक्तो मान्यः, भावार्थस्त्वयं - यदीश्वरो व्यापकस्तदा तद्गतं ज्ञानं व्यापकमव्यापकं वा, चेद्व्यापकं तर्हि सिद्धांतबाधः, चेदव्यापकं तदैकस्मिन्नीश्वरात्मखंडे ज्ञानं, अपरस्मिन्नात्मखंडेऽज्ञानं, तथा चाऽविज्ञानविज्ञानाभ्यां विभक्त आत्मा तदीय इति । अथेश्वरस्य व्यापकत्वेन तद्गतं ज्ञानमपि व्यापकमेव ब्रूमः, अस्मत्सिद्धांतं वयमेव विज्ञो न भवंत इति चेत्तर्हि ईश्वरज्ञानमज्ञानमेव स्यात्, तथा च प्रयोगः - इश्वरज्ञानमज्ञानं व्यापकत्वात्, यदेवं तदेवं, यथा गगनमितीश्वरस्य सर्वगत्वनिरास इति वृत्तार्थः ॥१३॥

चिच्छक्तिसंक्रांतिवशेन बुद्धि - र्जडापि सांख्यस्य तवाऽजडैव ।
आभासते यन्न च युक्तमेत - च्चिच्छक्तिराप्नोति न संक्रमं यतः ॥१४॥

॥ **टीका** ॥ - अथ सांख्यमतं निराकरोति, चिच्छक्ति० अहो पुरुष सांख्य ! तव मते जडापि बुद्धिश्चिच्छक्तिसंक्रांतिवशेनाऽजडैवाभासते, अयमर्थः - बुद्धिर्जडत्वेन न स्वपरप्रकाशिकाऽस्ति, यदा चैतस्यां चिच्छक्तेः संक्रमः स्यात्तदा प्रकाशिकाऽपि स्यादित्यजडैव तवाभासते, न चैतद्युक्तं, कुत इत्याह यतः कारणात् चिच्छक्तिः संक्रमं नाप्नोति कथमिति चेच्छृणु, संक्रमा-स्तावन्मूर्त्त-धर्मश्चिच्छक्तेरमूर्त्तधर्मत्वात् संक्रमो नोत्पद्यत इति वृत्तार्थः ॥१४॥

तस्या अथः संभवनेऽपि बुद्धि - र्जडत्वतो न क्रियते सचेतना ।
सचेतनस्यापि नरस्य संक्रमात्, यद्दर्पणो नैव भवेत् सचेतनः ॥१५॥

॥ **टीका** ॥ - तस्या० अथ तुष्यतु दुर्जन इति न्यायात्तव संतोषायैवमुच्यते, अथो अथानंतरं तस्याश्चिच्छक्तिसंक्रांतेः संभवनेऽपि संभवेऽपि जडा सती बुद्धिः, सचेतना नैव क्रियते, कुत इत्याह- यत्कारणात् सचेनतस्यापि नरस्य दर्प्पणे संक्रमात् दर्प्पणः सचेतनो न स्यात्, दर्प्पणस्य सचेतनाऽचेतन-संक्रमावसरे तुल्यत्वादिति वृत्तार्थः ॥१५॥

यदि स्तः प्रकृतेरेव, बंधमोक्षौ तदा ध्रुवम् ।
वंध्याजस्येव जीवस्या - ऽवस्तुत्वं न भवेत्कथं ॥१६॥

॥ टीका ॥ - यदि स्त० भो सांख्य ! यदि प्रकृतेरेव बंधमोक्षौ स्तः, तदा ध्रुवं निश्चितं वंध्याजस्येव वंध्यासुतस्येव जीवस्यात्मनोऽवस्तुत्वं कथं न भवेदपि तु भवेदित्यर्थः, कथमिति चेच्छृणु, यथाहि वंध्यासुतस्यार्थक्रियाकारित्वाऽभावात् अवस्तुत्वं, तथा जीवस्याऽर्थक्रियाकारित्वाऽभावादवस्तुत्वं, तथाहि - जीवस्यार्थक्रिया बंधो मोक्षश्च, तौ च तस्य तव मते न स्त इति वंध्यासुतसदृश आत्मा स्यादितिवृत्तार्थः ॥१६॥

न स्तश्चेदात्मनो बंध - मोक्षौ तर्हि कथं त्वया ।
भोगीति मन्यते बद्धं, प्रकृत्या भोगमस्ति यत् ॥१७॥

॥ टीका ॥ - नस्तश्चे० चेद् बंधमोक्षौ आत्मनो न स्तस्तर्हि आत्मा भोगीति त्वया कथं मन्यते, भोगो हि शुभाऽशुभकर्मबंधजनितः, स चास्य नास्तीति न भोगित्वव्यपदेशो युक्तः, तथा च प्रकृतेरेव त्वया भोगित्वं वाच्यं, कुत इत्याह - यत्कारणात् भोग्यं कर्म प्रकृत्येव बद्धं, नान्येनेति वृत्तार्थः ॥१७॥

स्वयं च विहितं कृत्यं, स्वयं भोक्तव्यमेव भोः ।
दृश्यते ह्यत्र लोकेऽपि, तद्भोगस्तस्करादिषु ॥१८॥

॥ टीका ॥ - अथ मंत्रिणेवान्येन कृतं राज्ञेवान्येन भुज्यमानमपि दृश्यत इति मंत्रिस्थानीयप्रकृत्या बद्धं आत्मना भुज्यमानमस्तीत्यत आह स्वयंच०, भो सांख्य ! स्वयं विहितं कृत्यं स्वयमेव भोक्तव्यं नाऽपरेण, हि यतः कारणाल्लोके तद्भोगः स्वयंकृतभोगः स्वस्यैव तस्करादिषु दृश्यते, येनैव हि तस्करेण चौर्यं कृतं, तस्यैव तस्करस्य शूलारोपणादि क्रियमाणमस्ति, नापरस्येति, मंत्रिद्रष्टांतस्त्वत्राऽसत्य एवेति, न हि सर्वमपि मंत्रिणा कृतं राजा भुनक्ति, यच्च किंचिद् भुनक्ति तत्तु तेन मंत्रिणा करणभूतेन निर्मितत्वात् तथा चास्मन्मतमेव सुस्थं, करणभूतैः कर्मभिः कृतं जीवो भुनक्तीति वृत्तार्थः ॥१८॥

एकांतनित्यं गगनादिवस्तु, स्वभावभेदात्किमु कार्यकारि ।
स्वभावभेदस्तु न तत्र चेद् भवेद् - भवेत्तदा तज्जनितार्थसंकरः ॥१९॥

॥ टीका ॥ - अथ सांख्यमतं निरस्य वैशेषिकमतं निराकरोति । एकांत० अहो वैशेषिक ! गगनादि गगनकालदिगात्मादिकं वस्तु एकांतनित्यं सत्

स्वभावभेदाद् भिन्नस्वभावकत्वात्-कार्यकारि किमु कथं भवति न कथमपीति, भावार्थस्त्वयं - यदि गगनादि वस्तु नित्यं तदा कथं स्वभावभेदः, संभवति अप्रच्युताऽनुत्पन्नास्थिरैकस्वभावं हि नित्यं, गगनादिकं हि येनैव स्वभावेन तव मते प्रथमं शब्दादिकं जनयति, न तेनैव स्वभावेन द्वितीयं शब्दादिकं जनयति, एवमात्मादिना सुखदुःखादिजननेऽप्यवसेयं, न हि येनैव स्वभावेनात्मा सुखं जनयति तेनैव स्वभावेन दुःखमपीति, तथा च स्वभावभेदात् स्वभाववतोऽपि भेद इति, ननु स्वभावभेदो मास्तु, एक स्वभावेनैव गगनादिवस्तु कार्यकारि भविष्यतीत्याशंक्याह - चेद्यदि तत्र गगनादिवस्तुनि कार्यजनना-ऽवसरे स्वभावभेदो न भवेत्तदा तदिति गगनादिना क्रमेण जनितार्थानां संकरः स्यात्, कथमिति चेच्छृणु, येनैव स्वभावेन प्रथमं शब्दं जनयति गगनं, तेनैव स्वभावेन द्वितीय-तृतीयचतुर्थशब्दान् जनयति, समवायिकारणस्वभावा-भेदात्तदुत्थकार्यस्याप्यभेद एकस्वभावजन्यत्वात् । न ह्येकस्वभावेन मृदा जनिते एकस्मिन्नेव घटे भेद उपलभ्यते, द्वितीयघटे तु स्वभावभेदेन मृदा जनितत्वाल्लभ्यतेऽपि भेदः एवं चात्माऽपि एकस्वभावत्वात् येनैव स्वभावेन सुखं जनयति तेनैव स्वभावेन दुःखमपि,तथा चैकस्वभावत्वात् सुखदुःखसांकर्यं स्यात्तथा च महती भवतो हानिर्लोकव्यवहारलोपात्, एवं कालादिष्वपि नेयमिति, तस्मान्न तद् गगनादि एकांतनित्यं स्यादिति वृत्तार्थः ॥१९॥

न सर्वथाऽनित्यतया प्रदीपा - दिकस्य नाशः परमाणुनाशात् ।
तद्दीपतेजःपरमाणवोऽमी, आसादयंत्येव तमोऽणुभावं ॥२०॥

॥ टीका ॥ - अथार्थस्य सर्वथाऽनित्यतां निराकरोति, न सर्व० हे वैशेषिक ! प्रदीपादिकस्यार्थस्य सर्वथाऽनित्यतया नाशो न स्यात्, कुत इत्याह परमाणुनाशात्, यदि प्रदीपस्य सर्वथाऽनित्यतया सर्वथा नाशोंऽगीक्रियते, तदा तदारंभकपरमाणूनामपि नाशः स्यात् एतच्च तवाप्यनिष्टं, ननु पूर्वं दृश्यमाणप्रदीपाऽदर्शने को हेतुरित्यत आह - तदिति स चासौ दीपश्च तद्दीपस्तस्मिन् ये तेजः संबंधिपरमाणवः अमी इति उभयसम्मताः तमोरूपतया परिणता दृश्यंते, न पूर्वदृश्यमाणप्रदीपो दृश्यत इति तद्दर्शनेऽयमेव हेतुरिति वृत्तार्थः ॥२०॥

द्रव्यं तमो यद् घटवत् स्वतंत्र - तया प्रतीतेरथरूपवत्त्वात् ।
नाऽभावरूपं प्रतियोगिनोऽपि, तथा स्वरूपं किल केन वार्यं ॥२१॥

॥ **टीका** ॥ - ननु तमसोऽभावरूपत्वेन कथं परमाणुजन्यत्वमित्यत आह द्रव्यंत० हे वैशेषिक ! तमो द्रव्यं कुत इत्याह - स्वतंत्रतया प्रतीतेः, यत् स्वातंत्र्येण परनिरपेक्षतया प्रतीयते तद् द्रव्यं, घट इवेति । अथेति द्वितीयहेत्वर्थे रूपवत्त्वात्तद्द्रव्यं घटवदिति । अथाऽभावरूपत्वे दोषमाह तमो नाऽभावरूपं, कुत इत्याह-प्रतियोगीति, तमसोऽभावरूपत्वे प्रतियोगी तावदालोके वक्ष्यते भवता, अस्माभिस्तु वक्ष्यते तम एव प्रतियोगी, तस्याऽभावस्तु आलोक इति, तथा च भवता प्रोच्यमानप्रतियोगिनोऽपि तथा स्वरूपं केन वार्यं ? न केनापीत्यर्थः, इत तमसो द्रव्यत्वात्परमाणुजन्यत्वमिति वृत्तार्थः ॥२१॥

काणाद ! शब्दस्तव चेन्नभोगुणो नातींद्रियः स्यात्परिमाणवत्कथं ।
गुणोऽपि चेत्तर्हि तदाश्रये च, द्रव्येऽगृहीते किमु गृह्यतेऽसौ ॥२२॥

॥ **टीका** ॥ - अथ शब्दस्य गुणत्वं निषेधयति । काणाद० हे काणाद तव मते चेन्नभोगुणः शब्दोऽस्ति, तदाऽतींद्रिय इंद्रियाऽग्राह्यः कथं न स्यात् परिमाणवत् । अधिकाराद् गगनपरिमाणमिव, यथा गगनपरिमाणं तद्गुणत्वेनाऽतींद्रियं तथा शब्दो भवेदिति, तस्मान्न गगनगुणः शब्दः ननु शब्दस्य गगनगुणत्वं मास्तु तथाऽपि कस्यचिद् द्रव्यांतरस्य गुणोऽयं भविष्यतीति वैशिषेककदाशां निराकरोति, चेत् शब्दो गुणस्तर्हि तदाश्रये द्रव्येऽगृहीतेऽसौ कथं गृह्यते, तस्मान्नायं गुणोऽपीति वृत्तार्थः ॥२२॥

द्रव्यं हि शब्दो गतियुक्तभावाद्, व्याघातकत्वाच्च गुणान्वितत्वात् ।
अर्थक्रियाकारितया च किं चानुद्भूतरूपादिगुणान्वितोऽसौ ॥२३॥

॥ **टीका** ॥ - अथ शब्दस्य गुणत्वं निरस्य स्वमतसिद्धं द्रव्यत्वं दर्शयति, द्रव्यं हि० ॥ शब्दो द्रव्यं, कुत इत्याह- गतियुक्तभावाद् गतिमत्त्वादित्यर्थः, गतिर्हि द्रव्य एव दृष्टा न पुनर्गुणादिषु, द्रव्यत्वे हेतुमाह - व्याघातकत्वात् यद् व्याघातकं तद् द्रव्यमेव दृष्टं, तथा कुड्यादि, गुणादीनां व्याघातकत्वाऽसंभवात्, दृश्यते च तीव्रशब्दैर्मंदशब्दानां व्याघातकरणमिति । पुनर्द्रव्यत्वे हेत्वंतरमाह - गुणान्वितत्वात्, गुणाः संख्यादयस्तैरन्वितत्वात् । एको द्वौ त्रयो वा शब्दा मया श्रुता इत्यबाधितप्रतीतेर्जायमानत्वात् । अथ पुनस्तस्य द्रव्यत्वे हेतुमाह -

अर्थक्रियाकारितया, यदर्थक्रियाकारि तद् द्रव्यं, यथा घट इति, ननु नीलरूपस्य गुणत्वेऽपि नयनतेजोवृद्धिजनकत्वेनार्थक्रियाकारित्वाद् व्यभिचार इति चेन्न । न हि नीलं रूपं नयनतेजःप्रवर्द्धकं, किं तु तदाश्रय-द्रव्यमेव । तथाहि नीलरूपाश्रये द्रव्ये गृहीते तद्गृहीतुं शक्यते, तयोश्च सर्वथाभेदाऽभावेन युगपद् ग्रहात्, नीलरूपविशिष्टं द्रव्यं गृहीतं सन्नयनतेजः-प्रवर्द्धकमिति स्थितमेतत् ननु शब्दश्चेद् घटवद् द्रव्यं तर्हि तस्मिन्निव तत्र कथं रूपादिगुणा नोपलभ्यंत इत्याशंक्याह - किंचेति, आकाशगुणनिराकरणार्थं असौ शब्दोऽनुद्भूतरूपादिगुणान्वितो भवति, अत्र हि रूपादिगुणास्तु संत्येव, परमनुद्भूता इति नो दृश्यंते, वायाविव, ननु कस्तावद्वायावनुद्भूतगुण इति चेच्छृणु रूपादिरेव, ननु वायौ रूपमेव नास्ति, अनुद्भूत्वं तत्र तस्य कुत इति चेन्न, स्पर्शेन वायोरूपस्य साधितत्वात् तथा हि प्रयोगः वायु रूपवान् स्पर्शवत्त्वात्, यस्तथा स तथेति, वायुवत् शब्दोऽप्यनुद्भूतरूपवानिति वृत्तार्थः ॥२३॥

नभःप्रदेशश्रेणिष्वा - दित्योदयवशाद् दिशां ।
पूर्वादिको व्यवहारो, व्योम्नो भिन्ना न दिक्ततः ॥२४॥

॥ टीका ॥ - अथ वैशेषिकमतसिद्धदिगाकाशयोर्भेदं निराकरोति । नभः प्र० । है वैशेषिक ! त्वया यतः पूर्वादिदशप्रत्यया जायते सा दिक्, गगनाद्भिन्नेति निगद्यते तच्चाऽनुपपन्नं, दशप्रत्ययानां गगनादेव जायमान-त्वादिति दर्शयति, नभःप्रदेशश्रेणिषु आकाशप्रदेशश्रेणिषु आदित्यस्य भानोरुदयवशात् पूर्वादिको व्यवहारो व्यवहृतिर्जायते, अयमर्थः - येषु नभःप्रदेशेषु सूर्य उदेति ते नभःप्रदेशाः पूर्वदिक्त्वव्यवहारजनकास्त एव नभःप्रदेशाः पूर्वदिगित्युच्यते, शेषासु नवस्वप्यनयैव रीत्या योज्यं, ततः कारणात् व्योम्नो दिक् न भिन्नाः, व्योमप्रदेशानामेव दिक्त्वादिति वृत्तार्थः ॥२४॥

आत्मा महापरिमाणा - धिकरणं न संभवी ।
असाधारणसामान्य - वत्त्वेऽनेकत्वतः सति ॥२५॥

॥ टीका ॥ - अथात्मनः परमतसिद्धं महापरिमाणाधिकरणत्वं निषेधयति । आत्मा म० । हे वैशेषिक ! आत्मा महापरिमाणाधिकरणं न संभवी, यथा गगनं महापरिमाणाधिकरणं संभवति न तथात्मा संभवति, कुत इत्याह

असाधारणसामान्यत्वे सत्यनेकत्वतः अनेकत्वादित्यर्थः । अनेकत्वादित्युक्ते सत्तादिसामान्येषु व्यभिचारः, अत उक्तं - सामान्यवत्वे सति तथा चाकाश-कालादिषु व्यभिचारः, नत्वाकाशादीनामनेकत्वं, कुतस्तेषामेकत्वादितिचेन्न । घटाद्युपाधिभेदात्तेषामनेकत्वमिति तेषु व्यभिचारस्तन्निरासायाऽसाधारण-सामान्यवत्त्वे सतीति तेषु असाधारणसामान्यमाकाशत्वकालत्वादिकं न संभवति, तच्च भवताऽपि सामान्यत्वेन नांगीकृतमिति, द्रष्टांतश्चात्र घट एव, घटे ह्येतादृशहेतुसाध्ययोः प्रवर्तमानात्, एवमनेकयुक्तय आत्मनो विभुत्व-निषेधिकास्संति, ताश्चातीवग्रंथगौरवभयान्नोच्यंत इति वृत्तार्थः ॥२५॥

नास्त्यात्मनश्चेत्तव सक्रियत्वं, देशांतरे चेह भवांतरे वा ।
गतिः कथं तर्हि भवेत्तथा च, वायोरिवास्मान्न विभुत्वमस्य ॥२६॥

॥ **टीका** ॥ - नास्त्या० ॥ हे वैशेषिक तव मते चेद्यदि आत्मनः सक्रियत्वं नास्ति तर्हि देशांतरे वा भवांतरे वात्मनः कथं गतिर्भवति, यद्यात्मनः सक्रियत्वं नेष्यते तर्हि तस्य परलोकगतिर्वा न स्यात्, तथा च तव नास्तिकादप्याधिक्यं, नास्तिकेन हि तस्य परलोकगतिर्न स्वीक्रियते देशांतरगतिस्त्वध्यक्षसिद्धा स्वीक्रियते एव, त्वं तु तामपि निषेधयसीत्यर्थः । तस्मादात्मनः सक्रियत्वादिति हेतोरस्यात्मनो विभुत्वं वायोरिव न स्यात् । तथा च प्रयोगः - आत्मा न विभुः सक्रियत्वाद्वायुवदिति वृत्तार्थः ॥२६॥

जीवेऽत्र मध्यं परिमाणमस्त्य - विभुत्वतः कुंभ इवावदातं ।
पर्यायनाशादथ पिंडभावा - न्नानित्यता नापि च नित्यतास्मिन् ॥२७॥

॥ **टीका** ॥ - अथ विभुत्वेऽसिद्धे सति मध्यमपरिमाणाधिकरणत्वमात्मनो दर्शयति, जीवेऽत्र०, अत्र जीवेऽस्मिन्नात्मनि अस्मिन्नित्युक्ते केवलिसमुद्-घातावस्थापन्नात्मनिरासः, मध्यं विभुत्वाणुत्वविकलं परिमाणमस्तीति साध्यवत्पक्षनिर्देशः, कुत इत्याह - अविभुत्वतः कुंभ इव घट इव, यथा कुंभे घटे विभुत्वाऽभावान्मध्यपरिमाणमस्तीति भावः, अवदातं स्पष्टं यथा स्यात्तथा, ननु तस्मिन्नात्मनि किं नित्यतोच्यते, उताऽनित्यतेत्याशंक्याह, पर्याय०, पर्यायाणामात्मसंबंधिनां देवनारकतिर्यक्त्वादीनां नाशाद् ध्वंसान्न नित्यता,

पिंडभावात् द्रव्यतः सत्त्वेन, ध्वंसाऽप्रतियोगित्वान्नानित्यताऽपि, तस्मादात्मनि नित्याऽनित्यता चात्राऽभ्युपगंतव्या, तथा च न कश्चिद्दोषः, इति वृत्तार्थः ॥२७॥

इति स्फुरद्वाचकधर्मसागर - क्रमाब्जभृंगः कविपद्मसागरः ।
युक्तिप्रकाशं स्वपरोपकारं, कर्तुं चकारार्हतशासनस्थः ॥२८॥

॥ टीका ॥ - अथ ग्रंथोपसंहारार्थमाह, इति स्फु० सुकरमेवेदं वृत्तिमिति ।

॥ इति श्रीयुक्तिप्रकाशविवरणं भट्टारकघटाकोटिकोटीर श्रीहीरविजयसूरीश्वरविजयराज्ये महोपाध्यायश्रीधर्मसागरगणिशिष्य पं० पद्मसागरगणिविरचितं संपूर्णम् ॥ ग्रंथाग्रं ३०० ॥

॥ इति श्रीयुक्तिप्रकाशविवरणं समाप्तं ॥

❖ ❖ ❖

श्री राजशेखरसूरिविरचिता

(१०) ॥ अथ श्रीस्याद्वादकलिका ॥

षट्द्रव्यज्ञं जिनं नत्वा स्याद्वादं वच्मि तत्र सः ।
ज्ञानदर्शनतो भेदाऽभेदाभ्यां परमात्मसु ॥१॥

सिसृक्षा संजिहीर्षा च स्वभावद्वितयं पृथक् ।
कूटस्थनित्ये श्रीकंठे कथं संगतिमंगति ॥२॥

गुणश्रुतित्रयोर्व्यादिरूपतापि महेशितुः ।
स्थिरैकरूपताख्याने वर्ण्यमाना न शोभते ॥३॥

मीनादिष्ववतारेषु पृथग्वर्णांककर्मताः ।
विष्णोर्नित्यैकरूपत्वे कथं श्रद्दधति द्विजाः ॥४॥

शक्तेः स्युरंबिका वामा ज्येष्ठा रौद्रीति चाभिधाः ।
दशाभेदेन शाक्तेषु परावर्तं विना न ताः ॥५॥

चिदो निरन्वये नाशे कथं जन्मांतरस्मृतिः ।
ताथागतमते न्याय्या न च नास्त्येव सा यतः ॥६॥

इत एकनवते कल्पे शक्त्या मे पुरुषो हतः ।
तेन कर्मविपाकेन पादे विद्धोऽस्मि भिक्षवः ॥७॥

सुखदुःखनृदेवादिपर्यायेभ्यो भवांगिषु ।
गतिस्थित्यन्यान्यवर्णादिधर्मेभ्यः परमाणुषु ॥८॥

वर्णगंधरसस्पर्शैस्तैस्तैर्भिन्नाक्षगोचरैः ।
स्यात्तादात्म्यस्थितैः स्कंधेष्वनेकांतः प्रधुष्यताम् ॥९॥

प्रतिघातशक्तियोगाच्छब्दे पौद्गलिकत्ववित् ।
भेदैस्तारतरत्वाद्यैः, स्याद्वादं साधयेद् बुधः ॥१०॥

तर्कव्याकरणागमशब्दार्थालंकृतिध्वनिच्छंदः ।
एकत्रपादवाक्यो दृष्टविभागं युतं सर्वम् ॥११॥

स्वरादिवर्णस्यैकस्य संज्ञास्तास्ताः स्वकार्यगाः ।
शब्दे लिंगादिनानात्वं स्याद्वादे साधनान्यहो ॥१२॥

सादित्वान्नाशित्वादालोकतमोभिधानराशियुगात् ।
निजसामग्र्योत्पादान्नालोकाभावता तमच्छाये ॥१३॥

चाक्षुषभावाद्रसवीर्यपाकतो द्रव्यतास्त्वनेकांतः ।
परिणामविचित्रत्वतदत्राप्यालोकवत्सिद्धः ॥१४॥

उपघातानुग्रहकृतिकर्मणि पौद्गलिकता विषपयोवत् ।
तत्तत्परिणतिवशतस्तत्रोत्पादव्ययध्रुवता ॥१५॥

मैत्राद्यैर्मुज्जनकं कामक्रोधादिभिः प्रयासकरम् ।
परमाणुमयं चित्तं परिणतिचैत्र्यात्रिकात्मकता ॥१६॥

धर्माधर्मलोकखानां तैस्तैः पुद्गलजंतुभिः ।
स्यात् संयोगविभागाभ्यां स्याद्वादे कस्य संशयः ॥१७॥

अलोकपुष्करस्यापि त्रिसंवलिततां भणेत् ।
तत्तत्संयोगविभागशक्तियुक्तत्वचैत्र्यतः ॥१८॥

व्यावहारिकालस्य मुख्यकालस्य चास्तु सा ।
तत्तद्भावपरावर्तस्वभावबहुलत्वतः ॥१९॥

एककर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वाप्रत्ययः स्थितः ।
स एव नित्यानित्यत्वं ब्रूतेऽर्थे चिंतयास्तु नः ॥२०॥

पीयमानं मदयति मध्वित्यादि द्विगं पदम् ।
स्याद्वादभेरीभांकारैर्मुखरीकुरुते दिशः ॥२१॥

अनवस्थासंशीतिव्यतिकरसंकरविरोधमुख्या ये ।
दोषाः परैः प्रकटिताः स्याद्वादे ते तु न सजेयुः ॥२२॥

नित्यमनित्यं युगलं स्वतंत्रमित्यादयस्त्रयो दूष्याः ।
तुर्यः पक्षः शबलद्वयीमयो दूष्यते केन ॥२३॥

एकत्रोपाधिभेदेन बौद्धा द्वन्द्वं क्षणे क्षणे ।
न विरुद्धं रूपरसस्थूलास्थूलादिधर्मवत् ॥२४॥

विनाशः पूर्वरूपेणोत्पादो रूपेण केनचित् ।
द्रव्यरूपेण च स्थैर्यमनेकांतस्य जीवितम् ॥२५॥

द्रव्यक्षेत्रकालभावैः स्वैः स्वत्वमपरैः परम् ।
भेदाभेदानित्यनित्यं पर्यायद्रव्यतो वदेत् ॥२६॥

अंशापेक्षमनेकत्वमेकत्वं त्वंश्यपेक्षया ।
प्रमाणनयभंग्या चानभिलाप्याभिलाप्यते ॥२७॥

विजातीयात्स्वजातीयाद्व्यावृत्तेरनुवृत्तितः ।
व्यक्तिजाती भणेन्मिश्रे एकांते दूषणे क्षणात् ॥२८॥

नान्वयः स हि भेदित्वान्न भेदोऽन्वयवृत्तितः ।
मृद्भेदद्वयसंसर्गवृत्तिजात्यंतरं घटः ॥२९॥

भागे सिंहो नरो भागे योऽर्थो भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥३०॥

नरसिंहरूपत्वान्न सिंहो नररूपतः ।
शब्दविज्ञानकार्याणां भेदाज्जात्यंतरं हि सः ॥३१॥

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥३२॥

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद्वस्तुत्रयात्मकम् ॥३३॥

जन्यत्वं जनकत्वं च क्षणेस्यैकस्य जल्पता ।
बौद्धेन युक्त्या मुक्तीश तवैवांगीकृतं मतम् ॥३४॥

प्रमाणस्यापि फलतां फलस्यापि प्रमाणताम् ।
वदद्भ्यां कणभक्षाक्षपादाभ्यां त्वन्मतं मतम् ॥३५॥

एकस्यां प्रकृतौ धर्मौ प्रवर्त्तननिवर्तने ।
स्वीकृत्य कपिलाचार्यास्त्वदाज्ञामेव बिभ्रिरे ॥३६॥

अनर्थक्रियाकारित्वमवस्तुत्वं च तत्कृतम् ।
एकांतनित्यानित्यादौ जल्पन्मिश्रे त्वदोषताम् ॥३७॥

आत्मानमात्मना वेत्ति स्वेन स्वं वेष्टयत्यहिः ।
संबंधा बहवश्चैकत्रेति स्याद्वाददीपकाः ॥३८॥

वैद्यकज्योतिषाध्यात्मादिषु शास्त्रेषु बुद्धिमान् ।
विष्वग् पश्यत्यनेकांतं वस्तूनां परिणामतः ॥३९॥

द्रव्यषट्केऽप्यनेकांतप्रकाशाय विपश्चिताम् ।
प्रयोगान् दर्शयामास सूरिः श्रीराजशेखरः ॥४०॥

॥ इति श्री स्याद्वादकलिका समाप्ता ॥

अज्ञातकर्तृकः

(११) षड्दर्शनपरिक्रमः ॥

जैनं मैमांसकं बौद्धं साङ्ख्यं सै(शै)वं च नास्तिकम् ।
स्वं स्वं च तर्कभेदेन जानीयाद(द्द)र्शनानि षट् ॥१॥

बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः ।
अन्तरायस्तथा निद्रा भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२॥

हासो रत्यरती राग द्वेषावव(वि)रति(:)स्मरः ।
शोको मिथ्यात्वमेतेऽ ष्टादश दोषा न यस्य सः ॥३॥

जिनो देवो गुरुः सम्यक् तत्त्वज्ञानोपदेशकः ।
ज्ञान-दर्शन-चारित्राण्यपवर्गस्य वर्तिनः (वर्त्तनी) ॥४॥

स्याद्वादश्च प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षं चो (च) परोक्षकम् ।
नित्यानित्या(त्यं) जगत् सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा ॥५॥

जीवाजीवौ पुण्यपापे आश्रवः संवरोऽपि च ।
बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते ॥६॥

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः ।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः ॥७॥

आश्रवः कर्मसम्बन्धः कर्मरोधस्तु संवरः ।
कर्मणां बन्धनाद् बन्धो निर्जरा तद्वियोजनम् ॥८॥

अष्टकर्मक्षयान्मोक्षोऽप्यन्तर्भावश्च कश्चन ।
पुण्यस्य संवरे पापस्याऽऽश्रवे क्रियते पुनः ॥९॥

लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकाग्रस्थस्य चाऽऽत्मनः ।
क्षीणाष्टकर्मणो मुक्तिरव्यावृत्तिर्जिनोदिता ॥१०॥

सरजोहरणा भैक्ष्यभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः ।
श्वेताम्बराः क्षमाशीलाः निस्सङ्गा जैनसाधवः ॥११॥

लुञ्चिताः पिच्छकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः ।
ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः ॥१२॥

भुङ्क्ते न केवली न स्त्री मोक्षगेति दिगम्बराः ।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः समम् ॥१३॥
मीमांसकौ द्विधा कर्म-ब्रह्ममीमांसकस्ततः ।
वेदान्ती मन्यते ब्रह्म कर्म भट्ट-प्रभाकरौ ॥१४॥
प्रत्यक्षमनुमानं च वेदाश्चोपमया सह ।
अर्थापत्तिरभावश्च भट्टानां षट्प्रमाण्यसौ ॥१५॥
प्रभाकरमते पञ्च तान्येवाऽभाववर्जनात् ।
अद्वैतवादी वेदान्ती प्रमाणं तु यथा तथा ॥१६॥
सर्वमेतदिदं ब्रह्म वेदान्तेऽद्वैतवादिनाम् ।
आत्मन्येव लयो मुक्तिर्वेदान्तिकमते मता ॥१७॥
अकुकर्मा सषट्कर्मा शूद्रान्नादिविवर्जकः ।
ब्रह्मसूत्री द्विजो भट्टो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ॥१८॥
भगवन्नामधेयास्तु द्विजा वेदान्तदर्शने ।
विप्रगेहभुजस्त्यक्तोपवीतादव्र(ता ब्र) ह्मवादिनः ॥१९॥
चत्वारो भगवद्भेदाः कुटीचर-बहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्चाऽधिकोऽमीषु परः परः ॥२०॥
बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभङ्गुरम् ।
आर्यसत्याख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥२१॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः ।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥२२॥
दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः ।
विज्ञानं वेदना सञ्ज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥२३॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्च मानसम् ।
धर्मायतनमेतानि द्वादशाऽऽयतनानि तु ॥२४॥
रागादीनां गणो यस्मात् समुदेति नृणां हृदि ।
आत्मा(त्मना)ऽऽत्मीयस्वभावाख्यः स स्यात् समुदयः पुनः ॥२५॥

क्षणिकाः सर्वसंस्कारा: इति या व(वा)सना स्थिरा ।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥२६॥

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं पुनः ।
चतु:प्रस्थानका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥२७॥

अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहुमन्यते ।
सौत्रान्तिकेण प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥२८॥

आकारसहिता बुद्धिर्योगाचरस्य सम्मता ।
केवलं संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥२९॥

रागादिज्ञानसन्तानवासनोच्छेदसम्भवा ।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥३०॥

कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम् ।
सङ्घो रक्ताम्बरत्वं च शिश्र(श्रि)ये बौद्धभिक्षुभिः ॥३१॥

साङ्ख्ये देवः शिवः कैश्चिन्मत्तो(तो) नारायणः परैः ।
उभयो(:) सर्वमप्यन्यत्तत्त्वप्रभृतिकं समम् ॥३२॥

स(सा)ङ्ख्यानां स्युर्गुणाः सत्त्वं रजस्तम इति त्रयः ।
साम्यावस्था भवे(व)त्येषां त्रयाणां प्रकृतिं(तिः) पुनः ॥३३॥

प्रकृतेश्च महांस्तावदहङ्कारस्ततोऽपि च ।
पञ्च बुद्धीन्द्रियाणी स्युश्चक्षुरादीनि पञ्च च ॥३४॥

कर्मेन्द्रियाणि वाक्-पाणिचरणोपस्थपायवः ।
मनश्च पञ्च तन्मात्राः शब्द(ब्दो) रूपं रसस्तथा ॥३५॥

स्पर्शो गन्धोऽपि तेभ्यः स्यात् पृथ्व्याद्यं भूतपञ्चकम् ।
इयं प्रकृतिरेतस्यां परस्तु पुरुषो मतः ॥३६॥

पञ्च विंशतितत्त्वीयं नित्यं साङ्ख्यमते जगत् ।
प्रमाणत्रितयं चाऽत्र प्रत्यक्षमनुमाऽऽगमः ॥३७॥

यदे(दै)व ज्ञायते भेदः प्रकृते(:) पुरुषस्य च ।
मुक्तिरूक्ता तदा साङ्ख्यैः ख्यातिः सैव च भण्यते ॥३८॥

साङ्ख्यः शिखी जडी मुण्डी कषायाद्यम्बरोऽपि च ।
वेषे नी(नाऽऽ)स्थैव साङ्ख्यस्य पुनस्तत्त्वे महाग्रहः ॥३९॥

शैवस्य दर्शने तर्कावुभौ न्याय-विशेषकौ ।
न्याये षोडशतत्त्वी स्यात् षट्तत्त्वी च विशेषकैः (के) ॥४०॥

अन्योन्यतत्त्वान्तर्भावात् द्वयोर्भेदोऽस्ति नाऽस्ति वा ।
द्वयोरपि शिवो देवो नित्य(:) सृष्ट्यादिकारकः ॥४१॥

नैयायिकानां चत्वारि प्रमाणानि भवन्ति च ।
प्रत्यक्षमागमोऽन्यश्चाऽनुमानु(न)मुपमाऽपि च ॥४२॥

प्रमाणं च प्रमेयं च संशयश्च प्रयोजनम् ।
दृष्टान्तोऽप्यथ सिद्धान्तावयवौ तर्क - निर्णयौ ॥४३॥

वादो जल्पो वितण्डा च हेत्वाभासच्छलानि च ।
जातयो निग्रहस्थानानीति तत्त्वानि षोडश ॥४४॥

वैशेषके मते तावत् प्रमाणत्रितयं भवेत् ।
प्रत्यक्षमनुमानं च तृतीयकमथाऽऽगमः ॥४५॥

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।
समवायश्च षट्तत्त्वी तद्व्याख्यानमथोच्यते ॥४६॥

द्रव्यं नवविधं प्रोक्तं पृथ्वी-जल-वह्नयस्तथा ।
पवनो गगनं कालो दिगात्मा मन इत्यपि ॥४७॥

नित्यानित्यानि चत्वारि कार्यकारणभावतः ।
मनो-दिग् (क्) काल आत्मा च व्योम नित्यानि पञ्च तु ॥४८॥

स्पर्शो रूपं गन्धः सङ्ख्याऽथ परिमाणकम् ।
पृथक्त्वमथ योगः विभागोऽथ परत्र(त्व)कम् ॥४९॥

अपरत्वं बुद्धिसौख्ये (दुःखे)च्छे द्वेष-यत्नकौ ।
धर्मा-धर्मौ च संस्कारा गुरु(त्वं) द्रव इत्यपि ॥५०॥

स्नेहः शब्दो गुणा एवं विंशतिश्चतुरन्विता ।
अथ कर्माणि वक्षा(क्ष्या)मः प्रत्येकमभिधानतः ॥५१॥

उत्क्षेपणावक्षेपणा-कुञ्चन प्रसारणम् ।
गमनानीति कर्माणि पञ्चोक्तानि तदागमे ॥५२॥

सामान्यं भवति द्वेधा परं चैवाऽपरं तथा ।
प्र(पर)माणुषु वर्तन्ते विशेषा नित्यवृत्तयः ।।५३।।

भवेदयुतसिद्धानामाधाराधेयवर्तिनाम् ।
सम्बन्धः समवायाख्य इह प्रत्ययहेतुकः ।।५४।।

विषयेन्द्रियबुद्धीनां वपुषः सुख-दुःखयोः ।
अभावो(वा)दात्मसंस्थानं मुक्ति नै(नैं)यायिकैर्मता ।।५५।।

चतुर्विंशवैशेषिकगुणान्तर्गुणा(न्तरगुणा)नव ।
बुद्ध्यादयस्तदुच्छेदो मुक्तिर्वैशेषिकी तु सा ।।५६।।

आधार-भस्म-को(कौ)पीन जटा-यज्ञोपवीतिनः ।
मन्त्राचारादिभेदेन चतुर्धा स्युस्तपस्विनः ।।५७।।

शैवाः पाशुपताश्चैव महाव्रतधरास्तथा ।
तुर्याः कालमुखा मुख्या भेदा एते तपस्विनाम् ।।५८।।

पञ्चभूतात्मकं वस्तु प्रत्यक्षं च प्रमाणकम् ।
नास्तिकानां मते नान्यदन्यत्रा(दत्रा)ऽमुत्र शुभाशुभम् ।।५९।।

प्रत्यक्षमविसंवादि ज्ञानमिन्द्रियगोचरम् ।
लिङ्गतोऽनुम(मि)तिर्धूमादिव वह्नेरवस्थितिः ।।६०।।

अनुमानं त्रिधा पूर्वं शेषं सामान्यतो यथा ।
दृष्टेः सस्यं नदीपूराद् वृष्टिरस्ताद्रवेर्गतिः ।।६१।।

ख्यातं सामान्यतः साध्यं साधनं चोपमा यथा ।
स्याद् गोवद् गवयः सास्नादिमत्त्वमुभयोरपि ।।६२।।

आगमश्चाऽऽप्तवचनं स च कस्याऽपि कोऽपि च ।
वाच्याप्रति(ती)तौ तत्सिद्ध्यै प्रोक्ताऽर्थापत्तिरुत्तमैः ।।६३।।

बहुपीनोऽह्नि नाऽश्नाति रात्रावित्यर्थतो यथा ।
पञ्चप्रमाणसामर्थ्ये वस्तुसिद्धिरभावतः ।।६४।।

स्थापितं वादिभिः स्वं स्वं मतं तत्त्वप्रमाणतः ।
तत्त्वं सत्परमार्थेन प्रमाणं तत्त्वसाधकम् ।।६५।।

सन्तु सर्वाणि शास्त्राणि सरहस्यानि दूरतः ।
एकमप्यक्षरं सम्यक् शिक्षितं नैव निष्फलम् ।।६६।।

श्री शुभविजयगणीकृता

(१२) ॥ स्याद्वादभाषा ॥

(१) सम्यक्तत्त्वज्ञानक्रियाभ्यां निश्रेयसाधिगमः ।

(२) जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्ज्जराबन्धमोक्षास्तत्त्वानि ।

(३) स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् ।

(४) तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च । ज्ञानस्य प्रमेयाव्यभिचारित्वं प्रामाण्यं ।

(५) तदितरत्त्वऽप्रामाण्यमिति ।

(६) तदुभयमुत्पतौ परत एव ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्चेति ।

(७) तद् द्विविधं प्रत्यक्षं च परोक्षं च । स्पष्टं प्रत्यक्षम् ।

(८) तद् द्विविधं सांव्यवहारिकं पारमार्थिकं च ।

(९) तत्राद्यमिन्द्रियनिमित्तमनिन्द्रियनिमित्तं च ।

(१०) एतद्द्वितयमवग्रहेहावायधारणाभेदादेकैकशश्चतुर्विकल्पम् ।

(११) पारमार्थिकं पुनरुत्पत्तावात्ममात्रापेक्षम् । तद्विकलं सकलं च ।

(१२) अस्पष्टं परोक्षम् । स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्क्कानुमानागमभेदात्पञ्च-प्रकारम् ।

(१३) अनुमानं द्विप्रकारं स्वार्थं परार्थं च । तत्र हेतुग्रहणसंबन्धस्मरण-कारणकं साध्यविज्ञानं स्वार्थम् ।

(१४) निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुः ।

(१५) इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ।

(१६) पक्षहेतुवचनात्मकं परार्थमनुमानमुपचारात् । हेतुप्रयोगस्तथोप-पत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ।

(१७) प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरास्पदं दृष्टान्तः । स द्वेधाऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ।

(१८) हेतोरुपसंहार उपनयः ।

(१९) प्रतिज्ञायास्तूपसंहारो निगमनम् ।

(२०) स हेतुर्द्विधा उपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।

(२१) उपलब्धेरपि द्वैविध्यमविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्च ।

(२२) तत्राविरुद्धोपलब्धिर्विधिसिद्धो षोढा, साध्येनाविरुद्धव्याप्यकार्य-कारणपूर्वचरोत्तरचरसहचरभेदात् । विरुद्धव्याप्याद्युपलब्धिः प्रतिषेधे षोढा ।

(२३) अनुपलब्धेरपि द्वैरुप्यमविरुद्धानुपलब्धिर्विरुद्धानुपलब्धिश्च ।

(२४) तत्राविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधसिद्धौ सप्तधा स्वभावव्यापककार्य-कारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलब्धिभेदात् ।

(२५) विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ पञ्चधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावव्यापक-सहचरानुपलम्भभेदात् ।

(२६) आप्तवचनाज्जातमर्थज्ञानमागमः । उपचारादाप्तवचनं च ।

(२७) अभिधेयं वस्तु यथावस्थितं यो जानीते यथाज्ञानं चाभिधत्ते स आप्तः।

(२८) सहजसामर्थ्यसङ्केताभ्यामर्थबोध (निबन्ध) नं शब्दः ।

(२९) तस्य विषयः सामान्यविशेषाद्यनेकात्मकं वस्तु ।

(३०) अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्तिस्थिति-लक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ।

(३१) सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वतादिभेदात् ।

(३२) विशेषश्च द्वेधा पर्यायव्यतिरेकभेदात् ।

(३३) अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् ।

(३४) तत्प्रमाणाद् भिन्नमभिन्नं च प्रमाणफलत्वान्यथानुपपत्तेः ।

(३५) प्रमाणस्वरुपादेरन्यत् तदाभासम् ।

(३६) अज्ञानात्मकानात्मप्रकाशकस्वमात्रावभासकनिर्विकल्पसमारोपाः प्रमाणस्य स्वरूपाभासाः ।

(३७) असिद्धविरुद्धानैकान्तिका हेत्वाभासाः ।

(३८) प्रमाणेनासिद्धान्यथानुपपत्तिरसिद्धः, परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ।

(३९) विपरीतान्यथानुपपत्तिर्विरुद्धः, अनित्यः पुरुषः प्रत्यभिज्ञानादि-मत्त्वात् ।

(४०) विपक्षेप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः, अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् ।

(४१) अन्वये दृष्टान्ताभासा असिद्धसाध्यसाधनोभयाः अपौरुषेयः शब्दः

मूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तं विद्युदादिनातिप्रसङ्गात् ।

(४२) व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयमिति ।

(४३) अनाप्तवचनप्रभवं ज्ञानमागमाभासः ।

(४४) सामान्यमेव विशेष एव तद्द्वयं वा स्वतन्त्रमित्यादिरस्य विषयाभासः।

(४५) प्रमाणप्रतिपन्नार्थैकदेशपरामर्शो नयः । द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च ।

(४६) आद्यो नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदात् त्रेधा ।

(४७) अन्यान्यगुणप्रधानभूतभेदाभेदप्ररूपणो नैगमः ।

(४८) धर्मद्वयादीनामेकान्तिकप्रार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभासः ।

(४९) सामान्यमात्रग्राही परामर्शः सङ्ग्रहः ।

(५०) द्रव्यत्वादिकं प्रतिजानानस्तद्विशेषान्निह्नुवानस्तदाभासः ।

(५१) सद्विशेषप्रकाशको व्यवहारः ।

(५२) यः पुनरपारमार्थिकं द्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभासः ।

(५३) पर्यायार्थिकश्चतुर्धा । ऋजुसूत्रः शब्दः समभिरूढ एवम्भूतश्च ।

(५४) सर्वथाद्रव्यापलापी तदाभासः ।

(५५) कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दः ।

(५६) तद्भेदेन तस्य तमेव समर्थयमानस्तदाभासः ।

(५७) पर्यायध्वनिभेदादर्थनानात्वनिरूपकः समभिरूढः ॥

(५८) पर्यायध्वनीनामभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभासः ॥

(५९) क्रियाश्रयेण भेदप्ररूपणमेवम्भूतः ।

(६०) क्रियानाविष्टं वस्तु शब्दवाच्यतया प्रतिक्षिपन् तदाभासः ।

(६१) नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिनिषेधाभ्यां सप्तभङ्गीमनुव्रजति ।

(६२) चैतन्यलक्षणः परिणामी ज्ञानादिधर्मभिन्नाभिन्नः कर्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिशरीरं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्च जीवः ।

(६३) स च द्विविधो मुक्तः सांसारिकश्च ।

(६४) एतद्विपरीतोऽजीवः । स च धर्माधर्माकाशकालपुद्गलभेदात्पञ्चविधः।

(६५) पुद्गलाः स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः।

(६६) स्पर्शा मुदृकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः ।

(६७) रसाः तिक्तकटुकषायाम्लमधुराः । गन्धौ सुरभ्यसुरभी । कृष्णादयो वर्णाः ।

(६८) शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तः पुद्गलाः ।

(६९) पुद्गला द्वेधा परमाणवः स्कन्धाश्च ।

(७०) सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यम् ।

(७१) तद्विरीतं तु पापम् ।

(७२) बन्धस्य मिथ्यात्वाऽविरतिकषाययोगलक्षणहेतव आस्रवः ।

(७३) तन्निरोधः संवरः ।

(७४) जीवस्य कर्मणा अन्योन्यानुगमात्मा संबन्धो बन्धः ।

(७५) बद्धस्य कर्मणः शाटो निर्ज्जरा ।

(७६) देहादेरात्यन्तिको वियोगो मोक्षः ।

(७७) विरुद्धयोर्धर्मयोरेकधर्मव्यवच्छेदेन स्वीकृततदन्यधर्मव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणवचनं वादः ।

(७८) तत्प्रारम्भकश्चात्र जिगीषुस्तत्त्वनिर्णिनीषुश्च ।

(७९) स्वीकृतधर्मव्यवस्थापनार्थं साधनदूषणाभ्यां परं पराजेतुमिच्छुर्जिगीषुः ।

(८०) तत्त्वं प्रतिष्ठापयिषुस्तत्त्वनिर्णिनीषुः ।

(८१) अयं च द्वेधा स्वात्मनि परत्र च ।

(८२) प्रारम्भकप्रत्यारम्भकावेव मल्लप्रतिमल्लन्यायेन वादिप्रतिवादिनौ ।

(८३) प्रमाणतः स्वपक्षस्थापनप्रतिपक्षप्रतिक्षेपावनयोः कर्म ।

(८४) वादिप्रतिवादिसिद्धान्ततत्त्वनदीष्णत्वधारणाबाहुश्रुत्यप्रतिभाक्षान्तिमाध्यस्थ्यैरुभयाभिमताः सभ्याः ।

अज्ञातकर्तृका

(१३) ॥ अनुमानमातृका ॥

अविनाभूताल्लिङ्गाद्विज्ञानं लिङ्गिनोऽनुमानं स्यात् ।
लिङ्गस्य लिङ्गिना सह या व्याप्तिः सोऽविनाभावः ॥१॥

यौगदृगपेक्षया तत्पञ्चांशं ते प्रतिज्ञया (१) हेतुः (२) ।
दृष्टान्तः (३) सोपनयो (४) निगमनम् (५) इति निगदिता विदुरैः ॥२॥

श्रितसाध्यधर्म्मपक्षाऽपरनामकधर्मिगीः प्रतिज्ञाख्यः ।
प्रथमो यथेह पृथ्वीधरे बृहद्भानुरिति हेतुः ॥३॥

हेतुत्वाभिव्यञ्जकविभक्तिका लिङ्गवाग् यथा धूमात् ।
तद्व्याप्ते रुपदर्शनभूर्दृष्टान्तोऽथ सा द्वेधा ॥४॥

हेतौ सति साध्यस्याऽवश्यम्भावित्वमन्वयव्याप्तिः ।
यद्वद् धूमो यत्राऽग्निस्तत्रेत्यत्र पाकगृहम् ॥५॥

व्यतिरेकव्याप्तिः स्याद्धेतौ साध्येऽसति ध्रुवमभावः ।
यद्वद्यत्राग्निर्नो न तत्र धूमोऽपि कूपोऽत्र ॥६॥

धूमश्चात्रैत्युपसंहरणं हेतोश्च धर्म्मिणि तुरीयः ।
साध्यस्य तन्निगमनं स्यात्तस्मादग्निरत्रेति ॥७॥

हेत्वाभासाः पञ्चाऽसिद्धोऽनैकान्तिको विरुद्धश्च ।
कालात्ययाऽपदिष्टः प्रकरणसम इति मताश्चतुरैः ॥८॥

सोऽसिद्धश्छिद्रूपैरनिश्चिता पक्षवर्तिता यस्य ।
यद्वदनित्यः शब्दश्चक्षुर्दृश्यत्वतो घटवत् ॥९॥

स विरुद्धः साध्यविपर्ययेण सह यस्य जायते व्याप्तिः ।
यद्वच्छब्दो नित्यः कृतकत्वादन्तरिक्षमिव ॥१०॥

सोऽनैकान्तिकनामा पक्ष-सपक्षवदितो विपक्षं यः ।
व्योमवदव्ययशब्दं साधयत इव प्रमेयत्वम् ॥११॥

प्रत्यक्षादिनिराकृतसाध्यः कालात्ययापदिष्टाख्यः ।
जलवच्छीतलमनलं यथा पदार्थत्वतो वदतः ॥१२॥

साध्यविपर्यययोः स्यात्तुल्यः प्रकरणसमो यथा नित्यः ।
शब्दः पक्षसपक्षाऽन्यतरत्वादन्तरिक्षमिव ॥१३॥

पू.आ.श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी कृतः

(१४) ॥ न्यायावतारः ॥

प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं बाधविवर्ज्जितम् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा मेयविनिश्चयात् ॥१॥

प्रसिद्धानि प्रमाणानि व्यवहारश्च तत्कृतः ।
प्रमाणलक्षणस्योक्तौ ज्ञायते न प्रयोजनम् ॥२॥

प्रसिद्धानां प्रमाणानां लक्षणोक्तौ प्रयोजनम् ।
तद्व्यामोहनिवृत्तिः स्याद् व्यामूढमनसामिह ॥३॥

अपरोक्षतयाऽर्थस्य ग्राहकं ज्ञानमीदृशम् ।
प्रत्यक्षमितरद् ज्ञेयं परोक्षं ग्रहणेक्षया ॥४॥

साध्याविनाभुनो(वो) लिङ्गात् साध्यनिश्चायकं स्मृतम् ।
अनुमानं तदभ्रान्तं प्रमाणत्वात् समक्षवत् ॥५॥

न प्रत्यक्षमपि भ्रान्तं प्रमाणत्वविनिश्चयात् ।
भ्रान्तं प्रमाणमित्येतद् विरुद्धवचनं यतः ॥६॥

सकलप्रतिभासस्य भ्रान्तत्वासिद्धितः स्फुटम् ।
प्रमाणं स्वान्यनिश्चायि द्वयसिद्धौ प्रसिद्ध्यति ॥७॥

दृष्टेष्टाव्याहताद्वाक्यात् परमार्थाभिधायिनः।
तत्त्वग्राहितयोत्पन्नं मानं शाब्दं प्रकीर्त्तितम् ॥८॥

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥

स्वनिश्चयवदन्येषां निश्चयोत्पादनं बुधैः ।
परार्थं मानमाख्यातं वाक्यं तदुपचारतः ॥१०॥

प्रत्यक्षेणानुमानेन प्रसिद्धार्थप्रकाशनात् ।
परस्य तदुपायत्वात् परार्थत्वं द्वयोरपि ॥११॥

प्रत्यक्षप्रतिपन्नार्थप्रतिपादि च यद्वचः ।
प्रत्यक्षं प्रतिभासस्य निमित्तत्वात्तदुच्यते ॥१२॥

साध्याविनाभुवो हेतोर्वचो यत् प्रतिपादकम् ।
परार्थमनुमानं तत् पक्षादिवचनात्मकम् ॥१३॥

साध्याभ्युपगमः पक्षः प्रत्यक्षाद्यनिराकृतः ।
तत्प्रयोगोऽत्र कर्त्तव्यो हेतोर्गोचरदीपकः ॥१४॥

अन्यथा वाद्यभिप्रेतहेतुगोचरमोहितः ।
प्रत्याय्यस्य भवेद्धेतुर्विरुद्धारेकितो यथा ॥१५॥

धानुष्कगुणसंप्रेक्षिजनस्य परिविध्यतः ।
धानुष्कस्य विना लक्ष्यनिर्देशेन गुणेतरौ ॥१६॥

हेतोस्तथोपपत्त्या वा स्यात् प्रयोगोऽन्यथापि वा ।
द्विविधोऽन्यतरेणापि साध्यसिद्धिर्भवेदिति ॥१७॥

साध्यसाधनयोर्व्याप्तिर्यत्र निश्चीयतेतराम् ।
साधर्म्येण स दृष्टान्तः सम्बन्धस्मरणान्मतः ॥१८॥

साध्ये निवर्त्तमाने तु साधनस्याप्यसम्भवः ।
ख्याप्यते यत्र दृष्टान्तो वैधर्म्येणेति स स्मृतः ॥१९॥

अन्तर्व्याप्त्यैव साध्यस्य सिद्धेर्बहिरुदाहृतिः ।
व्यर्था स्यात्तदसद्भावेऽप्येवं न्यायविदो विदुः ॥२०॥

प्रतिपाद्यस्य यः सिद्धः पक्षाभासोऽस्ति लिङ्गतः ।
लोकस्ववचनाभ्यां च बाधितोऽनेकधा मतः ॥२१॥

अन्यथानुपपन्नत्वं हेतोर्लक्षणमीरितम् ।
तदप्रतीतिसन्देहविपर्यासैस्तदाभता ॥२२॥

असिद्धस्त्वप्रतीतो यो योऽन्यथैवोपपद्यते ।
विरुद्धो योऽन्यथाप्यत्र युक्तोऽनैकान्तिकः स तु ॥२३॥

साधर्म्येणात्र दृष्टान्तदोषा न्यायविदीरिताः ।
अपलक्षणहेतूत्थाः साध्यादिविकलादयः ॥२४॥

वैधर्म्येणात्र दृष्टान्तदोषा न्यायविदीरिताः ।
साध्यसाधनयुग्मानामनिवृत्तेश्च संशयात् ॥२५॥

वाद्युक्ते साधने प्रोक्तदोषाणामुद्भावनम् ।
दूषणं निरवद्ये तु दूषणाभासनामकम् ॥२६॥

सकलावरणमुक्तात्मकेवलं यत् प्रकाशते ।
प्रत्यक्षं सकलार्थात्मसततप्रतिभासनम् ॥२७॥

प्रमाणस्य फलं साक्षादज्ञानविनिवर्त्तनम् ।
केवलस्य सुखोपेक्षे शेषस्यादानहानधीः ॥२८॥

अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम् ।
एकदेशविशिष्टोऽर्थो नयस्य विषयो मतः ॥२९॥

नयानामेकनिष्ठानां प्रवृत्तेः श्रुतवर्त्मनि ।
सम्पूर्णार्थविनिश्चायि स्याद्वादश्रुतमुच्यते ॥३०॥

प्रमाता स्वान्यनिर्भासी कर्ता भोक्ता विवृत्तिमान् ।
स्वसंवेदनसंसिद्धो जीवः क्षित्याद्यनात्मकः ॥३१॥

प्रमाणादिव्यवस्थेयमनादिनिधनात्मिका ।
सर्वसंव्यवहर्तॄणां प्रसिद्धापि प्रकीर्त्तिता ॥३२॥

❖ ❖ ❖

श्रीशान्त्याचार्यविरचितम्

(१५) ॥ न्यायावतारसूत्रवार्तिकम् ॥

१. सामान्यलक्षणपरिच्छेदः ।

हिताहितार्थसंप्राप्ति-त्यागयोर्यन्निबन्धनम् ।
तत् प्रमाणं प्रवक्ष्यामि सिद्धसेनार्कसूत्रितम् ॥१॥

प्रमाणं स्वपराभासि ज्ञानं बाधविवर्जितम् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च द्विधा मेयविनिश्चयात् ॥२॥

सन्निकर्षादिकं नैव प्रमाणं तदसंभवात् ।
अवभासो व्यवसायो न तु ग्रहणमात्रकम् ॥३॥

दीपवन्नोपपद्येत बाह्यवस्तुप्रकाशकम् ।
अनात्मवेदने ज्ञाने जगदान्ध्यं प्रसज्यते ॥४॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं च ग्राहकं नोपपत्तिमत् ।
बाधनात् संशयाद्यासे सूक्तं सामान्यलक्षणम् ॥५॥

वेदेश्वरादयो नैव प्रमाणं बाधसंभवात् ।
प्रमाणं बाधवैकल्यादर्हंस्तत्त्वार्थवेदनः ॥६॥

वचसोऽपौरुषेयत्वं नाऽविशेषात् पटादिवत् ।
स्वरुपेण विशेषेण न सिद्धं भूधरादिषु ॥७॥

विरुद्धं चेष्टघातेन न कार्यं कर्तृसाधनम् ।
प्रकृतेरन्तरज्ञानं पुंसो नित्यमथाऽन्यथा ॥८॥

नित्यत्वे सर्वदा मोक्षोऽनित्यत्वे न तदुद्भवः ।
कालवैपुल्ययोग्यत्वकुशलाभ्याससंभवे ॥९॥

आवृतिप्रक्षयाज्ज्ञानं सार्वज्ञ्यमुपजायते ।
सदहेतुकमस्तीह सदैव क्ष्मादितत्त्ववत् ॥१०॥

आहारासक्तिचैतन्यं जन्मादौ मध्यवत्तथा ।
अन्त्यसामग्र्यवद्धेतुः संपूर्णः कार्यकृत्सदा ॥११॥

ज्योतिः साक्षात्कृतिः कश्चित् संपूर्णस्तत्त्ववेदने ।
ज्ञात्रपेक्षं प्रमेयस्य द्वैविध्यं न तु वास्तवम् ॥१२॥

२. प्रत्यक्षपरिच्छेदः ।

दूरासन्नादिभेदेन प्रतिभासं भिनत्ति यत् ।
तत् प्रत्यक्षं परोक्षं तु ततोऽन्यद् वस्तु कीर्तितम् ॥१३॥

तन्निमित्तं द्विधा मानं न त्रिधा नैकधा ततः ।
सादृश्यं चेत् प्रमेयं स्यात् वैलक्षण्यं न किं तथा ॥१४॥

अर्थापत्तेर्न मानत्वं नियमेन विना कृतम् ।
प्रमाणपञ्चकाभावेऽभावोऽभावेन गम्यते ॥१५॥

न, नास्तीति यतो ज्ञानं नाध्यक्षाद्भिन्नगोचरम् ।
अभावोऽपि च नैवास्ति प्रमेयो वस्तुनः पृथक् ॥१६॥

प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं त्रिधेन्द्रियमनिन्द्रियम् ।
योगजं चेति वैशद्यमिदन्त्वेनावभासनम् ॥१७॥

जीवांशात् कर्मनिर्मुक्तादिन्द्रियाण्यधितिष्ठतः ।
जातमिन्द्रियजं ज्ञानं विनेन्द्रियमनिन्द्रियम् ॥१८॥

स्मृत्यूहादिकमित्येके प्रातिभं च तथाऽपरे ।
स्वप्नविज्ञानमित्यन्ये स्वसंवेदनमेव नः ॥१९॥

मनःसंज्ञस्य जीवस्य ज्ञानावृतिशमक्षयौ ।
यतश्चित्रौ ततो ज्ञानयौगपद्यं न दुष्यति ॥२०॥

जिनस्यांशेषु सर्वेषु कर्मणः प्रक्षयेऽक्रमम् ।
ज्ञानदर्शनमन्येषां न तथेत्यागमावधः ॥२१॥

तत्रेन्द्रियजमध्यक्षमेकांशव्यवसायकम् ।
वेदनं च परोक्षं च योगजं तु तदन्यथा ॥२२॥

द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषास्तस्य गोचराः ।
अविस्पष्टास्तयेव स्युरनध्यक्षस्य गोचराः ॥२३॥

न जडस्यावभासोऽस्ति भेदाभेदविकल्पनात् ।
न भिन्नविषयं ज्ञानं शून्यं वा यदि वा ततः ॥२४॥

ज्ञानशून्यवतो नास्ति निरासेऽर्थस्य साधनम् ।
संवित्सिद्धप्रतिक्षेपे कथं स्यात् तद्व्यवस्थितिः ॥२५॥

पर्ययस्यन्ति पर्याया द्रव्यं द्रवति सर्वदा ।
सदृशः परिणामो यः तत् सामान्यं द्विधा स्थितम् ॥२६॥

विपरीतो विशेषश्च तान्युगपद् व्यवस्यति ।
तेन तत्कल्पनाज्ञानं न तु शब्दार्थयोजनात् ॥२७॥

निरंशपरमाणूनामभासे स्थौल्यवेदने ।
प्रत्यक्षं कल्पनायुक्तं प्रत्यक्षेणैव सिध्यति ॥२८॥

नासंयुक्तैर्न संयुक्तैर्निरंशैः क्रियते महत् ।
अयोगे प्रतिभासोऽपि संयोगेऽप्यणुमात्रकम् ॥२९॥

भिन्नदेशस्वरुपाणामणूनामग्रहे सति ।
तत्स्थौल्यं यदि कल्पेत नावभासेत किंचन ॥३०॥

नैतदस्ति यतो नास्ति स्थौल्यमेकान्ततस्ततः ।
भिन्नमस्ति समानं तु रूपमंशेन केनचित् ॥३१॥

अथास्तु युगपद्भासो द्रव्य-पर्याययोः स्फुटम् ।
तथापि कल्पना नैषा शब्दोल्लेखविवर्जिता ॥३२॥

चकास्ति योजितं यत्र सोपाधिकमनेकधा ।
वस्तु तत् कल्पनाज्ञानं निरंशाप्रतिभासने ॥३३॥

भेदज्ञानात् प्रतीयन्ते यथा भेदाः परिस्फुटम् ।
तथैवाभेदविज्ञानादभेदस्य व्यवस्थितिः ॥३४॥

घटमौलिसुवर्णेषु बुद्धिर्भेदावभासिनी ।
संविन्निष्ठा हि भावानां स्थितिः काऽत्र विरुद्धता ॥३५॥

प्रतीतेस्तु फलं नान्यत् प्रमाणं न ततः परम् ।
अताद्रूप्येऽपि योग्यत्वान्नियतार्थस्य वेदकम् ॥३६॥

३. अनुमानपरिच्छेदः ।

पूर्वमेव परोक्षस्य विषयः प्रतिपादितः ।
प्रमाणफलसद्भावो ज्ञेयः प्रत्यक्षवद् बुधैः ॥३७॥

परोक्षं द्विविधं प्राहुर्लिङ्ग-शब्दसमुद्भवम् ।
लैङ्गिकात् प्रत्यभिज्ञादि भिन्नमन्ये प्रचक्षते ॥३८॥

परोपदेशजं श्रौतं मतिं शेषं जगुर्जिनाः ।
परोक्षं प्रत्यभिज्ञादि त्रिधा श्रौतं न युक्तिमत् ॥३९॥

अन्यथेहादिकं सर्वं श्रौतमेवं प्रसज्यते ।
यच्चोक्तं नागमापेक्षं मानं तज्जाड्यजृम्भितम् ॥४०॥

लिङ्गाल्लिङ्गिनि यज् ज्ञानमनुमानं तदेकधा ।
प्रत्येति हि यथा वादी प्रतिवाद्यपि तत् तथा ॥४१॥

उपचारेण चेत् तत् स्यादनवस्था प्रसज्यते ।
अन्यस्यासाधनादाह लक्षणे हेतु-साध्ययोः ॥४२॥

अन्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।
नान्यथाऽनुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥४३॥

कार्यकारणसद्भावस्तादात्म्यं चेत् प्रतीयते ।
प्रत्यक्षपूर्वकात् तर्कात् कथं नानुपपन्नता ॥४४॥

व्यतिरेकाऽनुपपत्तिश्चेदन्वयनिबन्धनम् ।
कथं सत्त्वं विना तेन क्षणिकत्वप्रसाधकम् ॥४५॥

विनाप्यन्वयमात्मादौ प्राणादिः साधनं यदा ।
तदा स्यान्नान्वयापेक्षा हेतोः साध्यस्य साधने ॥४६॥

संबन्धिभ्यां विभिन्नश्चेत् संबन्धः स्यान्न लोष्टवत् ।
अनवस्था प्रसज्येत तदन्यपरिकल्पने ॥४७॥

कृत्तिकोदयपूरादेः कालादिपरिकल्पनात् ।
यदि स्यात् पक्षधर्मत्वं चाक्षुषत्वं न किं ध्वनौ ॥४८॥

समानपरिणामस्य द्वयस्य नियमग्रहे ।
नाशक्तिर्न च वैफल्यं साधनस्य प्रसज्यते ॥४९॥

इष्टं साधयितुं शक्यं वादिना साध्यमन्यथा ।
साध्याभासमशक्यत्वात् साधनागोचरत्वतः ॥५०॥

यथा सर्वगमध्यक्षं बहिरन्तरनात्मकम् ।
नित्यमेकान्ततः सत्त्वात् धर्मः प्रेत्यासुखप्रदः ॥५१॥

रूपाद्यसिद्धितोऽसिद्धो विरुद्धोऽनुपपत्तिमान् ।
साध्याभावं विना हेतुः व्यभिचारी विपक्षगः ॥५२॥

असिद्धः सिद्धसेनस्य विरुद्धो मल्लवादिनः ।
द्वेधा समन्तभद्रस्य हेतुरेकान्तसाधने ।।५३।।

४. आगमपरिच्छेदः ।

ताप-च्छेद-कषैः शुद्धं वचनं त्वागमं विदुः ।
तापो ह्याप्तप्रणीतत्वमाप्तो रागादिसंक्षयात् ।।५४।।

कषः पूर्वापराघातश्छेदो मानसमन्वयः ।।५५।।

विधिनियमभङ्गवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकवचोवत् ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ।।५६।।

सूत्रं सूत्रकृता कृतं मुकुलितं सद्भूरिबीजैर्घनम्,
तद्वाचः किल वार्तिकं मृदु मया प्रोक्तं शिशूनां कृते ।
भानोर्यत्किरणैर्विकासि कमलं नेन्दोः करैस्तत् तथा,
यद्वेन्दूदयतो विकासि जलजं भानोर्न तस्मिन् गतिः ।।५७।।

❖ ❖ ❖

श्रीमत्समन्तभद्राचार्यविरचितम्

(१६) ।। युक्त्यनुशासनम् ।।

कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं त्वां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरत्वम् ।
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं विशीर्णदोषाऽऽशयपाशबन्धम् ।।१।।

याथात्म्यमुल्लङ्घ्य गुणोदयाऽऽख्या लोके स्तुतिर्भूरिगुणोदधेस्ते ।
अणिष्ठमप्यंशमशक्नुवन्तो वक्तुं जिन ! त्वां किमिव स्तुयाम ।।२।।

तथाऽपि वैयात्यमुपेत्य भक्त्या स्तोताऽस्मि ते शक्त्यनुरूपवाक्यः ।
इष्टे प्रमेयेऽपि यथास्वशक्ति किन्नोत्सहन्ते पुरुषाः क्रियाभिः ।।३।।

त्वं शुद्धिशक्त्योरुदयस्य काष्ठां तुलाव्यतीतां जिन ! शान्तिरूपाम् ।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता महानितीयत् प्रतिवक्तुमीशाः ।।४।।

कालः कलिर्वा कलुषाऽऽशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचनाऽनयो वा ।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ।।५।।

दया-दम-त्याग-समाधि-निष्ठं नय-प्रमाण-प्रकृताऽऽञ्जसार्थम् ।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन ! त्वदीयं मतमद्वितीयम् ।।६।।

अभेद-भेदात्मकमर्थतत्त्वं तव स्वतन्त्राऽन्यतरत्खपुष्पम् ।
अवृत्तिमत्त्वात्समवायवृत्तेः संसर्गहानेः सकलाऽर्थहानिः ।।७।।

भावेषु नित्येषु विकारहानेर्न कारक-व्यापृत-कार्य-युक्तिः ।
न बन्ध-भोगौ न च तद्विमोक्षः समस्तदोषं मतमन्यदीयम् ।।८।।

अहेतुकत्व-प्रथितः स्वभावस्तस्मिन् क्रिया-कारक-विभ्रमः स्यात् ।
आबाल-सिद्धेर्विविधार्थ-सिद्धिर्वादान्तरं किं तदसूयतां ते ।।९।।

येषामवक्तव्यमिहाऽऽत्म-तत्त्वं देहादनन्यत्व-पृथक्त्व-क्लृप्तेः ।
तेषां ज्ञ-तत्त्वेऽनवधार्यतत्त्वे का बन्ध-मोक्ष-स्थितिरप्रमेये ।।१०।।

हेतुर्न दृष्टोऽत्र न चाऽप्यदृष्टो योऽयं प्रवादः क्षणिकाऽऽत्मवादः ।
न ध्वस्तमन्यत्र भवे द्वितीये सन्तानभिन्ने न हि वासनाऽस्ति ।।११।।

तथा न तत्कारण-कार्य-भावो निरन्वयाः केन समानरूपाः ? ।
असत्खपुष्पं न हि हेत्वपेक्षं दृष्टं न सिद्ध्यत्युभयोरसिद्धम् ।।१२।।

नैवाऽस्ति हेतुः क्षणिकात्मवादे न सन्नसन्वा विभवादकस्मात् ।
नाशोदयैकक्षणता च दृष्टा सन्तान-भिन्न-क्षणयोरभावात् ॥१३॥
कृत-प्रणाशाऽकृत-कर्मभोगौ स्यातामसञ्चेतित-कर्म च स्यात् ।
आकस्मिकेऽर्थे प्रलय-स्वभावे मार्गो न युक्तो वधकश्च न स्यात् ॥१४॥
न बन्धमोक्षौ क्षणिकैक-संस्थौ न संवृतिः साऽपि मृषा-स्वभावा ।
मुख्यादृते गौण-विधिर्न दृष्टो विभ्रान्त-दृष्टिस्तव दृष्टितोऽन्या ॥१५॥
प्रतिक्षणं भङ्गिषु तत्पृथक्त्वान्नमातृ-घाती स्व-पतिः स्व-जाया ।
दत्त-ग्रहो नाऽधिगत-स्मृतिर्न न क्त्वार्थ-सत्यं न कुलं न जातिः ॥१६॥
न शास्तृ-शिष्यादि-विधि-व्यवस्था विकल्पबुद्धिर्वितथाऽखिला चेत् ।
अतत्त्व-तत्त्वादि-विकल्प-मोहे निमज्जतां वीत-विकल्प-धीः का ? ॥१७॥
अनर्थिका साधन-साध्य-धीश्चेद् विज्ञानमात्रस्य न हेतु-सिद्धिः ।
अथाऽर्थवत्त्वं व्यभिचार-दोषो न योगिगम्यं परवादिसिद्धम् ॥१८॥
तत्त्वं विशुद्धं सकलैर्विकल्पैर्विश्वाऽभिलापाऽऽस्पदतामतीतम् ।
न स्वस्य वेद्यं न च तन्निगद्यं सुषुप्त्यवस्थं भवदुक्तिबाह्यम् ॥१९॥
मूकात्म-संवेद्यवदात्म-वेद्यं तन्म्लिष्ट-भाषा-प्रतिम-प्रलापम् ।
अनङ्ग-संज्ञं तदवेद्यमन्यैः स्यात् त्वद्‌द्विषां वाच्यमवाच्य-तत्त्वम् ॥२०॥
अशासदञ्जांसि वचांसि शास्ता शिष्याश्च शिष्टा वचनैर्न ते तैः ।
अहो इदं दुर्गतमं तमोऽन्यत् त्वया विना श्रायसमार्य ! किं तत् ॥२१॥
प्रत्यक्षबुद्धिः क्रमते न यत्र तल्लिङ्ग-गम्यं न तदर्थ-लिङ्गम् ।
वाचो न वा तद्विषयेण योगः का तद्‌गतिः ? कष्टमशृण्वतां ते ॥२२॥
रागाद्यविद्याऽनल-दीपनं च विमोक्ष-विद्याऽमृत-शासनं च ।
न भिद्यते संवृति-वादि-वाक्यं भवत्प्रतीपं परमार्थ-शून्यम् ॥२३॥
विद्या-प्रसूत्यै किल शील्यमाना भवत्यविद्या गुरुणोपदिष्टा ।
अहो त्वदीयोक्त्यनभिज्ञ-मोहो यज्जन्मने यत्तदजन्मने तत् ॥२४॥
अभावमात्रं परमार्थवृत्तेः सा संवृतिः सर्व-विशेष-शून्या ।
तस्या विशेषौ किल बन्ध-मोक्षौ हेत्वात्मनेति त्वदनाथवाक्यम् ॥२५॥
व्यतीत-सामान्य-विशेष-भावाद् विश्वाऽभिलापाऽर्थ-विकल्प-शून्यम् ।
ख-पुष्पवत्स्यादसदेव तत्त्वं प्रबुद्ध-तत्त्वाद्भवतः परेषाम् ॥२६॥

अतत्स्वभावेऽप्यनयोरुपायाद् गतिर्भवेत्तौ वचनीय-गम्यौ ।
सम्बन्धिनौ चेन्न विरोधि दृष्टं वाच्यं यथार्थं न च दूषणं तत् ॥२७॥

उपेय-तत्त्वाऽनभिलाप्यता-वद् उपाय-तत्त्वाऽनभिलाप्यता स्यात् ।
अशेष-तत्त्वाऽनभिलाप्यतायां द्विषां भवद्युक्त्यभिलाप्यतायाः ॥२८॥

अवाच्यमित्यत्र च वाच्यभावा-दवाच्यमेवेत्ययथाप्रतिज्ञम् ।
स्वरूपतश्चेत्पररूपवाचि स्वरूपवाचीति वचो विरुद्धम् ॥२९॥

सत्याऽनृतं वाऽप्यनृताऽनृतं वाऽप्यस्तीह किं वस्त्वतिशायनेन ।
युक्तं प्रतिबन्ध्यनुबन्धि-मिश्रं न वस्तु तादृक् त्वदृते जिनेदृक् ॥३०॥

सह-क्रमाद्वा विषयाऽल्प-भूरि-भेदेऽनृतं भेदि न चाऽऽत्मभेदात् ।
आत्मान्तरं स्याद्भिदुरं समं च स्याच्चाऽनृतात्माऽनभिलाप्यता च ॥३१॥

न सच्च नाऽसच्च न दृष्टमेक-मात्मान्तरं सर्व-निषेध-गम्यम् ।
दृष्टं विमिश्रं तदुपाधि-भेदात् स्वप्नेऽपि नैतत्त्वदृषेः परेषाम् ॥३२॥

प्रत्यक्ष-निर्देशवदप्यसिद्ध-मकल्पकं ज्ञापयितुं ह्यशक्यम् ।
विना च सिद्धेर्न च लक्षणार्थो न तावक-द्वेषिणि वीर ! सत्यम् ॥३३॥

कालान्तरस्थे क्षणिके ध्रुवे वाऽपृथक्त्वाऽवचनीयतायाम् ।
विकारहानेर्न च कर्तृकार्ये वृथा श्रमोऽयं जिन ! विद्विषां ते ॥३४॥

मद्याङ्गवद्भूत-समागमे ज्ञः शक्त्यन्तर-व्यक्तिरदैव-सृष्टिः ।
इत्यात्म-शिश्नोदर-पुष्टि-तुष्टैर्निर्ह्रीभयैर्हा ! मृदवः प्रलब्धाः ॥३५॥

दृष्टेऽविशिष्टे जननादि-हेतौ विशिष्टता का प्रतिसत्त्वमेषाम् ।
स्वभावतः किं न परस्य सिद्धिरतावकानामपि हा ! प्रपातः ॥३६॥

स्वच्छन्दवृत्तेर्जगतः स्वभावादुच्चैरनाचार-पथेष्वदोषम् ।
निर्घुष्य दीक्षासममुक्तिमानास्त्वद्दृष्टि-बाह्या बत ! विभ्रमन्ते ॥३७॥

प्रवृत्ति-रक्तैः शम-तुष्टि-रिक्तैरुपेत्य हिंसाऽभ्युदयाङ्गनिष्ठा ।
प्रवृत्तितः शान्तिरपि प्ररुढं तमः परेषां तव सुप्रभातम् ॥३८॥

शीर्षोपहारादिभिरात्मदुःखैर्देवान् किलाऽऽराध्य सुखाभिगृद्धाः ।
सिद्ध्यन्ति दोषाऽपचयाऽनपेक्षा युक्तं च तेषां त्वमृषिर्न येषाम् ॥३९॥

सामान्य-निष्ठा विविधा विशेषाः पदं विशेषान्तर-पक्षपाति ।
अन्तर्विशेषान्त-वृत्तितोऽन्यत् समानभावं नयते विशेषम् ॥४०॥

यदेवकारोपहितं पदं तद् अस्वार्थतः स्वार्थमवच्छिनत्ति ।
पर्याय-सामान्य-विशेष-सर्वं पदार्थहानिश्च विरोधिवत्स्यात् ॥४१॥

अनुक्त-तुल्यं यदनेवकारं व्यावृत्यभावान्नियम-द्वयेऽपि ।
पर्याय-भावेऽन्यतरप्रयोगस्तत्सर्वमन्यच्च्युतमात्म-हीनम् ॥४२॥

विरोधि चाऽभेद्यविशेष-भावात्तद्द्योतनः स्याद्गुणतो निपातः
विपाद्य-सन्धिश्च तथाऽङ्गभावादवाच्यता श्रेयस-लोप-हेतुः ॥४३॥

तथा प्रतिज्ञाऽऽशयतोऽप्रयोगः सामर्थ्यतो वा प्रतिषेधयुक्तिः ।
इति त्वदीया जिननाग ! दृष्टिः पराऽप्रधृष्या परधर्षिणी च ॥४४॥

विधिर्निषेधोऽनभिलाप्यता च त्रिरेकशस्त्रिर्द्विश एक एव ।
त्रयो विकल्पास्तव सप्तधाऽमी स्याच्छब्द-नेयाः सकलेऽर्थभेदे ॥४५॥

स्यादित्यपि स्याद्गुण-मुख्य-कल्पैकान्तो यथोपाधि-विशेष-वीक्ष्यः।
तत्वं त्वनेकान्तमशेषरूपं द्विधा भावार्थ-व्यवहारवत्त्वात् ॥४६॥

न द्रव्य-पर्याय-पृथग्-व्यवस्था द्वैयात्म्यमेकाऽर्पणया विरुद्धम् ।
धर्मी च धर्मश्च मिथस्त्रिधेमौ न सर्वथा तेऽभिमतौ विरुद्धौ ॥४७॥

दृष्टाऽऽगमाभ्यामविरुद्धमर्थप्ररूपणं युक्त्यनुशासनं ते ।
प्रतिक्षणं स्थित्युदय-व्ययात्मतत्त्व-व्यवस्थं सदिहाऽर्थरूपम् ॥४८॥

नानात्मतामप्रजहत्तदेकमेकात्मतामप्रजहच्च नाना।
अङ्गाङ्गि-भावात्तव वस्तु तद्यत् क्रमेण वाग्वाच्यमनन्तरूपम् ॥४९॥

मिथोऽनपेक्षाः पुरुषार्थ-हेतुर्नांशा न चांशी पृथगस्ति तेभ्यः ।
परस्परेक्षाः पुरुषार्थ-हेतुर्दृष्टा नयास्तद्वदसि-क्रियायाम् ॥५०॥

एकान्त-धर्माऽभिनिवेश-मूला रागादयोऽहंकृतिजा जनानाम् ।
एकान्त-हानाच्च स यत्तदेव स्वाभाविकत्वाच्च समं मनस्ते ॥५१॥

प्रमुच्यते च प्रतिपक्ष-दूषी जिन ! त्वदीयैः पटुसिंहनादैः ।
एकस्य नानात्मतया ज्ञ-वृत्तेस्तौ बन्ध-मोक्षौ स्वमतादबाह्यौ ॥५२॥

आत्मान्तराऽभाव-समानता न वागास्पदं स्वाऽऽश्रय-भेद-हीना ।
भावस्य सामान्य-विशेषवत्त्वादैक्ये तयोरन्यतरन्निरात्म ॥५३॥

अमेयमश्लिष्टममेयमेव भेदेऽपि तद्वृत्त्यपवृत्तिभावात् ।
वृत्तिश्च कृत्स्नांश-विकल्पतो न मानं च नाऽनन्त-समाश्रयस्य ॥५४॥

नाना-सदेकात्म-समाश्रयं चेद् अन्यत्वमद्विष्ठमनात्मनोः क्व ।
विकल्प-शून्यत्वमवस्तुनश्चेत् तस्मिन्नमेये क्व खलु प्रमाणम् ॥५५॥

व्यावृत्ति-हीनाऽन्वयतो न सिद्ध्येद् विपर्ययेऽप्यद्वित्तयेऽपि साध्यम् ।
अतद्व्युदासाभिनिवेश-वादः पराऽभ्युपेताऽर्थ-विरोध-वादः ॥५६॥

अनात्मनाऽनात्मगतेरयुक्तिर्वस्तुन्ययुक्तेर्यदि पक्ष-सिद्धिः ।
अवस्त्वयुक्तेः प्रतिपक्ष-सिद्धिः न च स्वयं साधन-रिक्त-सिद्धिः ॥५७॥

निशायितस्तैः परशुः परघ्नः स्वमूर्ध्नि निर्भेद-भयाऽनभिज्ञैः ।
वैतण्डिकैर्यैः कुसृतिः प्रणीता मुने ! भवच्छासन-दृक्-प्रमूढैः ॥५८॥

भवत्यभावोऽपि च वस्तुधर्मो भावान्तरं भाववदर्हतस्ते ।
प्रमीयते च व्यपदिश्यते च वस्तु-व्यवस्थाऽङ्गममेयमन्यत् ॥५९॥

विशेष-सामान्य-विषक्त-भेदविधि-व्यवच्छेद-विधायि-वाक्यम् ।
अभेद-बुद्धेरविशिष्टता स्याद् व्यावृत्तिबुद्धेश्च विशिष्टता ते ॥६०॥

सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य-कल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥६१॥

कामं द्विषन्नप्युपपत्तिचक्षुः समीक्ष्यतां ते समदृष्टिरिष्टम् ।
त्वयि ध्रुवं खण्डित-मान-शृङ्गो भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः ॥६२॥

न रागान्नः स्तोत्रं भवति भव-पाश-च्छिदि मुनौ
न चाऽन्येषु द्वेषादगुण-कथाऽभ्यास-खलता ।

किमु न्यायाऽन्याय-प्रकृत-गुणदोषज्ञ-मनसां
हिताऽन्वेषोपायस्तव गुण-कथा-सङ्ग-गदितः ॥६३॥

इति स्तुत्यः स्तुत्यैस्त्रिदश-मुनि-मुख्यैः प्रणिहितैः
स्तुतः शक्त्या श्रेयः पदमधिगतस्त्वं जिन ! मया ।

महावीरो वीरो दुरित-पर-सेनाऽभिविजये
विधेया मे भक्तिं पथि भवत एवाऽप्रतिनिधौ ॥६४॥

❖ ❖ ❖

पू.आ.श्रीहेमचन्द्रसूरिविरचिता

(१७) ॥ अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ॥

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं, वचस्विनामक्षवतां परोक्षम् ।
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥१॥

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं, गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः ।
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्, न बालिशोऽप्येष जनोऽपराध्यति ॥२॥

क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था ?, अशिक्षिताऽऽलापकला क्व चैषा ?
तथापि यूथाधिपतेः पथिस्थः, स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ॥३॥

जिनेन्द्र ! यानेव विबाधसे स्म, दुरन्तदोषान् विविधैरुपायैः ।
त एव चित्रं त्वदसूययेव, कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥४॥

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश !, न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ।
तुरङ्गशृङ्गाण्युपपादयद्भ्यो, नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥५॥

जगत्यनुध्यानबलेन शश्वत्, कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ।
किमाश्रितोऽन्यैः शरणं त्वदन्यः, स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः ॥६॥

स्वयं कुमार्गग्लपिता नु नाम, प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ।
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्तमसूययाऽन्धा अवमन्वते च ॥७॥

प्रादेशिकेभ्यः परशासनेभ्यः, पराजयो यत्तव शासनस्य ।
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो, विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥८॥

शरण्य ! पुण्ये तव शासनेऽपि, संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ।
स्वादौ स तथ्ये स्वहिते च पथ्ये, संदेग्धि वा विप्रतिपद्यते वा ॥९॥

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः ।
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च, ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥१०॥

हितोपदेशात् सकलज्ञक्लृप्तेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ।
पूर्वापरार्थेष्वविरोधसिद्धेस्त्वदागमा एव सतां प्रमाणम् ॥११॥

क्षिप्येत वाऽन्यैः सदृशीक्रियेत वा, तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ।
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं, परैः कथङ्कारमपाकरिष्यते ? ॥१२॥

तद्दुःषमाकालखलायितं वा, पचेलिमं कर्म भवानुकूलम् ।
उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥१३॥

परःसहस्राः शरदस्तपांसि, युगान्तरं योगमुपासतां वा ।
तथापि ते मार्गमनापतन्तो, न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् ॥१४॥

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्व-सम्भावनासम्भविविप्रलम्भाः ।
परोपदेशाः परमाप्तक्लृप्त-पथोपदेशे किमु संरभन्ते ? ॥१५॥

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ।
न विप्लवोऽयं तव शासनेऽभूदहो ! अधृष्या तव शासनश्रीः ॥१६॥

देहाद्ययोगेन सदाशिवत्वं, शरीरयोगादुपदेशकर्म ।
परस्परस्पर्धि कथं घटेत, परोपक्लृप्तेष्वधिदैवतेषु ॥१७॥

प्रागेव देवान्तरसंश्रितानि, रागादिरूपाण्यवमान्तराणि ।
न मोहजन्यां करुणामपीश !, समाधिमाध्यस्थ्ययुगाश्रितोऽसि ॥१८॥

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम् ।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् ! भवक्षयक्षमोपदेशे तु परं तपस्विनः ॥१९॥

वपुश्च पर्यङ्कशयं श्लथं च, दृशौ च नासानियते स्थिरे च ।
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथैर्जिनेन्द्र ! मुद्राऽपि तवान्यदास्ताम् ॥२०॥

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो, भवादृशानां परमस्वभावम् ।
कुवासनापाशविनाशनाय, नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय ॥२१॥

अपक्षपातेन परीक्षमाणा, द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ।
यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्बन्धरसं परेषाम् ॥२२॥

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विश्रृङ्खलैश्चापलमाचरद्भिः ।
अमूढलक्ष्योऽपि पराक्रिये यत्, त्वत्किङ्करः किं करवाणि देव ! ॥२३॥

विमुक्तवैरव्यसनानुबन्धाः, श्रयन्ति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ।
परैरगम्यां तव योगिनाथ !, तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥२४॥

मदेन मानेन मनोभवेन, क्रोधेन लोभेन च सम्मदेन ।
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं, परे किरन्तः प्रलपन्तु किञ्चित् ।
मनीषिणां तु त्वयि वीतराग !, न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ॥२६॥

सुनिश्चितं मत्सरिणो जनस्य, न नाथ ! मुद्रामतिशेरते ते ।
माध्यस्थ्यमास्थाय परीक्षका ये, मणौ च काचे च समानुबन्धाः ॥२७॥

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे ।
न वीतरागात् परमस्ति दैवतं, न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥२८॥

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो, न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु, त्वामेव वीर ! प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥२९॥

तमःस्पृशामप्रतिभासभाजं, भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ।
महेम चन्द्रांशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीश ! वाचः ॥३०॥

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन् ! नमोऽस्तु ते ॥३१॥

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो,
विगाहन्तां हन्त ! प्रकृतिपरवादव्यसनिनः ।
अरक्तद्विष्टानां जिनवर ! परीक्षाक्षमधिया-
मयं तत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान् ॥३२॥

❖ ❖ ❖

पू.आ.श्रीहेमचन्द्रसूरिविरचिता

(१८) ॥ अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ॥

अनन्तविज्ञानमतीतदोषमबाध्यसिद्धान्तममर्त्यपूज्यम् ।
श्रीवर्द्धमानं जिनमाप्तमुख्यं, स्वयम्भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ॥१॥

अयं जनो नाथ ! तव स्तवाय, गुणान्तरेभ्यः स्पृहयालुरेव ।
विगाहतां किन्तु यथार्थवादमेकं परीक्षाविधिदुर्विदग्धः ॥२॥

गुणेष्वसूयां दधतः परेऽमी, मा शिश्रियन्नाम भवन्तमीशम् ।
तथापि सम्मील्य विलोचनानि, विचारयन्तां नयवर्त्म सत्यम् ॥३॥

स्वतोऽनुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपाः ।
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद्, द्वयं वदन्तोऽकुशलाः स्खलन्ति ॥४॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं, स्याद्वादमुद्राऽनतिभेदि वस्तु ।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः ॥५॥

कर्त्ताऽस्ति कश्चिज्जगतः स चैकः, स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥६॥

न धर्मधर्मित्वमतीवभेदे, वृत्त्याऽस्ति चेन्न त्रितयं चकास्ति ।
इहेदमित्यस्ति मतिश्च वृत्तौ, न गौणभेदोऽपि च लोकबाधः ॥७॥

सतामपि स्यात् क्वचिदेव सत्ता, चैतन्यमौपाधिकमात्मनोऽन्यत् ।
न संविदानन्दमयी च मुक्तिः सुसूत्रमासूत्रितमत्वदीयैः ॥८॥

यत्रैव यो दृष्टगुणः स तत्र, कुम्भादिवन्निष्प्रतिपक्षमेतत् ।
तथापि देहाद् बहिरात्मतत्त्वमतत्त्ववादोपहताः पठन्ति ॥९॥

स्वयं विवादग्रहिले वितण्डापाण्डित्यकण्डूलमुखे जनेऽस्मिन् ।
मायोपदेशात् परमर्म भिन्दन्नहो ! विरक्तो मुनिरन्यदीयः ॥१०॥

न धर्महेतुर्विहिताऽपि हिंसा, नोत्सृष्टमन्यार्थमपोद्यते च ।
स्वपुत्रघातान्नृपतित्वलिप्सासब्रह्मचारि स्फुरितं परेषाम् ॥११॥

स्वार्थावबोधक्षम एव बोधः प्रकाशते नार्थकथाऽन्यथा तु ।
परे परेभ्यो भयतस्तथापि, प्रपेदिरे ज्ञानमनात्मनिष्ठम् ॥१२॥

माया सती चेद् द्वयतत्त्वसिद्धिरथासती हन्त ! कुतः प्रपञ्चः ।
मायैव चेदर्थसहा च तत्किं, माता च वन्ध्या च भवत्परेषाम् ?

अनेकमेकात्मकमेव वाच्यं, द्वयात्मकं वाचकमप्यवश्यम् ।
अतोऽन्यथावाचकवांच्यक्लृप्तावतावकानां प्रतिभाप्रमादः ॥१४॥

चिदर्थशून्या च जडा च बुद्धिः, शब्दादितन्मात्रजमम्बरादि ।
न बन्धमोक्षौ पुरुषस्य चेति, कियज्जडैर्न ग्रथितं विरोधि ॥१५॥

न तुल्यकालः फलहेतुभावो, हेतौ विलीने न फलस्य भावः ।
न संविदद्वैतपथेऽर्थसंविद्, विलूनशीर्णं सुगतेन्द्रजालम् ॥१६॥

विना प्रमाणं परवन्न शून्यः, स्वपक्षसिद्धेः पदमश्नुवीत ।
कुप्येत् कृतान्तः स्पृशते प्रमाणमहो ! सुदृष्टं त्वदसूयिदृष्टम् ॥१७॥

कृतप्रणाशाऽकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो ! महासाहसिकः परस्ते ॥१८॥

सा वासना सा क्षणसन्ततिश्च, नाभेदभेदाऽनुभयैर्घटेते ।
ततस्तटाऽदर्शिशकुन्तपोतन्यायात् त्वदुक्तानि परे श्रयन्तु ॥१९॥

विनाऽनुमानेन पराभिसन्धिमसंविदानस्य तु नास्तिकस्य ।
न साम्प्रतं वक्तुमपि क्व चेष्टा, क्व दृष्टमात्रं च हहा ! प्रमादः ॥२०॥

प्रतिक्षणोत्पादविनाशयोगिस्थिरैकमध्यक्षमपीक्षमाणः ।
जिन ! त्वदाज्ञामवमन्यते यः, स वातकी नाथ ! पिशाचकी वा ॥२१॥

अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम् ।
इति प्रमाणान्यपि ते कुवादिकुरङ्गसन्त्रासनसिंहनादाः ॥२२॥

अपर्ययं वस्तु नमस्यमानमद्रव्यमेतच्च विविच्यमानम् ।
आदेशभेदोदितसप्तभङ्गमदीदृशस्त्वं बुधरूपवेद्यम् ॥२३॥

उपाधिभेदोपहितं विरुद्धं, नार्थेष्वसत्त्वं सदवाच्यते च ।
इत्यप्रबुध्यैव विरोधभीता, जडास्तदेकान्तहताः पतन्ति ॥२४॥

स्यान्नाशि नित्यं सदृशं विरूपं, वाच्यं न वाच्यं सदसत्तदेव ।
विपश्चितां नाथ ! निपीततत्त्वसुधोद्गतोद्गारपरम्परेयम् ॥२५॥

य एव दोषाः किल नित्यवादे, विनाशवादेऽपि समस्त एव ।
परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु, जयत्यधृष्यं जिन ! शासनं ते ॥२६॥

नैकान्तवादे सुखदुःखभोगौ, न पुण्यपापे न च बन्धमोक्षौ ।
दुर्नीतिवादव्यसनासिनैवं, परैर्विलुप्तं जगदप्यशेषम् ॥२७॥

सदेव सत् स्यात्सदिति त्रिधाऽर्थो, मीयेत दुर्नीतिनय-प्रमाणैः ।
यथार्थदर्शी तु नयप्रमाणपथेन दुर्नीतिपथं त्वमाऽऽस्थः ॥२८॥

मुक्तोऽपि वाऽभ्येतु भवं भवो वा, भवस्थशून्योऽस्तु मितात्मवादे ।
षड्जीवकायं त्वमनन्तसङ्ख्ययमाख्यस्तथा नाथ ! यथा न दोषः ॥२९॥

अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्, यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः ।
नयानशेषानविशेषमिच्छन्, न पक्षपाती समयस्तथा ते ॥३०॥

वाग्वैभवं ते निखिलं विवेक्तुमाशास्महे चेन्महनीयमुख्यं ।
लङ्घेम जङ्घालतया समुद्रं, वहेम चन्द्रद्युतिपानतृष्णाम् ॥३१॥

इदं तत्त्वाऽतत्त्वव्यतिकरकरालेऽन्धतमसे,
जगन्मायाकारैरिव हतपरैर्हा ! विनिहितम्
तदुद्धर्त्तुं शक्तो नियतमविसंवादिवचन
स्त्वमेवातस्त्रातस्त्वयि कृतसपर्याः कृतधियः ॥३२॥

चान्द्रकुलनभोमणिप्रद्युम्नसूरिशिष्यचन्द्रसेनसूरिविरचिता

(१९) ॥ उत्पादादिसिद्धिः ॥

यस्योत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तवस्तूपदेशतः ।
सिद्धमाप्तस्वभावत्वं, तस्मै सर्वविदे नमः ॥१॥

यदुत्पादव्ययध्रौव्य-योगितां न बिभर्ति वै ।
तादृशं शशशृङ्गादि-रूपमेव परं यदि ॥२॥

न यत्सत्ताभिसम्बन्धान्न शक्तेर्नोपलब्धितः ।
विनोत्पादव्ययध्रौव्यै-र्वस्तुत्वमुपपद्यते ॥३॥

उत्पादो वस्तुनो भावो, नाशस्तस्य व्ययो मतः ।
ध्रौव्यमन्वितरूपत्व-मेकं नान्योन्यवर्जितम् ॥४॥

अविनाभावि यद्येन, न तत्तेन विरुध्यते ।
वृक्षत्वेनेव चूतत्व-मिहाप्येवं व्यवस्थितिः ॥५॥

नाशतः सर्वथा भावो, न नाशः सर्वथा सतः ।
नान्वयोऽपि विनैताभ्यां, प्रमाणे प्रतिभासते ॥६॥

उत्पादो यदि दृष्टत्वा-दिष्टः प्रामाणिकैः परैः ।
तद्रूपपरिणामोऽयं, तदेष्टव्यस्ततो न किम् ॥७॥

यदसत्तन्न केनापि, क्रियते वियदब्जवत् ।
उपादानं न चेह स्यात्, सर्वं सर्वत्र वा भवेत् ॥८॥

कार्यकारणभावादि-व्यवस्थाप्यत्र दुर्घटा ।
शक्तीनां नियमोऽप्येष, स्यात्सत्त्वेन विना कथम् ॥९॥

भिन्नो भावादभिन्नो वा, नाशः किं वा स एव न ? ।
भेदे वस्तूपलभ्येत, तादवस्थ्यप्रसङ्गतः ॥१०॥

अभेदे भाव एवाय-मभावः केवलोऽथवा ।
ततः सहावभासेत, भावो यद्वा कदाऽपि न ॥११॥

अभावेऽपि च नाशस्य, वक्तुमेतदसाम्प्रतम् ।
न तस्य किञ्चिद्भवति, न भवत्येव केवलम् ॥१२॥

विद्युदाद्यपि नात्यन्तं, नाशित्वेन प्रकाशते ।
अन्धकाराद्युपादान-भावेनास्यैव सम्भवात् ॥१३॥

न चैवं तस्य रूपस्य, नाशे पूर्वसमुद्भवः ।
तदन्यस्यापि तन्नाशस्वभावस्य प्रसूतितः ॥१४॥

कर्मतत्फलसम्बन्ध-बन्धमोक्षाद्यसङ्गतिः ।
स्फुटैव सर्वथोच्छेदे, सन्तानः स्वः परो न वा ? ॥१५॥

इन्द्रियाधीनजन्मेय-मभेदग्राहिणी मतिः ।
प्रामाण्यं बाधवैकल्या-दश्नुते भेदबुद्धिवत् ॥१६॥

यदभेदस्य भेदेन, भवनं सोऽयमन्वयः ।
एकान्तेन न नित्यत्वं, प्रमाणानुपपत्तितः ॥१७॥

भावा ज्ञेयस्वभावश्चे-न्नित्यं तज्ज्ञानसम्भवः ।
त(अ)थाज्ञेयस्वभावास्ते, कदा तज्ज्ञानसम्भवः ? ॥१८॥

सहकारिव्यपेक्षाऽपि, नित्यैकान्ते न युज्यते ।
नाधेयं नापनेयं वा, रूपं तैस्तस्य किञ्चन ॥१९॥

वस्तुतोऽचिन्त्यशक्तित्वादे(त्वमे)व चेदिष्यते परैः।
द्रव्यरूपस्य पर्यायै-रैक्यं दृष्टं न किं मतम् ? ॥२०॥

न हि द्रव्यातिरेकेण, पर्यायाः सन्ति केचन ।
द्रव्यमेव ततः सत्यं, भ्रान्तिरन्या तु चित्रवत् ॥२१॥

पर्यायव्यतिरेकेण, द्रव्यं नास्तीह किञ्चन ।
भेद एव ततः सत्यो, भ्रान्तिस्तद्ध्रौव्यकल्पना ॥२२॥

नाभेदमेव पश्यामो, भेदं नापि च केवलम् ।
जात्यन्तरं तु पश्याम-स्तेनानेकान्तसाधनम् ॥२३॥

सुखदुःखादिसम्बन्धो, युज्यते कथमन्यथा ? ।
व्यर्थः श्रमस्ततोऽन्येषां, दुस्तर्काकुलचेतसाम् ॥२४॥

ननूत्पादादयो धर्मा, भिन्नाः स्युर्धर्मिणो यदा ।
नीरूपत्वं तदा तस्य, वाच्यं वा लक्षणान्तरम् ॥२५॥

अभेदे युक्तता न स्यात्, अस्याभेदव्यपेक्षणात् ।
सम्बन्धशब्दो नायं यद्, न द्वयेन विना स तु ॥२६॥

किं चोत्पादादियोगित्व-मुत्पादादेर्यदेष्यते ।
अनवस्था तदा मृग्यं, तेनान्यद्वस्तुलक्षणम् ॥२७॥

सत्त्वं हि वस्तुनो रूपं, सदिति प्रत्ययो यतः ।
सत्त्वरूपवियोगेन, नोत्पादादेरपि स्थितिः ॥२८॥

यदुत्पादव्ययध्रौव्य-युक्तं तेभ्यः परं न तत् ।
किन्त्वभेदांशमाश्रित्य, तेषामेव तथा स्थितिः ॥२९॥

भिन्नशब्दप्रवृत्तिश्च, भेदांशस्यापि सम्भवात् ।
निरपेक्षौ न चान्योऽन्यं, भेदाभेदाविमौ क्वचित् ॥३०॥

वस्तुनस्तन्न नैरूप्यं, न चान्यदपि दूषणम् ।
सदिति प्रत्ययोऽप्येष, तत एवोपजायते ॥३१॥

बोधरूपादयोऽप्येतत्-त्रैरूप्याभेदवर्तिनः ।
कथञ्चित्तेन जैनेन्द्रं, सुदृशं वस्तुलक्षणम् ॥३२॥

❖ ❖ ❖

परिशिष्ट विभाग

षड्दर्शन सूत्रसंग्रहः

अकारादिक्रमः (पृष्ठांकसहितः)

: परिशिष्ट :

षड्दर्शनसूत्रसंग्रह – अकारादिक्रमः (पृष्ठांक सहितः)

प्रमाणनयतत्त्वालोकः

प्रमाणमीमांसा

श्री तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्

जैमिनीयमीमांसासूत्रपाठः

वेदान्तदर्शनम्

सांख्यदर्शनम्

योगदर्शनम्

न्यायदर्शनम्

(प)

(ह)

वैशेषिकदर्शनम्

(अ)

(आ)

❖❖❖

मुनिश्री द्वारा संपादित-लेखित-संकलित पुस्तक

ग्रंथ-पुस्तक का नाम	प्रकाशन वर्ष
१-२. षड्दर्शन समुच्चय भावानुवाद, भाग-१,२ (गुजराती)	वि.सं. २०६१
३. धर्मसंग्रह सारोद्धार, श्रमणधर्म, भाग-२ (गुजराती)	वि.सं. २०६१
४. तिथि अंगे सत्य और कुर्तको की समालोचना (★) (गुजराती)	वि.सं. २०६१
५. तत्त्व विषयक प्रश्नोत्तरी (★) (गुजराती)	वि.सं.२०६२
६. योगदृष्टि से जीवनदृष्टि बदलीये (१) (गुजराती)	वि.सं. २०६२
७. त्रिस्तुतिक मत समीक्षा प्रश्नोत्तरी (गुजराती)	वि.सं. २०६४
८. त्रिस्तुतिकमत समीक्षा प्रश्नोत्तरी (हिन्दी)	वि.सं. २०६४
९. चतुर्थस्तुति निर्णय (सानुवाद) भाग १-२ (हिन्दी, गुजराती)	वि.सं. २०६४
१०. योग पूर्वसेवा (२) (गुजराती)	वि.सं. २०६४
११. शुद्धधर्म(★) (३) (गुजराती)	वि.सं. २०६५
१२. अध्यात्मशुद्धि (४) (गुजराती)	वि.सं. २०६६
१३. समाधिमृत्यु थकी सद्गति, सद्गति थकी भवमुक्ति (५) (गुजराती)	वि.सं. २०६७
१४. षड्दर्शन समुच्चय भावानुवाद, भाग १ (हिन्दी)	वि.सं. २०६८
१५. षड्दर्शन समुच्चय भावानुवाद, भाग २ (हिन्दी)	वि.सं. २०६८
१६. षड्दर्शन सूत्रसंग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः	वि.सं. २०६८
१७. आत्मानी त्रण अवस्था (६) (गुजराती) (मुद्रण में)	वि.सं. २०६८

नोंध : (★) ऐ निशानवाले पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।


100
दीक्षाशताब्दी
शासन शिरताज सूरिरामचंद्र दीक्षा शताब्दी
७
ग्रंथमाला